

DUE DATE SLIP**GOVT. COLLEGE, LIBRARY**

KOTA (Raj.)

Students can retain library books only for two weeks at the most.

BORROWER'S No.	DUE DATE	SIGNATURE

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला

१४५

१९५३

बघेलखण्ड के संस्कृत-काव्य

डॉ. राजीवलोचन अग्रहोत्री

एम०, ए०, एल-एल० बी०, पी-एच० डी०

संस्कृत-विभागाध्यक्ष

शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय

अध्यक्ष, संस्कृत-अध्ययन-विभाग

इन्दौर विश्वविद्यालय



चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१

१९५३

प्रकाशक : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०१९
मूल्य : २५-००

© चौखम्बा विद्याभवन
चौक, पो० बा० ६६, वाराणसी-१
फोन : ६३०७६

प्रधान कार्यालय
चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
गोपाल मन्दिर छेन,
पो० झा० चौखम्बा, पोस्ट बाक्स ८, वाराणसी-१
फोन : ६३१४५

THE
VIDYABHAWAN RASHTRABHASHA GRANTHAMALA

145

ॐॐॐ

BAGHELAKHANDA KE SAMSKṚTA KĀVYA

(*Sanskrit Poems of Baghelkhandā*)

By

DR. RĀJĪV LOCHAN AGNIHOTRĪ

M. A., LL. B.; Ph. D.

Professor of Samskr̥ta

Govt. Arts & Commerce College

Head of the Deptt. of Samskr̥ta Studies

University of Indore

THE
CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN

VARANASI-1

1973

© The Chowkhamba Vidyabhawan

Post Box No. 69

Chowk, Varanasi-1 (India)

1973

Phone : 63076

First Edition

1973

Price Rs. : 25-00

Also can be had of

THE CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE

... Publishers & Oriental Book-Sellers ...

P. O. Chowkhamba, Post Box 8; Varanasi-1 (India)

Phone : 63145

जननी
के
पावन चरणों में



महाराज विश्वनाथसिंह

[जन्म १७८६ ई०, राज्य १८३४-१८५४ ई०]
बघेलखण्ड के यज्ञस्वी संस्कृत कवि और दार्शनिक नरेश

प्रस्तुति

बघेलखण्ड के संस्कृत-साहित्य के प्रति मेरे उन्मुख होने का एक लघु वृत्तान्त है। १९५५ ई० में विन्ध्यप्रदेश के सूचना एवं प्रकाशन-विभाग (रीवा) की ओर से साहित्यिक पुरस्कारों में संस्कृत-विषय को भी जोड़ा गया। इसका श्रेष्ठ तत्कालीन पदाधिकारी डॉ० विद्यानिवास मिश्र को है। रीवा के किले में अवस्थित सरस्वती-क्षोष-भाण्डार में संस्कृत की प्रचुर पाण्डुलिपियाँ हैं। उक्त पुरस्कार-योजना में भाग लेने के लिए मैंने इस साहित्य का परिचय 'संस्कृत-साहित्य को बान्धन-नरेशों की देन' नामक पुस्तक के रूप में प्रस्तुत किया। पुस्तक पुरस्कृत हुई और रीवा-नरेश के औदार्य से १९५७ ई० में प्रकाशित भी हो गई। १९५६ ई० में मैंने महाराज विश्वनाथ सिंह द्वारा प्रणीत 'राधावल्लभाय-मत-श्रवर्तक ब्रह्मसूत्र-भाष्य' का 'चतुःमूयन्त' हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत किया। यह भी पुरस्कृत हुआ। १९५७ ई० में विन्ध्य-संस्कृत-विश्व-परिषद् रीवा की ओर से रूपणि शर्मा द्वारा १९७८ ई० में रचित 'बघेलवंश-वर्णनम्' का मैंने सम्पादन और प्रकाशन कराया, जिसमें रीवा के अनेक विद्वानों से प्रोत्साहन मिला।

उपर्युक्त साहित्य का विशेष अध्ययन प्रस्तुत करने की रुचि जागृत हो जाने से मैंने १९५८ ई० में छतरपुर से सागर-विश्वविद्यालय में विषय पंजीयित कराया। १९५९ ई० में मेरी नियुक्ति इन्दौर में हो गई और मानव-जन्तुओं ने बाधाएँ उपस्थित कर दीं। सफलता को संशयमस्त देख कर मैंने अनुसन्धान का विचार त्याग दिया।

१९६२ ई० में मेरे परमसखा डॉ० राजेन्द्र शुक्ल (दिल्ली विश्वविद्यालय) ने मुझे पुनः प्रवृत्त किया और विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन में अनुसन्धान की अनुमति मिल गई। १९ दिसंबर १९६४ ई० को पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हो गई। वही प्रबन्ध अब प्रकाश में आ रहा है।

ज्ञानपुर के श्रेष्ठ डॉ० हरिदत्त शास्त्री और वाराणसी के आदरणीय डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, दोनों कर्मनिष्ठा की साकार मूर्तियों ने इस प्रबन्ध को

स्वीकृति दी। इन्दौर के प्रो० धुं० गो० सप्रे ने सुयोग्य निर्देशन दिया। मैं इनका सदा ऋणी रहूँगा।

रीवा-निवासी प्राचार्य श्री अस्तर हुसेन निजामी ने वघेलखण्ड के इतिहास पर सञ्चित अपनी ज्ञानराशि मुझे सहज स्नेह के साथ सौंप दी। रीवा के ही गुरु रामधारे अग्निहोत्री, प्राचार्य श्री चिन्तामणि मालवीय, लाल महावीरसिंह, पं० नन्दकिशोर पोष्टाचार्य, मौलाना ऐयाज अली, मानपुर के श्री रामभद्र गौड़ और भरतपुर के लाल भानुसिंह वाघेल ने वघेल-इतिहास की अपनी जानकारियाँ मुझे सद्भाव के साथ लिखवाई और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ दिसलाई। रामनन (जिला सतना) के वावू शारदाप्रसाद जी का घातसल्य मैं भूल नहीं सकता। सतना के डॉ० भगवानदास सफाड़िया मुझे अंकुरा-प्रयोग से अग्रसर करते रहे। सरस्वतीकोप-भाण्डार रीवा के अधिकारी-गण पाण्डुलिपियाँ देरने में मेरी पूरी सहायता करते रहे। मेरे प्रिय अनुज चि० अवधेश अग्निहोत्री ने प्रबन्ध को आकार देने में सहायता की। इन्दौर के डॉ० लक्ष्मण नारायण शूक, डॉ० नारायणदत्त शर्मा, श्री रवीन्द्र शास्त्री, डॉ० ध्यानचन्द्र अप्पवाल, श्री मेहरवान ईरानी तथा अनेक शिष्य और सहकारी मेरी इस सिद्धि में सुख का अनुभव करते रहे। इन सबका मैं कृतज्ञ हूँ।

यह पुस्तक मेरे १० वर्षों के परिश्रम का परिणाम है। यह मेरी संवद्ध जानकारियों की विशृङ्खल कड़ियों का जोड़ है और एक विशिष्ट अवधि (१५००-१९०० ई०) में वघेलखण्ड जनपद (वर्तमान रीवा संभाग) में रचित संस्कृत काव्यसाहित्य का निचोड़ है। उपयोगिता की दृष्टि से मैंने इस प्रबन्ध पर कभी विचार नहीं किया। यह मेरे लिये केवल 'स्वान्तःसुखाय' है और मैंने अपनी इस प्रस्तुति से सच-मुच आत्म-नृप्ति का अनुभव किया है।

वैदिक-साहित्य में उल्लेख मिलता है—'इरा विश्वस्मी भुवनाय जायते।' यह प्राणियों की जीवनाधायक सामग्री के अर्थ में अनिहित हुआ है। वैदिक युग के प्रायः मध्य काल में सोमरस की उद्भावना प्रचल हो उठी। सोमरस में इरा का पोषक तत्त्व निहित था, साथ ही उसमें सुरा का मादक, आह्लादक तत्त्व भी समाविष्ट हो गया था। सम्भवतः इसी मिश्रण ने सोमरस को वैदिक काल में सर्वाधिक लोकप्रियता प्रदान की। आगे चल कर सुरा का तत्त्व

पृथक् हो गया; सुरा विलास का साधनमात्र रह गई और सुरा-पान का निषेध भी हुआ। इसी प्रकार इरा तत्त्व शस्य-भेषज्य के क्षेत्र में सीमित हो गया।

हम इस कल्पना को काव्य के क्षेत्र में उतार कर देखें। इरा काव्य का शिव तत्त्व है और सुरा उसका सुन्दर तत्त्व। कालिदास जैसे उत्तम कवियों की कृतियों में इन दोनों तत्त्वों का समानुपातिक सम्मिश्रण रहने से उन्हें सोनरस वाली लोकप्रियता उपलब्ध हुई। परवर्ती काव्यों में आह्लादन, आस्वादन या उन्मादन तत्त्व का अतिरेक हो गया। उनमें शिव-तत्त्व का बहुत थोड़ा अंश शेष रहा। वे वैभव और विलास में तैरने वालों के लिये मनोरंजन के साधन मात्र रह गए और जन-जीवन से दूर हो गए। हमारी दृष्टि में भार्गी कवियों को इस बात का ध्यान रखना पड़ेगा कि उनकी रचना में इन दोनों में से किसी भी तत्त्व की उपेक्षा न हो; तभी उनकी काव्यकृति उपादेय और आह्लादक रह सकती है।

इस सम्मति के साथ अपने अन्तःकरण की भूमिका पर अङ्कुरित इस प्रबन्धवह्वी के शब्द-सुमन नई पीढ़ी को समर्पित हैं।

इन्दौर,
दुर्गानवमी, सं० २०२९ वि०
१६ अक्टूबर, १९७२ ई०

—राजीवलोचन अग्निहोत्री

विषय-विवरण

पृष्ठ

प्रथम अध्याय : विषय-निर्धारण	...	१-१०
द्वितीय अध्याय : पृष्ठ-भूमि	...	११-१०८

(क) (१२) बघेल-शब्द की व्युत्पत्ति (२०) बघेल खण्ड शब्द से तात्पर्य (२१) बघेलखण्ड की स्थापना और विस्तार (२८) भौगोलिक सीमाओं में क्रमिक परिवर्तन (३०) आधुनिक स्वरूप (३१) देश की परिस्थिति का बघेलखण्ड पर प्रभाव ।

(ख) (३७) पिछले चार शताब्दियों में देश में संस्कृत-सर्जना की धारा (४६) बघेलखण्ड का संस्कृत-साहित्य (९४) काव्यों के भेद-प्रभेद एवं वर्गीकरण ।

तृतीय अध्याय : महाकाव्य : वीरभानूदयकाव्यम्	...	१०९-
--	-----	------

(क) परिचयात्मक विवरण—(११०) १-पाण्डुलिपि और उमरा प्रकारान (११२) २-कवि-परिचय और ग्रन्थ का रचनाकाल (११९) ३-वस्तु-तत्त्व ।

(ख) काव्यात्मक विश्लेषण—(१२६) महाकाव्य के लक्षण और वीरभानूदयकाव्य का परीक्षण (१४०) शैली (१४१) भाषा और पदावली : गुण, वृत्ति, रीति (१४४) रस (१४०) अलङ्कार-भावव्यञ्जना (१४३) कालिदास के काव्यों की छाया (१५६) प्रमुख चरित्र (१६५) महाकाव्यों की परम्परा और वीरभानूदय काव्य ।

(ग) काव्य में उपलब्ध ऐतिहासिक तत्त्व (१०९) बघेलों की पूर्वजपरम्परा (१७९) तत्कालीन प्रदेश, नगर, जाति और व्यक्ति (१८७) बघेलखण्ड का तत्कालीन समाज एवं संस्कृति—संस्कार (१९०) वर्ण (१९१) आश्रम (१९२) दर्शन-उपासना (१९५) जनजीवन (१९८) राज्यतन्त्र ।

चतुर्थ अध्याय : लघुकाव्य	...	१९१-२५६
--------------------------	-----	---------

(१) प्रशस्तिकाव्य—रामचन्द्र-यशः-प्रबन्धः

(क) परिचय : (२०४) ऐतिहासिक तथ्य : (२०६)

(ख) भाव-व्यञ्जना और कला-सौन्दर्य : (२११) (ग) प्रशस्तियों की परम्परा ।

(२) कथा-काव्य : दशकुमार-पूर्वकथागार :

(क) पाण्डुलिपि का विवरण : (२१८) (ख) कवि-परिचय : (२१६) (ग) कथातत्व : (२१९) (घ) काव्यकला : (२२०) संस्कृत के अन्य कथागार ।

(३) मंथिता (भंशावली) काव्य—यथैलवर्ग-वर्णनम् :

(क) पाण्डुलिपि और कवि का परिचय (२१०) : (ग) ऐतिहासिक सामग्री का तुलनात्मक अध्ययन (२१८) : (ग) भावसिद्ध (२२२) : (घ) काव्य का ऐतिहासिक महत्त्व (२२२) : (ङ) काव्यात्मक गौन्दर्य ।

(४) पद्म-काव्य : रामचरितम् :

(क) कवि-परिचय (२२७) : पाण्डुलिपि (२२८) : (ख) ग्रन्थ में प्राप्त काव्यगौन्दर्य (२३०) : दर्शन (२३१) ।

(५) स्तुतिकाव्य :

(क) कवि रघुगजसिंह का परिचय (२३३) : (ग) स्तुति-काव्यों का विवरण—१-गुणमौगिलाग (२३५) : २-जगदीशरातकम् (२३८) : ३-रघुराजमङ्गल-चन्द्रावली (२४१) : ४-शम्भुरातकम् (२४२) : ५-नर्मदाष्टकम् (२४२) : ६-लोकनायाष्टकम् (२४३) : (ग) प्रस्तुत काव्यों में प्राप्त दर्शन (२४४) : (घ) रचनाशैली (२४९) ।

(६) स्फुट रचनाएँ (२५४) ।

पञ्चम अध्याय : चम्पू

... २५७-३१७

(क) वीरभद्रदेव-चम्पू : (१) कवि-परिचय (२५७) : पञ्चनाम के ग्रन्थ (२६८) : (२) वीरभद्रदेवचम्पू का विवरण (२७८) : (३) चम्पू का कथातत्व (२७७) : (४) ऐतिहासिक उल्लेख (२७७) : (५) प्रमुख कविय (२८८) : (६) वीरभद्र-देवचम्पू में प्राप्त गाक्षिण्य (२८६) : (७) चम्पू-प्राक्षिण्य की परम्परा (२९०) ।

(ग) विश्वनाथसिंह की कृतियाँ (१) पाण्डुलिपियों से सम्बद्ध जानकारी—सङ्गीत-रघुनन्दनम् (२९३) : रामचन्द्रादिष्टम् (२९७) : (२) कथातत्व (२९७) : (३) शैली और काव्यगौन्दर्य—मय-काव्य (३०१) : पद्मकाव्य (३०४) : (४) दोनों काव्यों में प्राप्त गम का स्वरूप—(क) काव्यात्मक रूप (३१३) : (ग) उपास्य रूप (३१८) ।

पष्ठ अध्याय : नाटक : आनन्द-रघुनन्दन-नाटकम्	३१६-३७०
(क) परिचयान्तक विवरण (१) पाण्डुलिपियों (३१६) :	
(२) रचनाकाल (३१७) : (३) वस्तु-तत्त्व (३१९) : (४)	
वाल्मीकि-रामायण का प्रभाव (३२८) ।	
(ख) वाक्यान्तक विरलेपण (१) नाट्यशास्त्र की दृष्टि से	
प्रस्तुत ग्रन्थ का परीक्षण (३३१) : (२) संवादों की प्रभावात्मकता	
और अभिनेयता (३३७) : (३) शैली (३४३) : (४) प्रमुख	
चरित्र (३४१) ।	
(ग) तुलनात्मक रूप (१) हिन्दी के आनन्द-रघुनन्दन की	
प्रस्तुत संस्कृत नाटक पर छाया (३६४) : (२) राम पर लिखे गये	
अन्य संस्कृत नाटकों के साथ सामान्य तुलना (३६६) : (३) राम-	
कथात्मक संस्कृत रूपक (३६९) ।	
सप्तम अध्याय : उपसंहार	३७१-३७२
परिशिष्ट १—	
(क) एकत्रा बाणयोगद (जमाबन्दी १)	३७३
(ख) वंशावली बाधौपति (जमाबन्दी २)	३७६
(ग) वंशावली (जमाबन्दी ३)	३७६
परिशिष्ट २—तारीखी-मुहम्मदी का एक उल्लेख	३७८
परिशिष्ट ३—शिलालेख	३७९
परिशिष्ट ४—छाया-चित्र के दो पृष्ठ	३८०
सन्दर्भ ग्रन्थ	
(क) संस्कृत (प्रकाशित)	३८१
(ख) संस्कृत (अप्रकाशित)	३८४
(ग) हिन्दी (प्रकाशित)	३८५
(घ) हिन्दी (अप्रकाशित)	३८६
(ङ) हिन्दी-निबन्ध	३८७
(च) अंग्रेजी (प्रकाशित)	३८७
(छ) अंग्रेजी-निबन्ध	३८९
अवशिष्ट	३९३

सन्दर्भ-सङ्केत

(Abbreviations)

(क) अंग्रेजी ग्रन्थ और निबन्ध

- अक० : Akbarnamah of Abul Fazl : Tr. H. Beveridge : 1907.
आइडेंटिफिकेशन० : 'Identification of Virabhānu, the Patron of
Poet Bhānukara' : by P. K. Gode : Calcutta Oriental
Journal : Vol. II-1935 : pp. 254-258.
आईन० : Ain-i-Akbari of Abul Fazl : Tr. Blochmann :
Calcutta : 1873.
आफ्रे० : Aufrecht : Catalogus Catalogorum : Leipzig.
आ० रि० इ० : Archaeological Survey Reports of India by
A. Cunningham.
इ० ऐ० : Indian Antiquary.
इ० क० : Indian Culture.
इ० ग० : Imperial Gazetteer of India by Hunter.
इन्स० भावनगर० : A Collection of Prakrit & Sanskrit Inscrip-
tions in the Bhavanagar Archaeological Department.
इ० हि० : Indian Historical Quarterly.
ई० दा० : Elliot and Dowson : History of India.
ए० इ० : Epigraphica Indica by Buhler.
ए० डेस्० कै० : A Descriptive Catalogue of Sanskrit Manuscripts
in the Royal Asiatic Society of Bengal—Calcutta :
Vol. vii-1934 by M. M. Har Prasād Shastri.
एनवस० - Annals of the Bhandarkar Oriental Research Insti-
tute : Poona.
ओ० चा० : Origin of the Chālukyas : by Ranjit Singh Satyasray :
Calcutta : 1938.
ओ० ज० : Calcutta Oriental Journal.
कि० भा० : The Kiraṇāvalī—Bhāskara of Padmanābha Miśra :
Gopinātha Kavirāja : Sarasvati Bhawan Texts No. 1.
Banaras : 1920.
कै० अलवर : Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the Ulwar
State.
कै० अवध : Catalogue of Sanskrit Manuscripts Existing in
Oudh.

- कै० उदयपुर : Menaria—M. L. : *Catalogue of Manuscripts in the Library of H. H. The Maharana of Udaipur.*
- कै० काश्मीर : *Catalogue of Manuscripts in Kashmir.*
- कै० तंजोर : Shastri—P. P. S. : *Catalogue of Manuscripts in the Palace Library, Tanjore.*
- कै० बीकानेर : Mitra—R. L. : *A. Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the (Anup Sanskrit) Library of the Maharaja of Bikaner.*
- कै० बंगाल : Shastri—H. P. : *Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the Asiatic Society of Bengal : Vol. iv : Calcutta : 1923.*
- कै० मैसूर : *Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the Oriental Library, Mysore and Supplement.*
- ग० मै० ला० : *Government Manuscripts Library : Poona.*
- ग्लो० गु० : *Glory that Was Gurjar Desa : by K. M. Munshi : Bharatiya Vidya Bhavan : Bombay : 1954.*
- चौ० गु० : *Chaulukyās of Gujrat : by A. K. Majumdar : Bharatiya Vidya Studies IV—Bombay : 1956.*
- ज० ए० सो० : ज० रा० ए० सो० : *Journal of the Royal Asiatic Society of Bengal : Calcutta.*
- ज० गं० इ० : *Journal of the Gaṅgānātha Jhā Research Institute : Allahabad.*
- ज० बि० भो० सो० : *Journal of the Bihar and Orissa Research Society : Patna.*
- टर्मिनस० : 'Terminus ad quem for the Date of Bhānudatta : the Author of the *Rasa-Mañjarī* : by P. K. Gode : *Annals : Poona : Vol. xvi—1935 : pp. 147-48.*
- दा० हि० ना० इ० : *Dynastic History of Northern India : by H. C. Ray : Vol. II. Calcutta : 1936.*
- दि० पोयट भानुकर० : 'The Poet Bhānukara' : by Dr. Har Dutt Sharma : *Annals : Vol. XXVII—Part 3 : 1936.*
- नाइन जेम्स० : 'Nine Gems of the Court of Mahārāja Bhāvasimha of Rewa' : by A. H. Nizami : *Journal of the Gaṅgānātha Jhā Research Institute : Allahabad : Vol. VIII—Part 4 : Aug. 1951.*
- न्यू० इ० ऐ० : *New Indian Antiquary.*
- पद्य० : *The Padya-Racanā of Lakṣmaṇabhata : Kāvya-mālā : Bombay.*

- पद्यवेणी० : The Padya-Veṇī of Venīdatta : Prācyavāṇī :
Calcutta : 1944.
- पद्यामृत० : The Padyāmṛta-Taraṅgiṇī of Hariḥhāskara :
Prācyavāṇī : Calcutta : 1941.
- पीटर्सन० : Petersons Reports of the Operations in Search of
Sanskrit Manuscripts in the Bombay Circle.
- फर्दर नोट्स० : 'Further Notes on the Baghela Dynasty of
Rewa' : by Dr. Hiranand Shastri : Journal of the Bihar
and Orissa Research Society : 1930.
- बघेल डाइनैस्टी० : 'The Baghela Dynasty of Rewa—A Memoir' :
by Dr. Hiranand Shastri : Baroda : 1925.
- भा० भो० रि० इ० : Bhandarkar Oriental Research Institute,
Poona.
- भादु० : 'Bhānudatta—Author of the Pārijāta and Bhānudatta-
Author of the Rasa-Maṣjari' : by P. K. Gode : Indian
Culture : Vol. III—1937 : pp. 751—56.
- मित्रा० : Notices of Sanskrit Manuscripts by Rajendra Lal
Mitra : Calcutta : 1871.
- मुस्लिम पैट्रनेज० : Muslim Patronage to Sanskrit Learning :
J. B. Chaudhuri : Vol. I : Prācyavāṇī : Calcutta : Second
Edition : 1954.
- रसिक० : The Rasikajivana of Gadādhara Bhattācārya :
Prācyavāṇī : Calcutta.
- रा० ए० सो० : The Royal Asiatic Society of Bengal : Calcutta.
- रामचन्द्र भट्ट ए प्रोटेज० : 'Rāmacandra Bhaṭṭa' A Protege of
King Pahārasimhadeva, Son of King Virasimhadeva
of Bundel-Khand' : by P. K. Gode : Adyar Library
Bulletin : Vol. XVIII—Part I & II.
- राम० प्र० : The Rāmacandra-Yasah-Prabandha of Govinda
Bhaṭṭa alias Akbariya Kālidāsa : Prācyavāṇī : No. 7 :
Calcutta : 1946.
- वाघेल रुल्स० : 'Some Vāghela Rulers and the Sanskrit Poets
Patronised by them' : by Dr. Har Dutt Sharma :
Krishnaswamy Aiyangar Commemoration Volume :
Ahmedabad : pp. 48—54.

- वीर० अंग० : The English Summary of the *Virabhānūdaya Kāvya* by K. K. Lele, published at the end of the work.
- वीर० क्रि० ए० : *Critical Analysis of the Virabhānūdaya Kāvya* by Dr. Hiranand Shastri : Published with the *Kavya* : Baroda : 1938.
- वीर० चम्पू० : The *Virabhadra-Campū* of Padmanābha Miśra : *Prācyavāṇī* : Vol. XII : *Journal of the Prācyavāṇī* : Calcutta : Vol. IX : 1952.
- सम्भा० : The *Sabhyālaṅkaraṇa* of Govindajit : *Prācyavāṇī* : Calcutta : 1947.
- सम्प्रेषण० : 'Some Data of the Identification of Virabhānu, the Patron of Poet Bhānukara' : by P. K. Gode : *Calcutta Oriental Journal* : Vol. II-1935 : pp. 197-199.
- सा० सं० : *Sāra-Saṅgraha* of Śambhūdasā Pandita : RASB-31-A.
- साहित्यसुधा० : 'Date of *Sāhitya-Sudha*, A Commentary on the *Rasa-Taraṅgiṇī* of Bhānudatta' : by P. K. Gode : *Calcutta Oriental Journal* : Vol. I, 1944, pp. 217-220.
- सूक्ति० : The *Sūkti-Sundara* of Sundaradeva : *Prācyavāṇī* : Calcutta.
- संस्कृत एवढ दिन्दी ववर्स० : 'Sanskrit and Hindi works of Mahārāja Viśvanātha Simha of Rewa—Between 1813 and 1853' by P. K. Gode : *New Indian Antiquary* : BORI : Poona : Vol. IX-Nos. 4-6 : April-June : 1947.
- संस्कृत ववर्स० : 'Sanskrit Works of Mahārāja Viśvanātha Simha by Chintabaran Chakravarti : *Journal of Royal Asiatic Society of Bengal* : Vol. V : Calcutta : 29th October 1939.
- हि० छा० सं० लिट्० : *History of Classical Sanskrit Literature* by M. Krishnamachariar : Madras : 1937.

(ख) संस्कृत-हिन्दी-ग्रन्थ

- भा० रघु० : ध्यानन्द रघुनन्दन नाटक (हिन्दी) : विन्ध्यप्रदेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन : रीवा : १९६० ।
- कन्दर्प० १ : कन्दर्प-चूड़ामणि (वीरभद्रदेव) : सं० : जीतन सिंह : बेंकटरमण प्रेस : रघुराजनगर (सतना) : १९०८ ।
- कन्दर्प० २ : कन्दर्प-चूड़ामणि (वीरभद्रदेव) : सं० : रामचन्द्र शास्त्री : संस्कृत पुस्तकालय : लाहौर : १९२६ ।
- गीत० : गीतगोविन्द (जयदेव) : निर्णयसागर : वम्बई १९२९ ।
- दत्तिया० : दत्तिया पुस्तकालय : विन्ध्यप्रदेश सूचना विभाग : रीवा ।
- पदे० : श्री जगन्नाथ शास्त्री पदे सम्मानाङ्क : बड़ौदा : १९६४ ।
- वघेल० : वघेलवंशवर्णनम् : (रूपणि मिश्र) : सं० : राजीवलोचन अग्निहोत्री : विन्ध्य-संस्कृत-विश्वपरिषद् : रीवा : १९५७ ।
- मासिर० : मामिर-ठल-उमरा (समसाम उद्दौला-१०४७ ई०) : अनु० प्रजरत्नदास : प्रकाशित-काशी ।
- वि० प्र० इ० : विन्ध्य प्रदेश का इतिहास : रामप्यारे अग्निहोत्री : रीवा : १९५४ ।
- वीर० : वीरभानूदयकाव्यम् (माधव) : प्रकाशित : रीवा : १९३८ ।
- शरदागम० : चन्द्रालोक-शरदागम टीका : (पयनामिश्र) नारायण शास्त्री खिस्ते : चौखम्बा-काशी : १९२९ ।
- स० को० भा० : मरस्वती कोष-भाण्डार; किला रीवा ।
- सु० हा० : सुभाषित-हारावली ।
- सङ्गीत० : सङ्गीत-रघुनन्दनम् (विश्वनाथसिंह) : स० को० भा० ।
- सं० बा० दे० : संस्कृत-साहित्य कोषान्धव-नरेशों की देन : राजीवलोचन अग्निहोत्री : रीवा : १९५७ ।
- हि० सा० को० : हिन्दी साहित्य-कोष : ज्ञानमण्डल लिमिटेड : बनारस : भाग १ : सं० २०१५ : भाग २ : सं० २०२० वि० ।

वन्दनम्

(१)

जानक्या स्निग्धया दत्ते मुक्ताहारेऽतिभास्वरे ।
विचिन्वन्तं परं राममाञ्जनेयमुपाश्रये ॥

(२)

समुद्रैर्धौत-पादाब्जां शुभ्रां दिमकिरीटिनीम् ।
भारतीं जननीं वन्दे शस्य-श्याम-चलाञ्जलाम् ॥

(३)

गीतं रामायणं काव्यं येन तन्मय-मूर्तिना ।
आद्याय च धरिष्ठाय तस्मै वाल्मीकये नमः ॥

(४)

कल्पते प्रतिभा-लब्धै यस्य काव्येऽवगाहनम् ।
महाभारत-कर्त्तारं वन्दे व्यासं महामतिम् ॥

(५)

बुध-शस्यानि वर्द्धन्ते यत्काव्यामृतवर्षया ।
त शब्दाकाश-संख्यातं कालिदासाम्बुदं भजे ॥

(६)

स्वलङ्कृता कवेर्वाणी रमावर्जन-कारिणी ।
रागिणीव रसज्ञस्य सद्यो नर्तयते मनः ॥

(७)

उद्दीप्तस्य रसस्यैव स्व-चेतसि सुभाषया ।
सङ्क्रान्तिः परचेतस्सु कवि-कर्म निगद्यते ॥

(८)

सदा तदनुसन्धेयमास्वादन-परैर्बुधैः ।
न पुनः पण्डितम्मन्यैर्वाचालैस्तर्क-कर्कशैः ॥



बघेलखण्ड के संस्कृत-काव्य

विषय-निर्धारण

सामान्यतः यह धारणा रूढ़िवाद से है कि संस्कृत एक ऐसा प्राचीन विषय है, जिससे देश का सम्बन्ध सहस्रों वर्ष पूर्व टूट चुका है। संस्कृत को 'मृतभाषा' नाम देने में यह धारणा सहायक होती है। इस धारणा को भ्रामक सिद्ध करने के लिए आज वाल्मीकि, व्यास, कालिदास और भवभूति जैसे महान कवियों की प्राचीन कृतियाँ सहायक साधन के रूप में हमारे लिये उपयोगी नहीं हो सकतीं। इस प्रयोजन की पूर्ति के लिये ईसा की दूसरी सहस्राब्दी में निर्मित संस्कृत साहित्य का अनुसन्धान करना होगा। यह देखना होगा कि मुसलमानों के आक्रमण और शासन के काल में तथा परवर्ती अंग्रेजी शासन-काल में भी, दासता के इन सहस्र वर्षों में देश संस्कृत को नहीं भूला। यही नहीं, इस अवधि में ही देश के विभिन्न अञ्चलों, राजधानियों, विद्या-केन्द्रों एवं मठों में इतिहास को गौरवान्वित करने वाले साहित्य का प्रचुर मात्रा में सर्जन हुआ। नवद्वीप, मिथिला, ब्रजमण्डल, काशी, विजयनगर, काञ्चो, पाटन, धारा, थोतनगर आदि केन्द्रों में संस्कृत की रचनाएँ चलती रहीं। दर्शन के क्षेत्र में चैतन्य, बल्लभ, हित हरिवंश, प्रियादास, निम्बार्क, विष्णुस्वामी, मध्व, रामानन्द, मधुसूदन सरस्वती और विद्यारण्य तथा उनके शिष्य-प्रशिष्यों की अमूल्य कृतियाँ इसी आक्रान्त युग की उपलब्धियाँ हैं। काव्य-शास्त्र के अन्तर्गत साहित्यदर्पण, रस-गङ्गाधर, रस-मञ्जरी, प्राकृत-विज्ञान कुवलयानन्द आदि ग्रन्थों को मुलाया नहीं जा सकता। उसी तरह अनेक स्तुति-ग्रन्थ, कोय, सुभाषितों के संग्रह, आयुर्वेद, कामशास्त्र, ज्योतिष, धर्मशास्त्र, पशु-विज्ञान और नीति-शास्त्र-परक ग्रन्थों की भी रचनाएँ चलती रहीं। प्रबन्धकाव्य, छपुकाव्य, चम्पू, नाटक, गद्य-प्रबन्ध आदि रसमय साहित्य के क्षेत्र में अप्पय दीक्षित, पण्डितराज जगन्नाथ, भानुदत्त, रूप गोस्वामी, मित्रमित्र, मेरुत्तुङ्गाचार्य, गोविन्द भट्ट और विश्वनाथ सिंह तथा दक्षिण के अगणित विशानों का योगदान अविस्मरणीय है। आधुनिक युग में पण्डिता जमा राव, धन्दिनादत्त व्यास, ह्योकेस शान्त्री, मयुरानाय आदि अनेक कलाकारों की कृतियाँ भारती के भाण्डार में जुड़ती चली गईं हैं। पत्र-पत्रिकाओं के क्षेत्र में मूल्यवान् निबन्ध-साहित्य एवं कविताओं का नवीन्मेष होता जा रहा है।

पिछले कुछ वर्षों में राष्ट्रपति के महान् पद पर प्रतिष्ठित स्वर्गीय डा० राजेन्द्र प्रसाद की जो प्रेरणाएँ संस्कृत-प्रेमियों को प्राप्त हुई हैं तथा आज राजनीतिक विश्व के उच्च अन्तरिक्ष का स्पर्श करते हुए भी सामान्य पत्रों और शुभकामनाओं तक में स्वरचित संस्कृत-श्लोकों का प्रयोग करने वाले डा० चिन्तामणि द्वारकादास देशमुख जैसे दुर्लभ मनोयो जिम मुखि का परिचय दे रहे हैं^१, वह संस्कृत के भावी उत्थान के लिये मुखि प्रकाश-सङ्केत है। देश के हितों निरवधि काल में कभी-न-कभी अवश्य ही समानधर्मा होकर उस पण्डित-परम्परा का अपरिमित स्रुण समवेत स्वर से स्वीकार करने, जिसने संस्कृत-साहित्य की यथाशक्ति रक्षा कर एवं उसके मूल को सँभाल कर उसे प्रस्फुटनशील बनाए रखा है; जिसके बल पर अपनी अनादि राष्ट्रीयता का परिचय पाकर हम सश अपना अस्तक गर्वोन्नत रख सकेंगे।

संस्कृत-सर्जन की धारा शासकों के द्वारा पोषण के अभाव में या देश और समाज की परिवर्तित परिस्थितियों में मन्द पड़ी होगी, या उसके स्तर में अन्तर आया होगा, पर वह समाप्त नहीं हुई। समाज की रूचि संस्कृत-साहित्य में बनी रही आई है। लोकभाषाओं के कवियों और विद्वानों ने धाज तक ऐसे अनेक तत्त्वों और मतों का प्रसार चलाए रखा है, जिनके आधार-स्मृत संस्कृत के ग्रन्थ हैं। इस प्रकार संस्कृत का मूल्य बराबर बना रहा है। वह मृत नहीं अपितु मृत-सञ्जीवनी अमृत-भाषा रही आई है। इस तथ्य के अधिकाधिक पोषण के लिये ही हमें ईसा की दूसरी सहस्राब्दी के संस्कृत साहित्य का दोष और मूल्याङ्कन करना होगा।

यह परवर्ती संस्कृत साहित्य बहुत कुछ बैठनों में बंधा हुआ पड़ा है। मन्दिरों और राजाओं के महालयों में इस साहित्य को तालों में बन्द रह कर कोठों का भण्ड बनना पड़ रहा है। आज हमें इसे प्राप्त कर इसका आकलन, सङ्कलन और यथाशक्ति प्रकाशन करना होगा तथा संस्कृत के आधुनिक इतिहासों में इसे समाविष्ट करना होगा।

विशेष रूप से बारहवीं शती से उन्नीसवीं शती तक विपरीत परिस्थितियों में भी संस्कृत साहित्य को सर्जना करते रहने की लगन और रूचि जिन विद्वानों ने दिखाई है, वे चाहे जंगलियों पर गिने जा सकें, हमें उनके अभ्यवसाय का लोहा मानना होगा, उनके साहस और धैर्य की स्तुति करनी होगी। उनका मूल्याङ्कन करते समय हमें सर्वप्रथम यह देखना होगा कि जहाँ के साहित्यिक योगदान के बल पर हम आज कह पा रहे हैं कि संस्कृत भाषा का साहित्य सुदूर अतीत के इतिहास का ही निदर्शन नहीं है, अपितु वह भारतीय जीवन की

रवि से आज तक सम्पन्न है और ऐसा रहा आयेगा। आधुनिक युग में भी संस्कृत का साहित्य अमिनत्र बेश में साकार होकर युग के अनुकूल सामग्री प्रदान कर सकेगा; देश के खण्डों को एक सूत्र में गुम्कित कर सकेगा; अमर राष्ट्र की यह थमर-भारती अनन्त काल तक विश्व के दिगन्तरों को प्रतिध्वनित करती रहेगी।

उक्त दृष्टिकोण को लक्ष्य बनाकर यह आवश्यक है कि उपर्युक्त परवर्ती साहित्य को हम काल-सीमा और क्षेत्र-सीमा में बंध कर डूँढ़ें; क्षेत्रीय अथवा जाति-चलित साहित्य के रूप में इसका अनुसन्धान करें। जिन मठों, विद्या-केन्द्रों, मुस्लिम या हिन्दू राज-समाजों या सांस्कृतिक इकाइयों में परवर्ती संस्कृत साहित्य का उन्मेष एवं स्फुरण हुआ है, उन्हें प्रयत्न-पूर्वक कर हम उसका अनुसन्धान करें। भारत में ऐसे अञ्चल अनेक मिलेंगे।

बघेलखण्ड^१ की इकाई को यहाँ अञ्चल के रूप में लिया गया है। यहाँ के बघेल नरेशों का क्रमिक इतिहास पन्द्रहवीं शती के अन्तिम भाग से उपलब्ध होता है और सोलहवीं शती में वे संस्कृत साहित्य में रवि लेने वाले एवं स्वयं काव्यकर्ता के रूप में प्रकट होते हैं। अतः प्रस्तुत वर्ण्य विषय की काल-सीमा १५०० से १६०० ई० तक रखी गई है। इस विषय के अन्तर्गत उक्त काल-सीमा के भीतर प्राप्त उतना ही संस्कृत साहित्य है, जो गहोरा, मान्धवगढ़ और रोवा की राजधानियों पर शासन करने वाले बघेलों से प्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध है।

इस प्रबन्ध से प्रकट होगा कि विगत अन्तिम शतियों में भी संस्कृत साहित्य का सर्जन होता चला आया है। हम जिन क्षेत्रों को राजनीतिक दृष्टि से अथवा ऐतिहासिक घटनाक्रमों के विचार से अधिक महत्वपूर्ण नहीं मानते रहे, वहाँ भी खोजने पर संस्कृत-साहित्य का निर्माण होता रहा है। संस्कृत-साहित्य के इतिहासों में १२वीं शती के पीछे की जिन संस्कृत-रचनाओं की उपेक्षा की हुई है, उनके सङ्कलन, विवरण, प्रकाशन, सूची-निर्माण आदि कार्यों की ओर अब विद्वानों का ध्यान जा रहा है। इसी शुभ कार्य में सहयोग के रूप में हमारा भी यह लघु प्रयास है।

बघेलखण्ड में १५०० से १६०० ई० के बीच प्रमुख रूप से संस्कृत के आठ कवियों की कृतियाँ उपलब्ध होती हैं। ये कवि हैं—१ : भानुहर, २ : माधव ऊरुभ्य, ३ : गोविन्द भट्ट अथवा बकवरी कालिदास, ४ : पद्मनाभ मिश्र, ५ : योरभद्रदेव (नरेश), ६ : रूपणि मिश्र, ७ : विश्वनाथसिंह (नरेश) और ८ : रघुराजसिंह (नरेश)। इनके सम्बन्ध में अभी तक निम्नलिखित रूप में कार्य हुआ है—

१—देखिये आगे अध्याय २ (क) : 'बघेलखण्ड शब्द से तात्पर्य।'

डा० जतीन्द्र विमल चौपुरी ने प्राच्यवाणी मन्दिर कलकत्ता से मुस्लिम-कालीन संस्कृत साहित्यकारों की कृतियों पर प्रकाश डालनेवाली पुस्तकें प्रकाशित की हैं। साथ ही आपने कुछ सुभाषित-सङ्ग्रह भी प्रकाशित किये हैं।^१

इन सुभाषित-सङ्ग्रहों में भानुकर और अकबर की कालिदास की रचनाएँ प्राप्त हैं। भूमिकाओं में आपने इन कवियों के जीवन और कृतियों पर प्रकाश डाला है। वीरभद्रचम्पू काव्य में डा० चौपुरी ने वीरभद्रदेव और पद्मनाभ मिश्र का आलोचनात्मक परिचय भी प्रस्तुत किया है।

महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री ने संस्कृत ग्रन्थों की सूची प्रकाशित की थी,^२ जिसमें आपने रूपणि मिश्र की कृति (पाण्डुलिपि) पर प्रकाश डाला है। यह कृति सन् १९५७ में रीवा से प्रकाशित की गई थी^३, जिसमें रूपणि के सम्बन्ध में जानकारी प्रस्तुत की गई थी। उक्त सूची में वीरभद्र की कृतियों का भी उल्लेख है। डा० हरदत्त शर्मा ने अपने कुछ निबन्धों में भानुकर, अकबर की कालिदास, विश्वनाथसह, पद्मनाभ, वीरभद्रदेव और रूपणि मिश्र की कृतियों की खर्चा की है।^४

भानुकर (या भानुदत्त), पद्मनाभ, वीरभद्र और विश्वनाथसह की कृतियों पर श्री पी० के० गौडे के निबन्धों से भी प्रकाश पड़ा है^५। ये निबन्ध

१. देखिये प्राच्यवाणी कलकत्ता की प्रकाशन सूची : सम्बद्ध पुस्तकें निम्न-लिखित हैं—

क-मुस्लिम पद्मेज०, ख-पद्यामृत०, ग-सूक्ति०, घ-रसिक०
च-पद्यवेणी, छ-सभ्या०, ज-राम० प्र०, झ-वीर० चम्पू० ।

२. ए डेस्० के० भाग ७ : क्र० ५२८४ और ५३९८ ।

३. बघेल० ।

४. (१) दि 'पीपट भानुकर०' : एनलस० ग्रन्थ २७ भाग ३ : १९३६

(२) इ० हि० : ४७८ ।

(३) ओ० ज० : भाग ३ : १३३, १३६ ।

(४) 'बाघेल कलसं०' ।

५. (१) 'साहित्यसुधा०' : ओ० ज० भाग १ : १६३४ : पृ० २१७-२० ।

(२) 'सम डेटा०' : ओ० ज० : भाग २ : १६३५ : पृ० १६७-१९ ।

(३) 'आइडेंटिफिकेशन०' : ओ० ज० भाग २ : १९३५ : पृ० २५४-५८

(४) 'टमिनस०' : एनलस० : ग्रंथ १६ : १६३६ : पृ० १४७-४८ ।

पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। महाराज विश्वनाथसिंह की कृतियों का श्री विन्ताहरण चक्रवर्ती ने भी विवरण दिया है।^१ रूपणि मिश्र एवं तत्कालीन विद्वानों का संक्षिप्त विवरण श्री अक्षरहनुमन निजामो के लेखों से भी प्राप्त होता है।^२ रघुराजसिंह और माधव ऊरव्य के अतिरिक्त उपर्युक्त सभी कवियों के सम्बन्ध में संस्कृत साहित्य के इतिहासों में भी जानकारी मिलती है।^३

वीरभद्रदेव (नरेश) और उनके सहस्र पद्मनाम मिश्र पर निबन्धों के रूप में कुछ और जानकारो प्रकाशित हुई है। काशी से किरणावली-भास्कर^४ और चन्द्रालोक की शरदागम टीका^५ तथा कन्दर्पचूडामणि का द्वितीय संस्करण^६ प्रकाशित हो चुका है, जिनको भूमिकाओं में विद्वत्तानुर्ण तथ्य प्रस्तुत किये गये हैं। कन्दर्पचूडामणि के प्रथम संस्करण^७ में केवल सामान्य परिचय मिलता है।

वीरमानुदय काव्य पर केवल डा० हीरानन्द शास्त्री ने प्रकाश डाला है। आपने पहले दो निबन्ध प्रकाशित कराए और पीछे काव्य के प्रकाशन के समय भूमिका में इतिहास-परक समीक्षा प्रकाशित की।^८

महाराज विश्वनाथसिंह और रघुराजसिंह के जीवन और कार्य पर पं० रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखित हिन्दी साहित्य के इतिहास में संक्षिप्त प्रकाश पड़ा है।^९ कुछ वर्षों पूर्व विश्वनाथसिंह का हिन्दी ग्रन्थ आनन्द-रघुनन्दन नाटक प्रकाशित हुआ है, जिसकी भूमिका में कवि के सम्बन्ध में जानकारो दी गई है।^{१०}

(५) 'भानु०' : इ० क० : ग्रन्थ ३ : १६३७ : पृ० ७५१-५६ ।

'संस्कृत एण्ड हिन्दी वर्क्स' ।

(६) 'न्यू इ० ऐ०'—ग्रन्थ ९ : क्र० ४-६ : १९४७ ।

१. 'संस्कृत वर्क्स०' : ज० ए० सो०, अक्टू० १९४० ।

२. 'नाहन जेम्स०' : ज० गं० इ० : ग्रन्थ ८ भाग ४ : अगस्त-१९५१ ।

३. हि० बला० सं० लिट्० । -

४. क्रि० भा० ।

५. शरदागम० ।

६. कन्दर्प० २ ।

७. कन्दर्प० १ ।

८. (१) 'बघेल डायनेस्टी०' : बड़ौदा : १९२५ ।

(२) 'कदर नोट्स०' : ज० बी० ओ० सो० : १९३० ।

(३) वीर० क्रि० ए० ।

९. प्रकाशित—काशी नागरी प्रचारिणी सभा : २०१८ वि० : पृष्ठ ३२७-२८ तथा ५५४ ।

१०. आ० रघु० ।

बघेलखण्ड के इन संस्कृत कवियों के सम्बन्ध में मेरे निम्नलिखित लेख प्रकाशित हो चुके हैं—

- १—बघेल राजवंश और साहित्यिक विकास : 'विन्ध्यभूमि', रीवा १९५६
- २—पद्यनाम मिथ : " "
- ३—अश्वरी कालिदास : " "
- ४—जयसिंहदेव की रचनाएँ : " "
- ५—विन्ध्य के प्राचीन साहित्यकार : " "
- ६—रपुराजसिंह की संस्कृत रचनाएँ : 'विन्ध्यसिन्धु' (रीवा) १९५६
- ७—वीरभद्रधम्मू के ऐतिहासिक उल्लेख : 'विन्ध्यप्रदेश', (रीवा) १९५६
- ८—विश्वनाथसिंह के हिन्दी ग्रन्थ : 'मध्यप्रदेश सन्देश'

ग्वालियर, मार्च, १९६२

इनके अतिरिक्त मेरी प्रकाशित पुस्तक 'संस्कृत-साहित्य की बान्धव-नरेशों की देन' में उपर्युक्त सभी कवियों का तथा उनको उपलब्ध कृतियों का संक्षिप्त परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है।

बघेलखण्ड का यह संस्कृत साहित्य पाण्डुलिपियों के रूप में कलकत्ता^१, अलवर^२, बीकानेर^३, उदयपुर^४, जोधपुर^५, रीवा^६, तथा रामवन^७ आदि स्थानों के पुस्तकालयों में सुरक्षित है। इनका उल्लेख आफ़े की सूची में मिलता है।^८ बहुत सी पाण्डुलिपियाँ अब लुप्त हो चुकी हैं।

उपर्युक्त कार्यों को समग्र रूप से देखने से ज्ञात होगा कि अभी तक बघेलखण्ड के साहित्य एवं इतिहास पर आधारित क्रमबद्ध और सूत्रबद्ध कार्य नहीं हुआ है। बहुत सा कार्य निबन्धों के रूप में है, जिनमें काव्यकृतियों की तिथि, विषय और रचनाकार के सम्बन्ध में सामान्य अपूर्ण विवरण प्रस्तुत किये गये हैं। एक आञ्चलिक इकाई के रूप में बघेलखण्ड को ग्रहण कर उसमें प्राप्त

१. मार्तण्ड प्रेस, रीवा : १९५७।

२. रा० ए० सो०।

३. कैटे० अलवर।

४. कैटे० बीकानेर।

५. कैटे० उदयपुर।

६. महाराजा लाश्वरी, जोधपुर।

७. सरस्वती कोष भाण्डार, किला, रीवा।

८. तुलसी सङ्ग्रहालय, रामवन (सतना)।

९. आफ़े०।

संस्कृत साहित्य को समग्र रूप में देखने और तत्पश्चात् उसका समीक्षात्मक मूल्याङ्कन करने की आवश्यकता है, जिसे हम उनका महत्त्व समझ सकें। इसी दिशा में केवल काव्यग्रन्थों पर यह प्रयास है।

सोलहवीं शती और उसके पीछे बघेलखण्ड के बघेलनरेशों की तीन राजधानियाँ रही हैं—

- १—गहोरा, जो अब बाँश जिला (उत्तर प्रदेश) के अन्तर्गत एक ग्राम है;
- २—बान्धवगढ़, जो शहडोल जिला (मध्यप्रदेश) की एक पहाड़ी में प्राचीन दुर्ग के अवशेष के रूप में है और

३—रीवा, जो वर्तमान मध्यप्रदेश का उत्तरी सम्भागीय केन्द्र है। ये राजधानियाँ अपने-अपने काल में साहित्य-सर्जना की स्थलियाँ रही हैं।

बघेलों का शासन आरंभ होने से पूर्व इस जनपद में महोबा-कालिंजर के चन्देल नरेशों और डाहल-मण्डल, त्रिपुरी-रत्नपुर के कलचुरि राजाओं का वैभव और प्रताप छाया हुआ था। उनके प्राभय में संस्कृत के शिला-लेख, नाटक, महाकाव्य आदि अनेक ग्रन्थ रचे गए थे। हमारा विवेचन इसके पश्चात् सोलहवीं शती से आरम्भ होता है, जब यह नर्मदोत्तर प्रदेश बघेलों द्वारा शासित था। गहोरा, बान्धवगढ़ और रीवा राजधानियों में और यदा-कदा उनके परिसर में नरेशों द्वारा तथा उनके आश्रित विद्वानों द्वारा उन राजाओं के सम्बन्ध में अथवा स्वतन्त्र रूप से जिन संस्कृत काव्यों का सर्जन १५०० से १९०० ई० के बीच हुआ, उन्हीं का समीक्षात्मक मूल्याङ्कन इस प्रबन्ध का विषय है।

संयोग से इन सीमाओं के अन्तर्गत हमें एक ऐतिहासिक प्रबन्धकाव्य, चौरभानूद्य सुलभ है। इसके साथ ही वंशावली-काव्य, प्रशस्ति, स्तुति, घम्भू-नाटक आदि अनेक प्रकार का काव्य-साहित्य भी उपलब्ध है, जिसकी विस्तृत चर्चा हम अगले अध्यायों में करेंगे। इस प्रकाशित और अप्रकाशित साहित्य को देखने से विदित होगा कि बघेलखण्ड के इन संस्कृत काव्यों ने संस्कृत साहित्य की रुचि को जीवित-जागृत रखा है और सज्जन की परम्परा को सुचारु रूप से आगे बढ़ाया है। अपने इस योगदान से इन संबद्ध कवियों ने बघेलखण्ड अञ्चल को गौरव प्रदान किया है।



पृष्ठभूमि

(फ) वघेल शब्द की व्युत्पत्ति

वघेलखण्ड जनपद^१ की अनुश्रुतियों के अनुसार 'रोवा'^२ के वघेलवंशीय शत्रियों का मूल पुरुष व्याघ्रदेव था; उसका मूल धाघ के मुख की भाँति था और इसी कारण उसकी सन्तान 'वाघेल' या 'वघेल' कहलाए। रोवा महाराज की ओर से प्रकाशित कैलेंडरों में 'वघेलवंश-चित्रावली' छापी जाती है, जिसके बीच में स्थित व्याघ्रदेव का मुख बाघ के मुख के सदृश रखा जाता है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस अनुश्रुति पर विचार करना निरर्थक है।

स्थानीय लेखों के आधार पर रोवा-जनपद के वघेल शत्रिय गुजरात से आए हुए सोलंकी^३ हैं। गुजरात में पाटन के चौलुक्यों और वाघेलों के लिए अनेकशः सोलंकी शब्द प्रयुक्त हुआ है। सोलंकी शब्द चालुक्य या चौलुक्य का ही धा-भ्रंश है।

गुजरात में पाटन (प्राचीन अनहिलपाटक) से प्रायः १० मील दक्षिण-पश्चिम दिशा में 'व्याघ्ररत्नो' नामक गाँव अवस्थित है^४। गुजरात के चौलुक्य-नरेश कुमारपाल (११४३-७३ ई०) ने अपनी मौसी के पुत्र अर्णोराज

१. वर्तमान मध्यप्रदेश के चार उत्तरी जिलों—रोवा, सतना, सोधी और राहडोल से सीमित वघेली बोली का जनपद।
२. विगत रोवा या बान्धव राज्य की राजधानी, विन्ध्यप्रदेश की राजधानी, एवं वर्तमान सम्भागीय केन्द्र (मध्यप्रदेश)।
३. शत्रियों की एक शाखा-विशेष। देखिये, रोवा स्टेट गजेटियर पृ० १२। विस्तृत बर्षा के लिये देखिये, 'ओरिजन ऑफ दि चालुक्याज' : (रनजीतसिंह सत्याश्रम) : पृष्ठ ४८-४९, ७७, ९६; साथ ही देखिये—बाम्बे गजेटियर, जिल्द प्रथम—भाग १, पृ० १५६।
४. मजूमदार—अशोक कुमार : चौलुक्याज ऑफ गुजरात : भारतीय विद्या स्टडीज चतुर्थ, बम्बई: १९५६; पृ० १६९।

(या आनाक) को इस व्याघ्रपल्ली गाँव का सामन्त बनाया था। अर्णोराज के पुत्र लवणप्रसाद को 'व्याघ्रपल्लीय' लिखा गया है।^१

उदयप्रमसूरि के अनुसार उक्त अर्णोराज को कुमारपाल ने भीमपल्ली का सामन्त-पद प्रदान किया था^२। भी मजूमदार का कथन है कि सम्भवतः 'भीमपल्ली' और 'व्याघ्रपल्ली' समानार्थक हैं।^३ श्री निजामी के अनुसार भीमपल्ली अर्णोराज को पैतृक परम्परा से प्राप्त हुई तथा व्याघ्रपल्ली कुमारपाल से^४।

लवणप्रसाद व्याघ्रपल्लीय का पुत्र वीरधवल था। उसका पुत्र वीसलदेव गुजरात का प्रथम बाघेल सम्राट (१२४५-६१ ई०) बना। चौलुक्यों की मूल शाखा की समाप्ति के पश्चात् बघेलों की यह शाखा १२४५ ई० से १३०४ ई० तक गुजरात में शासन करती रही।^५

इस प्रकार यह तर्कसङ्गत प्रतीत होता है कि 'व्याघ्रपल्ली' गाँव के कारण ही यहाँ के अर्णोराज के वंशधर सामन्त 'व्याघ्रपल्लीय' नाम से प्रसिद्ध हुए और कालान्तर में लोकभाषा में ये इसी भाधार पर 'बाघेल' या 'बघेल' कहलाए।^६

गुजरात के साहित्य में इन बाघेल सम्राटों को अन्य शाखा के चौलुक्य ही लिखा गया है।^७ उक्त प्रथम बाघेल सम्राट वीसलदेव के सम्मत—शिलालेख में बाघेलों का वंशारम्भ लगभग उसी रूप में है जिस रूप में पूर्व चौलुक्य-नरेशों का है—

१. जिन विजयमुनि द्वारा सम्पादित 'प्रबन्ध-चिन्तामणि' (मैतृज्जकृत) : कुमारपाल-प्रबन्ध : पृष्ठ ९४ : 'अथ कदाचिदाताकनामा मातृध्वस्त्रीयस्त-त्सेवागुणतुष्टेन राजा दत्तसामन्तपदोऽपि.....।' तथा पृष्ठ १८१— 'श्रीमद्भूमिदेवराज्यचिन्ताकारी व्याघ्रपल्लीय-सङ्केतप्रसिद्धः श्रीमदानाक-नन्दनः श्री लवणप्रसादः.....।'।

२. सुकृत-कीर्ति-कल्लोलिनी : श्लोक ७४।

३. चौ० गु० : पृष्ठ १६९।

४. निजामी : 'बघेलाज इन गुजरात' : दि रीवा इन्फर्मेशन : ग्रन्थ १ भाग ३ : जुलाई, १९४०।

५. चौ० गु० : अध्याय १० 'बाघेलाज' : पृष्ठ १६९-८५।

६. वही।

७. कीर्तिकौमुदी : सोमेश्वर कृत : ५।६२ : भीम द्वितीय के वर्णन के साथ—
'अथ तत्रैव चौलुक्यवंशो शास्त्रान्तरोद्गतः।

अर्णोराजः स राजपिस्तन्नामपंत विप्लवम् ॥'

८. इन्द्र-भावनगर : क्र०-२१४, साय.ही देखिये चौ० गु० : पृ० १६९।

“...महाराज जब इस प्रकार विचार-मग्न था, तब सहसा उसके ‘धुलुक’ से एक योद्धा प्रकट हुआ। ...इसो वीरपुरुष से ‘चोलुक्य’ उद्गत हुए। इस वंश में अर्णोराज उत्पन्न हुआ” १

यह अर्णोराज धवल का पुत्र था।^१ धवल ही इसकी शाखा का प्रथम ज्ञात व्यक्ति है।^२ सोमेश्वर कवि के अनुसार (पाटन में) मूलराज प्रथम^३ के वंशजों के समाप्त हो जाने पर बाघेलों का राज्य प्रारम्भ हुआ।^४

मूलराज से पूर्व सौराष्ट्र के चोलुक्य शासन को स्थापना काल ने की थी। इसी वंश का राजा था, जिसके पुत्र मूलराज ने पाटन का चोलुक्य-राज्य स्थापित किया।^५ अतः सम्भव है कि मूलराज से पूर्ववर्ती सौराष्ट्र के चोलुक्यों को कोई शाखा व्याघ्रपल्ली में आकर बसी हो और इसी वंश में धवल और अर्णोराज हुए हों, जिनके वंशज बाघेल कहलाए।

गुजरात के चोलुक्यों और बाघेलों का गोन भारद्वाज था तथा उनके वर्तमान वंशधरों का यही गोन है।^६

रोवा के बाघेल नरेण भी भारद्वाज गोन के हैं।^७ अतः बाघेलों की यह परम्परा कि गुजरात के चोलुक्यों और बाघेलों के साथ उनकी वंशगत एकारमता है, मान लेने में कोई कठिनाई नहीं है।

रोवा के बाघेलों का मूलपुरुष ‘व्याघ्रदेव’ विशाद का विषय है। ऐसे कोई अकाट्य प्रमाण उपलब्ध नहीं है, जिनके बल पर व्याघ्रदेव को ऐतिहासिक व्यक्ति मान लिया जाय। दूसरी ओर रोवा तथा अन्य स्थानों के बाघेल, जो अपने को

१. कीर्तिकीर्तुदी २।६३ तथा वसन्तविलास-महाकाव्यः (बालचन्द्रसूरिकृत) बड़ोदा : १९१७ : ३।३८-

‘ररस तामशतवृत्तमर्णोराजश्चोलुक्यो धवलाङ्गजन्मा।’

२. चौ० गु० : पृ० १६९

३. गुजरात के चोलुक्य-राजवंश का मूल पुरुष।

४. ए० इ० : दमोई-प्रशस्ति (संवत् १३११ में सोमेश्वर द्वारा रचित) : १।२० ‘श्री मूलराजकुलजेषु मृगाङ्गमौलि-मन्त्रेषु मूपतिषु तेषु दिवङ्गतेषु।’

५. ‘गलोरी दैट वाज गुजंर देश’—मुंशी कन्हैयालाल माणिक्यलाल-बम्बई १९५४ : पृ० ४०६-७।

६. ‘औ० चा० : पृष्ठ ४८-४९, ७७, ९६।

७. कौरमनूय-काव्यम् : रीश : १९३८ : सर्ग ९। श्लोक १९ : ‘भारद्वाजारिष्टनेमि-वंशजो सङ्गतो नृपौ।’ श्लोक २८ : ‘भारद्वाजो मुनीन्द्रः’ व्याघ्रपादः—उद्वंशे वीरसिंहः।

व्याघ्रदेव से निर्गत मानते हैं, व्याघ्रदेव की ऐतिहासिकता के प्रबल पक्षपाती हैं और व्याघ्रदेव से उम्होने अनेक अनुभूतियाँ भी जोड़ रखी हैं ।

१७३२ ई० के कुछ पीछे और १७५५ ई० के पूर्व लिखा हुआ एक बघेली भाषा का लेखपत्र 'एकत्रा भाषावर्णन',^१ प्रथम उपलब्ध लेख है और वह सम्पूर्ण वंशसूची प्रस्तुत करता है, जो पीछे के अनेक लेखों में प्राप्त होती है तथा जो रोवा में मान्य है । इसमें पहली बार व्याघ्रदेव के गुजरात से आने का उल्लेख है । यह कहना कठिन है कि इससे पूर्व यह मान्यता थी या नहीं । इसमें कर्णदेव को व्याघ्रदेव का पुत्र बतलाया गया है ।

इससे कुछ ही वर्षों पूर्व १६७८ ई० में लिखित संस्कृत काव्य 'बघेलवंश-वर्णनम्' में पहला नाम कर्णदेव है । यह गुजरात में उत्पन्न बतलाया गया है,^२ और व्याघ्रदेव की यहाँ कोई चर्चा नहीं है, जब कि लेखक रूपिण शर्मा इसी वंश के रोवा-नरेश भावसिंह का समासद है और उसका वंश लिखने का लक्ष्य भी भावसिंह को तुष्ट करना ही है ।^३

इससे लगभग सवा सौ वर्ष पहले लिखित वीरभानूदयकाव्य में, जो इसी वंश के नरेश वीरभानु का चरितवर्णन है, भीम से वंशवर्णन प्रारम्भ होता है । उक्त बघेलवंशवर्णन काव्य में प्राप्त अनेक प्रारम्भिक नाम, जो समस्त परवर्ती सूचियों में हैं, वीरभानूदय में नहीं हैं । यह काव्य १५५६ ई० के निकट लिखा गया । इस आधार पर इसी काव्य की समीक्षा में डा० हीरानन्द शास्त्री ने वीरभानूदय में अप्राप्त व्याघ्रदेव, कर्णदेव, सोहागदेव, सारंगदेव, वीसलदेव, दलेश्वर, मलेश्वर और बरियारदेव—इन आठ नामों को कल्पित कहा है ।^४

वीरभानूदय में बघेलों को भारद्वाज व्याघ्रपाद्-गोत्रीय एवं व्याघ्रपाद् मुनि के वंशज बतलाया गया है ।^५ ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल (सोलहवीं शती के मध्य भाग) में व्याघ्रपाद् एक गोत्र-प्रवर्तक मुनि रूप में कल्पित है । इसके पश्चात् समाजों के कवि व्याघ्रदेव को छोड़कर अन्य नाम वंश के पूर्वजों के रूप में अनुभूतियों के आधार पर जोड़ देते हैं और भावसिंह के काल^६ तक कर्णदेव को गुजरात से आया हुआ माना जाता है । इसके पीछे ही शीघ्र भावसिंह के काल

१. देखिये परिशिष्ट १ (क) ।

२. बघेल० श्लोक ४ : 'स कर्णदेवः प्रबभूव गुर्जरे..... ।'

३. बघेल० श्लोक ६८ : 'भावसिंहस्य तोषायालेखि रूपिणसम्मंणा ।'

४. वीर० क्रि० ए० : पृष्ठ १६-१७ ।

५. वीर० १।१९ : 'व्याघ्रपाद्गोत्रं.....श्री वीरभानुं ।'

वीर० १।२१ : 'व्याघ्रपाद्मुनिवंशजलोकैः ।'

६. १६७५-९४ ई० ।

को सूची घषार्थ मान कर १८वीं शती के आरम्भ में गोत्र-प्रवर्तक मुनि व्याघ्र-पाद को मूलपुरुष व्याघ्रदेव दाश्रिय मान लिया जाता है^१, जो गुजरात से आकर महफा-कालिंजर क्षेत्र में प्रभावशाली हुआ।^२ दूसरी ओर यह भी सम्भव है कि व्याघ्रदेव ऐतिहासिक व्यक्ति हो, इसी को वीरमानुदय में व्याघ्रपाद मुनि लिखा गया हो। इस पक्ष में निम्नलिखित अनेक तर्क हैं—

एक मत यह है कि चोलुषय नरेश भोमदेव प्रथम (१०२२-६४ ई०) के चौथे पुत्र सारंगदेव के पुत्र वीरसिंह को सिद्धराज जयसिंह (१०६४-११४३ ई०) ने जागीर में बघेला गाँव दिया था। वीरसिंह का पुत्र बाघराज साधारण जागीर से सन्तुष्ट न हुआ। यही बाघराज व्याघ्रदेव है, जिसने बघेलखण्ड को सत्ता स्थापित की।^३

इस मत को मानने में पहली कठिनाई यह है कि गुजरात के तरकाशीन ग्रन्थों में ये नाम प्राप्त नहीं हैं। भोमदेव के बवल तीन पुत्रों—मूलराज, कर्णदेव और क्षेमराज या हरिपाल^४ के नाम मिलते हैं, सारंगदेव का नहीं। दूसरी बात यह भी विचारणीय है कि भोमदेव मूलराज प्रथम का ही वंशधर था, जब कि बघेलों को शाखा मूलराज से पृथक् मानो जाती है।

कनिष्क को सूची^५ में, जिसमें मूलतः बारा-कसोटा^६ घराने के बघेलों को वंश-सूची पर विचार किया गया है, व्याघ्रदेव को सिद्धराज (जयसिंह) का पुत्र लिखा गया है। किन्तु यह विदित तथ्य है कि सिद्धराज-चोलुषय निस्सन्दान मरा, इसीलिए दूसरी शाखा का कुमारपाल उसका उत्तराधिकारी हुआ।

१. परि० १ (क) : एकत्रा धान्योगङ्ग—

‘बघेलन के ओलादि लिखा जबते गुजरात ते आये। पुरखा ठाकुर कहामें लागि। पुरखा १-जैसिहदेव १, वीरध्वजदेव २, व्याघ्रदेव ३। गुजरात ते आए पुरखा सोनि भैं है—कर्णदेव ४ सोहागुदेव ५ सारंगदेव ६। कालिंजरहि आइ दुद भाई मर राजा के पाकर भैं—बीसलदेव ७ जेठे भोवमल लहुरे।’

२. आ० रि० ६० : जिल्द २१ पृष्ठ १०७-८।

३. कसोटा के बघेलों का इतिहास : रामचारे अग्निहोत्री : संवत् २००६ : कसोटा (उ० प्र०) : पृ० ४४ तथा ‘विन्ध्यप्रदेश का इतिहास’, वही : रोवा १९५४ ई० : पृ० १३४।

४. रत्नो० गु० : पृ० २३५।

५. आ० रि० ६० : जिल्द २१, पृ० १०७।

६. जिला इलाहाबाद। इस घराने का मूलपुरुष कन्धरदेव है, जिसे व्याघ्रदेव का पुत्र बतलाया जाता है।

इम्पीरियल गजेटियर के अनुसार 'गुजरात के राजा का भाई व्याघ्र लगभग १३वीं शती के मध्य में उत्तर भारत में आया और उसने मड़का दुर्ग^१ पर अधिकार कर लिया। उसके पुत्र कर्णदेव ने मण्डला को हँहय राजकुमारी से विवाह कर दहेज में बान्धवगड^२ प्राप्त किया।'^३

कुछ जमाबन्दियों में व्याघ्रदेव के पिता का नाम वीरमदेव और पितामह का जैसिहदेव मिलता है।^४ रोवा के इमो वंश के प्रसिद्ध कवि रघुराजसिंह (१८५४-८० ई०) ने व्याघ्रदेव से पहले 'वीरध्वज' नाम दिया है।^५ एकत्रा बान्धोगड में भी यही नाम है।^६ कुछ वंशावलियों^७ तथा रोवा स्टेट गजेटियर^८ में व्याघ्रदेव को वीरधवल का पुत्र लिखा गया है।

तेरहवीं शती के मध्य भाग में गुजरात में चौलुघ्य वंश से निर्गत बंधुओं का प्रथम उदय प्राप्त होता है, जिसमें वीरधवल^९ और उसके भाई वीरमदेव के विवरण उपलब्ध हैं। साथ ही इस काल में वीरधवल का पुत्र वीसलदेव (१२४५-६२ई०) प्रथम बधेल-सम्राट् के रूप में प्रकट होता है।^{१०} उन्मुक्त सूचनाओं के अनुसार व्याघ्र को गुजरात के राजा का भाई मानने से इसी वीरधवल या वीरमदेव का पुत्र मानना होगा। कठिनाई यह है कि इस अनुमान का कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है। वीरधवल के दो पुत्रों, प्रतापमल्ल और वीसलदेव के उल्लेख हैं, पर व्याघ्रदेव का नहीं। इसी प्रकार वीरम के पुत्र के रूप में भी गुजरात के लेखों में व्याघ्रदेव का नाम उपलब्ध नहीं है।^{११}

१. कालिजर से १२ मील उत्तर-पूर्व। ध्वंसावशेष प्राप्त हैं। देखिये—
आ० रि० इ० : जिल्द २१ भाग १-२ पृष्ठ १८-१६, १३५।
२. जिला शहडोल, म० प्र०। समरिया स्टेशन से रोवा को सड़क पर।
३. इ० ग० : जिल्द ६ : पृष्ठ १८७-८८।
४. देखिये परिशिष्ट १—(ख, ग)।
५. आनन्दाम्बुनिधि (१८५४ ई० में रचित) : पृष्ठ ६ : 'वीरध्वज व्याघ्रदेव'।
६. परिशिष्ट १ (क)।
७. अजवेश कवि कृत्र वंशावली, १८३५ ई०। नागरी प्रचारिणी पत्रिका, काशी से प्रकाशित।
८. लुवाहं (कैप्टेन)—१६१० ई० : पृष्ठ १२।
९. मुरमु १२३८ ई०—देखिये ग्लो० गु० : पृष्ठ ३०५ तथा इ० ऐ० ६।१९०।
१०. बी० गु० : अध्याय १०।
११. वही।

कृष्णाराम गणशतराम मठ द्वारा गुजराती भाषा में लिखित बघेल-बंछावला में व्याघ्रदेव के पूर्वजों के नाम भुवन, करण, चन्द्रादित्य, सोभादित्य, भुवनादित्य और राज (राजि) मिलते हैं। राज के दो पुत्र मूजरात्र और गंगामह बतलाए गए हैं, जिनमें से गंगामह का पुत्र व्याघ्रदेव है।^१ यद्यपि ये नाम गुजरात के लेखा में हैं, इतिहासकारों ने इनकी सत्ता पर सन्देह प्रकट किये हैं,^२ साथ ही गंगामह का नाम अशुभ कही नहीं है।

राजशेखर सूरि ने कुमारपाल चौलुक्य (११४३-७२) के समकालीन एक व्याघ्रराज भट का उल्लेख किया है,^३ किन्तु उसका बघेल होने का उल्लेख नहीं है। साथ ही राजशेखर को अधिकांश ऐतिहासिक सूचनाएँ अग्रामागिक एवं अनु-श्रुतियों पर आधारित हैं।

इस प्रकार यथार्थ सूचना के अभाव में रोवा के बघेलों के मूल पुरुष व्याघ्रदेव को ऐतिहासिक कहना सन्देह से परे नहीं है, दूसरी ओर परवर्ती साक्ष्यों, अनु-श्रुतियों और विश्वासों को देखते हुए उसे पूर्णतः अस्वीकृत भी नहीं किया जा सकता। निष्कर्ष यह है कि चौलुक्यों की व्याघ्रमाली की एक शाखा १२वीं-१३वीं शती में कभी फूट कर यमुना के दक्षिण मड़का-कालिंजर में पहुँची और उसने नये बघेल राज्य की स्थापना की, जिसकी परम्परा अब तक विद्यमान है।

बघेलखण्ड शब्द से तात्पर्य

इम्पीरियल गेजेटियर के अनुसार २०°४०' तथा २५°०' उत्तरी अक्षांश और ८०°३०' तथा ८२°५७' पूर्वी देशान्तर के बीच में स्थित यह क्षेत्र बघेल राजपूत जाति के नाम पर, ओ गत ६-७ सौ वर्षों से इस क्षेत्र के शासक रहे, बघेलखण्ड कहा जाता है। पूर्व में सोन नदी और पश्चिम में टोंस नदी है। उमरिया में कोयले की खदान है। चवाई प्रपात (जिला रोवा) और अमरकण्टक (नर्मदा का उद्गम, जिला शहडोल) दर्शनीय स्थान हैं। इस क्षेत्र की उत्तरी सीमा पर उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद और मिर्जापुर जिले हैं, पूर्व में छोटा नागपुर, दक्षिण में मध्यप्रदेश के बिलासपुर और मण्डला जिले तथा पश्चिम में जबलपुर जिला और बुन्देलखण्ड के राज्य (पन्ना जिला) हैं।

१. बघेला-वृत्तान्त : प्रकाशित १९१७ ई०।

२. चौ० गु० : अध्याय १०।

३. जिनविजय मुनि द्वारा सम्पादित 'प्रबन्धकोश' : साहित्यिकेतर : १६३५ ई० : पृष्ठ ५०-५१ :

“...अथ स व्याघ्रराजाख्यो वभाषे...।”

सन् १८७१ तक यह क्षेत्र बुन्देलखण्ड एजेंसी के अन्तर्गत शासित होता रहा । इसके पश्चात् बघेलखण्ड एजेंसी स्थापित हुई, जिसमें रोवा के अतिरिक्त नागोद, मैहर, सोहावल, कोठी के राज्य (वर्तमान सतना जिला) तथा सितपुरा, बरौंघा, जसो, पालदेव, पहरा, तरांन, भैंसीधा और कामता-रजौला की जागीरें^१ थीं । केवल रोवा सन्धि-राज्य था तथा शेष सनद द्वारा शासित थे ।

१८५७ ई० के पश्चात् रोवा दरबार तथा मैहर, नागोद, सोहावल और कोठी के लिए पोलिटिकल आफिसर नियुक्त किया गया । १८६२ ई० में रोवा दरबार की प्रार्थना पर उसे वापस मुला लिया गया तथा राज्यों को बुन्देलखण्ड के पोलिटिकल एजेंट (नौगांव छावनी, जिला छतरपुर) के अन्तर्गत कर दिया गया । १८७१ ई० में सतना केन्द्र बना कर पृथक् अधिकारी नियुक्त किया गया । १८७६ ई० में बरौंघा, जसो तथा पू चौबे जागीरें बुन्देलखण्ड से बघेलखण्ड एजेंसी में स्थानान्तरित कर दी गईं ।^२

बघेलखण्ड क्षेत्र में १५ प्रतिशत निवासी बघेलखण्डी बोलो बोलते हैं ।^३

बघेलखण्ड की स्थापना और विस्तार

इस जनपद का नाम 'बघेलखण्ड' या 'बघेलों का देश' सत्रहवीं-अठारहवीं शती से पूर्व प्रचलित नहीं रहा होगा । यह नाम मुस्लिम इतिहासकारों ने कभी नहीं लिखा । उन्होंने इसे गहोरा या माठ-गहोरा लिखा है ।

मुस्लिम शासन-काल के पूर्व यह क्षेत्र 'डाहल' या 'चेदि' कहा जाता था । विशेषतः रोवा के दक्षिणी क्षेत्र, जिसका कुछ भंश सोहागपुर परगना (जिला सहडोल) है तथा मध्यप्रदेश क्षेत्र का नाम 'चेदि' रहा है ।

प्राचीन बौद्ध ग्रन्थ तथा महाभारत, रामायण और पुराण सभी इस क्षेत्र को हैहय, कलचुरि या चेदि जाति से सम्बद्ध करते हैं । धीरे-धीरे चेदि माहिष्मती से पूर्ण की ओर हटे । कृष्ण चेदि ने कालिंजर (जिला बाँदा) को केन्द्र बनाकर उस क्षेत्र पर राज्य-विस्तार किया, जिसे अब बघेलखण्ड कहा जाता है । चौथी-पाँचवीं शती में मगध के गुप्त राजा इस क्षेत्र के सार्वभौम थे । उच्छकल्प और सोह (वर्तमान जिला सतना) के परिव्राजक राजा उनके सामन्त थे । समुद्रगुप्त के प्रयाग-स्तम्भ पर अङ्कित लेख के अनुसार डाहल तथा १८ आठविक राज्यों में से कुछ हैहय हो सकते हैं । छठवीं शती में धाशमी नरेश मंगलीश ने

१. वर्तमान मध्यप्रदेश के सतना और पन्ना तथा उत्तरप्रदेश के बाँदा जिले में सम्मिलित ।

२. इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया, जिल्द ६ : पृष्ठ १८५-८८ ।

३. वही, जिल्द २१ (१९०८ ई०) : पृष्ठ २८२ ।

चेदि के बुधवर्मन् कलचुरि को परास्त किया। सातवीं शती के उत्तरार्द्ध में कलचुरियों ने त्वरित गति से चेदि देश पहुँचे जाने वाले इस क्षेत्र पर सार्वभौमता प्राप्त कर ली। उनका विरुद्ध 'कालञ्जराधीश्वर' था। यशोवर्मन् चन्देल (९२५-५५ ई०) ने पहली बार उनसे कालिंजर दुर्ग और परिसर का जनपद छीन लिया। चन्देल 'कालञ्जराधीश्वर' बन गए। १२ वीं शती तक कलचुरि इस क्षेत्र में रहे आए।^१

यह पूर्णतः निर्विषय नहीं है कि इस जनपद पर बघेलों ने कब अधिकार किया। मुसलमानों को बाढ़ से जब कलचुरियों को सत्ता तोड़ दी, तब इस क्षेत्र पर भर, चौहान, सेंगर, गोंड और अन्य जातियों ने अधिकार कर लिये।^२ हीरानन्द शास्त्री ने लिखा है कि '१६२५-२६ ई० में नागरी लिपि में लिखित एक भग्न शिलालेख कलकत्ता के इण्डियन म्यूजियम के आर्कियालाजिकल सेक्शन को भेंट किया गया था। शिलालेख सतना में प्राप्त हुआ था। शास्त्री जो ने रिपोर्ट उसी वर्ष पढ़ी थी। उनके मत में असन्दिग्ध रूप से यह बघेल-राजवंश का ही शिलालेख है और उसमें शालिवाहन, कंदर्पदेव और नाहरदेव नाम हैं, जो अवश्य ही रीवा के बघेल राजाओं के नाम होंगे तथा नाहरदेव (वीरभानुदय) काश्य का नरहरिदेव हो सकता है।'^३

रीवा से एक पीढ़ी नीचे के माने जाने वाले बारा-कसीटा घराने के बघेल ब्याघ्रदेव के पुत्र 'कंधरदेव' को अपना मूलपुरुष मानते हैं।^४ रीवा की वंशावलिओं में भी कंधरदेव ब्याघ्रदेव का पुत्र है। अतः शिलालेख के 'कंदर्पदेव' का इस 'कंधरदेव' के साथ तादात्म्य किया जा सकता है। यह सम्भावना ब्याघ्रदेव को ऐतिहासिक मानने में सहायक है।

शास्त्री जी को करवी (जिला बाँदा) में सं० १४१७ (१३६० ई०) का गहोरा शिलालेख मिला था, जिसे उन्होंने बल्लालदेव बघेल (वीरभानुदय काश्य का बल्लारदेव) द्वारा खुदवाया हुआ माना था।^५

वंशावलिओं में बल्लालदेव को बरियारदेव का पुत्र माना गया है। बरियारदेव का काश्य में सत्तेल नहीं है, किन्तु बघेलखण्ड में 'वीरराजदेव' नाम से १३४७ ई० का शिलालेख रामपुर नाँव में रानियों के सती-स्तूपों^६ के रूप में

१. इ० ग० : जिल्द ६ : पृ० १८५-८८।

२. वही।

३. वीर० क्रि० ए० : पृष्ठ १७।

४. आ० रि० इ० : जिल्द २१ पृष्ठ १०७।

५. वीर० क्रि० ए० पृष्ठ १७।

६. प्राचीन-लेख-मणि-माला : दयामसुन्दरदास : बनारस :

तथा आ० रि० इ० : जिल्द ९ : पृष्ठ ३४-५।

प्राप्त हुआ है, जिसका समय-स्थान आदि आधारों पर बरियारदेव के साथ तादात्म्य किया जा सकता है ।

कनिधम ने मुस्लिम लेखों^१ के दलकी व मलकी को बघेलवंश के दलकेश्वर-मलकेश्वर मान लिया था । इस सम्बन्ध में कनिधम का कथन इस प्रकार है:—

‘पहले मैंने यह सोचा था कि यह संभवतः योद्धा (दलकी व मलकी), जो कालिजर और मालवा के राजाओं की अधीनता से मुक्त था, अवश्य ही चेदि या डाहल का कलचुरि राजा होगा—किन्तु अब मैंने बघेलों की प्राचीन सूची में दो राजाओं—दलकेश्वर और मलकेश्वर के नाम क्रमपूर्वक देखे हैं । मैं इन्हें मुसलमान लेखकों के मौलिक नाम दलकी व मलकी समझता हूँ । यदि यह तादात्म्य स्वोक्तार्थ ही तो १२४७ ई० में ही बघेल राज्य सुदृढ़ बन चुका था और जिस दुर्गम स्थान में यह राजा छिप गया था, अवश्य ही वह बान्धोगढ़ का बिसयात दुर्ग होगा ।’^२

इन आधारों पर वर्तमान इतिहासकारों ने भी स्वीकार किया है कि ‘यमुना के ठीक दक्षिण, महोबा और हमोरपुर (उत्तरप्रदेश) के बीच रोवा के उदोयमान बघेल, जो पिछली दो पीढ़ियों में चुनार के दक्षिण और टोंस नदी के तट-भाग पर प्रायः समस्त क्षेत्र पर अधिकार कर चुके थे, न केवल दक्षिण की ओर तुकों का प्रसार रोक रहे थे, अपितु यमुना के तटोय क्षेत्र की भी सङ्कट-ग्रस्त बना रहे थे । अवध के प्रशासक द्वारा भाठ-महोरा क्षेत्र पर किये हुए आक्रमण इस उदोयमान सत्ता को नियन्त्रित नहीं कर सके, यहाँ तक कि १२४७ ई० में कालिजर और कड़ा के क्षेत्र पर बलबन द्वारा पूरी शक्ति के साथ किया हुआ आक्रमण भी राजा के अड्डों को लूट से आगे कुछ करने में असफल रहा ।’^३

श्री हेमचन्द्र राय^४ के अनुसार ‘कलचुरियों के पश्चात् तैरहवीं शती के आरम्भ में परमशिव का पुत्र त्रैलोक्यवर्मन् चन्देल कैमोर पृष्ठ के उत्तरी भाग पर तथा पूर्व में सोन नदी के तट-भाग तक अपनी सत्ता का विस्तार किये हुए

१. तबक़ात-नातिरो (अनु० रैबर्टी) : पृष्ठ २४७, ६७९-८३, ८१६-१७ : तथा तारोखे-फरिश्ता (द्विगुण) : जिल्द १ पृष्ठ २३७ ।

२. आ० रि० ६० : जिल्द २१ : पृष्ठ १०५-६ ।

३. ‘दि स्ट्रगल फार एम्पायर’ : भारतीय विद्यामन्थन : बम्बई : १९६७ : पृष्ठ १४६ ।

४. डायनैस्टिक हिस्ट्री आफ नार्दन इण्डिया : जिल्द २ : कलकत्ता : १९३६ : पृष्ठ ७२४-२६ तथा कनिधम : आ० रि० ६० जिल्द २१ : भाग १-२, पृष्ठ १४२-४८ ।

था । रोवा के ताग्रकों से विदित होता है कि ककरेड़ी^१ के सामन्त कौरव-वंशीय महाराजक, जो पहले त्रिपुरी के कलचुरियों के अधीनस्थ थे, अब १२४०-४१ ई० के पूर्व त्रैलोक्यवर्मन् चन्देल के अधीनस्थ बन चुके थे । १२४१ ई० के पश्चात् त्रैलोक्यवर्मन् का कोई लेख नहीं मिलता ।

ऐसा प्रतीत होता है कि त्रैलोक्यवर्मन् चन्देल के राज्य-काल तक बघेल चन्देल-सत्ता के अधीनस्थ रूप में गहोरा और मड़फा के क्षेत्रों में पहले ही फैल चुके थे । कनिष्क के कथनानुसार मड़फा दुर्ग के उत्तर-पूर्व और दक्षिण को ओर प्रायः १२-१३ मील दूरी पर बघेलबारी और बघोलन नाम के दो बड़े गाँवों का अस्तित्व है, जो ब्याघ्रदेव द्वारा बसाये हुए बतलाए जाते हैं ।^२ जमाबन्दियों के अनुसार ब्याघ्रदेव के बंधधर (या पुत्र) बीसलदेव और भीमलदेव कालिजर आकर भर शासक की सेवा में रहे । भीमलदेव ने कालिजर को ओर से गहोरा के लोधियों को मारा और उसे सेवा के पुरस्कार के रूप में 'गहोरा की जागीर' और 'ठाकुर' का पद मिला । भीमल का पुत्र रातिक और पौत्र बलनदेव^३ था । वीरभानुदय काव्य में इसी भीमल (भीम-नरेन्द्र) से वंशवर्णन प्रारम्भ किया गया है तथा उसके पुत्र राणिगदेव और पौत्र बालनदेव को गहोरा का शासक बतलाया गया है ।^४ इन उल्लेखों से भीम (भीमलदेव) की ऐतिहासिकता को पुष्टि होती है ।

मिनहाजउद्दीन ने इन क्षेत्रों के सम्बन्ध में कुछ और जानकारियाँ दी हैं— '६४० हिजरी (१२४२ ई०) में ताजुद्दीन संजरी किकलूक ने कालिजर और महोबा को नष्ट करने का निश्चय किया । ६४१ हिजरी (१२४३ ई०) में कमरुद्दीन ने भाठ-गहोरा को, जिसका केन्द्र कालिजर था, कई बार लूटा और

१. वर्तमान ककरेड़ी, उत्तरी अक्षांश २४°५६ और पूर्वी देशान्तर ८१° १७ ममनीघाट पर स्थित, जहाँ से पश्चिमी मार्ग बीदा, कालिजर और महोबा को जाते हैं ।

२. आ० रि० ६० : जिह्द २१ भाग १-२ : पृष्ठ १०३ ।

३. परिशिष्ट १ (क) : एकना०,—'कालिजरहि आइ दुइ भाई भर राजा के चाकर भैं । बीसलदेव जेठे, भीमल (भीमल) लहुरे गहोरहिं आए । पुरिखा सात भरि गहोरा रहैं । ठाकुर कहावैं लागे । भीमलदेव गहोरा के लोधिन्ह कहैं मारि के गहोरा छंड़ाइ लोन्हिनि ।'

तथा परि० १ (ख) : वंशावली चाँधोपति एवं बघेल० श्लोक १२ ।

४. सर्ग १ । श्लोक ६-२० 'लब्ध गहोरां तपन-प्रतापः ।'

कर बसूल किया। ६४४ हिजरी (१२४६ ई०) में मलिक करारकन खा खगकिन को, जो कड़ा (इलाहाबाद) का प्रशासक था, मार डाला गया।^१

इन उल्लेखों से हम देखती व मलकी पर, जो बघेल-बंग-सूफी में दलकेदशर-मलकेदशर बतलाए गए हैं, बलबन के आक्रमण को पृष्ठभूमि समझ सकते हैं। यहाँ 'माठ-गहोरा' का उल्लेख भारत में बघेल गला के लिए है, बघेल-गला के लिए नहीं। यह भी प्रतीत होता है कि १२४१ ई० के पदमात् प्रेलापवर्गन् बघेल के निघन से बघेल खनि दुर्बल हो गई होगी और बघेलों ने, कम से कम कुछ समय के लिए कालिंजर पर भी अधिकार कर लिया होगा। रीबटी ने उक्त आक्रमण के प्रसंग में लिखा है कि 'माठ-गहोरा सोन के पश्चिमी तट का क्षेत्र है। राणा (दलही व मलकी) का अधिकार-क्षेत्र स्पष्ट रूप में टोंत नदी के पश्चिम या दक्षिण-पश्चिम में निर्दिष्ट है। उसके छिपने की जगह यह पहाड़ी दुर्गम इलाका है, जो सोन नदी के बाएँ किनारे पर फैला हुआ है, जिसे कनिषम ने बाण्यवगढ़ माना है। गिनहाज के 'दलही व मलकी' में से कम से कम एक नाम किसी राणा का अवश्य है^२। करिदता के अनुसार 'इन दो राजाओं ने माण्ड्या से कड़ा तक मुल्तान की फौजों के अड्डे गढ़ कर डाले थे। वे कालिंजर में रहते थे।'^३ हबोबुल्ला का मत है कि 'गिनहाज का माठ-गहोरा टोंत नदी की घाटी का पुराना नाम है। इन क्षेत्र पर अबध के दासक सीमूर खा के कई आक्रमणों का उल्लेख स्पष्ट रूप से बघेलों की उदीयमान सत्ता पर आक्रमण का सूचक है।'^४

१२३४ ई० में मलिक नुगरत-उद्दीन तामसई ने बघेलों से कालिंजर छोन लिया था।^५ १२४०-४१ ई० में प्राप्त प्रेलापवर्गन् से सम्बद्ध रीवा-ताम्रक उक्त 'त्रिकलिङ्गाधिपति' घोषित करते हैं,^६ किन्तु 'कालिङ्गराधिपति' नहीं। सम्भव है, अपने अन्तिम दिनों में प्रेलापवर्गन् सेरहवीं शती में श्रस्तप्राप्त

१. तबकान-नातिरी (रीबटी) : पृष्ठ ७५५, ७४२, ७४७।
२. वही, टिप्पणियाँ : पृष्ठ ७४३, ८१६-१७, ६८३।
३. तारीखे-करिदता (द्विगत) : जिल्द १, पृष्ठ २३७।
४. 'दि फातवहेतान आक मुस्लिम हल इन इण्डिया' (१२००-१० ई०) : प्रकाशित, १९४५ : पृष्ठ १०१-२, १४२-४३।
५. तबकान-नातिरी : पृष्ठ ८२४।
६. आ० हि० ना० इ० : जिल्द २ : पृ० ७२४-२६।

कलचुरियों^१ की असमर्थता का लाभ उठा कर डाहल-प्रदेस में कालिंजर और मजयगढ (पन्ना) से दक्षिणपूर्व की ओर बढ़ा ही और इसी अवधि में गहोरा-कालिंजर तथा बघेलखण्ड के उत्तरी-पूर्वी क्षेत्रों में बघेल क्रमशः प्रबल हुए हों । त्रैलोक्यवर्मन् की मृत्यु के पश्चात् कालिंजर भाठ-गहोरा राज्य की बघेल-सत्ता का केन्द्र बन गया होगा, जहाँ कमरुद्दीन का उपर्युक्त आक्रमण हुआ था ।

उक्त तथ्यों के प्रकाश में यह कहा जा सकता है कि बघेलों का इन क्षेत्रों में राज्य-स्थापना का आरम्भ बारहवीं शती के मध्य में हुआ, जब सम्भवतः व्याघ्रदेव ने मड़फा दुर्ग के समीप बघेलवारी और बाघोलन गाँव बसाए ।^२ इनके भाई कर्णदेव गुजरात में ही रहे आए^३ किन्तु बान्धवगढ़ उन्हें दहेज में मिला (जैसी स्वामीय मान्यता^४ है) और सम्भवतः उनके पुत्र सोहागदेव और पौत्र सारंगदेव बान्धवगढ़ के अधिकारी रहे । यहाँ कर्णदेव का वंश समाप्त हो गया और बान्धवगढ़ का अधिकार व्याघ्रदेव की राजा को प्राप्त हुआ ।^५ व्याघ्रदेव (अन्त में व्याघ्रपाद मुनि) के दो पुत्र बोलस और भीमल (या भीम) ने कालिंजर आकर चंदेलों के भर-वंशीय किलेदारों की सेवा स्वीकार की । भीमल ने वीरसा प्रकट की ओर भर राजाओं के सेनापति रूप में गहोरा पर अधिकार किया । इन्हें गहोरा की जागीर और 'ठाकुर' का पद मिला ।^६ व्याघ्रदेव का अग्र्य पुत्र कन्धरदेव बारा-कसौटा धराने का संस्थापक बना ।^७ भीम का पुत्र रानिक और पौत्र बलन तथा उसके दो प्रतापी पुत्रों—दलकेद्वर और मलकेद्वर ने कालिंजर पर प्रभुता प्राप्त की और टोंस तथा सोन के तटीय भागों पर, बान्धवगढ़ दुर्ग पर एवं यमुना से दक्षिण कालिंजर से कड़ा तक अधिकार किया और १२६७ ई० में बलवन का सामना किया ।^८ मलकेद्वर का पुत्र बरियार हुआ । उसका पुत्र बल्लार या बल्लालदेव प्रथम महाराज हुआ । इसने पठानों से युद्ध किया^९

१. डा० हि० ना० ६० : जिल्द २ : पृष्ठ ८०० ।

२. आ० रि० ६० : जिल्द २१ पृष्ठ १०९ ।

३. बघेल० : दलोक ५ ।

४. वीर० क्रि० ए० : पृ० २७ : जानकी प्रसाद चतुर्वेदी की टिप्पणी ।

५. परिशिष्ट १ (स) वंशावली बांधोपति : 'करनदेव के वंशावली गुजरात मा तीनि-करनदेव १ सोहागदेव १ सारंगदेव १...' ।

६. वही ।

७. आ० रि० ६० : जिल्द २१ पृष्ठ १०९ ।

८. तथकात-नासिरी : पृष्ठ ६७९-८३, ८१६-१७ ।

९. परिशिष्ट १ (क) : एकत्रा : 'बोल्लारदेव ते राजा भें ।' तथा परि० १ (स) : वंशावली बांधोपति—'बल्लारदेव पठानन मारा' ।

और १३६० ई० में शिलालेख खुदनाया।^१ बल्लार का पुत्र सिंहदेव पिता के सामने ही दिवङ्गत हुआ, अतः बल्लार ने अपने पौत्र वीरमदेव को उत्तराधिकारी बनाया^२। १३९५ और १४१३ ई० में वीरम को कालपी के महमूद से संवर्ष करना पड़ा^३। वीरम ने रोवा और कैमोर पृष्ठ पर पूर्ण अधिकार किया^४। इसके पुत्र का नाम नरहरि और पौत्र का भेददेव था।^५ भेददेव से आगे क्रमिक इतिहास मिलने लगता है।

भौगोलिक सीमाओं में क्रमिक परिवर्तन

बघेलखण्ड नाम के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि यद्यपि मुसलमान लेखकों ने इस नाम का प्रयोग नहीं किया, यह नाम अंग्रेज शासकों द्वारा दिया हुआ नहीं हो सकता। बघेल नरेशों के निजी व्यवहारों में ही 'बघेल' शब्द पर आधारित राज्य-क्षेत्र का नामकरण 'बघेलखण्ड' किया गया होगा। निजी व्यवहारों में इसका प्रयोग भी अवश्य होता रहा होगा।

व्यावहारिक रूप में बघेलखण्ड का प्रथम स्वरूप मड़फा में स्थापित सत्ता की ही मानना उचित होगा। इसी के परवर्ती स्वरूप गहोरा-राज्य, बान्धव-राज्य और रोवा-राज्य कहलाए। गहोरा-राज्य की स्थापना का आनुमानिक समय बारहवीं शती का अन्तिम भाग माना जा सकता है। १२४० ई० के आसपास इस राज्य का केन्द्र कालिंजर बना और बघेल चन्देलों की अधीनता से मुक्त हो कर फैल गये होंगे। इस समय यमुना का दक्षिणी भाग कालिंजर से कड़ा तक और दक्षिण में बान्धवगढ़ तथा सोन का पश्चिमी तट बघेलों के अधिकार में रहा होगा। १२८० ई० के पूर्व कालिंजर पर चन्देलों का स्वामित्व पुनः स्थापित हो चुका था,^६ जो चौदहवीं शती के प्रारम्भ तक अवश्य बना रहा।^७ १३६० ई०

१—वीर० क्रि० ए० : पृष्ठ १७।

२—वीर० १।३१-४४।

३—परिशिष्ट २ : तारोखी-मुहम्मदी : पृष्ठ ४७२-साथ ही देखिये : निजामी : मलिकजादा डायनेस्टी आफ कालपी : मध्यप्रदेश इतिहास परिषद् : भोपाल ११ अप्रैल, १९५७ में पठित लेख : पृष्ठ २-३।

४—परि० १ (ख) : वशावली बांधोपति : 'राजा वीरमदेव, रोवा पाठे पर अमल मा'।

५—वीर० १।४०-५१।

६. आ० रि० इ० : जिल्द-२१ पृष्ठ ७४ : साथ ही देखिये, श्यामसुन्दर-दास : प्राचीन-लेख-मणिमाला : पृष्ठ ५२ : वीरवर्मादेव का राहि-दानपत्र-१२८० ई०।

७. ए० इ० जिल्द २६ : पृष्ठ १० टि० ४—'कालिञ्जराधिपति-श्रीमद् हम्मीरवर्मादेवः'संवत् १३६५।

के निकट बल्लालदेव ने अन्तर्वेद में प्रवेश कर पठानों से कुछ युद्ध जीते ।^१ उसके पौत्र वीरमदेव को १३९५ ई० के आसपास कालपी के सुल्तानों से संघर्ष करना पड़ा,^२ किन्तु उसने दक्षिण-पूर्व की ओर रोवा के पठार पर अधिकार बढ़ा लिया । दिल्ली की सत्ता के साथ भी उसका संघर्ष हुआ ।^३ पन्द्रहवीं शती के अन्तिम भाग तक वीरम का पौत्र भेददेव गहोरा राज्य का अत्यन्त प्रबल शासक बन चुका था । उसने काशी, प्रयाग और गया तक राज्य-विस्तार कर लिया । उसका एक विवाह बगोसर (बकसर) में हुआ था ।^४ भेददेव जौनपुर के शर्की सुल्तान हुसेनशाह का मित्र और सहायक था । १४८८ ई० में उसने बहलोल लोदी के विरुद्ध हुसेन की सहायता की थी । इस समय उत्तर में कन्नित्त, अरैल और मिर्जापुर तक, पश्चिम में कालिंजर और गहोरा और दक्षिण में सुरगुजा और बान्धवगढ़ तक भेददेव का प्रबल राज्य विस्तृत था । १४९२ ई० में उसने लोदियों द्वारा नियुक्त कडा के प्रशासक मुबारक खाँ लोहानी को बन्दी बना लिया था । १४९४ ई० में सिकन्दर लोदी ने भेददेव पर चढ़ाई की और अरैल को लूटा । भेददेव के पौत्र वीरसिंहदेव ने गहोरा की ओर बढ़ते हुए सिकन्दर लोदी का १४९५ ई० में सामना किया । खानघाटी (या हंडियाघाट) पर युद्ध हुआ । बघेलों की हार हुई । सिकन्दर लोदी ने पर्षोध (तहसील ब्योहारी, जिला बाहबोल, म. प्र.) तक बघेल सेना का पीछा किया, पर वह स्वयं घिर गया । वह कठिनाई से निकल कर बनारस की ओर भागा । उसने भेददेव के पुत्र शालिवाहन से सन्धि कर ली और बनारस से १३ मील दूर पर शालिवाहन की सहायता से हुसेन को परास्त कर दिया । इस समय सिकन्दर ने शालिवाहन से उसकी लड़की का डोला माँगा था । परिणामस्वरूप १४९८ ई० में सिकन्दर ने गहोरा पर पुनः आक्रमण किया । शालिवाहन बान्धवगढ़ के दुर्ग में जा छिपा ।

१. परिशिष्ट १ (ख) : पंशावली बांधोपति—'बल्लालदेव पठानन मारा, अन्तर्वेद (अन्तर्वेद) अमल भा ।' बल्लालदेव के गहोरा शिलालेख (१३६० ई०) के लिए देखिये—वीर० क्रि० ९०; पृष्ठ १७ ।
२. परिशिष्ट २ : तारोखो मुहम्मदी : पृष्ठ ४७२ : कालपी के सुल्तान नासिरुद्दीन ने गहोरा के मुकद्दम वीरम पर १३९५ ई० में दो चढ़ाईयाँ कीं ।
३. पंशावली बांधोपति—'राजा वीरमदेव । रोमा पाठे पर अमल भा ।' तथा वीर० १।३९, ४४ ।
४. वीर०, १।५६—'काशीं प्रयागं च गयां च जिह्वा.....' तथा दलोक ६२ ।

१४९९ ई० में सिकन्दर ने बान्धवगढ़ को घेर लिया, पर उसे ले न सका। तब उसने बान्धवगढ़ से गहोरा के बीच का सारा बघेल राज्य उजाड़ दिया।^१

इस प्रकार सोलहवीं शती के आरम्भ होने से पूर्व हम यमुना और गङ्गा के दक्षिण सोन और टोंस नदियों के द्वारा सिञ्चित भू-भाग पर बघेलों की प्रबल सत्ता को प्रतिष्ठित पाते हैं। इस अवधि में यह सत्ता दिल्ली और द्वाब के मुस्लिम शासकों के लिए विशेष चिन्ता का विषय बनी हुई थी।

आगे हम देखेंगे कि सोलहवीं शती में तथा उसके पश्चात् उन्नीसवीं शती तक यह बघेल सत्ता, जिसे हम बघेलखण्ड नाम से व्यवहृत करेंगे, देश की ऐतिहासिक परिस्थितियों से किस प्रकार प्रभावित हुई तथा इन्हीं बघेलों के क्षेत्र बघेलखण्ड में संस्कृत साहित्य का किस रूप में सर्जन हुआ।

आधुनिक स्वरूप

वर्तमान काल में मध्यप्रदेश के उत्तरी-पूर्वी छोर पर रोवा नाम से एक सम्भाग्य और जिला-केन्द्र है, जो १९४८ ई० तक उन्मुक्त बघेलों के वंशधरों की राजधानी था। वर्तमान वंशधर महाराजाधिराज मार्तण्डसिंह जू देव का जन्म १९२३ ई० में हुआ था। १९४६ ई० में इनका रोवा-नरेश के रूप में अभिषेक हुआ। मई, सन् १९४८ ई० को आपने राजसत्ता भारत सरकार को सौंप दी और नवनिमित्त विन्ध्यप्रदेश राज्य के राजप्रमुख पद पर आसीन हुए। जुलाई, १९४८ ई० से बघेलखण्ड की पुष्क सत्ता पूर्णतः समाप्त कर उसे बुन्देलखण्ड के राज्यों से एकीकृत कर संयुक्त मन्त्रिमण्डल की स्थापना की गई। विन्ध्यप्रदेश इस समय 'बी' श्रेणी का राज्य था और रोवा उसकी राजधानी थी। दिसम्बर सन् १९४९ में विन्ध्यप्रदेश को 'सी' श्रेणी का राज्य बनाकर राजप्रमुख का पद समाप्त कर दिया गया। कुछ वर्षों तक विन्ध्यप्रदेश का शासन चोफ-कमिश्नर करते रहे। १९५२ ई० में प्रथम सार्वजनिक निर्वाचन के परिणामस्वरूप जनतन्त्रीय सरकार की स्थापना हुई। १ नवम्बर, १९५६ ई० से विन्ध्यप्रदेश

१. ईलियट एण्ड डारसन : जिल्द ५ : नियामतउल्लाह कृत 'तारीखी खानजहान लोदी' : पृष्ठ ८९, ९३-९५ : ब्रिग्स : तारीखे-फरिश्ता : जिल्द १ पृष्ठ ३६९-७४ तथा लो—डब्लू. एच. : अल-बदाओनी : जिल्द १ पृष्ठ ४०८, ४१७। साथ ही देखिये—ईलियट-डारसन जिल्द ४ : अब्दुल्ला कृत 'तारीखी दाउदी' पृष्ठ ४६२ और जिल्द ६ पृष्ठ २००-२१ : दि बघेला डायनेस्टी आफ रोवा : निजामीकृत : जर्नल आफ दि विक्रम यूनीवर्सिटी : त्रितीय भाग पृष्ठ २ : मई १९५८।

नवनिर्मित मध्यप्रदेश का अङ्ग बना दिया गया^१। महाराज मारुण्डसिंह के एक पुत्र श्री पुष्पराज प्रताप सिंह हैं।^२ वर्तमान रोवा सम्भाग में रोवा, सतना, सीधी, सहडोल, पन्ना, छतरपुर और टोकमगढ़ कुल सात जिले हैं, जिनमें से प्रथम चार जिलों को सामान्य रूप से वर्तमान बघेलखण्ड माना जा सकता है। यहाँ की मातृभाषा 'बघेली' है, जो अवधी हिन्दी से मिलती-जुलती है।

देश की परिस्थिति का बघेलखण्ड पर प्रभाव

हम पीछे लिख चुके हैं कि भेददेव और दालिवाहन का लोदियों के साथ भीषण संघर्ष हुआ था और वीरसिंहदेव ने युद्ध में प्रमुख रूप से भाग लिया था। सोलहवीं शती के आरम्भ में वीरसिंहदेव ने लोदियों के साथ सन्धि कर ली^३। इस समय वीरसिंहदेव ने बघेल-सत्ता को अत्यन्त सुदृढ़ और विस्तृत कर लिया। गङ्गोरा-राजधानी को उसने सड़कों, भवनों और मन्दिरों से सुसज्जित किया।^४ उसने नरो^५ दुर्ग के परिहार-राजा विक्रमादित्य को परास्त किया और नरो में रह कर उसे सुसज्जित किया। उसके आक्रमण करते ही गढ़ा का (गोंड) राजा (अमानदास) भाग गया।^६ नारायण नामक कुच (या कौरव वंशी) राजा से

१. विन्ध्यप्रदेश का इतिहास : रामप्यारे अग्निहोत्री : रोवा १९५६ : पृष्ठ ३००-३१४।
२. जन्म, जुलाई १९६१।
३. वीर०-२।६३—'दिल्लोपुरीशेन चकार सन्धिम्।'
४. वही, २।७-२०।
५. सतना से लगभग १० मील दक्षिण-पूर्व की एक पहाड़ी, जहाँ मन्नावदीय प्राप्त है।
६. वीर० २।५६-५८ : साथ ही देखिये, ईलियट और डाउसन : जिल्द २ : कलकत्ता-१९५९ : अबुलफजल कृत अकबरनामा : पृष्ठ ३०-३४ तथा शेख फैजी सरहिन्दी कृत अकबरनामा : पृष्ठ २२१ : गढ़ा-कर्तगा— वर्तमान जिला जबलपुर के अन्तर्गत गढ़ा-मण्डला। राजधानी का नाम गढ़ा और दुर्ग का चौरागढ़ था। अमानदास अपने पिता अर्जुनदास से विद्रोह कर वीरसिंहदेव की शरण में आया। उसे राजा ने पुत्रवत् रखा और स्वयं सिकन्दर लोदी से मिलने चला गया। अमानदास ने गढ़ा लौटकर पिता का बंध कर डाला। अर्जुनदास के सरदारों ने वीरसिंहदेव को बुलाया। उसने गढ़ा पर आक्रमण किया। अमानदास भाग गया, किन्तु बाद में उसने वीरसिंहदेव को 'पिता' कहकर क्षमा माँग ली। वीरसिंहदेव ने उसे राज्य लौटा दिया। अमानदास ने

भेदनीति द्वारा उसने बान्धवगढ़ जीत कर वहाँ निवास किया और कुर्बंशियों का नाश कर डाला। रत्नपुर के (कलचुरि) राजा को जीतकर उसने कर ले लिया। फिर वीरसिंहदेव ने डहार (डहल का उत्तरी भाग) और सहजोर (सहडोल) को भी जीत लिया तथा भर (धंशीय) राजा को परास्त कर दिया।^१ अलकपुरी (अरैल-प्रयाग) पर भी वीरसिंह ने अधिकार बनाए रखा। बाबर के साथ उसकी मित्रता थी।^२

वीरसिंह के पुत्र वीरमानु ने हुमायूँ की शेरशाह के विरुद्ध सहायता की थी।^३ हुमायूँ से अशकाश पाकर शेरशाह ने वीरमानु को कालिंजर में धेर लिया, पर वीरमानु बच गया। यही शेरशाह की मृत्यु हो गई, किन्तु कालिंजर का पतन हो गया। शेरशाह के पुत्र सलेमशाह ने रीवा पर अधिकार कर लिया था किन्तु वह पिता की मृत्यु (१५४५ ई०) सुनकर लौट गया।^४

बाद में गोविन्द कछवाहा के पुत्र दलपत (१५४४-५१) को दत्तक पुत्र बनाया। दलपत का विवाह शालिवाहन चन्देन की कन्या दुर्गावती के साथ हुआ था। अपने अल्पवयस्क पुत्र वीरनारायण की ओर से दुर्गावती (१५५१-६४) शासन करती रही। आसक्त खाँ ने दुर्गावती और वीरनारायण को मारकर १५६४ ई० में गढ़ा-कटंगा पर मुगल सत्ता स्थापित कर दी।

१. वीर० २।५९-६१, ६५-६७।

२. वीर० २।६१, ६७ तथा १२।२२ : साथ ही देखिए—'दि बघेल डायनेस्टी आफ रीवा' निजामी : विक्रम युनि० ज० : मई : १९५८ : वीरसिंहदेव ने बाबर के विरुद्ध कनवाहा में १५२७ ई० में राणा सांगा का साथ दिया था।

३. 'बाबर एण्ड हुमायूँ', अस्किन् : भाग २ : पृष्ठ १७४। गुलबदन बेगम : हुमायूँनामा : (अनु० बेवरिज) : पृष्ठ १३५-३६। जोहर कृत हुमायूँनामा (मेमापर्स आफ हुमायूँ) : पृष्ठ १८।

४. ईलियट और हाउसन : त्रिहृद ४ : पन्नास खाँ सरबानी कृत तारीखी-शेरशाही, पृष्ठ ४०७-९। ग्लेडविन : आईन-अकबरी (अबुलक़दर कृत) : पृष्ठ ३२१ : राय : सकसेसर्स आफ शेरशाह : १९३४ : पृष्ठ ६-७ : घोवास्तव : (डा०) आशीर्वादीलाल : मुगलकालीन भारत : तृतीय संस्करण : आगरा : १९५९ : पृष्ठ १०७-३३।

बीरमानु ने अपने समुर और रतनपुर के (सम्भवतः कलचुरि) राजा दादुराय को परास्त किया।^१ हुमायूँ से उसकी मैत्री बनी रही।^२

अकबरी शासन के आरम्भ के कुछ पूर्व (१५५२ ई० से) बीरमानु के पुत्र रामचन्द्र का राज्याारम्भ होता है। तीन वर्ष तक युवराज के रूप में भी ये पूर्ण अधिकारी रहे। मुहम्मद आदिलशाह सूर 'अदलो' (१५५३-५७) रामचन्द्र को धारण में १५५४ ई० में आया। उसे पूरी सहायता दी गई। परिणामस्वरूप शोध ही इबाहीम सूर ने आक्रमण किया। वह बन्दो बना लिया गया, किन्तु राजा ने उससे सद्भवहार किया।^३ इन दिनों तानसेन^४ और बीरबल^५ रामचन्द्र की सेवा में थे।

१५६२ ई० में अकबर के दबाव से रामचन्द्र ने तानसेन को मुगल दरबार में भेज दिया। १५६३-६४ ई० में अकबर द्वारा नियुक्त कड़ा के प्रशासक अब्दुल मजीद आसफ खान ने रामचन्द्र पर दो आक्रमण किये और बान्धवगढ़ में उन्हें घेर लिया। सम्भवतः बीरबल की मध्यस्थता से घेरा उठवा लिया गया और रामचन्द्र ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली। रामचन्द्र ने १५६९ ई० में अकबर के हाथों कालिंजर सौंपकर युवराज वीरभद्र को मुगल दरबार में भेज दिया, किन्तु अकबर का हस्तक्षेप बढ़ता गया। १५८३-८४ ई० में अकबर ने प्रयाग में प्रसिद्ध दुर्ग बनवाया। अकबर के दरबार में १५८४ ई० में रामचन्द्र को उपस्थित होना पड़ा। सम्भवतः उन्हें इटावा का परगना मिला। १५९२ ई० में रामचन्द्र की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र वीरभद्र भी अगले वर्ष दिवङ्गत हुए। अकबर ने वीरभद्र के अल्पायु पुत्र विक्रमादित्य को राजा नहीं माना, उन्हें दरबार में बुलाकर रोक लिया तथा वीरभद्र के दूसरे पुत्र दुर्घोषन को मान्यता दे दी। बान्धवगढ़ में सरदारों ने विद्रोह किया। अकबर के द्वारा प्रेषित पत्रदास ने ८ माह २५ दिन के घेरे के पश्चात् बान्धवगढ़ को 'ध्वस्त कर दिया और १५९७ ई० में पूर्ण अधिकार कर लिया। १६०२ से १६०५ ई० तक दुर्घोषन

१. बीर० ७, ६८-७०, ७५।

२. वही, १२।२२।

३. बीर०। १०।१३—'स ईदिलस्तं शरणागतोऽमृत स्वयं सुरनाण-मुहम्मदादिः।' तथा अस्किनः बाबर एण्ड हुमायूँ : भाग २ पृष्ठ ४९४ : ५०१-४ : लो : अल-बदाओनी, भाग १ : पृष्ठ ५४२-४४, ५५३-५४।

४. बीर० : १०।२६-३१।

५. लो : अल-बदाओनी : भाग २ पृष्ठ ३४५।

शान्त करता रहा, पर जहाँगीर ने विक्रमादित्य को ही रोवा-बान्धो का राजा स्वीकार किया^१। इस समय (१६०५) से रोवा राजधानी बना^२।

इन प्रकार हम देखते हैं सोलहवीं शती बघेलों की सार्वभौम सत्ता के उत्थान और पतन की शती है। पन्द्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध से अकबर के आक्रमणों के पहले तक यह सत्ता अन्तर्वेद (द्वाव) से कलिंग तक छाई हुई थी और काशी, प्रयाग, म्मरकंटक, रत्नपुर और चौरागढ़ जैसे महत्वपूर्ण स्थानों से घिरा हुआ विन्तुत भू-भाग बघेलों के अधिकार या प्रभाव में था। सोलहवीं शती के उत्तरार्द्ध में यह सत्ता क्रमशः सौन्धित होती चली गई और सत्रहवीं शती का प्रारम्भ होते-होते बघेल भूगोलों के जामोरदार मात्र रह गये। बाबर ने बघेल सत्ता को भारत की तीन प्रबल सत्ताओं में से एक माना था।^३

सत्रहवीं शती में बघेलसभ्य के परिवर्तन में ओरछा केन्द्र बना कर बुन्देलों की प्रबल सत्ता उठ खड़ी हुई, जिन्हे रोवा की शक्ति को बार-बार प्रभावित किया। १६०२ ई० में दुर्योधन बघेल को राज्य देते समय अकबर ने भारतीयवन्द को उनका संरक्षक नियुक्त किया था। १६१० ई० में विक्रमादित्य ने मुगल प्रभाव से मुक्त होना चाहा, तब जहाँगीर ने भानसिंह बुन्देल के पुत्र महासिंह को भेज कर उनका दमन कराया। विक्रमादित्य के पुत्र अमरसिंह ने १६२६ ई० में मुगलों को पूर्ण अधीनता स्वीकार कर ली। १६३६ ई० में उसने रत्नपुर के जमींदार के विरुद्ध शाहजहाँ के सेनापति अब्दुल्ला खाँ की सहायता की तथा दिल्ली भी गया। इस बीच गढ़ा के जमींदार भीमनारायण की मार कर जुझारसिंह बुन्देल

१. ब्लाकमैन : आईन-अकबरी : कलकत्ता १८७३ : ई० पृष्ठ ३६७, ४०६, ४०७, ४६९, ४७५, ३६७-५८ : बेर्रिज : अकबरनामा (अबुलफजल कृत) भाग २ : पृष्ठ २२९, २७९-८३ : अल-बदाओनी (अनु० लो), भाग २ : पृष्ठ ३४५ तथा ईलियट एण्ड डारवसन : जिल्द २ : फौजी सरहिनदी कृत अकबरनामा : पृष्ठ ११९-२०, मासिर-उल-उमरा (अनु० ब्रवरत्नदाम) : समसाम तहज़ीब द्वारा १७४७ ई० में लिखित : पृष्ठ ३३०-३४, ३५४-५९ : ईलियट एण्ड डारवसन : १६५२ : निजामुद्दीन अहमद कृत 'अकबर' : पृष्ठ १२१ : इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया : जिल्द २१ : १९०८ : पृष्ठ २८०-८२।

२. परिशिष्ट १ (क) : एकना०—'रोवा का किला.....विक्रमादित्य के किले आएँ।'

३. ब्लाकमैन : आईन-अकबरी : पृष्ठ ४०६ : बाबरनामा (मेनायर्स - भाऊ बाबर) का उल्लेख।

मुगलों से विद्रोह कर बैठा। अब्दुल्ला खाँ के साथ अमरसिंह को भो जुमारसिंह को दवाने के लिए भेजा गया। १६५० ई० के निकट गढ़ा पर जुमारसिंह का भाई पहाड़सिंह बुन्देल अधिकार किये हुए था। उक्त भोमनारायण का पुत्र दयाराम (या हृदयराम) पहाड़सिंह से हार कर अमरसिंह बघेल के पुत्र अनूपसिंह (१६४१-७५) की पारण में आया। पहाड़सिंह ने अनूपसिंह को खदेड़ कर रोवा पर भी अधिकार कर लिया। उसकी मृत्यु के उपरान्त १६५६ ई० में अनूपसिंह को रोवा-शाल्थी का राज्य पुनः मिला।^१

बघेलों की एक शाखा, जो वीरमानु के छोटे भाई यामिनोमानु (अमृनीमान) से फूटी थी, रोवा के अधीन रह कर मैहर पर राज्य करती रही। १६७२ ई० में छत्रसाल बुन्देल ने मैहर पर आक्रमण कर राजा से अधीनता मनवाई और चोप ली। छत्रसाल ने क्रमशः कोठी, नागोद, जसो, वीरसिंहपुर और सोहावल में फैल कर सम्पूर्ण पश्चिमी बघेलखण्ड को अधीनस्थ कर लिया। सम्भवतः इसी समय गहोरा बघेलों के हाथ से सदा के लिए चला गया। अनूपसिंह के उत्तराधिकारी भावसिंह ने १६७५ से १६९४ ई० तक राज्य किया। उसकी मृत्यु पर उसके दत्तक पुत्र अनिरुद्धसिंह को मऊगंज (जिला रोवा) के सैयद राजपूतों ने मार डाला। अनिरुद्धसिंह के पुत्र अबधूतसिंह के राज्य-काल में १७२६ ई० में छत्रसाल के पुत्र हिरदेशाह ने छत्रसाल की इच्छा के विरुद्ध लगभग आधे बघेलखण्ड पर अधिकार कर लिया, किन्तु मुगलों के दबाव से उसे हटना पड़ा।^२ अबधूतसिंह के पुत्र अजोतसिंह (१७५५-१८०९) के राज्य-काल में बाजीराव द्वितीय पेशवा के एक पौत्र गवाब अलीबहादुर ने बुन्देलों की सहायता से नर्मदा के उत्तरी क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया। उसके सेनापति यशवन्तराव नायक ने १७९८ ई० में बघेलखण्ड का पश्चिमी भाग अधिकृत कर रोवा को घेर लिया। ३ माह

१. ग्लाकमैन : आईन-अकबरी : पृष्ठ ४०७ तथा मासिर-उल-उमरा (अजरतनदास) : पृष्ठ १८६, २२७, ३३३-३४, ३५४-५९ : बेवरिज : अहमिगीरनामा : १९०९ पृष्ठ १; साथ ही देखिये—ईलियट एण्ड डाउसन : जिल्द ६ तृतीय संस्करण : कलकत्ता : १७५९ : इनामत-उल्लाह कृत 'उकमिलाई' 'अकबरनामा' : पृष्ठ ११५।

२. भगवानदास गुप्त (डा०) : 'महाराजा छत्रसाल बुन्देला', आगरा : १९५८ : पृष्ठ ४३, ८२-८३, १२३-२४ तथा गोरेलाल तिवारी : 'बुन्देलखण्ड का इतिहास' : पृष्ठ १८४। साथ ही देखिये इम्पीरियल गेजेटियर आफ इण्डिया : जिल्द २१ : १९०८ : पृष्ठ २८१-८२।

के पश्चात् यह घेरा हटा और नायक मारा गया तथा उसको सेना नष्ट हो गई । अजीतसिंह ने अली बहादुर का सामन्त बनना स्वीकार नहीं किया ।^१

उन्नीसवीं शती के बघेलखण्ड का इतिहास अंग्रेजों के साथ बघेलों के सम्बन्धों का इतिहास है । १८०३ ई० में अजीतसिंह ने अंग्रेजों के साथ सन्धि का प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया था । उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र जयसिंह (१८०९-३४ ई०) ने १८१२ ई० में 'सहायक सन्धि' पर हस्ताक्षर कर दिया । १८१४ ई० तक दो सन्धियाँ और हुईं तथा रोवा राज्य क्रमशः अंग्रेजों शासन से नियंत्रित हो गया । महाराज की ओर से इस समय उनके पुत्र विश्वनाथसिंह शासन का कार्य देखते थे । विश्वनाथसिंह के पुत्र रघुराजसिंह (१८१४-८०) ने १८५७ ई० में अंग्रेजों की सहायता की ओर सोहामपुर तथा अमरकंटक (दक्षिणी बघेलखण्ड) के परगने पुरस्कार-रूप प्राप्त किये । १८६२ ई० में रघुराजसिंह को गोद लेने की सनद मिली । इनकी मृत्यु के समय इनके पुत्र बैकटरमसिंह (१८८०-१९१८) केवल ४ वर्ष के थे, अतः बघेलखण्ड १५ वर्षों तक अंग्रेजों संरक्षण में रहा । १८९५ ई० में बैकटरमसिंह को पूरे अधिकार मिल गए । इन्होंने प्रथम विश्व-युद्ध (१९१४-१९) में अंग्रेजों की सहायता की थी ।^२ इनके पुत्र गुलाबसिंह (१९१८-४२) खुलकर अंग्रेजों के विरुद्ध नहीं हुए किन्तु वे सुशासक एवं सुधारक थे । शङ्कित होकर तथा आन्तरिक कारणों का आधार लेकर अंग्रेजों शासन ने इन्हें १९४२ ई० में पदच्युत कर दिया । १९४६ ई० में उनके पुत्र मार्तण्डसिंह को पुनः राज्य लौटा दिया गया, जो १९४८-४९ ई० में विन्ध्यप्रदेश के राजप्रमुख बने । दिसम्बर, १९४९ ई० में राजप्रमुख पद समाप्त कर दिया गया । इस प्रकार बघेलखण्ड की राज्यसत्ता का अन्तिम अन्वय पूर्ण हो गया ।^३

१. निजामी—'दि बघेल हायनेस्टी आफ़ रोवा' : जर्नल आफ़ दि विक्रम यूनीवर्सिटी : जिल्द २ क. २ : मई, १९५८ : रिप्रिंट : पृष्ठ ४-५ तथा दुर्गादास कवि : अजीत-फतेह या नायक-रामदा : रोवा : १९०२ और 'ग्लोरी आफ़ बान्धो' : रोवा : १९४८ : पृ० ८ ।
२. ऐचिसन—सी० यू० : 'रोवा अण्डर दि काठन' ट्रीटोज़ ऐण्ड सनड्स विथ ब्रिटिश गवर्नमेंट' (१८०० से १९३० ई० तक) : दिल्ली १९३३ : पृष्ठ २५० तथा आगे । साथ ही देखिये-निजामी—'दि बघेल हायनेस्टी आफ़ रोवा' वि० यू० अ० २।२ मई १९५८-रि प्रिंट पृष्ठ ६-९ तथा ग्लोरी आफ़ बान्धो—रोवा : १९४८ : पृष्ठ ८-९ ।
३. रामप्पारे अग्निहोत्री : विन्ध्यप्रदेश का इतिहास : रोवा : १९५६ : पृष्ठ ३००-१४ ।

(ख) पिछली चार शताब्दियों में देश में संस्कृत-सर्जना की धारा

भारत की राजनीतिक उथल-पुथल और मुस्लिम-शासन की स्थापना से निश्चित रूप से संस्कृत-सर्जना की स्वामायिक गति आहत हुई। संस्कृत के कवियों और पण्डितों की नवीन आश्रयदाताओं की आवश्यकता पड़ी और संस्कृत-विद्या के संरक्षण का नया प्रश्न सामने आ गया। गुजरात, मालवा, मध्यभारत, बिहार और बंगाल के वे केन्द्र, जो अब तक संस्कृत विद्या का पोषण कर रहे थे, प्रायः समाप्त हो गये। परीक्षा का यह काल-खण्ड बीता। क्रमशः केन्द्र बदले। अवशिष्ट हिन्दू-नरेशों की राज-समाजों तथा उपासना-केन्द्रों ने यथाशक्ति संस्कृत-साहित्य के नवनिर्माण को प्रोत्साहित किया।

इस काल में उर्दू-फारसी का प्रभाव बढ़ रहा था; साथ ही, हिन्दी आदि भाषाओं में भी साहित्य-सर्जन की रुचि पनप रही थी। इस स्थिति में भी भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में संस्कृत की मान्यता और रुचि बनी रहो। भाषाओं का अध्ययन करने वाले लोग उनके स्रोत और आधार संस्कृत का भी अध्ययन करते थे। हिन्दी आदि भाषाओं के कवि अपने प्रबन्ध-काव्यों और लक्षण-ग्रन्थों का स्रोत संस्कृत में पाते थे। सूरदास ने सूरसागर में हिन्दी भाषा में अपनी भावनाओं का समावेश किया, किन्तु उसमें प्राप्त समस्त कृष्ण-कथा श्रीमद्भागवत से ग्रहण की। तुलसीदास ने भाषा-बद्ध काव्य रामचरितमानस के प्रणयन के लिए वाल्मीकि-रामायण एवं अन्य अनेक प्राचीन कथा-काव्यों के अध्ययन किये, जो संस्कृत में थे। इस प्रकार एक ओर भाषा-काव्यों के उपजीव्य के रूप में संस्कृत के प्रति विद्वानों की दृष्टि रही, दूसरी ओर संस्कृत में नवीन साहित्य का निर्माण भी होता रहा। काशी, काञ्ची, मिरासा, नवद्वीप, ब्रजमण्डल आदि क्षेत्रों में तथा मैसूर आदि स्थानों की राज-समाजों में अनवरत रूप से पुष्पित-पल्लवित होने वाले संस्कृत साहित्य का १५०० से १९०० ई० के बीच अपार मात्रा में सर्जन हुआ, यह एक ठोस तथ्य है।

उपरोक्त शताब्दियों में ऐतिहासिक शैली की रुचि का अपेक्षाकृत अधिक दिग्दर्शन होता है। संस्कृत के कवियों ने नवीन शासकों की समाजों में भी स्थान प्राप्त कर लिया और उनकी भी प्रशस्तियों लिखने लगे। यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि कुछ मुसलमान और अंग्रेज सत्ताधारियों ने भी संस्कृत भाषा में निहित गुणों की समझा और चाहे राजनीतिक लाभ के लिए ही - क्यों न हो, संस्कृत को महत्त्व देते हुए उसमें उन्होंने स्वयं भी रुचि ली।

सोलहवीं शती में भानुकर, अकबर की कालिदास और चिन्तामणि आदि कितने ही कवियों द्वारा मुस्लिम शासकों के प्रति लिखी हुई प्रशस्तियों सुभाषित सङ्ग्रहों में सङ्कलित हैं। इसी शती में फारसी के अकबरनामा का संस्कृत

अनुवाद हुआ तथा अकबर ने कई संस्कृत ग्रन्थों के फारसी में अनुवाद कराये । रहीम खानखाना, दाराशिकोह और शाइस्ता खान जैसे मुस्लिम विद्वानों ने संस्कृत में रचनाएँ भी कीं । मुगल-शासनकाल में टोडरमल-काव्य और खान-खानान-चरितम् लिखे गए । जहाँगीर की प्रशस्ति में शिहदावली तथा जहाँगीरशाह-चरितम् गद्यकाव्य की रचना हुई । पण्डितराज जगन्नाथ ने आसफ खाँ के लिए आसफ-विलास गद्यकाव्य और दाराशिकोह के लिए जगदाभरण काव्य लिखा । १६८९ ई० में चतुर्भुज ने शाइस्ता खान के लिए रसकल्पद्रुम ग्रन्थ की रचना की । १८वीं शती में लक्ष्मीपति ने फारसी शब्दों के मेल के साथ अञ्जुला-चरितम् लिखा ।

१९वीं शती में भंग्रेजों का प्रभाव स्थापित हो जाने से संस्कृत-काव्य की एक धारा भंग्रेजों की प्रशस्ति की ओर अभिमुख होती हुई परिलक्षित होती है । १८०१ ई० में विनायक भट्ट ने भंग्रेज-चन्द्रिका लिखी । १८१३ ई० के ग्रन्थ इतिहासतमोमणि में भंग्रेजों द्वारा भारत-विजय का चित्रण प्रस्तुत है । इसी कड़ी में रामस्वामी राजा का राजाङ्गल-महोद्यान, राजराज वर्मा का आङ्गल-साम्राज्य, परवरातु राजाचार्य का आंगलाधिराज-स्वागत तथा विक्टोरिया के शासन पर बिद्यालङ्कार भट्टाचार्य का विजयिनी-काव्य आदि ग्रन्थ मिलते हैं । बीसवीं शती के आरम्भ में भी भंग्रेजों को लक्षित करके संस्कृत काव्यों की सृष्टि हुई है ।

हिन्दू राज-समाश्रों का प्रोत्साहन पाने वाले अनेक कवियों ने इस काल में ऐतिहासिक शैली के सुन्दर काव्यों के प्रणयन किये हैं । १६वीं शती के मध्य भाग में माधव कवि ने धीरमानु बघेल पर १२ सर्गों का वीरमानुदय महाकाव्य लिखा । प्राज्यभट्ट और उनके शिष्य शुक ने १५८६ ई० तक का काश्मीर का हिन्दू-राज्य-कालीन इतिहास राजावली-पत्रिका नाम से पूरा किया । विजयनगर के अच्युत राय पर राजनाथ तृतीय ने १२ सर्गों का अच्युतरायाम्बुदय लिखा । चन्द्रशेखर ने २० सर्गों का काव्य राज-सुर्जन-चरित्र लिखा । भक्तवरी कालिदास ने रामचन्द्र-महा-प्रबन्ध नामक प्रशस्ति-काव्य लिखा । ह्रद कवि ने मयूरगिरि के राठौर-राजवंश को लक्ष्य बनाकर १५९६ ई० में २० सर्गों के राष्ट्रौड-वंश काव्य की सर्जना की तथा वाणीनाथ ने ७ सर्गों का जाम-विजय ग्रन्थ लिखा ।

परवर्ती शतियों में पण्डितराज जगन्नाथ का कामरूप के नरेश प्राणनारायण पर प्राणामरण-काव्य लिखा गया । इस काल में दक्षिण भारत में अधिक काव्य-सृष्टि परिलक्षित होती है । तंजौर केन्द्र में रघुनाथ-कृत अच्युतेन्द्राम्बुदय १६१४ ई० की रचना है । रात्री रामभद्राम्बा ने रघुनाथाम्बुदय तथा यक्षनारायण और राजधुहामणि दीक्षित ने पुष्प-पुष्प-रघुनाथ-भूपविजय काव्य रचे । महा-

राष्ट्र के कवियों में परमानन्द ने ३१ अध्यायों का शिवभारत, जयनाथ ने पनाल-पवंत-प्रहास्यान, केशव पण्डित ने ५ सर्गों का राजाराम-चरित्र एवं शिवराज-चरित्र और श्रीधर वैकटेश ने ८ सर्गों का शाहेन्द्र-विलास काव्य रचा। सुमनीन्द्र कवि ने शाह-विलास, गंगाधर ने भोमला-वंशावली, शैवाचलपति ने कोसल-मोसलीयम् और कालिदास विद्याविनोद ने शिवराजो-चरित का प्रणयन किया। अन्य क्षेत्रों में रूपणि शर्मा ने १६७८ ई० में वघेलवंशवर्णन लिखा और धैरनाथ मैथिल ने २० सर्गों का ताराचन्द्रोदय काव्य ताराचन्द्र नरेश को लक्ष्य बनाकर लिखा। राजरत्नलाल ने १९वीं शती में रावजो-राज-कीर्तिविलास ग्रन्थ लिखा तथा केरल-कालिदास केरल वर्मा ने विशाखराज-महाकाव्य रचा।

इस कालावधि में मुनियों और धर्मगुरुओं के चरित तथा धर्मकेन्द्रों के इतिहास भी लिखे गये। मेघविजयगणि ने देवनाम्बाम्युदय, दान्तिनाथ-चरित और दिग्विजयमहाकाव्य का सज्जन किया। इसी काल के ग्रन्थ शङ्कराम्युदय, पठञ्जलि-चरित और महावीरचरित हैं। धनश्याम ने भागवतपाद-चरित और वैकुण्ठेश-चरित ग्रन्थ लिखे। द्विण्डिम कवि ने विवेकपत्रमाला नाम से विजयनगर के कवियों का वंशेतिहास लिखा और सुन्दरराज आचार्य ने भोनिवास-दीक्षितेन्द्र-चरित रचा। राम वर्मा ने स्थानगूरपुर-वर्णन लिखा। १७४० ई० में गुहवंश नाम से शृङ्गेरी मठ का इतिहास लिखा गया। विजयपुर-कथा, चोलवंशावली-चरित, राजविनोद और वीरभद्रविजय आदि अन्य अनेक ग्रन्थ भी इसी काल के हैं। सोमनाथ के व्यासविजय, वादिराज के तीर्थ-प्रबन्ध और सङ्कर्षण के सरय-नाथाम्युदय को इसी कड़ी में गिना जा सकता है।

यह समझना भूल नहो कि कविर. ने इस अवधि में पौराणिक आधारों पर काव्य-निर्माण की सपेक्षा की। ऐसे काव्यों की सूची सुदीर्घ है। १६वीं शती में स्वयम्भूनाथ ने १४ सर्गों का कृष्णविलास और अप्पय दीक्षित ने रुक्मिणी-परिणय लिखा। रघुनाथ ने १६१४ ई० में नलाम्युदय, वैकुण्ठेश ने १६३५ ई० में ३० सर्गों का रामचन्द्रोदय और रत्नसिंह ने १६७१ ई० में प्रद्युम्नचरित लिखे। १७वीं शती के अन्य गणनीय काव्य हैं—मधुरवाणी का रामायण-काव्य, श्रीनिवास दीक्षित का शितिकण्ठविजय, राजचूडामणि दीक्षित का रुक्मिणी-परिणय, भीलकण्ठ दीक्षित का शिवलीलागंठ, चक्र कवि का ८ सर्गों का जानकी-परिणय, ईश्वर मुमति का पार्वती-परिणय और कृष्ण कवि का ताराशशाङ्क काव्य। इसी प्रकार १८वीं शती के ग्रन्थों में धनन्त नारायण का १२ सर्गों का राधा-चरित, वैकुण्ठ कृष्ण का ७ सर्गों का नटेश-विजय, भगवन्त का १० सर्गों का मुकुन्दविलास, राम कवि का ८ सर्गों का विष्णुविलास,

२० सर्गों का राघवोद्य काव्य तथा कंसवहो (प्राकृत) एवं राम वर्मा का १२ सर्गों का रामचरित उल्लेखनीय है ।

सम्बद्ध शक्तियों में चम्पू काव्यों की रचना अच्छी संख्या में हुई । इनमें से पद्मनाभ मिश्र का वीरभद्रदेव चम्पू, शङ्कर दीक्षित का चेतो-विलास, वेङ्कटेश का मोमलावंशावली चम्पू और वल्लोत्तहाय का आचार्यदिविजय चम्पू आदि ऐतिहासिक आधारों पर प्राप्य है । पौराणिक आधारों पर १६वीं शती में श्रीनिवास दीक्षित ने भेष्मोपरिणय, तिष्ठमलम्बा ने बरदान्विका-परिणय, स्वयम्भूनाथ ने शङ्करानन्द, राजनाथ तृतीय ने भागवत चम्पू, कवि कर्णभूर ने आनन्द-वृन्दावन और मोपनाथ ने व्यासयोगिचरित नामक चम्पू ग्रन्थ लिखे । अकेले नारायण मट्टनाद (१५६०-१६४६ ई०) ने राजसूय, मत्स्यावतार, पाञ्चाली-स्वयम्बर आदि २३ चम्पू ग्रन्थ लिखे ।

१७वीं शती में जीवगोश्रामो का गोपालचम्पू, नृसिंह और श्री शैल के पृथक्-पृथक् द्विपुर-विजय, चिदम्बर का पञ्चकल्याण, वैजयन्ती और कृष्णनाथ का भ्रानन्दलतिका, राजबूडामणि का भारत-चम्पू, कालहस्ति का वसुचरित्र, वेङ्कटाध्वरिन् का विश्वगुणादर्श और बरदान्मुदय, मानवेद का चम्पू-भारत, नीलकण्ठ दीक्षित का नीलकण्ठ-विजय, मित्र मिश्र का भ्रानन्दकन्द आदि चम्पू काव्य उपलब्ध होते हैं । १८वीं शती में सरमोजी ने कुमारसम्मव, वेङ्कटकृष्ण ने उत्तर-चम्पू-रामायण, अप्पा शास्त्री ने गौरीमयूर, वीरराघव ने वेङ्कण्ठविजय, नारायण ने विक्रमसेन, जयराम ने राघामाधव-विलास, शङ्कर दीक्षित ने गङ्गावतार और बाणेश्वर ने चित्रचम्पू लिखा । १९वीं शती में परकालयति का रङ्गराजविलास, अच्युत शर्मा का भागीरथोचम्पू, विश्वनाथसिंह का रामचन्द्र-चम्पू और गोपाल चम्पू, पन्त विठ्ठल का गजेन्द्रचम्पू एवं आसुरि अनन्ताचार्य का चम्पूराघव आदि ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं । इनके अतिरिक्त बहुत से अन्य चम्पू काव्य भी लिखे गये ।

काव्यों की इस कड़ी को बढ़ाने में अनेकार्थक या चित्रकाव्यों की परम्परा का भी योग रहा है । अनन्ताचार्य का यादव-राघव-पाण्डवीय, चिदम्बर का राघव-यादव-पाण्डवीय और सूर्य कवि का राम-कृष्ण-विलोम काव्य १६वीं शती के गणनीय ग्रन्थ है । १७वीं शती में वेङ्कटाध्वरिन् ने यादव-राघवीय, वेङ्कटेश्वर ने चित्रराघव-रामायण, मेघविजयगणि ने सप्त-सन्धान, राजबूडामणि दीक्षित ने रत्नखेटविजय (यमक-काव्य), चित्रमञ्जरी तथा राघव-यादव-पाण्डवीय, वेङ्कटेश ने रामयमकार्णव, श्रीकण्ठ ने शीरिचरित और रघूदय, पण्डितराज ने अग्नापदेश और चक्र कवि ने चित्र-रत्नाकर नामक ग्रन्थों की रचनाएँ कीं । परवर्ती शक्तियों

में भी हमें घनश्याम का अयोधाकर, गोपालराय का रामचन्द्रोदय, हरदत्त का राघवनेत्रधीय, रामभद्र का पर्यायोक्ति-निधयन्द्र, कृष्णमूर्ति का कच्छुण्डय रामायण तथा विट्ठलउपमक बंझुटेन्द्र का रामायण-संग्रह या घतुविनत्रगर्भ आदि ग्रन्थ प्राप्त होते हैं ।

लघु काव्यों के क्षेत्र में इस कालावधि में अपार साहित्य लिखा गया । श्लोको या स्तुतियों की रचना सर्वाधिक संख्या में हुई । वैष्णव-दर्शन की परम्परा को आगे बढ़ाने वाले सन्तों ने दक्षिण भारत के मन्दिरों और मठों में तथा उत्तर भारत में अयोध्या, मिथिला, नवद्वीप, ब्रजमण्डल, चित्रकूट और काशी आदि अनेक तीर्थ-स्थलों में स्तुति काव्यों के अम्बार सड़े कर दिये । इनके अतिरिक्त सम्देश-काव्य, लहरी-काव्य, उपाख्यान एवं सूक्तियाँ भी उपलब्ध हैं । इनकी गणना सम्भव प्रतीत नहीं होती । गौराङ्ग चैतन्य का प्रेमाभूत, रूपगोस्वामी का सद्भवसम्देश, बल्लभाचार्य का प्रेमाभूत, विट्ठल का रस-सर्वस्व, रामचन्द्र का कृष्ण-कृतूहल, कृष्णदेवराय का मदालसाचरित्र, रघुनाथ का पारिजातहरण और यक्ष-गान, विद्वनार्थाह्व का सङ्गीत-नयुनन्दन, तुलसा जी का सङ्गीतसारामृत, पण्डितराज के ६ लहरी ग्रन्थ, अल्पय दीक्षित के अनेक स्तुति-काव्य, रघुराजविह्व का जगदीशशतक, भानुदत्त का गीत-गोरीश, परमानन्द का शृङ्गार-सप्तशती, कृष्णमूर्ति का २शोल्लास, नारायण भट्टपाद का नारायणीय, मेघविजयगणि का मेघदूत-समाग-लेख, अक्बरी बालिदास का स्तुतिमालिका और बीर राघव का पार्वती-श्लोक आदि अनेक उत्कृष्टग्रन्थ हैं ।

इस काल में शास्त्रीय एवं लक्षणग्रन्थों के भी पर्याप्त संख्या में लिखे जाने की जानकारी प्राप्त होती है । बेशवभट्ट का रसिक-सञ्जीवनी, गङ्गाानन्द का काव्य-मन्दाकिनी, रामचन्द्र का रसिक-रञ्जन, भानुदत्त का रसमञ्जरी, प्रभाकर का रसप्रदीप, गोविन्द का काव्य-प्रदीप, घमंसुधी का साहित्य-रत्नाकर, पोण्डरीक रामेश्वर का रससंघु तथा गोपीनाथ के रीतिवृत्ति-लक्षण, श्रीनिवास दीक्षित का साहित्य-सूत्रजीवनी आदि सात ग्रन्थ और शृङ्गार-रस-मण्डन १६वीं शती की रचनाएँ हैं । १७वीं शती में अल्पय दीक्षित ने चित्रमीमांसा, शक्तिवातिक और कुवलयानन्द नामक महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे । भीमसेन ने कुवलयानन्द और पण्डित-राज अग्रन्याय ने चित्रमीमांसा का सण्डन किया । पण्डितराज ने रस-गङ्गाधर और भामिनीविलास जैसे उत्कृष्ट ग्रन्थ लिखे । इनके अतिरिक्त दाम्तलुरिकृष्ण सूरि का कलङ्कार-मीमांसा, विद्याधर का कलङ्कार-सुधानिधि, राजचूडामणि का काव्य-दर्पण, नीलकण्ठ दीक्षित का चित्रमीमांसा-दीप-विष्वकार, कृष्णदीक्षित का रघुनाथमूपालीय आदि ग्रन्थ इसी शती के हैं ।

१८वीं शती में बलदेव ने साहित्यकौमुदी, विश्वेश्वर पाण्डेय ने अरुङ्कार-कौस्तुभ और रमचन्द्रिका, रामदेव चिरञ्जीव मट्टाचार्य ने काव्य-विलास और शृङ्गार-तटिनी, सुखलाल मिश्र ने शृङ्गारमाला और अरुङ्कार-मञ्जरी, हरिप्रसाद ने वाग्मार्थमुक्त और काव्याञ्जलि आदि ग्रन्थ लिखे। १९वीं शती में अनुरमण्डन ने अलङ्कार-कलासौख्य एवं मुग्ध-मेघाकर, कृष्णमुषो ने काव्यकला-निधि, रत्नभूषण ने काव्यकौमुदी और राजशेखर ने साहित्य-कल्पद्रुम की रचना की। इसी कड़ी में नृसिंह का नञ्जराजयशोभूषण, सदाशिव-मल्लिन् का रामवर्म-यशोभूषण, बेङ्कट शास्त्री का अप्पाराय-पद्मचन्द्रोदय और कञ्छेश्वर दोक्षित का रामचन्द्र-पद्मभूषण जैसे ग्रन्थ जोड़े जा सकते हैं।

सङ्गीत और नृत्य के क्षेत्र में लक्ष्मणर का भरतशास्त्र, रघुनाथ का भारतसुधा और सङ्गीतसुधा, गोविन्द दोक्षित का सङ्गीत-सुधानिधि, रामाभारत का स्वरमेलकलानिधि, क्षेमकर्ण का रागमाला, सोमनाथ का राग-विबोध, वेद कवि का सङ्गीतमकरन्द, अहोबिल का सङ्गीत-पारिजात, बालरामवर्मन् का बालराम-भरतम्, तुलसीदास का नाट्यवेदागम और सङ्गीत-सारांश और पुण्डरीक विट्ठल का राग-नारायण उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं। इसी अवधि में सिद्धान्त-कौमुदी एवं मध्यकौमुदी नामक व्याकरण के अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ, काव्यों और काव्य-शास्त्रों पर कितनी ही टीकाएँ तथा दर्शन, धनुर्वेद, नीति, कामशास्त्र, आयुर्वेद, ज्योतिष आदि विषयों पर भी बहुत से ग्रन्थ लिखे गये।

इन काल में सुभाषितों के अनेक सङ्ग्रह किये गए। विजयसेन सूरि ने सूक्ति-रत्नावली, गोविन्द मट्ट ने पद्य-मुक्तावली, हरिदास ने प्रस्ताव-रत्नाकर, हरि कवि ने सुभाषित-हारावली, सुन्दरदेव ने सूक्ति-सुन्दर, गोविन्दजित् ने सम्मालङ्करण, वेगोदत्त ने पद्यवेणो, शम्भूदास ने सार-सङ्ग्रह-सुघार्णव, रूप-गोस्वामी ने पद्यावली, हरिभास्कर ने पद्यामृत-तरङ्गिणी, ब्रजनाथ ने पद्य-तरङ्गिणी लक्ष्मणमट्ट ने पद्य-रचना, गोपीनाथ ने सुभाषित-संग्रह और गदाधर भट्ट ने रसिकजीवन नाम से सूक्तियों के सङ्कलन किये। इनके अतिरिक्त सुभाषित-सार-समुच्चय आदि ग्रन्थ भी हैं।

कथासार गद्य और पद्य दोनों में लिखे गये हैं। इस क्षेत्र में कृष्णदेवराय का सकल-कथा-सार और रामायण-सार-सङ्ग्रह, अग्रय दोक्षित का दशकुमारचरित सङ्ग्रह और रामायण-सार-सङ्ग्रह, वीरभद्रदेव का दशकुमार-पूर्वकथासार, कृष्णाराम का नैषधचरितसार, रघुनाथ का रामायणसार-सङ्ग्रह, गोविन्द दोक्षित का हरिवंश-सारचरित, सुमतीन्द्र का अभिनव-कादम्बरी और कृष्णराज उदयर तृतीय के कृष्णकथापुष्पमञ्जरी तथा रामायण-कथा-पुष्पमञ्जरी आदि ग्रन्थ प्राप्त हैं।

संबद्ध कृतियों में दृश्य काव्य के क्षेत्र में प्राप्त ग्रन्थों की संख्या बहुत है। इनमें उत्कृष्ट नाटक तथा अन्य रूपक भी हैं। १६वीं शती के उल्लेखनीय नाटक हैं—कृष्णदेवराय का ऊषा-परिणय और जाम्बवती-कल्याण, सठगोप का वासन्तिकापरिणय, कर्णपूर का चैतन्यचन्द्रोदय, रूपगोस्वामी के विदग्धमाधव और ललितमाधव, मल्लिकार्जुन का सत्यमामा-परिणय, कुमारताताचार्य का पारिजात और धीनिवास दीक्षित का भैमीपरिणय। १७वीं शती में यज्ञनारायण ने रघुनाथ विलास, राजचूडामणि ने आनन्दराघव, धतिरात्र-यज्वन् ने कुश-कुमुदतोय, नील-कण्ठ ने नलचरित, रघुनाथ ने नलाम्बुदय और मानबंद ने कृष्णगीत नाटक का प्रणयन किया।

परवर्ती कृतियों में घनश्याम के प्रचण्ड-राहूदय और आनन्दमुन्दरी, वैङ्कट-कृष्ण का कुश-लव-विजय, नल्लन चक्रवर्ती का दमयन्ती-कल्याण, आनन्द का विद्या-परिणय, रामकवि के ललित-राघवीय और पादुका-पट्टाभियेक, वैङ्कटरङ्गनाथ का मञ्जुल-नैषध, विद्वनाथसिंह का आनन्द-रघुनन्दन, रामशास्त्री का मुक्तावली, वल्लोसहाय कवि का ययाति-तद्वन-नन्दन, सुन्दरधीरराघव का रम्भा-रात्रणीय, वैद्यनाथ का चैत्रयज्ञ, बाङ्करलाल के सावित्री-चरित्र आदि ७ नाटक, सुन्दरराम आचार्य के पद्मिनी-परिणय आदि ५ नाटक लिखे गये। नारायण शास्त्री ९२ नाटकों के प्रणेता बतलाये जाते हैं। त्रिवेणी नामक कवयित्री ने १९वीं शती में रङ्गराजसमुदय और तत्वमुद्रामद्रोदय दो नाटकों की रचना की है। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक नाटकों की जानकारी मिलती है।

अन्य रूपकों में भाणों की संख्या सर्वाधिक प्रतीत होती है। रूपगोस्वामी का दानवेलि-कौमुदी, रामधर्मा का रस-सदन, घनश्याम का मदन-सञ्जीवन, राजचूडामणि का शृङ्गार-सर्वस्व, गोर्वाणेंद्र का शृङ्गार-कोप, रामभद्र का शृङ्गार-तिलक, अम्मालाचार्य का वसन्ततिलक, वरदाचार्य के चोल और अनङ्ग ब्रह्म-विलास, चोक्कनाथ का रस-विलास, अल्पा शास्त्री का मदन-भुषण, जगन्नाथ का अनङ्ग-विजय, त्रिविक्रम का पञ्चायुष-प्रपञ्च, धीनिवास का रसिकरञ्जन और स्वयम्भूनाथ का मदनगोपाल आदि कितने ही भाण-ग्रन्थ हैं।

मैसूर के प्रधानी वैङ्कटभूपति ने कामकला विलास भाण, रुविमणी-परिणय पङ्क, कुक्षिम्मरि-भैक्षव प्रहसन, उर्वशी-सार्दभौम ईहामृग, विबुध-दानव समवकार, धीरराघव-विजय व्यायोग और सीता-कल्याण नामक धीयो ग्रन्थों की रचना की। रामचन्द्र ने शृङ्गार-सुधार्यव भाण, जामदग्न्य-विजय व्यायोग और वासन्तिका नाटिका का प्रणयन किया। घनश्याम ने नवग्रहचरित सट्टक और चण्डारञ्जन

प्रहसन लिखे । अरुणगिरिनाथ ने बीरभद्र-विजय हिम और सोमवल्गो-योगानन्द प्रहसन को रचना की । रामकवि ने चन्द्रिका वीथी और मदनकेतु चरित प्रहसन का निर्माण किया । रुद्रदास ने चन्द्रलेखा सट्टक लिखा ।

इनके साथ-साथ प्रकरणों में शक्तिवास कुमार का अनङ्गसेन-हरिनिन्दिनी, ठरकदत्त के पुष्प-दूषितक, पद्मावती-परिणय और प्रयोगाम्युदय, चन्द्रकान्त का कौमुदी-सुधाकर और गणपति शास्त्री का माधवो-वासन्तीय प्राप्त हैं । प्रहसनों में साम राज का घूर्तनर्तन, गोपीनाथ का कौतुकसर्वस्व, वेङ्कटेश्वर का वेङ्कटेश प्रहसन और हरिजीवन मिश्र के प्राक्षिणिका आदि ४ प्रहसन उल्लिखित हैं । अन्य उल्लेखनीय रूपकों में हैं—शाहजी का चन्द्रशेखरविलास, अपना शास्त्री का शृङ्गार-मञ्जरी साहजोय, कवि बल्लभ का अधिराम-चित्रलेख, कृष्णदास का कलावती-कामरूप और राजचूडामणि का कमलिनो-कलहंस ।

कुछ गद्य-काव्यों की चर्चा की जा चुकी है । १५२४ ई० में राजवल्लभ पाठक ने चित्रसेन-पद्मावती कथा और १५९६ ई० में देशविजय गणि ने रामचरित की रचना की । जगन्नाथ मिश्र ने १७वीं शती में कथाप्रकाश ग्रन्थ लिखा । १७१३ ई० में दुष्टिराज व्यास ने अमिनव-कादम्बरी का प्रणयन किया । एकाम्बर दीक्षित का बीरभद्रविजय और विश्वेश्वर का मन्दारमञ्जरी भी १८वीं शती के गद्यकाव्य हैं । १९वीं शती में गद्य-लेखन की रुचि बढ़ी हुई प्रतीत होती है । श्रीनिवासाचार्य के श्रीकृष्णलीलाणित और शार्ङ्गकोपाख्यान, तिरुमल्ला-चार्य का श्रीकृष्णाम्युदय, अहोबिल नृसिंह का त्रिमूर्ति-कल्याण, अपना शास्त्री का लावण्यमयो, शिवकुमार शास्त्री का यतीन्द्र-जीवनचरित, श्रीनिवास का कृष्णराज-जयोत्कर्ष और शङ्करलाल के चार कथा-ग्रन्थ अनसूयाम्युदय, भागवती-भाग्योदय, चन्द्रप्रभा-चरित तथा महेश-प्राणप्रिया ६वीं शती की देन हैं ।

उक्त शतियों में हमें प्रियम्बदा, वैजयन्ती, त्रिवेणी, सुन्दरी और कमला आदि कवयित्रियों के नाम भी मिलते हैं । त्रिवेणी ने ६ लघुकाव्य और दो नाटक लिखे हैं ।^१

इस प्रकार हम देखते हैं कि १५०० से १९०० के बीच संस्कृत-साहित्य की महत्त्वपूर्ण एवं प्रचुर मात्रा में सर्जना हुई है, जिसमें प्रेरणा देने की शक्ति है ।

ऊपर लिखे गये ग्रन्थों में कुछ काव्य-ग्रन्थ बघेलखण्ड के भी हैं । अतः इन शताब्दियों में संस्कृत-सर्जन की धारा में कुछ प्रवाह बघेलखण्ड से भी सम्मिलित हुए हैं ।

१. हि० बला० सं० लिट्० पर आधारित । उपर्युक्त सम्पूर्ण ग्रन्थों की जानकारी के लिए लेखक आभारी हैं ।

बघेलखण्ड का संस्कृत-साहित्य :

बघेलखण्ड में जो संस्कृत-साहित्य निमित्त हुआ है, वह यद्यार्थतः संपन्न रूप में उपलब्ध नहीं है। अनुपलब्ध ग्रन्थों के सम्बन्ध में तथा कुछ उरण्ध प्रकाशित ग्रन्थों के सम्बन्ध में भी अनुमान के आधार पर भ्रम उरण्ध किये गए हैं। इन पंक्तियों में हम यह विचार करेंगे कि वास्तव में बघेलखण्ड का संस्कृत-साहित्य किधना है उसके प्रणेतार्यों की स्थिति कहाँ है एवं इन साहित्य में काव्य कितने हैं, जिनका समीक्षारत्मक रूप आगे प्रस्तुत किया जाय।

सारावली और ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त :

श्री सुधाकर द्विवेदी ने गणक-तरङ्गिणी^१ की भूमिका में सारावली नामक ज्योतिष ग्रन्थ^२ के निम्नलिखित प्रारम्भिक श्लोक उद्धृत किये हैं :—

‘देवग्राम-पुर-प्रणोषणबलाद् ब्रह्मखण्ड-सत्पञ्चरे,
कीर्तिहंसविलासिनीव सहसा यस्येह भास्यानता ।
श्रीमद्भ्याघ्रपदीश्वरो रचयति स्पष्टां न सारावलीं
होराशास्त्र विनिर्मलीकृतमनाः कल्याणवर्मा कृतो ॥
हीरा-तृष्णात्तानां शिष्याणां स्फुटतरार्य-शिशिर-जला ।
कल्याणवर्म-दीक्षानन्दोव सारावलीप्रसूता ॥’

इस कल्याणवर्मा को श्री द्विवेदी ने ‘६ १५’ ई० में रोवा नगर में सिद्धान्त पर बैठने वाले व्याघ्रदेव के पुत्र कर्णदेव के साथ एकार्म किया है।^३ आरने यह भी लिखा है कि “विष्णुगुप्त का पौत्र ब्रह्मगुप्त रोवा नगर के अधिपति व्याघ्र मटेश्वर (व्याघ्रपदीश्वर) का सेवक था। उसके पिता विष्णुगुप्त व्याघ्रमुख राजा के यहाँ रहते थे। ब्रह्मगुप्त ५९८ ई० में पैदा हुए। ३० वर्ष की आयु में ६२८ ई० में उन्होंने ‘ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त’ की रचना की।”^४

१. प्रकाशित, काशी।

२. निर्णयसागर प्रेस, बम्बई : १९२८ : अध्याय १५-६, पुष्पिका में—
‘इति कल्याणवर्मविरचिताया—’ उल्लेख है। श्री द्विवेदी ने ‘व्याघ्र-पदीश्वर’ के स्थान पर ‘व्याघ्रमटेश्वर’ तथा अन्य पाठभेद लिखे हैं।

३. निर्णयसागर प्रेस, बम्बई : १९२८ : संस्कृत भूमिका—मन्मतेऽपमेव कल्याणवर्मा नृपतिर्बघेलवंशीयाना रीवानगराधिपतीनां भूलपुत्रः। सारावल्यादिश्लोकेन देवग्रामपयः (पुर) प्रणोषणबलादित्यादिना रीवा राजधानीतोऽग्निविशयोजनचतुष्टयान्तरे ‘देवरा’ नाम्नः प्रसिद्ध-ग्रामस्य निवासी ।’

४. ‘गणक-तरङ्गिणी’ : भूमिका।

ब्राह्मस्फुट-सिद्धान्त में ब्रह्मगुप्त ने चापवंशीय व्याघ्रमुख का उल्लेख किया है ।^१ इस व्याघ्रमुख और उक्त व्याघ्रमठेश्वर को श्री द्विवेदी ने एक ही व्यक्ति मान लिया है तथा कल्याणवर्मा (कर्णदेव) को ५०० शकाब्द में रखा है ।^२

सम्भवतः इसी आधार पर श्री रामप्यारे अग्निहोत्री ने लिखा है कि 'महाराज कर्णदेव (बघेल) संस्कृत के घुरंघर विद्वान् थे । इन्होंने 'सारावली' नामक ज्योतिष-शास्त्र का एक अच्छा ग्रन्थ लिखा है । इनका आश्रित ब्रह्मगुप्त संस्कृत का प्रसिद्ध विद्वान् था, जिन्होंने ब्राह्मस्फुट-सिद्धान्त लिखा ।'^३

श्री द्विवेदी का उक्त मत तथा उस पर आधारित श्री अग्निहोत्री का उल्लेख भ्रामक है । श्री सदाशिव काशे ने कल्याणवर्मा की तिथि ६५० ई० निश्चित की है ।^४ दूसरी ओर हम पीछे लिख चुके हैं कि व्याघ्रदेव और कर्णदेव बारहवीं शती में हुए होंगे । चापवंशीय व्याघ्रमुख सातवीं शती में गुर्जरदेश का शासक था । ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त का प्रणेता इसी की समा में था ।^५ रोवा के बघेल राजवंश से इसका सम्बन्ध नहीं हो सकता । १५०० ई० से पूर्व बघेलसभ्य के बघेल राजाओं से संबद्ध संस्कृत-साहित्य प्राप्त नहीं है ।

सोलहवीं शती के ग्रन्थ :

रामचन्द्र भट्ट का राधाचरित-काव्य और

रामचन्द्र कवि के स्फुट श्लोक :

डा० हरदत्त शर्मा^६ के अनुमार सोलहवीं शती के आरम्भ में वीरसिंहदेव

१. श्रीचापवंशतिलके श्री व्याघ्रमुखे नृपे सकनूपालात् ।
पञ्चाशतसंयुक्तीर्वपशतैः पञ्चभिरतीतैः ॥
ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तः सञ्जन-गणितज्ञ-गोलविरतीत्यै ।
त्रिंशद्वर्षेण कृतो जिष्णुसुत-ब्रह्मगुप्तेन ॥'
देखिये ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त : काशी ।
२. 'गणक-तरङ्गिणी' : भूमिका । साथ ही देखिये—'संस्कृत साहित्य को बान्धव-नरेशों की देन' : रोवा : १९५७ : पृष्ठ ३३-३६ ।
३. वि० प्र० इ० : पृष्ठ १४२-१४५ ।
४. 'कल्याणवर्मन्स सारावली—फ़ेश लाइट्स थान इट्स डेटः' बाल इण्डिया औरिएण्टल कॉर्फ़ेस; बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटी—१२वें अधिवेशन में प्रस्तुत शोध-निबन्धों का सारांश : श्री ए० एस० बत्तेकर द्वारा १९४३ ई० में प्रकाशित ।
५. ग्लो० गु० : पृष्ठ ४५७ ।
६. 'बघेल कलर्स' । साथ ही देखिये, हि० कला० सं० लिट० पृष्ठ ३९० ए : ओ० ज० भाग ३।१३३ में प्रकाशित हरदत्त शर्मा के निबन्ध का उल्लेख ।

बघेल की प्रेरणा से (लिखी) रामचन्द्र भट्ट ने राधाचरित-काव्य लिखा ।^१ शर्मा जी के मत से यह रामचन्द्र भट्ट वही कवि है, जिसने रसिक-रञ्जन और रोमावलीशतक का प्रणयन किया तथा जो लक्ष्मण भट्ट का पुत्र है । इसने सं० १५८० (१५२३ ई०) में लिखित अपने ग्रन्थ रसिकरञ्जन की स्वयं ही टीका लिखी । टीका का अन्त इस प्रकार होता है—

‘शृङ्गार-वैराग्यशतं स पञ्चविंशत्ययोध्या नगरे व्यपत्त ।

अन्धे विद्धारण-जाण-चग्ने धी रामचन्द्रोऽनु च तस्य टीकाम् ॥

.....इति धी लक्ष्मणभट्टसूनु—धोरामचन्द्रकविकृतं सटीकं रसिकरञ्जनं नाम शृङ्गारवैराग्यार्थमनं काव्यं सम्पूर्णम् ।’^२

हम देखते हैं कि रसिकरञ्जन की यह टीका अयोध्या नगर में लिखी गई । पद्यामृततरङ्गिणी में अयोध्या के रामचन्द्र भट्ट का एक श्लोक प्राप्त है ।^३

हो० जतीन्द्र विमल चौधरी ने इस आधार पर लिखा है कि १५२० ई० में अयोध्या में वीरसिंह का राज्य था । यह वीरसिंह प्रतापहर का पौत्र और मधुकरकाह का पुत्र था । अतः रसिकरञ्जन और राधाचरित का प्रणेता रामचन्द्र भट्ट अयोध्या के वीरसिंह का आश्रित होगा ।^४

धी पो० के० गोटे^५ ने लिखा है कि (एक) रामचन्द्र भट्ट ने धीमद्भागवत दशमस्कन्ध उत्तराष्ट के टीका^६ लिखी है, जिसका नाम पहारसिंहो टीका भी है; अन्तिम पृष्ठिका इस प्रकार है :—

‘इति धी दशमस्कन्धे सामन्त-चक्र-चूडामणि-मरीचि-रञ्ज (त)—पादपोठ-बुन्देल-महाराजाधिराज-वीरसिंह- तस्यात्मज-महाराजाधिराज - धीपहारसिंहदेवस्य निदेशतः विदवेश्वरभट्टात्मज-रामचन्द्रभट्टकृतायां टीकायां नवतितमोऽध्यायः ॥९०॥

अष्टौ अष्ट नृपादधैव ॥१६॥८८॥ मितेऽन्दे मासि कार्तिके ।

कृता च रामचन्द्रेण टीकेयं च सुबोधिनो ॥’

१. आफे० भाग ३।१०९।६ एवं १०७।६।

२. काव्यमाला चतुर्थः निर्णयसागर प्रेस, बंबई : १६३७ : पृष्ठ १४८-१४९ ।

३. श्लोक० १३ : ‘मया वारं वारं.... ।—अयोध्याक-रामचन्द्रभट्टस्य’ ।

४. पद्यामृत० अंग्रेजी भूमिका—रामचन्द्र भट्ट : पृष्ठ १६१-८० ।

५. ‘रामचन्द्र भट्ट—ए प्रोटेज०’ ।

६. आफे० २।९० : साथ ही देखिये ग० मै० ला० : १८८४-८७ का क्र० ११० ।

७. ‘रामचन्द्र भट्ट ए प्रोटेज’ : पृष्ठ २ :

“...पहारसिंहदेवस्य (निदेशतः कृतायां) पहारसिंहो टीकायां.....” ।

स्पष्ट है कि यह रामचन्द्र भट्ट विद्वेदवर भट्ट का पुत्र था, जिसने वीरसिंह बुन्देल के पुत्र पहारसिंह के निदेश से सुबोधिनो (या पहारसिंह) टीका लिखी।

गोडे का कहना है कि डॉ० श्यामसुन्दरदास के मतानुसार^१ पहारसिंह की मृत्यु १६५३ ई० में हुई, क्योंकि इस प्रसङ्ग पर शोक-ग्रस्त रानी हरदेवी के समाधान के लिए राघवदास ने हिन्दी में ज्ञानप्रकाश नामक ग्रन्थ लिखा था, जिसमें वंशवृक्ष भी है।^२

श्री गोडे ने यह भी बतलाया है कि डॉ० पी० बी० काणे के अनुसार^३ मित्र मिश्र ने आह्निक-प्रकाश में (पहारसिंह देव के पिता) वीरसिंहदेव का वंशवृक्ष प्रस्तुत किया है। वीरसिंहदेव (१६०५-२७) की राजधानी ओरछा थी। मानुदत्त की रसमञ्जरी के टीकाकार अनन्ताश्रम^४ ने भी, जिनके आश्रय-दाता वीरसिंह के पुत्र चन्द्रमानु (या चित्रमानु) थे, १६१५ ई० में टीका के साथ आश्रयदाता की वंश-परम्परा सूचित की है। इन विवरणों के आधार पर वंश सूची इस प्रकार है—^५

मेदिनीमल्ल (काशिराज—वंश)

अर्जुनदेव (बुन्देलखण्ड)

मलसप्त

प्रतापरुद्र (या रुद्रप्रताप, ओरछा राज्य का संस्थापक)

मधुकरशाह

वीरसिंह (देव) (१६०५-२७) .

जुहारसिंह चन्द्रमानु पहारसिंह = हरदेवी
(१६४१-५३)

१. वही पृष्ठ ३ तथा 'हिन्दी पाण्डुलिपियों का विवरण' प्रयाग : १९१२ : पृष्ठ ५३।
२. वही।
३. हिन्दू आफ धर्मशास्त्र : भाग १ : पृष्ठा : १९३० : पृष्ठ ४४४-४६।
४. श्री कृष्णमाचारियर ने सम्भवतः इसी टीकाकार का नाम अनन्त पण्डित लिखा है, जिसने बनारस में 'स्वशास्त्रिन्' वीरसिंह के पुत्र 'काशी-नरेश चित्रमानु' के आश्रय में १९३६ ई० में 'रसमञ्जरी' पर टीका लिखी। देखिये—हि० बला० सं० लिट० पृष्ठ ७७५ टि० ३।
५. 'रामचन्द्र भट्ट—ए प्रोटेज०'।

बुन्देलों के एक वंशवृक्ष में शत्रुमानु (या बिनमानु) का नाम नहीं मिलता, किन्तु उसमें वीरसिंहदेव के चार पुत्र—जुम्हारसिंह, पहारसिंह, भगवानदास और हरदोल बतलाए गए हैं ।^१

वीरसिंहदेव ने सलीम की इच्छानुसार १६०२ ई० में अबुलफजल को मारा था, बाद में यह घकवर के एक सेनापति पत्रदास द्वारा परास्त होकर भागा था ।^२ सलीम के बादशाह होने पर वीरसिंहदेव ने १६०५ ई० में अपने चाचा भारण (या भारतीचन्द्र) को अवश्य कर ओरछा पर अधिकार किया था ।^३

शाहजहाँ ने १६५० ई० में ओरछा के राजा पहारसिंह बुन्देला को चौरा-गढ़ (गढ़ा) की जागीर दी थी ।^४

इन तथ्यों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि डॉ० चोपरी ने जिस अयोध्या के राजा 'वीरसिंह' को प्रतापछद्र का पौत्र और मधुकरशाह का पुत्र लिखा है, वह उपर्युक्त वंशवृक्ष की देखते हुए वास्तव में ओरछा का वीरसिंह (देव) है और वह सत्रहवीं शती के प्रारम्भ में है । 'रसिकरञ्जन' का कर्ता रामचन्द्र मट्ट, जो लक्ष्मण मट्ट का पुत्र था और सोलहवीं शती के पूर्वार्द्ध में था, ओरछा के बुन्देल राजा वीरसिंह को समा में नहीं था । दूसरी ओर वीरसिंह (देव) और उनके पुत्र पहारसिंह के शासन काल में सत्रहवीं शती के पूर्वार्द्ध में कोई अन्य रामचन्द्र मट्ट हुआ, जो विश्वेश्वर मट्ट का पुत्र था और जिसने भागवत की 'पहारसिंही' टीका लिखी ।

यदि हरदत्त शर्मा का यह मत ठीक है कि 'राधाचरित' और 'रसिकरञ्जन' दोनों ग्रन्थों का कर्ता एक ही रामचन्द्र मट्ट है, तब कालक्रम की दृष्टि से यह कवि वीरसिंहदेव बघेल (१५००-१५३५) के समकालीन ठहरता है । हम ऊपर लिख चुके हैं कि इस कवि ने १५२३-२४ ई० (सं० १५८०) में संस्कृत 'रसिकरञ्जन' की टीका लिखी । इतिहास की दृष्टि से हम इसी काल में वीरसिंहदेव बघेल को भी पाते हैं, क्योंकि वह बाबर (१५२६-३०) का

१. गोरेलाल तिवारी—'बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास' : परिशिष्ट ४ : वंशवृक्ष ।

२. आईन० : पृ० ४६९ : पत्रदास ।

३. मासिर० : पृष्ठ २७५ ।

४. आईन० पृ० ४०७ : 'राजा रामचन्द्र बघेला' : तथा इ० ग० : भाग २१ : १९०८ : पृष्ठ २८०-८२ और मासिर० पृष्ठ २२७, ३३४ ।

समकालीन था। इसके पूर्व वह सिकन्दर छोदी का भी समकालीन था।^१ एक अन्य निम्नलिखित आधार भी है, जिसके बल पर कहा जा सकता है कि 'रसिकरञ्जन' के कर्ता 'रामचन्द्र भट्ट' का सम्बन्ध वीरसिंहदेव बघेल से हो सकता है।

अयोध्या में 'रसिकरञ्जन' की टीका लिखने वाला रामचन्द्र भट्ट लक्ष्मण भट्ट का पुत्र और प्रसिद्ध दार्शनिक स्वामी बल्लभाचार्य का अनुज था। इसका जन्म १४८४ ई० में हुआ था। इसने कृष्णकुतूहल और गोपाललीला नामक काव्य भी लिखे।^२

बल्लभाचार्य और उनके पुत्र विट्टलेस्वर का बघेलखण्ड के राजाओं से घनिष्ठ सम्पर्क था। पन्द्रहवीं शती के अन्तिम भाग में अपनी दिग्विजय-यात्रा करते हुए बल्लभाचार्य चित्रकूट (जिला सतना) और अमरकण्टक (जिला राहडोल) गये थे। इसी अवधि में उन्होंने यमुना के पश्चिम-दक्षिण तट पर प्रयाग के दूपरे पार अरैल को अपना धर्म-प्रसार का केन्द्र बनाया। यहाँ वे लगभग १५१० ई० से मृत्युपर्यन्त (१५३० ई० तक) रहे। अरैल में बल्लभाचार्य के प्रथम शिष्य पद्मनाभदास तथा एक प्रमुख शिष्य भाधव आदि अन्य लोग भी रहे। बल्लभाचार्य के दोनों पुत्र गोपीनाथ और विट्टलनाथ (या विट्टलेस्वर) भी साधु रहते थे। गोपीनाथ अन्त (१५४२ ई०) तक वहीं रहे। १५६३ ई० में विट्टलनाथ ने अरैल पर मुसलमानों का आक्रमण हो जाने से अरैल त्याग दिया और बाण्यवगढ़ ('बाण्यो') में, जहाँ का राजा (वीरसिंहदेव बघेल का पुत्र) रामचन्द्र उनका घनिष्ठ मित्र था, सपरिवार चले गये। यहाँ कुछ समय रहकर वे रानी दुर्गावती के पास गढ़ा और वहाँ से प्रयाग चले गए।^३

श्री शैलत के अनुमार विट्टलेस्वर की यह (बाण्यवगढ़) यात्रा १५६०-६१ ई० में हुई होगी। गायक तानसेन से (जो १५६२ ई० में बाण्यवगढ़ से अकबर की सभा में जा चुका था)^४ बाण्यवगढ़ में उनकी मेंट हुई थी।

१. बीर० २।६७ तथा १२।२२ : साधु ही देखिये—ई० अं० भाग २ : बलकृष्ण १९५९ : अयुक्तकजलकृत अकबरनामा, पृष्ठ ३२-३३ : '—राजा (वीरसिंह) गुलतान सिकन्दरछोदी के दरबार में हाजिरी देने गया।'

२. हि० कथा० सं० लिट्ट० पृष्ठ २९१ : साधु ही देखिये—पद्यामृत० मूमिका—पृष्ठ १३३-१८०।

३. भाई मणिलाल पारैल : 'श्री बल्लभाचार्य' : राजकोट : १९४३ : पृष्ठ १८, ७६, ९३-९८, १०१, ११०५, १४९, २६३-६४, २६८-६९।

४. अक० भाग २ : पृष्ठ २७९-८०।

डा० हरदत्त शर्मा ने यह भी लिखा है कि रामचन्द्र बघेल की स्तुति (कित्ती) रामचन्द्र कवि ने की है। 'रामनूपति' के सम्बन्ध में पद्य-रचना में एक श्लोक प्राच्य है। शर्मा जी के मत से यह 'राम-नूपति' (बान्धवगढ़ का) राजा रामचन्द्र बघेल ही है, (जो वीरमानु का पुत्र और उग्र वीरसिंह बघेल का पोत्र है)^१।

सूक्ति-सुन्दर में भी रामचन्द्र (कवि) का एक श्लोक 'राम' राजा के सम्बन्ध में उपलब्ध है।^२

ऐतिहासिक स्थितियों को देखने हुए, बल्लभाचार्य का सम्बन्ध वीरसिंहदेव बघेल से रहा होगा, यह मानना असंभव न होगा। अरैल बघेलों के अधिकार में था। सन् १४९४ ई० में वीरसिंह के पितामह भेददेव के राज्य-वीर अरैल को सिकन्दरलोदी ने हटाया और १५९५ ई० में वीरसिंह ने सिकन्दर का सामना किया था।^३ हुमायूँ के समय के मुसलमान लेखकों ने वीरसिंह के पुत्र वीरमानु को, जिसने १५३९-४० ई० में वीरसाह के विरुद्ध हुमायूँ को सहायता की थी, 'अरैल का राजा' लिखा है।^४ वीरमानु का पुत्र रामचन्द्र बहुत समय तक प्रयाग का भी स्वामी था।^५

इस प्रकार रसिकरञ्जन का कर्ता रामचन्द्र भट्ट, जो अनेक काव्य-ग्रन्थों का प्रणेता था और विट्ठलेस्वर का चाचा था, सम्भव है अरैल में भी रहता रहा हो। अपने दायोड्या-वास के समय उसने रसिक-रञ्जन की टीका (१५२३-२४ ई० में) लिखी होगी, किन्तु बघेलों के जनपद से भी उसका सम्बन्ध रहा होगा और १५६१-६२ ई० में, जब मुस्लिम आक्रमण से डर कर विट्ठलेस्वर सपरिवार राजा रामचन्द्र बघेल के समीप बान्धवगढ़ गए, तब यह भी साथ रहा होगा। इन्हीं दिनों मुसलमानों के साथ हुए युद्धों में राजा रामचन्द्र ने जब शौर्य-प्रदर्शन किये, तब सम्भव है, इसी कवि ने उनकी स्तुति में वे श्लोक लिखे हों, जो

१. प्रकाशित : काव्यमाला : बंबई : १०।९ : 'बाणो कण्ठाभरण.....'।

२. 'बघेल कलस'।

३. श्लोक १५२ : 'सर्वं त्वं पुरुषोत्तमोऽसि नियतं तत्रापि रामो भवान्'।

४. ई० ३।० : भाग ५ : नियामतउल्लाह : तारोखो खानजहान लोदी : पृष्ठ ८९, ९३-९५।

५. गुलबदन बेगम कृत हुमायूँनामा (अनु० बेवरिज) : पृष्ठ १३५-३६ तथा अस्तिफन : बाबर एण्ड हुमायूँ भाग २ : पृष्ठ १७४-७५ टि० : 'दि राजा आफ अरिल (अरैल) परमान (वीरमान)'।

६. बघेल० ५५।

रामचन्द्र कवि की रक्तियों के रूप में मङ्कलित है। अतः प्रतीत होता है कि डॉ० हरदत्त शर्मा का यह मत कि रसिक-रञ्जन के कर्ता और लक्ष्मण भट्ट के पुत्र रामचन्द्र भट्ट ने वीरसिंहदेव बघेल को प्रेरणा से 'राधाचरित काव्य' की रचना की है, ठीक है। साथ ही यह भी प्रतीत होता है कि यह रामचन्द्र भट्ट अपने दोषी जीवन में कम-से-कम बघेल नरेशों की तीन पीढ़ियों (वीरसिंह, वीरमानु और रामचन्द्र) से सम्बद्ध रहा। इसका जीवन-काल १४८९ ई० से लगभग १५६४ ई० तक माना जा सकता है।

'वीरसिंह' के सम्बन्ध में कुछ और श्लोक सुभाषित-सङ्ग्रहों में प्राप्त हैं, किन्तु उनमें कवि का निर्देश नहीं है। ऐसी स्थिति में यह निर्णय करना कठिन है कि ये किस वीरसिंह के सम्बन्ध में हैं। इनमें से एक श्लोक सूक्तिमुन्दर और पद्यवेणी में तथा दो श्लोक सुभाषित-रत्नमाण्डागार^१ में हैं। सूक्तिमुन्दर सत्रहवीं शती के प्रारम्भ का सङ्कलन बतलाया जाता है। इसमें उल्लिखित भानुकर, अकम्बरी कालिदास आदि कवि सोलहवीं शती के हैं।^२ ओरछा का वीरसिंहदेव सत्रहवीं शती के प्रारम्भ में था। इसलिए प्रतीत होता है कि सूक्तिमुन्दर में प्राप्त 'वीरसिंह' वीरसिंहदेव बघेल होगा, जो सोलहवीं शती के आरम्भ में था। सुभाषितरत्नमाण्डागार में प्राप्त श्लोक भी सूक्तिमुन्दर के श्लोक से मिलते-जुलते हैं। अतः ये तीनों श्लोक वीरसिंहदेव बघेल से सम्बद्ध हो सकते हैं।

१. 'वैकुण्ठामः प्रकामं कमलपुतसिराः कुञ्जराकृष्टदृष्टिः
कोदण्डोदारनामज्ज्यमितपरिजनो विदवविस्पातकीर्तिः ।
सुन्दरसिक्तचित्तः समरणविजयो कङ्कणाहारपुत्रो
वीर श्रीवीरसिंह त्वमिव तव रिपुः किन्तु मुक्तादिवर्णः ॥'

(सू० सु० : श्लोक ४५ : पद्यवेणी : श्लोक ६२)

'यस्योच्छिन्ना न वेदा मनसि सदयता दूषणानामभावो
दशो दूरे कुदृष्ट्या जहति कठिनतां दानशक्तिगौरिष्ठा ।
धाधत्ते यश्च कुन्दं शिरसि दरवतां यश्च दूरोकृतातिः
स श्रीमान् वीरसिंह त्वमिव तव रिपुस्तत्र दम्भं प्रतीमः ॥'

'वीरसिंहारिनारोगामञ्जनावताशुशुन्दवः ।
उरोजे पतिता रेजुः सरोजे मधुरा इव ॥'

(परबः सुभाषितरत्न-भाण्डागारम् : निर्णयसागर प्रेस बम्बई : १९११)

२. हि० षष्ठा० सं० लिट्० पृष्ठ १९० ए, १९० बी ।

धीरभानूदय-काव्यम्

१६वें शतके के मध्य भाग में माधव कवि द्वारा रचित इस द्वादश-सगरिक महाकाव्य का सविस्तार विवरण आगे तीसरे अध्याय में प्रस्तुत किया जायगा।

कवि भानुकर

सुभाषित-सङ्ग्रहों में भानुकर के दो स्फुट श्लोकों में 'वीरभानु' और एक श्लोक में 'वीरभान' उल्लेख है।^१

रागमञ्जरी के प्रणेता पुण्डरीक विट्ठल ने अपने आश्रयदाता कच्छार्जुण माधवसिंह का उल्लेख किया है। माधवसिंह अकबर (१५५६-१६०५) के कृपापात्र मानसिंह का भाई था। ये दोनों भगवन्तदाम के पुत्र और भानु के पौत्र थे। श्री गोडे ने इसी भानु को भानुकर के श्लोकों में उल्लिखित 'वीरभानु' माना था।^२ श्री नौधुरी ने भी इस सम्भावना का उल्लेख किया है।^३ किन्तु आगे चलकर श्री चौधुरी कहते हैं, 'यह अधिक सम्भव है कि भानुकर रीवा के बघेल वीरभानु का उल्लेख कर रहा हो। त्रिवियों में कोई कठिनाई नहीं आती। साथ ही, वीरभानु द्वारा सोलहवें शती के संस्कृत कवियों को उदारतापूर्वक आश्रय देने के उल्लेख प्राप्त है।'^४

१. मुस्लिम पैट्रनेज० 'भाग १ : पृष्ठ ८ तथा हरदत्त शर्मा : 'दि पोयट भानुकर'। श्लोक निम्नलिखित हैं—

(१) 'लङ्काधामनि वीरभानु-नृपतेः प्रेक्ष्य प्रतापोदयं..... ।'
(पद्यवैणी०, ६८ : सूक्ति०, १०२ : सा० सं० : पद्य० १३।२३ : रसिक० १३, २३) ।

(२) 'दिल्लीशो द्वारदेशी..... ।
वीर श्रीवीरभानो रचयसि पुलकं वीर-लक्ष्मी-कपोले ॥ (सा० सं०)

(३) भेरीभाङ्कृतिमिस्तुरङ्ग-निनदेः कुम्भीन्द्र-कोलाहलीः
प्रस्थाने तव धीरभानु दलितं ब्रह्माण्ड-माण्डोदरम् ।'
(पद्यवैणी, ११४ : सूक्ति० १५० : पद्य० १८।१६ : रसिक० १९
ए।७६ :) इन पद्यों को समीक्षा के लिये देखिये अध्याय चतुर्थ : ६ ।

२. 'सम डेटा०' : ओ० ज० : १९३४ : पृष्ठ १९७ और आगे ।

३. 'मुस्लिम पैट्रनेज' : भाग १, पृष्ठ ८ तथा हरदत्त शर्मा : 'दि पोयट भानुकर' पृष्ठ २५२-टिप्पणी ।

४. 'मुस्लिम पैट्रनेज० : भाग १ : पृष्ठ ९-१० ।

डा० हरदत्तशर्मा ने इस आशयदाता वीरमानु को बघेल ही माना है और कच्छत्रयंगीय मानु को अस्वीकृत किया है। आपका तर्क इस प्रकार है :—

‘वीरमानु (बघेल) कुछ समय तक सिकन्दर लोदी के दरबार में रहे।^१ सिकन्दर लोदी की मृत्यु १५१७ ई० में हुई। वीरमानु का पुत्र रामचन्द्र १५५५ ई० में सिंहासन पर बैठा। इसलिए वीरमानु अवश्य ही सोलहवीं शती के प्रारम्भ में सिंहासन पर बैठे होंगे और सिकन्दर लोदी के राज्यकाल के अन्तिम भाग में उसके दरबार में रहे होंगे।^२

बघेली भाषा के लेखों में वीरमानु का जन्म १५४३ वि० (१४८६ ई०) बतलाया गया है।^३ अबुलक़ज़ल के अनुसार (१५०० ई० के निकट) गुजरात के बहादुरशाह का समकालीन वीरगढ़ का गोंड राजकुमार अमानदास बघेल राजा नरसिंहदेव (वीरसिंह देव) की धरण में आया था। जब राजा (वीरसिंह देव) सिकन्दर लोदी के दरबार में हाजिरी देने गया तब वह अमानदास को अपने पुत्र ‘परबिहान’ (वीरमानु) के पास छोड़ता गया।^४ अन्य स्रोतों से यह भी ज्ञात है कि राजा वीरसिंहदेव १५२७ ई० में बाबर से लड़ा था और उसने बाद में उससे मुल्ह भी की थी।^५ रोवा के इतिहासों में वीरमानु का राज्य १५४० ई० में १५५५ ई० तक बतलाया गया है।^६ किन्तु सन् १५३९ ई० में ही वह अवश्य राजा था। इस समय उसने शेरशाह के विरुद्ध हुमायूँ की सहायता की थी।^७

१. इ० ग० : भाग २१ : पृष्ठ २७९ और आगे।

२. ‘दि पोपेट मानुकर’ पृष्ठ २५२-२३।

३. परि० १ (क)—एकत्रा—‘राजा वीरमानदेव का जन्म सं० १५४३ के साल।’

४. ई० डा० : कलकत्ता : १९५२ : अबुलक़ज़लकृत अकबरनामा : पृष्ठ ३०-३३।

५. निजामी—‘दि बघेल डायनेस्टो आफ रोवा’ : वि० यू० ज० भाग २।२ : मई, १९५८ : पृष्ठ २-३।

६. आ० रि० इ० : भाग २१ : पृष्ठ १०७।

७. श्रीवास्तव—आशीर्वादीलाज : मुगलकालीन भारत : पृष्ठ ११६, ‘रोवा का राजा वीरमान बघेला, जिसे (शेरशाह द्वारा) दरबार में बुलाया गया था, कालिजर के राजा वीरसिंह के यहाँ धरण पाने चला गया था। शेरशाह ने चाहा था कि वीरमान को उधे सौंप दिया जाय।’ तथा पृष्ठ १४२ ‘जब शेरशाह कालिजर के घेरे में स्थित था, जलाला

वीरमानु के अतिरिक्त कृष्ण नृपति की स्तुति में मानुकर के दो श्लोक निजामशाह की प्रशंसा में तो श्लोक और वीरशाह के सम्मान में एक श्लोक प्राप्त है ।^१

हरदत्तशर्मा ने पहले इस निजामशाह को दक्षिण के निजामशाही राजवंश का प्रथम बुरहानशाह निजाम (१५१०-१५५३ ई०) माना था ।^२ बाद में उन्होंने लिखा कि वीरमानु और सिकन्दर लोदी में निकट का सम्बन्ध था । सिकन्दर का पूर्व नाम निजाम खाँ था । इसलिए यह तर्क अधिक प्रबल है कि मानुकर ने निजाम खाँ (सिकन्दर लोदी) को ही निजामशाह कहा है तथा उसका वीरछानु बघेल नरेश है, कच्छपवंशीय भानु नहीं । अतः मानुकर को सोलहवीं शती के आरम्भ में रखा जाना चाहिए । शर्मा जी तथा अन्य विद्वानों ने भी 'कृष्ण नृपति' को विजयनगर का राजा कृष्णदेवराय (१५०९-३० ई०) माना है ।^३ श्री गोडे और श्री चौपुरी निजामशाह को दक्षिण का बुरहानशाह प्रथम ही मानते हैं । श्री गोडे ने अग्यत्र लिखा है कि यह निजामशाह (बुरहान) 'परशुराम प्रताप' और 'मार्गवार्चन-दीपिका' के प्रणेता साबाजी प्रतापराज का आश्रयदाता था ।^४

हम देख चुके हैं कि सिकन्दर लोदी के राज्य-काल के अन्तिम भाग में भी वीरमानु बघेल युवराज ही था । यदि इन दिनों मानुकर बघेलों की राजसभा में होता तो वह वीरसिंहदेव की स्तुति लिखता, जो कि सिकन्दर की मृत्यु के कम-से कम १० वर्ष बाद तक जीवित था और पराक्रमी शासक था । दूसरे, सिकन्दर

(वीरशाह का पुत्र) को रोवा विजय करने के लिये भेजा गया था । साथ ही देखिये—गुलबदन बेगम—हुमायूँनामा (बेबरिज) : पृष्ठ १३५-३६ : 'अरेल और कड़ा का राजा वीरबहान (वीरमानु) सफर, ९४६ हि० (जून १५३९) : अल्किन् : बाबर एण्ड हुमायूँ भाग २ : पृष्ठ १७४ : 'राजा परमान एक राजपूत शासक : १५३९ ई० ।'

१. मुस्लिम पैट्रनैज : भाग १ : पृष्ठ ६ तथा आगे । शर्मा हरदत्त : दि पोपेट मानुकर : पृष्ठ २४८-२५५ ।
२. शर्मा-हरदत्त : 'सूत्रितसुन्दर आफ सुन्दरदेव' : ओ० ज० : फरधरी १९३६ : पृष्ठ-१३३-१४४ ।
३. बही, टिप्पणी क्र० १ ।
४. गोडे : 'साबाजी प्रतापराज'-एनल्स० भाग २४। तृतीय-वर्तुथं : १९४४ पृष्ठ १५६-१६४ ।

लौदी से सम्बद्ध अन्य संस्कृत कवि की जानकारी उपलब्ध नहीं है। तीसरे, सिकन्दर लौदी १४८९ ई० के पूर्व ही निजाम खाँ (वह भी 'निजाम-शाह' नहीं) कहा जाता था; सुल्तान होने के बाद वह अपने को सिकन्दरशाह कहने या कहे जाने में गौरव मानता था। यदि भानुकर ने उसके लिए दलोक लिखे होते तो निजाम-शाह या निजाम-धरणीपाल^१, शब्दों के प्रयोग न किये होते। चौथे, श्री गोडे की उपर्युक्त सूचना के अनुसार बुरहानशाह निजाम अन्य संस्कृत-कवियों का भी आश्रयदाता था। अतः भानुकर का 'निजामशाह' अहमदनगर का बुरहानशाह प्रथम ही प्रतीत होता है। विजयनगर के कृष्णदेवराय को सभा में रहनेवाले भानुकर का अहमदनगर के निजाम को सभा में पहुँचना युक्तिसङ्गत है।

हरदत्त शर्मा ने आगे निष्कर्ष निकाला है कि 'भानुकर ने अपने जीवन का अधिक भाग सिकन्दर लौदी के दरबार में बिताया; वहीं वह वीरभानु से मिला होगा (जो सिकन्दर को सभा में रहता था) तथा सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् वह वीरभानु की सभा में गया होगा।'^२ किन्तु वीरभानु का कवि ने 'पराक्रमी योद्धा' और 'नृपति' रूप में वर्णन किया है, जो १५१७ ई० में युवराज वीरभानु के लिए सम्भव नहीं। शर्मा जो आगे लिखते हैं कि 'कुछ काल तक वीरभानु की सभा में रह कर भानुकर दक्षिण में कृष्ण (देव) राय की मृत्यु के पश्चात् पुनः उत्तर लौट कर शेरशाह की सभा में आया होगा।'^३ वास्तव में ऐसा प्रतीत होता है कि भानुकर पहले दक्षिण में ही था। कृष्णदेवराय से सम्बद्ध होने से हम कह सकते हैं कि भानुकर का कवि-जीवन १५२९-३० ई० से पूर्व ही और दक्षिण में ही प्रारम्भ हुआ। कई वर्षों तक निजाम बुरहानशाह की सभा में भी वह रहा और सम्भवतः १५३० ई० में कृष्णदेवराय की मृत्यु के पश्चात् वह प्रयाग की ओर आया तथा वीरभानु की सभा में १५४० ई० के आस-पास पहुँचा और क्रमशः नवोदित सुरवंशीय सुल्तान शेरशाह के दरबार में भी पहुँचा। इस प्रकार हम भानुकर का कविजीवन १५२० ई० से १५५० ई० तक मान सकते हैं।

१. हि० बला० सं० लिट्० : पृष्ठ ७७३ टि० १ : 'तत्किं राजपथे निजाम-धरणीपालोऽपमालोक्तिः।' टोकाकार अनन्तभट्ट (१७ वीं शती) ने इस पंक्ति का अर्थ लिखा है—'निजामाख्यो देवगिरिराजः'। यह अनन्तभट्ट की भूल प्रतीत होती है।

२. 'दि पोपेट भानुकर' ० : पृष्ठ २५१।

३. वही।

कवि को प्रयाग का विशेष लाक्षण हुआ, इसका प्रमाण हम 'रस-तरङ्गिणी'^१ (पृष्ठ ३५) के निम्नलिखित श्लोक में पा सकते हैं—

'सोपी-पर्यटनं ध्रमाय विहितं वादाय विद्यार्जिता
मानध्वंसम हेतवे परिचितास्ते ते धराधोरवराः ।
विश्लेषाय सरोत्र-मुन्दर-दूषामास्ये कृता दृष्टयः
दृशानेन मया प्रयाग-नगरे नाऽऽराधि नारायणः ॥'

हम पीछे कह चुके हैं कि वीरमानु मुसलमानों द्वारा १५३९ ई० के निकट धरैल (प्रयाग के सामने, यमुना के पश्चिम तट पर) धीर कड़ा (जि० इलाहाबाद) का राजा लिखा गया है । स्पानीय काव्यों के माध्य से अनुमान होता है कि वह प्रयाग का भी स्वामी था, क्योंकि प्रयाग वीरमानु के पुत्र रामचन्द्र के अधीन लिखा गया है ।^२ अतः यह सम्भव है कि प्रौढ़ारस्या में प्रयाग-वात के समय ही मानुकर का सम्बन्ध वीरमानु बघेल में आया हो । हरदत्त शर्मा का यह कहना ठीक ही है कि कवि तीन श्लोकों में वीरमानु या वीरमान की ही स्तुति कर रहा है, मानु की नहीं ।^३

स्पानीय इतिहास-ग्रन्थवी सूचनाओं में अधिक स्थलों पर (संस्कृत काव्यों को छोड़कर) इस राजा का नाम वीरमान ही मिलता है ।^४

शर्मा जी ने पन्द्रालोक की प्रद्योतन भट्टाचार्य कृत शरदागम टीका का उल्लेख कर निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किये हैं—

अस्य स्थितितो नगरी भवतोऽप्योध्या भवत्यखिला ।

इति रघुवंशादधिको जयति बघेलाऽर्मधो वंशः ॥ ३ ॥

देवपतिरिव शक्तिर्यस्य जये भूमृतां प्रथिता ।

श्री वीरभद्रदेवस्तत्र घराऽऽखण्डलो जातः ॥ ४ ॥

दशरथतो रघुपतिरिव तस्मादिह वीरमानु-भूपालः ।

आबद्ध-धर्मसेतुर्जगति समुद्रे समुद्भूतः ॥ ५ ॥^५

१. मानुदत्त कृत । हम आगे के पृष्ठों में मानुकर और मानुदत्त के तादात्म्य पर चर्चा करेंगे ।
२. वीर० १०।७ तथा बघेल० ५५ : 'तस्य श्रीरामनृपतेर्विपये तीर्थ-सेवितः । प्रयागोऽस्त.... ।'
३. 'दि पीयेट मानुकर०' पृष्ठ २५३ टिप्पणी ।
४. आ० रि० इ० : भाग २१ पृष्ठ १०७ : 'वीरमानदेव'..... ।
तथा परि० १ (क)—'राजा वीरमानदेव.....' ।
५. प्रकाशित वाली, १९२९ : खिस्ते की भूमिका ।

दार्मा जी इन श्लोकों पर टिप्पणों में लिखते हैं कि 'यहाँ वीरभानु को वीर-भद्र का पुत्र बतलाया गया है। वीरभद्र रामचन्द्र का पुत्र है तथा वीरभानु का पौत्र और वीरभद्र का पुत्र चंदावलिओं के अनुसार विक्रमादित्य है। अतः मुझे लगता है कि यहाँ विक्रमादित्य के स्थान पर वीरभानु भूल से समाविष्ट हुआ है।'^१

वास्तव में भूल ऊपर है जो लिपिकार की है। 'वीरसिंहदेव' के स्थान पर 'वीरभद्रदेव' लिख दिया गया है। 'वीरभानु' का प्रयोग ठीक है और अपने स्थान पर है।

भानुकर या भानुदत्त के साथ तादात्म्य करते हुए श्री चौधुरी ने लिखा है कि भानुकर के नाम से उल्लिखित बहुत अधिक श्लोक भानुदत्त-कृत 'रसमञ्जरी' 'गीत गौरीश', (या गीत-गौरीपति) और 'रस-तरङ्गिणी' (जो सभी प्रकाशित है) में उपलब्ध होते हैं।^२ सूक्ति-मञ्जरी में वही श्लोक कहीं भानुकर और कहीं भानुदत्त के नाम से उल्लिखित हैं। भानुकर का एक श्लोक बेनीदत्त की पद्यत्रेणो पुस्तक में 'गणपतिपुत्र-भानुकरस्य',^३ इस प्रकार उल्लिखित है और रसमञ्जरी का अन्तिम पद्य तथा गिणिला की पञ्चिकाएँ बतलाती हैं कि भानुदत्त गणपति का पुत्र था^४।

१. 'दि पोपेट भानुकर०' : पृष्ठ ५५३-टिप्पणी।

२. श्री चौधुरी ने इस प्रसङ्ग में भानुदत्त कृत रसमञ्जरी, गीत-गौरीश (या गीत-गौरीपति) और रस-तरङ्गिणी से ३३ और डा० दार्मा ने २७ पद्य उद्धृत किये हैं, जो सम्मालङ्कार, सुभाषितसारसमुच्चय, सुभाषित-हारावली, पद्यत्रेणो, पद्यरचना, रसिकजीवन और सूक्तिमुग्धर में भानुकर के नाम से उल्लिखित हैं। इनमें से डा० दार्मा ने रसतरङ्गिणी का एक पद्य (पृष्ठ ७२) 'वीणामध्ये कवमपि श्लो' उद्धृत किया है, जिसमें 'तातवरणानाम्' उल्लेख है अर्थात् यह भानुदत्त के पिता गणपति द्वारा रचित है; यह सुभाषितहारावली (३४-७०) में भानुकर के नाम से उल्लिखित है, जो भानुकर को गणपति का पुत्र सिद्ध करता है। देखिये मुस्लिम पैट्रनेज० पृष्ठ ३ तथा दि पोपेट भानुकर० पृष्ठ २४७-४८।

३. 'मनोपन-निधे.....' (श्लोक ७८९)।

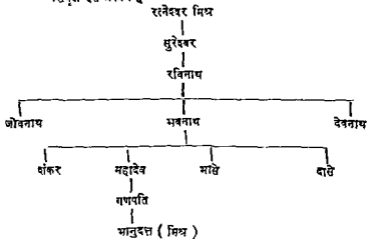
४. 'तातो यस्य गणेश्वरः कवि-कुलालङ्कार-चूडामणि-
दंशो यस्य त्रिदेहभूः सुरसरित्-करलोल-किर्मोरिता।
पद्येन ह्य-कृतेन तेन कविता श्री भानुना योजिता
वाग्देवी-श्रुति-गारिजात-कुमुम-स्पर्धाकरी मञ्जरी ॥'
यह श्लोक भानु और भानुदत्त में भी तादात्म्य प्रस्तुत करता है।

कुमारभार्गवीय क्षम्पू में प्राप्त वंशवर्णन भी इन पञ्चियों से मेल ला जाता है।^१

डा० एस० के० दे० ने भी लिखा है कि 'भानुदत्त की रसमञ्जरी पर प्राप्त, शेषचिन्तामणिकृत 'परिमल', गोपालकृत 'विकास' और रङ्गशायिन्-कृत 'भामोद' नामक टीकाओं में कवि का नाम 'भानुकर' मिलता है; कहीं-कहीं साथ में मिश्र भी जुड़ा रहता है।^२ अतः इन तथ्यों को देखते हुए हम कह सकते हैं कि 'भानु', 'भानुकर', 'भानुदत्त', 'भानु मिश्र', 'भानुकर मिश्र' और 'भानुदत्त, मिश्र', एक ही व्यक्ति के नाम के भिन्न रूप हैं।

डा० दे० के अनुसार भानुदत्त का काल १२ वीं और १४ वीं शती के बीच है।^३ श्री काणे ने भानुदत्त के पिता 'गणेश्वर' को वैशिल गणेश्वरमन्त्रिन्

१. श्री चौधरी ('मुस्लिम पैट्रनेज' पृष्ठ ५) के अनुसार भानुदत्त का वंशवृक्ष इस प्रकार है—



यह पञ्जी भानुदत्त और भानुदत्त मिश्र में तादात्म्य स्थापित करती है। 'कुमारभार्गवीय क्षम्पू' में भानुदत्त ने अपनी वंशावली दी है, जिसमें सुरेश्वर और रविनाथ के बीच में विश्वनाथ हैं।

२. 'दि पोयेट भानुकर०' पृष्ठ २४४ में उद्धृत—'संस्कृत पोयटिवस' भाग १।२४५ : भूमिका : शेषचिन्तामणि कृत परिमल (जैनभाण्डार, उज्जमवाड़े की धर्मशाला, जहमशाबाद) टीका सं० १९८४ की भूमिका में यह उल्लेख है—

'इह खलु.....श्री भानुकरनामा कविः।'

३. वही, पृष्ठ २४६।

समझा । यह वीरेश्वर का भाई था, जिसका पुत्र चण्वेश्वर 'विवादरत्नाकर' का प्रणेता था तथा जिसने १३१५ ई० में तुला भर स्वर्णदान किया था । इस प्रकार भानुदत्त की तिथि श्री काणे के अनुसार तेरहवीं शती के अन्तिम भाग में और चौदहवीं शती के प्रारम्भ में ठहरती है ।^१

डा० शर्मा का अनुमान है कि 'डा० बनेल ने भानुदत्त को मँगिल माना,^२ इसीलिए यह भूल हुई प्रतीत होती है । भानुदत्त का ग्रन्थ 'गीत-गौरीपति' जयदेव के 'गीतगोविन्द' की अनुकृति होने से इस भूल को बल मिला । इसका पोषण अन्य तथ्य से इस प्रकार हुआ कि गोपाल (या वीरदेव) कृत रसमञ्जरी-विकास (टीका) की एक प्रति स्पष्टतः संवत् १४८४ को लिखी हुई है । (श्री कृष्णमाचारियर के अनुसार यह शक सं ११९४ है ।^३) स्वर्गीय श्रीधर भाण्डारकर ने लिखा था कि 'यह शक संवत् १४६४ है ।'^४ इस प्रकार यह तिथि १५७२ ई० होती है ।'^५

भानुदत्त के पितामह के बड़े भाई शंकर मिश्र ने उपस्कर और स्रष्टनखाद्य पर टीका लिखी है । कृष्णमाचारियर ने इनका समय शक संवत् १३२७ (१४०५ ई०) के आस-पास लिखा है ।^६ उक्त मठों को देखते हुए तथा भानुकर या भानुदत्त के द्वारा लिखित घोरशाह, निजाम, वीरभानु और कृष्णनृपति की स्तुतियों पर विचार करते हुए हमें यह मत कि भानुकर का कवि-काल १५२० ई० से १५५० ई० तक है, स्वीकार है । डा० शर्मा ने लिखा है कि '१५५३ ई० से पूर्व भानुदत्त की कृतियों की कोई टीका नहीं मिलती'^७ ।

रसमञ्जरी के अन्तिम पद्य की दूसरी पंक्ति 'देशो यस्मिन्विदेह-भूः सुरसरित्-' पर पाठभेद मिलता है । कृष्णमाचारियर के अनुसार आफ्रे० की प्रति में 'विदर्भ-भूः' शब्द है तथा कृष्णमाचारियर ने भी एक प्रति में यही पाठ पाया, किन्तु दो अन्य प्रतिओं में 'विदेह-भूः' मिला, जैसा डा० बनेल ने लिखा है । श्री कृष्णमाचारियर का मत है कि 'विदर्भ-भूः' पाठ अशुद्ध है, क्योंकि कवि की जन्मभूमि

१. साहित्यदर्पण : भूमिका : पृष्ठ ११८ ।

२. कंठे० तंत्रोर० ।

३. हि० बला० सं० लिट्० : पृष्ठ ७७५ टि० ५ : आफ्रे० भाग २।११६ : पीटर्सन० भाग २।३६।

४. भाण्डारकर : रिपोर्ट आफ दि सेकण्ड टूर : १६०४-६ : पृष्ठ ३६ ।

५. 'दि पोयेट भानुकर०' पृष्ठ २४४-४५ ।

६. हि० बला० सं० लिट्० पृष्ठ ७७१ ।

७. 'दि पोयेट भानुकर०' : पृष्ठ २४६ ।

‘सुरसरित्’ (गङ्गा) के तरङ्गों के तट भाग पर है, जब कि ‘विदमं-भूः’ नर्मदा का तट-प्रदेश कहलायेगा ।^१ भण्डारकर का यही मत है ।^२

डा० शर्मा ने लिखा है कि ‘शेष चिन्तामणि की परिमल टीका में कवि को ‘प्रघ्नपुर-निवासिन्’ लिखा गया है, जो ‘गिषपुर (काशी)-निवासिन्’ का पर्याय प्रतीत होता है । ‘गीत-गौरीपति’ में शिव की स्तुति भी इस मत को बल प्रदान करती है । हम यह भी देखते हैं कि कवि प्रयाग की ओर आकषित है^३ तथा एक के अतिरिक्त शेष सभी टीकाकारों के नाम दाक्षिणार्ण्य प्रतीत होते हैं; १९ टीकाकारों में से एक का भी नाम ‘मैघिल’ नहीं है । प्रयाग और काशी में महाराष्ट्र ब्राह्मणों के अनेक परिवार रहते आए हैं । अतः सम्भवतः कवि मैघिल नहीं, दाक्षिणात्य है, किन्तु इस समस्या का समाधान शेष है ।^४

हम पीछे के पृष्ठों में देख चुके हैं कि डा० बोधुरी द्वारा प्रस्तुत मैघिल पञ्जी में और ‘कुमारभार्गवीय’ चम्पू में कवि द्वारा उल्लिखित वंशावली में लगभग पूर्ण समानता है । यह तथ्य कवि को मैघिल सिद्ध कर देता है और ‘विदेह-भूः’ पाठ की शुद्धता की पुष्टि करता है ।

भानुकर की कवित्व-शक्ति इसी एक बात से प्रमाणित है कि कम से कम ८ सुमापित-संग्रहों में उसके श्लोक उद्धृत हैं तथा उसके ग्रन्थों के कम से कम १६ टीकाकार हैं ।

भानुकर के निम्नलिखित ग्रन्थों की जानकारी उपलब्ध है—

(१) रसमञ्जरी (सटिप्पणी)^५

(२) रस-तरङ्गिणी ।^६

(३) गीत-गौरीश (या गीत-गौरीपति-सटिप्पण) ।^७

१. हि० बला० सं० लिट्० : पृष्ठ ७७४-७७५ ।

२. बार० जी० : ‘कलेक्टेट वर्क्स’ एन० बी० उतगीकर द्वारा संपादित : भाग २ : पृष्ठ १२ ।

३. ‘दि पोयेट भानुकर—’ पृष्ठ २४६—रसतरङ्गिणी का उल्लेख—
‘कुञ्जानेनमया प्रयागनगरे नाराधि नारायणः ।’

४. ‘दि पोयेट भानुकर’, पृष्ठ २४६-४७ ।

५. प्रकाशित-मद्रास : बम्बई : बनारस (१९०४) : कलकता : तथा दतिया० संस्कृत पाण्डु० क्रमांक १४३, १४४, ४०३, ५३७, ५४२-५३ ।

६. प्रकाशित ग्रन्थमाला । तथा पेरिस, १८८४ । दतिया० क्र० ५३८, ७५५, १२४० ।

७. आर्मी० : भाग १ : ४०५, ७९३, तथा कैटे० लंदन : १४४३-४५ ।

- (४) शृङ्गारदीपिका^१
 (५) अलङ्कार-तिलक^२
 (६) कुनारमार्गवोपचम्पू^३

श्री कृष्णमाचारियर के अनुसार रसमञ्जरी के टीकाकार महादेव, रङ्गशास्त्रिन् (या गुरिजालशास्त्रिन्), अनन्तपण्डित, नागेश भट्ट (भट्टोजि दीक्षित का पौत्र), बोपदेव (या गोपाल), शेषबिन्तामणि, गोपाल भट्ट, जनन्तशर्मन्, वजराज, विश्वेश्वर तथा एक अज्ञात हैं । इसी प्रकार रस-तरङ्गिणी के टीकाकार गङ्गाराम जदि, जीवराज, महादेव, गणेश, अयोध्याप्रसाद, भगवद्भट्ट, दिवाकर, नेमिशाह और वेणोदत्त हैं ।^४

रामचन्द्र-यशः-प्रबन्धः

‘अकम्बरी-कालिदास’ उपाधिधारी गोविन्दभट्ट कवि की यह रचना वीरभानु के पुत्र रामचन्द्र बघेल की प्रशस्ति है । इस ग्रन्थ का तथा ग्रन्थकार का परिचय चतुर्थ अध्याय (१) में अस्तुतः किया जायगा ।

वीरभद्रदेव के ग्रन्थ : कन्दर्पचूड़ामणि—

सोलहवीं शती के उत्तरार्द्ध में हमें उपसुंख राजा रामचन्द्र बघेल के पुत्र युवराज वीरभद्रदेव की संस्कृत रचनाएँ प्राप्त होती हैं । संवत् १६३३ वि० (१५७७ ई०) में इन्होंने कन्दर्पचूड़ामणि नामक ग्रन्थ की रचना की ।^५ यह सम्पूर्ण ग्रन्थ ३६३ आर्या छन्दों में ७ अधिकरणों और ६३ अध्यायों में लिखा गया है ।^६ यह सन् १९०८ में सत्कालीन रीवा नरेश श्री बैकटरमण सिंह की आज्ञानुसार रघुराजनगर (सतना, म० प्र०) से प्रथम बार प्रकाशित किया गया ।

१. आर्क० भाग १ : ६६१ ।

२. वही, भाग १।३२ : भाग २।६६ : भाग ३।७ : तथा कंटे० तंजौर० भाग ९।४१०७ : कंटे० : मंसूर० २६५ : पीटर्सन० : भाग ६ । ए० २६ ।

३. कंटे० संदं० १५४० : कंटे० बंगाल० ४७, जिसके साथ गोपाइ भ्रानन्द, भरत मल्लिक और नवनीतराम की टीकाएँ हैं ।

४. हि० बला० सं० लिट्० : पृष्ठ ७७५-७६ ।

५. कन्दर्प० १ : ७-२-४९ :

‘हरलोचन-हरलोचन-रस-शशिभिविश्रुते समये ।

कालगुन-शुक्ल प्रतिपदि पूर्णो ग्रन्थः स्मर-स्मेरः ॥’

६. वही : ७-२-४६ :

‘रुपाधिकरणमेतत् पदत्रिसत्-परिमितस्फुटाध्यायम् ।

वात्स्यायनकृतशास्त्रं व्याख्यातं वीरभदेण ॥’

रोषा-राज्य दर्पण के लेखक और बेंकट हाईस्कूल सतना के तत्कालीन प्रधानाध्यापक श्री जीतनसिंह ने ग्रन्थ का सम्पादन किया था। ग्रन्थ के साय-साय पं० मूर्यप्रसाद द्वारा लिखित बेंकटरक्षस्य नामक हिन्दी टीका भी प्रकाशित है। इन ग्रन्थ का अन्य संस्करण भी प्रकाश में आ चुका है।^१ संस्कृत साहित्य के इतिहासों में ग्रन्थ के उल्लेख प्राप्त हैं।^२

यह ग्रन्थ कामवास्य पर आधारित है। श्लोकों को देखते हुए कवि की रचना-शक्ति प्रीति प्रतीत होती है। प्रथम अध्याय में कवि ने अपनी वंश-परम्परा बतलायी है।^३

१. संस्कृत पुस्तकालय लाहौर : १९२६ : रामचन्द्र शास्त्री की सुखप्रभा व्याख्या सहित।

इस प्रकाशन का आधार बनने वाली पार प्रतियाँ हैं—

क. बाबू गोविन्ददास, काशी से प्राप्त पाण्डुलिपि (आदर्श पुस्तक)।

ख. सतना से १९०८ में प्रकाशित उक्त प्रति।

ग. भास्कर ओ० रि० इं० पूना की प्रति।

घ. राजकीय पुस्तकालय बीकानेर की प्रति।

२. हि० बला० सं० लिट्० : पृष्ठ ८९० टि० ६। कैटे० काश्मीर, क्र० ६४ : पीटर्सन० २।६६ क्र० १०१। ए-१८८३-८४ : साय ही देखिये
साइंटिफिकेशन० : ओ० ज० : भाग २।२५४।

३. वंशः कंसद्विप इव जयति बधेलस्य भूमुजां मान्यः।

अत्रधन्योऽस्ति जगरयां यस्मादन्यो न भूरालः ॥ ४ ॥

प्रादुर्बभूव वंशे तत्र श्री शालिवाहनो नृपतिः।

इन्दुर्मरन्द-विरतुंयस्य यशः-गुणहरीकस्य ॥ ५ ॥

प्रादुर्बभूव तस्माद् वीरः श्रीशौरसिंहाक्ष्यः।

यस्य यशोऽम्बुज-कीये स्थारा मकरन्द-विन्दवस्ताराः ॥ ७ ॥

वीरस्तदङ्ग जन्मा प्रतिभट-वृत्तना-तमस्विनी-भानुः।

श्री वीरभानुनामाऽपिपठिरभूद् भूमुजां जयति ॥ ९ ॥

कामादप्यमिरामो भीमादपि वाडुशालिनां मान्यः।

कर्णार्धपि च वदाग्यो जयति सुतो रामचन्द्रोऽप्य ॥ ११ ॥

राजोचित-गुणशीमा भीमावरजादिहाधिको धनुषि।

तनयो विनय-समुद्रो जयति तरा वीरमद्रोऽप्य ॥ १३ ॥

दशकुमारपूर्वकथासारः

यह धोरमद्रदेव का दूसरा काव्य-ग्रन्थ गद्य में है।^१ इसका केवल प्रथम परिच्छेद प्राप्त है,^२ जिस पर आगे अध्याय (४-२) में प्रकाश डाला जायगा। काव्य-सूत्र-टीका

श्री कृष्णमाचारिपर के अनुसार^३ धोरमद्रदेव ने ११७७ ई० में काव्य-सूत्रों पर टीका लिखी है।

वीरभद्रदेवचम्पू

इस ग्रन्थ तथा ग्रन्थकार से सम्बद्ध सविस्तार विवरण आगे पञ्चम अध्याय (क) में प्रस्तुत किया जायगा।

व्याख्या-सुधा

किसी 'महीधर-विषयाधिप' कीर्तिसिंह बघेल को आज्ञा से सिद्धान्तकौमुदी के कर्ता मट्टीजि दीक्षित के पुत्र भानुजि दीक्षित ने अमरकोष की व्याख्या-सुधा टीका लिखी।^४ इन्होंने भानुजि दीक्षित का समकालीन नीलकण्ठ शुक्ल था, जो मट्टीजि दीक्षित का शिष्य था। इसकी एक रचना १६३५ ई० की बतलाई जाती है। बतलाया जाता है कि भानुजि दीक्षित के पुत्र हरि दीक्षित का पण्डितराज जगन्नाथ, जो शाहजहाँ (१६२७-५८ ई०) के समकालीन थे, विवाद हुआ था। गुरु-शिष्य परम्परा से भानुजि दीक्षित के शिष्य का नाम बत्सराज था,

१. ए० डेस० कै० भाग ७ : क्र० ५३८४।

२. रा० ए० सी० : पाण्डु० क्र० : जो। ६३६८।

३. हि० बला० सं० लिट्० पृष्ठ ७७७-टि० २।

४. अमरकोष : निर्णयसागर प्रेस बम्बई : १९४४ :

प्रारम्भ—'बल्लवी-बल्लमं नत्वा गुहं मट्टीजिदीक्षितम्।

अमरे विदधे व्याख्यां मुनित्रय-मठानुगाम्॥'

पुष्पिका—पृष्ठ १०९—'इति श्री बघेलवंशीद्वय—श्रीमहीधर-विषया-

धिप—श्रीकीर्तिसिंह-देवाज्ञया—श्रीमट्टीजिदीक्षितारमज—श्री भानुजी-

दीक्षित-विरचितायाममरटीकायां व्याख्यामुधायां प्रथमकाण्डः—'

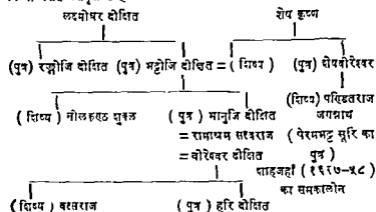
पृष्ठ ३५२—'.....द्वितीयकाण्डः.....' पृष्ठ ४९३—'व्याख्यामुधाख्यायां

तृतीयकाण्डः.....'। साथ ही देखिये पी० के० गोटे का लेख—

'ए कंठम्परैरी मैन्पुस्त्रिष्ट आप भानुजि दीक्षितज व्याख्या-मुधा': ज०

बा० जित्द ११ भाग २ : सितम्बर, १९४२।

जिसने काशीदर्पण-काशिका लिखी । इनके पारस्परिक सम्बन्धों का स्पष्टीकरण निम्नलिखित वंशवृक्ष से हो जायगा ।^१



बघेलों के वंशवृक्ष में हमें कीर्ति सिंह और फतेह सिंह दोनों नाम लगभग एक ही कालावधि में प्राप्त हैं ।^२ श्री गोडे का अनुमान है कि 'फतेहसिंह (फतेसिंह) जो भानुजि दीक्षित के आश्रयदाता थे, इस नाम का संस्कृत रूप कीर्तिसिंह होगा' ।^३ यहाँ यह स्मरणोप है कि उपर्युक्त पुष्पिका में कीर्तिसिंह को 'महीधर-विषयाधिप' लिखा गया है ।

जमाबन्दियों में बोरभानु बघेल के छोटे भाई यामिनीमानु (जन्म लगभग १५६० ई०) द्वारा मैहर (जिला सतना, म० प्र०) की जागीर पाने की सूचना है ।^४

१. पलामूत० भूमिका पृष्ठ १२६-३० में डा० जतीन्द्र विमल चौधुरी का मत ।

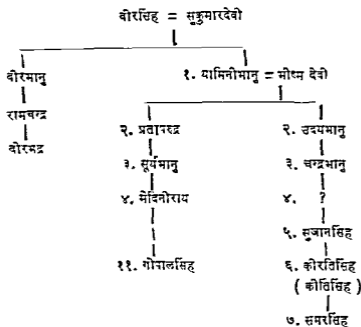
२. देखिये सं० बा० दे० : पृष्ठ १०४ ।

३. 'ए कंटेम्पोररी मैन्युस्क्रिप्ट आफ भानुजि दीक्षितज व्याख्यासुभा' : अ० बा० : जिल्द ११ भाग २ : सितम्बर १९४२ ।

४. परिशिष्ट १ (ग) : 'राजा बोरमानदेव का जन्म सं० १५४३ के साल । भाई बाबू जमुनीमान मैहर दीन । राजा रामदेव (रामचन्द्र) से बमल । जमुनीमान के वंशावली ७ पुरिखा । बाबू जमुनीमान १ केन्द्र—२—३—सिंह ४ सुजानसिंह ५. कीरतिसिंह ६. समरसिंह ७. ले जागा छूटि ।'

श्री निजामो के अनुसार सन् १५०२ में जमुनीमान को मैहर दिया गया (नोट आन मैहर : भारतीय विद्या : बम्बई : जिल्द ६ : क्र० २ :

वीरमद्रचम्पू में यामिनीभानु के पुत्र-पौत्रों की जानकारी मिलती है।^१ इस आधार पर निम्नलिखित वंश-सूची प्राप्त होती है, जिसका सम्बन्ध मैहर की बघेल शाखा से है—



इस प्रकार यही सम्भव प्रतीत होता है कि अमरकोप की व्याख्यामुषाटीका का प्रपेठा भानुजि दीक्षित पाण्डितराज जगन्नाथ से व्येष्ट होगा, वह मैहर (संस्कृत रूप 'महीधर') के बघेलवंशीय कीर्तिसिंह की ही समा में होगा। व्याख्यामुषा (द्वितीय काण्ड) की पुना में प्राप्त एक पाण्डुलिपि का लिपिकाल

फरवरी १९४५;) किन्तु वीरमानु की जन्मतिथि (सं० १५४३ सन् १४८६ ई०) की देखते हुए उनके अनुज जमुनीमान इस समय अल्पवयस्क रहे होंगे। श्री रामधारे अग्निहोत्री ने यह तिथि सं० १५८५ (१५२८ ई०) लिखी है, जो ठीक प्रतीत होती है (वि० प्र० ६० : पृष्ठ ३२५)।

१. पद्मनाभ मिश्र कृत: प्रकाशित : प्राच्यवाणी-कलकत्ता : १९३२ : पृष्ठ सच्छ्वासतः 'वीरमानुदेवस्य सीधरो यामिनीभानुदेवः । सूर्यभानुचन्द्रभानु वीरो—' साथ ही देखिये : वीर० १।९३।

संवत् १७०५ (१६४९ ई०) है ।^१ अतः व्याख्यासुधा का रचना-काल १६४० ई० के निश्चय माना जा सकता है ।

ऊपर उल्लिखित भानुजि दीक्षित के वंशवृक्ष में उनका दूसरा नाम रामाश्रम बतलाया गया है । संजोर की पाण्डुलिपि (प्रथम काण्ड) में धन्वकार ने अपने को भट्टोजि दीक्षित का शिष्य, गुर्जर-जातीय और रामाश्रम बतलाया है ।^२ उक्त वंशवृक्ष में उल्लिखित वत्सराज ने (जो भानुजि का शिष्य था) अपने गुरु का नाम रामाश्रम दिया है ।^३ निर्णयसागर द्वारा (व्याख्या-सुधा टीका के साथ) प्रकाशित अमरकोष में भानुजि दीक्षित ने भट्टोजि दीक्षित को अपना गुरु बतलाया है ।^४ सिद्धान्त-चन्द्रिका में रामाश्रम की भानुजि दीक्षित लिखा गया है ।^५ इस प्रकार यह प्रमाणित होता है कि भानुजि दीक्षित ने ही (सम्भवतः पीछे संन्यासी होकर) रामाश्रम नाम भी धारण किया था ।

बघेलवंश-वर्णनम्

१६७८ ई० में प्रणीत और १६५७ ई० में प्रकाशित इस धन्य का विवरण चतुर्थ अध्याय (३) में प्रस्तुत किया जायगा ।

१. गोडे : 'ए कंटेम्पोरेरी मैन्सुस्क्रिप्ट०—' : पूना की सम्बद्ध पाण्डुलिपि : ग० मै० ला० : क्र० २०० (१८८२-८३) का अन्तिम उल्लेख इस प्रकार है—

'संवत्-धाराध्रावल-चन्द्र-माने
गणेश-चन्द्रेऽवसुजयश्च कृष्ये ।'

२. वही, कैटे० संजोर० : भाग ९ पृष्ठ ३८२१ (१९३० ई०) : पाण्डु-लिपि क्रमाङ्क ४६४८ : पुष्पिका—

'इति श्री-बघेलवंशोद्भवमहीधरविषयापिप-श्रीकीर्तिसिंह-देशज्ञया श्री
भट्टोजिदीक्षित-शिष्य-गुर्जरजातीय-रामाश्रम-विरचितायाम्—।'

३. पद्यामृत० भूमिका : पृष्ठ १२९-३० : धाराणसी-दर्पण-प्रकाशिका
टीका, सं० १६९८ (१६४१ ई०) का प्रारम्भिक उल्लेख—

'भट्टोजिदीक्षितं नत्वा रामाश्रमगुरुं पुनः ।
वत्सराजः करोत्येतां काशी-दर्पण-काशिकाम् ॥'

४. बम्बई : १९४४ : प्रारम्भ—'गुरुं भट्टोजिदीक्षितम् ।'

५. चौखम्बा संस्कृत सिरीज—२०१२ वि० । उत्तरार्द्ध की पुष्पिका—
इतिश्री रामाश्रम—(भानुजिदीक्षित) विरचितायां सिद्धान्तचन्द्रि-
कायाम्—।'

भगवन्त-भास्कर

१८ वीं शती के ग्रन्थों की जानकारी उपलब्ध नहीं है। केवल एक ग्रन्थ 'भगवन्त-भास्कर' का पता चल सका है। यह १९५६ ई० में रोवा के श्री त्रिपुराशंकर बनर्जी के यहाँ मिला था। उसी वर्ष नागरी-प्रचारिणी-सभा काशी को भेज दिया गया। ग्रन्थ का विषय कर्मकाण्ड और लिपिकाल १८४७ वि० (१७९० ई०) है। रचयिता नीलकण्ठ भट्ट हैं। एक पुष्पिका इस प्रकार है—

'संगर-वंशावतंस-महाराजाधिराज-भगवतसिंह-वा (?)—अष्टमीमासक-भट्ट नीलकण्ठकृते.....।'

रोवा जिले की मऊगंज तहसील में संगर राजपूत रहते हैं। १७ वीं १८ वीं शती में ये रोवा की सत्ता से स्वतन्त्र होने के प्रयत्न में अपने को महाराज भी कहते रहे होंगे।

उन्नीसवीं शती का साहित्य

पिछले अनेक शतियों में बघेलखण्ड में जितने साहित्य का सर्जन हुआ था, उससे कहीं अधिक इस उन्नीसवीं शती में हुआ। यह साहित्य संस्कृत और हिन्दी दोनों क्षेत्रों में रचा गया। इस शती में लगातार जयसिंहदेव (राज्य—१८०९-१३४ ई०) विश्वनाथसिंह (१८३४-५४ ई०) और रघुराजसिंह (१८५४-८० ई०) नरेश-कवि के रूप में मिलते हैं। इनके साथ इनसे सम्बद्ध या समासद-रूप में अन्य अनेक कवि भी ग्रन्थ-रचना और पाण्डित्य द्वारा रोवा-राजसभा को अलङ्कृत करते रहे। श्री चिन्ताहरण चक्रवर्ती का यह कथन सर्वथा सत्य है कि ये तीन नरेश 'न केवल विद्वानों के आश्रयदाता थे, अपितु इनकी साहित्यिक उपश्रमियाँ महान् थीं।'^१

जयसिंहदेव के एकमात्र प्रकाशित हिन्दी-काव्य 'हरिचरित-चन्द्रिका' (पूर्वाई) की भूमिका में श्री भवानोदत्त जोशी ने लिखा है कि 'जयसिंहदेव हिन्दी और संस्कृत के उच्च कोटि के विद्वान् थे, किन्तु उन्होंने संस्कृत में रचनाएँ नहीं कीं।'^२ इनके अनेक हिन्दी-काव्य संस्कृत के साहित्य एवं दर्शन के ग्रन्थों पर आधारित हैं।^३

१. 'संस्कृत वक्त्रं' : ज० रा० ए० सी० : २९ अक्टूबर, १९३९।

२. सरस्वती कोष-भाण्डार, किला, रोवा : बस्ता १।१२ पाण्डुलिपि : रचनाकाल लगभग १८२३ ई०। प्रकाशित १९०३ ई०।

३. देखिये मेरा लेख : 'जयसिंहदेव की रचनाएँ : विन्ध्यभूमि : साहित्य भ्रमक : रोवा—१९५६ : पृष्ठ २३ और आगे।

जयसिंह के प्रथम पुत्र विश्वनाथसिंह थे । दूसरे पुत्र लक्ष्मणसिंह, जो वर्तमान माधोगढ़ (जिला सतना) के इलाकेदार थे, अनेक हिन्दी-काव्य-ग्रन्थों के निर्माता थे ।^१

बलभद्रसिंह के ग्रन्थ

जयसिंहदेव के तृतीय पुत्र तथा विश्वनाथसिंह के कनिष्ठ भ्राता और अमरपाटन के इलाकेदार रावेन्द्र बलभद्रसिंह संस्कृत के दृष्टे विद्वान् थे । इनके चार संस्कृत ग्रन्थ सरस्वती कोय-मण्डार, रोवा में सुरक्षित हैं, जो निम्नलिखित हैं—

(१) वृत्तिबोध—श्रुतबोध की अनुकृति पर लिखे हुए इस पद्यात्मक ग्रन्थ में वृत्तियों का सटीक वर्णन है । सम्भव है, टीका स्व-रचित हो । इस ग्रन्थ में विश्वनाथसिंह के 'सर्वसिद्धान्त' ग्रन्थ का उल्लेख है, जो विश्वनाथसिंह की मुबराज अवस्था (१८३३ ई० से पूर्व) की रचना है । अन्य ग्रन्थों का उल्लेख नहीं है । अतः इस वृत्तिबोध का रचनाकाल १८३० ई० के आस-पास माना जा सकता है ।^२

(२) लोचनग्रन्थ^३—इसकी केवल एक प्रति प्राप्त है, जिसके १० पत्रों में से अन्तिम चार सुरक्षित हैं, प्रारम्भ के ६ पृष्ठ लुप्त हैं । ग्रन्थ श्रीमद्भागवत से सम्बद्ध है ।

१. लक्ष्मणसिंह द्वारा प्रणीत हिन्दी-काव्य 'कृष्णायन' १६ खण्डों में सरस्वती-कोय-मण्डार, रोवा में उपलब्ध है । इनके द्वारा सङ्ग्रहीत संस्कृत ग्रन्थ भी प्राप्त हैं ।

२. ग्रन्थ का आरम्भ—

'वृत्तीणां लक्षणं येन श्रुतिमात्रेण बुध्यते ।
तमहं सम्प्रवक्ष्यामि वृत्तिबोधमविस्तरम् ॥'

सुलना के लिये देखिये श्रुतबोध :

'छन्दसां लक्षणं येन श्रुतिमात्रेण बुध्यते ।
तमहं सम्प्रवक्ष्यामि श्रुतबोधमविस्तरम् ॥'

आरम्भ में ग्रन्थकार ने मङ्गलाचरण के साथ अपना परिचय दिया है—

'मोतीलालं गुरुं शब्दे परमानन्ददायकम् ।
राधावल्लभ-पादाब्ज-स्वस्वरूपप्रकाशकम् ॥

तं वृत्तिबोधं रचयामि नत्वा राधापतेः सुन्दरपादपद्मम् ॥'

३. अन्तिम पृष्ठ : 'यथार्थ-श्रीमद्भागवत-प्रदर्शक-लोचनो ग्रन्थः ।'

(३) कृष्ण-विवरण^१—३३ पत्रों के इस ग्रन्थ में प्रारम्भ के १२ पत्रा लुप्त हैं। इसमें कृष्ण के ६ नामों—१. कृष्ण, २. नन्द-नन्दन, ३. निकुञ्ज-विहारी, ३. व्रजेश, ५. मायुरेश और ६. द्वारकेश के विवरण प्रस्तुत हैं। उक्त नामों के सम्बन्ध में भागवत के प्रसङ्ग उल्लिखित हैं। ग्रन्थकार ने अपना मुद्रकृत नाम 'राधामोहनदास' बतलाया है। 'लोचनग्रन्थ' और 'कृष्ण-विवरण' का रचनाकाल नहीं दिया गया।

(४) ब्रह्मसूत्र-भाष्य^२—३८७ पत्रों का यह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ संवत् १८९४ (१८३८ ई०) के पहले की रचना है। विश्वनाथसिंह ने संवत् १८९७ में ब्रह्मसूत्र पर विस्तृत (राधावल्लभीय-मतप्रकाशक) भाष्य लिखा। अतः पूर्ववर्ती होने के कारण बलमद्रसिंह के इस ग्रन्थ का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। इसमें राधावल्लभीय मत का स्पष्टीकरण और राधा-कृष्ण का जमेद एवं उपास्यत्व है।

(५) भागवत-टीका—बतलाया जाता है कि बलमद्रसिंह ने श्रीमद्-भागवत पर 'गोपीनां साम्प्रदायिका' नाम से टीका भी लिखी है। यह ग्रन्थ श्री रघुनाथ शास्त्री को रोवा में रहिया गाँव के श्री त्रिलोकानाथ शास्त्री से उपलब्ध हुआ था, जो नवम्बर १९५७ को काशी नागरी प्रचारिणी सभा को भेजा गया।

विभिन्न विद्वानों द्वारा रचित अनेक संस्कृत-ग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ सरस्वती-कोप-भाण्डार में हैं, जिनके ऊपरी पृष्ठ पर उन्हें बलमद्रसिंह के विख्याति ग्रन्थ^३ लिखा गया है। इससे इनकी ग्रन्थ-सङ्ग्रही वृत्ति एवं संस्कृतानुराग का परिचय मिलता है।

१. प्रथम विवरण की पुष्पिका—'अनन्तश्री-राधावल्लभीयोपक्रमे श्रीबलमद्र-धर्म-हरि-कृतौ षट्कृष्णसंहितायां आद्यं कृष्ण-विवरणम् ।'
अन्तिम पुष्पिका—'राधाकृष्णयोरैकारम्य-प्रतिपादनं नाम षट्कृष्ण-विवरणं-सम्पूर्णम् ।'

२. अन्त में उल्लेख—'समाप्तः संवत् १८९४ माह वदि गुरवारो पुष्य नक्षत्रे तद्दिन सम्पूर्णः ।' यह लिपिकाल प्रतीत होता है। अन्तिम-उल्लेख (पृष्ठ १८६) :—

'इति श्रीराधिकेतास्य पदसेवाधिकारिणः ।

कृपापात्रेण हरिणा बलमद्रेण निमिता ॥'

तथा पुष्पिका—'.....हरिवंशस्वामी-सदोयच्छास्त्र-राधावल्लभ-प्रसाद-लब्ध-गुरुदापितनाम्ना राधामोहनदासेन विरचिते ब्रह्मसूत्रभाष्ये..... ।'

३. 'विज्ञ-श्री-जयसिंहदेव-नुपतेः पुनः कनिष्ठो बली,
श्रीमद्-भागवताख्य-ग्रन्थमननारसंल्लभभक्तिः सुधीः ।
श्री राधापति-याद-पद्मपुमसंप्रीत्या नमस्सुभते,
तस्य श्री बलमद्रसिंह-गुणिनो विख्यातिग्रन्थः दामः ॥'

अग्निहोत्रि-कुल-वंशावली

करा (जिला सतना) गाँव के निवासी श्री रंचुकराम अग्निहोत्री ने संवत् १८८५ (१८२८ ई०) में संस्कृत पद्यों में प्रस्तुत इस ग्रन्थ में सरयूपार से रोका बाकर अग्निहोत्र कनेवाले मिश्र ब्राह्मणों का वंश-परिचय दिया है । ग्रन्थ की पाण्डुलिपि श्री रामप्यारे अग्निहोत्री, रोका के पास है । यह प्रतिलिपि रंचुकराम के पुत्र वंशधारी राम द्वारा संवत् १९३५ (१८७८ ई०) में तैयार की गई है । रंचुकराम भावसिंह के समकालीन औरंगज़ि कल्याणदास के वंशधर थे ।^१

संगीत-रत्नाकर-सेतु

२८३ पन्ना में लिखित यह ग्रन्थ सरस्वती-कोष-भाण्डार में पूर्ण सुरक्षित है । यह दार्शनिक-रचित महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'सङ्गीत-रत्नाकर' की हिन्दी ब्रजभाषा-टीका है, जिसे मायूर चतुर्वेदी तुलाराम के पुत्र गङ्गाराम ने रोका-नरेश महाराज विश्वनाथसिंह की सभा में 'नल' नामक संवत्सर में चैत्र शुक्ला नवमी को पूरा किया । ग्रन्थ के आरम्भ और अन्त में संस्कृत पद्यों का प्रयोग किया गया है । विश्वनाथसिंह के अनुज बलमद्रसिंह से गङ्गाराम की विद्वत्ता से सन्तुष्ट हो कर इन्हें उमराही गाँव (अमरपाटन, जिला सतना) दान कर दिया था । इनके वंशज मयूरा के रतनकुंड थोहल्ले में रहते हैं ।^२ सेतुकार गङ्गाराम ने स्वयं भी

लगभग ९ पाण्डुलिपियाँ विख्यातग्रन्थ हैं । 'विशिष्टाद्वैत-सिद्धान्त' ग्रंथ में लिपिकार की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

'शोधितो भूरि यत्नेन सेतारामाख्य-पण्डितः ।

बघेलराजपुत्रस्य बलमद्रस्य तुष्टये ।'

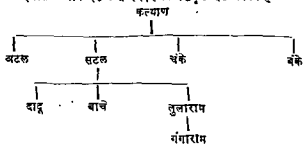
१. ग्रन्थ की पुष्पिका :

'इति श्री-अग्निहोत्र(त्रि)-जातीय-रंचुकराम-विरचिते-श्रीअग्निहोत्र(त्रि)-कुल-वंशावलिः समाप्तं शुभमस्तु ।

श्री श्री संवत् १८८५ वर्षे आषाढ शुदि २ ।

इस ग्रन्थ में ९ परिच्छेद हैं तथा अन्त में वंशवृक्ष है ।

२. चतुर्वेदी—गणेशदत्त : 'नोट आन गंगाराम सन आक तुलाराम' एनत्स—भाग ३४ : ग्रन्थकार का वंशवृक्ष इस प्रकार है—



अपना परिचय दिया है।^१ इनको इस हिन्दी टीका का उल्लेख अग्र्यत्र भी प्राप्त है।^२

आचार्य प्रियादास के ग्रन्थ

आचार्य प्रियादास द्विज-हरिवंश (गोकर्णों वाली) द्वारा प्रचलित राधा-मलयमयी सम्प्रदाय के एक शास्त्र थे।^३ ये विद्वन्मूर्ति के दोषा-गुण और प्रेरक थे।^४ विद्वन्मूर्ति द्वारा बनलाई हुई यह गुण-सिध्य-परम्परा इस प्रकार है।^५

१. सरस्वती-नीच माण्डार को प्रति : बरता ४७ एटाक १७ : अन्त के पुष्ठ में : ।

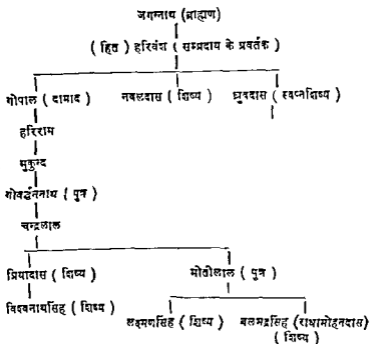
'सङ्गोत्तरनाकर-गुर्विमाह्य-नारानिधेस्तत्परणीकहेतुः ।
 सेतुश्च सीमेश-नरेन्द्र-विद्वन्मूर्तिमानुक्तमा-वल्लतः कृतो मे ॥
 गङ्गोत्तरनाकरसंगुरेयं वातः समान्ति कृत्वा अग्र्यत्र ।
 श्रीने गिते रामअनुहितयो द्वि वर्षे मले चाग्र्यत्रनेकगुरुषु ॥
 तुलाराम-समूजेन गङ्गारामेण गुरिणा ।
 गामुरेण कृतः सेतुविद्वत्तरण-हेतयं ॥'

२. निदनाङ्क-शार्ङ्गदेव : सङ्गोत्तरनाकर : हरिगारामण जाष्टे : आनन्दाश्रम संस्कृत संघपालि : पूना : १८९६ प्रस्तावना पुष्ठ २-१ । सङ्गोत्तरनाकर को रचना देवगिरि के मादर नरेश सिद्धधन (१२१०-४७ ई०) के आश्रम में हुई । १८७६ ई० में भी एत० पी० शीव ने कलकत्ता से इस ग्रन्थ का प्रथम अध्याय सिंह-गुपाल-कृत टीका के साथ प्रकाशित किया था । इस संस्करण की प्रस्तावना में संघ की ४ संस्कृत, १ हिन्दी और २ आधुनिक टीकाओं के उल्लेख हैं । यह हिन्दी टीका गङ्गाराम-कृत बतलायी गई है ।

३. स० की० मा० : मनिप्रभा (प्रियादास कृत) : १८०७ ई० : वचना—
 'मेन मे मोदिता कृष्ण-नीत-माधुर्म-मूर्तिना ।
 भारती बदनाज्जाता तं द्विताह्वयत्रं मजे ॥'

४. सत्सिद्धांत (विद्वन्मूर्तिह-कृत) (१८३३ ई० से पूर्व : स० की० मा० : प्रारम्भिक मङ्गलाचरण-तस्य सिध्योऽस्यदाचार्यः परमानन्दरूप-याम् । गुणने श्री प्रियादासो निरयं तस्ये गयो गयः ॥'

५. यही । साथ ही देन्दिये बलनद्रसिंह-कृत मद्रागुणभाष्य : मङ्गलाचरण । स० की० मा० ।



प्रियादास दक्षिण में सूरत के पास रामपुरा गाँव में उत्पन्न हुए थे। १२ वर्ष की आयु में इन्होंने गुन्दावन में गोस्वामो चन्द्रलाल से दीक्षा प्राप्त की। तीर्थयात्रा करते समय ये रीवा-नरेश जयसिंहदेव द्वारा सम्मानित हुए थे तथा पीछे भी कई बार रीवा आये। विश्वनाथसिंह को कर्षण प्रार्थना से द्रवित होकर इन्होंने उन्हें दीक्षा देने की स्वीकृति दी। संवत् १८७५ (१८९९ ई०) में ये गोलोववासी हुए। डा० हरदत्त शर्मा ने इनके ग्रन्थ सुसिद्धान्तोत्तम (प्रकाशित) पर सम्पादक की टिप्पणी का उल्लेख दिया है, जिसके अनुसार प्रियादास विश्वनाथसिंह के सभासद थे। यह टिप्पणी भ्रामक है, क्योंकि प्रियादास की मृत्यु तक विश्वनाथसिंह युवराज ही थे। प्रियादास विशुद्ध कृष्णमवत तपस्वी थे और उनका अधिकांश जीवन गोकुल में ही बीता। शर्मा जो ने १९ वीं शती के प्रथम चतुर्थांश में इनका ग्रन्थ-रचना-काल माना है।^१

१. शर्मा हरदत्त : 'दि वैष्णव फिलासफर प्रियादास एण्ड हिज वर्क्स :'
६० हि० भाग २६ कलकत्ता, १९४०। साथ ही देखिये, रघुराजसिंह :
नक्षत्रमाला { राम-रसिकावली } : { प्रकाशित } जम्बई : प्रियादास का
विवरण : तथा युमलदास : विश्वनाथसिंह-चरित्र (प्रकाशित) : सरस्वती
कीर्ति माण्डार, रीवा।

ग्रन्थों में प्राप्त रचनाकालों को देखते हुए हम इस काल को १८०५ ई० से १८१९ ई० तक मान सकते हैं। इनकी रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

१. श्रुतिसूत्र-तात्पर्यामृत (स्व-रचित 'महत्प्रिया' टीका सहित)

३३ पत्रों में लिखित यह पाण्डुलिपि कार्तिक कृष्ण एकादशी सं० १८७० (१८१३ ई०) की रचना है। इसमें ब्रह्मसूत्र के ४४ सूत्रों को परामर्शित एवं ज्ञान, इन दो प्रकरणों में विभाजित कर उनकी व्याख्या की गई है। इसमें राधावल्लभीय मत के आधारभूत सिद्धान्तों का प्रतिपादन है।^१ विश्वनाथसिंह की समस्त दार्शनिक कृतियों का यही ग्रन्थ सैद्धांतिक स्रोत है। प्रियादास ने अपने अन्तिम समय में इसी ग्रन्थ के आधार पर विश्वनाथसिंह को ब्रह्मसूत्र-भाष्य लिखने की आज्ञा दी थी। विश्वनाथसिंह ने इसे कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार किया है तथा सुसिद्धान्तोत्तम और सुमार्ग नामक दो और ग्रन्थ प्रियादास-रचित होने की सूचना दी है।^२

१. सं० को० भा०, रीवा (बस्ता १५ स्टाक ८६) : अन्तिम पृष्ठिका-
'इति श्री श्रुतिसूत्र-तात्पर्यामृत-टीकायां महत्प्रियायां प्रियादासाचार्य-
विरचितायां सकलज्ञानप्रकरणं द्वितीयं सम्पूर्णम्।' तथा प्रारम्भिक
श्लोक—'भक्तिं मायवतांश्चैव नत्वा श्री राधिकापतिम्।

वन्देह्यं श्रुतिसूत्रायां तात्पर्यामृतमुत्तमम् ॥'

भाण्डार में ५ पत्रा की दूसरी खण्डित प्रति (बस्ता १५ स्टाक ७२)
तथा तीसरी प्रति वंशधर रघुबरदास द्वारा 'बाबू विश्वनाथसिंह जू
देश' के निमित्त सं० १८७३ में लिखी हुई है। इन प्रतियों में रचना-
काल के प्रदर्शक श्लोक नहीं हैं, किन्तु सुसिद्धान्तोत्तम की सम्पादकीय
टिप्पणी में किसी प्रति के आधार पर यह चल्लेख प्राप्त है—

'हरिदेवस्य...श्री प्रियादासो निर्ममे ग्रन्थमुत्तमम्।'

२. निशासागर पुस्तकालय, रीवा में प्राप्त पाण्डुलिपि : राधावल्लभीय-
मत-प्रवर्तक-ब्रह्मसूत्र-भाष्यम् (विश्वनाथसिंह-कृतम्) : पृष्ठ ७ :
उपोद्घात-स च सुसिद्धान्तोत्तम-सुमार्ग-श्रुतिसूत्रतात्पर्यामृताशौ न् ग्रन्थान्
विधाय सकल-मताविरोधं प्रदर्श्य श्रीरावाकृष्णप्रेमाकुल-हृदयविरचमिह
श्लोके दिव्यरितुमनिच्छन् मामुपदिश्य निजश्रुतिसूत्रतात्पर्यामृतग्रन्थ-
मज्ञानुसारेण श्रीमद्वेद-वेदव्यास-सूत्र-विस्तर-व्याख्यां कर्तुमनुशास्य च
वाङ्मनोगोचरातीत-रासमन्त्रं गत्वात्कृतवान् ।...स एवेशनी श्री
बान्धवाधीश्वरमहाराजाधिराज-सिद्धिधोजपतिहृदेव-उपेष्ट - तनय-विश्व-
नाथसिंहदेवनाम्नो मम हृदयकमलस्थित उभयपत्रोपदेशकस्ततात्पर्यवृत्त्या

डा० बिजयेन्द्र स्नातक ने विश्वनाथसिंह की इस कृतज्ञता का यहाँ तक भ्रामक आशय निकाला है कि सम्भवतः प्रियादास ने ही (राधावल्लभोप-प्रकाशक) ब्रह्मसूत्र-भाष्य लिखा और उसमें नाम विश्वनाथसिंह का दे दिया। अपने कोई ठोस तर्क न देते हुए एक परम्परा मात्र की ओर सद्धेत किया है कि कविगण राजाओं को प्रसन्न करने के लिए उनके नाम से रचनाएँ करते थे।^१ विजयेन्द्र जी का यह तर्क उस भाष्य के विषय में है जो १८९७ वि० की पूर्ण हुआ, जब कि प्रियादास जी का निधन १८७५ वि० में ही हुआ था। इस भ्रम के निवारण के लिए संक्षेप में इतना बहना पर्याप्त है कि बिजयेन्द्र जी के ये तर्क कल्पित एवं आधारहीन हैं। विश्वनाथसिंह के प्रायः समस्त ग्रन्थों में प्राप्त पुष्पिकाएँ, संस्कृत और हिन्दी में रचित उनके ग्रन्थों की बृहत् संख्या, ग्रन्थों में प्राप्त प्रौढ़ लेखनी का चमत्कार, रघुराजसिंह द्वारा लिखित 'रामरसिकावली' आदि कई ग्रन्थों में तथा युगलदास द्वारा लिखित 'विश्वनाथसिंह-चरित्र' में विश्वनाथसिंह की प्रखण्ड विद्वता और शास्त्रज्ञता तथा तत्कालीन शास्त्रार्थों में उनकी विजयों के उल्लेख यह सिद्ध कर देते हैं कि उन्हें अपने नाम से किसी अन्य विद्वान् द्वारा ग्रन्थ लिखाने की अपेक्षा न रही होगी तथा स्पष्ट रूप से वे अनेक ग्रन्थों के रचयिता हैं (जैसा हम आगे देखेंगे); हां अवश्य ही उन्होंने गुरुशर्कों का अनुसरण किया।

२. सुसिद्धान्तोत्तम (स्वरचित अनूत्तमा टीका सहित)

इस ग्रन्थ में विशदकारण, द्विविधा भक्ति, जीवदास्य, सुमतनिर्णय और परमानन्द-प्राप्ति-कारण नाम से ५ विधामें है। यह ग्रन्थ प्रयाग में लिखा गया।^२ ग्रन्थकार ने स्वयं ही 'अनूत्तमा' टीका भी लिखी है तथा अपने गुरु चन्द्रलाल के प्रति वैसी ही कृतज्ञता प्रदर्शित की है जैसी पीछे विश्वनाथसिंह ने उनके प्रति

वाङ्मनोगोचरातीत-भोरामचन्द्र-निरूपणे व्यासस्य तात्पर्यभ्रमगत्य तत्सूत्राणां व्याख्यामारभते।'

इस कथन में यह स्पष्ट है कि गोलोकवासी प्रियादास विश्वनाथसिंह के हृदय में स्थित होकर रचना कर रहे हैं। अर्थात् विश्वनाथसिंह ने रचना की।

१. 'राधावल्लभ-संप्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य' शोधग्रन्थ : दिल्ली : पृष्ठ १२६-३१।
२. रघुराजसिंह : रामरसिकावली (भक्तमाला) : प्रियादास का विवरण। साथ ही देखिये, सरस्वती भाण्डार की सम्पूर्ण प्रति।

प्रकट की । ग्रंथ पाण्डित्य और प्रमाणों से भरपूर है । रचनाकाल १८११ ई० से पूर्व है, इस वर्ष की एक पाण्डुलिपि प्राप्त है ।^१

सुसिद्धान्तोत्तम ग्रन्थ से चार ग्रन्थों की उत्पत्ति बतलायी गई है—

‘एतस्माद्भूतमाच्छास्त्राज्जातं ग्रन्थ-चतुष्टयम् ।

‘तत्त्वनिश्चय-वेदान्तसार-भक्तिप्रभादिकम् ॥’

इनमें से ‘तत्त्वनिश्चय’ और ‘वेदान्तसार’ सरस्वती कोय भाण्डार में प्राप्त नहीं है । तीसरा ग्रन्थ ‘भक्तिप्रभा’ प्राप्त है । ‘वेदान्ततत्त्व’ और ‘सुमार्ग’ क्रमशः १९ और २३ श्लोकों में एक ही पत्रा के दोनों ओर लिखित कई पाण्डुलिपियों के रूप में प्राप्त है । ‘आदिकम्’ शब्द से ‘सुमार्ग’ अभिप्रेत प्रतीत होता है । वेदान्तसार और वेदान्त-तत्त्व पृथक् ग्रंथ जान पड़ते हैं । भक्तिप्रभा अपने आप में महत्वपूर्ण है । यह चार मयूखों में कुल १७ श्लोकों में है; साथ में ग्रन्थकार द्वारा की हुई टीका ‘सुलोचना’ भी है । पूरे ग्रंथ में कुल ११८ पत्रा है ।^२

१. प्रकाशित, काशी : अन्तिम पुष्पिका—‘इति श्री सुसिद्धान्तोत्तमे प्रियादासाचार्य-विनिर्मिते परमानन्द-प्राप्ति-कारण-वर्णनो नाम पञ्चमो विधामः ॥ टीका के अन्त में ‘श्री संवत् १८६७ माघ सुदि दशम्याम् । श्री । टीका के आरम्भ में—‘सुसिद्धान्तोत्तमाख्यस्य वक्ष्ये टीका-मनूतमाम् ।’

‘इह खलु सद्गुर्वनुग्रहतो भगवांश्चन्द्रलालाचार्यः ‘प्रियादासान्तर्यामी’ । तमेव ग्रन्थकारं कृत्वा तद् द्वारा सुसिद्धान्तोत्तमशास्त्रं विरचय्य तस्म व्याख्यामपि चकार ।’

सरस्वती कोय भाण्डार में इस ग्रंथ के तृतीय विधाम की एक पृथक् पाण्डुलिपि १८४० ई० में लिखित है । १८ पत्रों में प्रथम विधाम की दूसरी पाण्डुलिपि (बस्ता १५ स्टाक १८) तथा १७ पत्रों में द्वितीय, चतुर्थ, पञ्चम विधामों से युक्त तीसरी पाण्डुलिपि (बस्ता १७ स्टाक १०५) में लिपिकाल का उल्लेख नहीं है ।

२. सरस्वती-कोय-भाण्डार, किला, रोवा : (बस्ता १७।१०७) : सुसिद्धान्तोत्तम के सम्पादक ने वेदान्तसार के रचनाकाल की सूचना दी है—स्वरचित वेदान्तसारटीकायामयमेव प्रियादासाचार्यः—

‘समाकारि समाप्राप्ते समासेन सतां प्रियम् ।

इदं वेदान्तसारं वै स्वर्ण्यरीमेन्दु-वत्सरे ॥’

अर्थात् संवत् १८६४ (१८०७ ई०) में वेदान्तसार लिखा गया और आचार्य ने स्वयं ही उसको भी टीका लिखी । भक्तिप्रभा का भी यही रचनाकाल है—देखिये अन्तिम श्लोक ‘अर्ण्यरीमेन्दुवत्सरे’ ।

३. वैष्णव-सिद्धान्त

६ पन्ना और ५४ श्लोकों में यह ग्रन्थ पुष्टि मार्ग का पोषण करता है^१ ।

४. दीक्षा-सार-निर्णय

गुरु-शिष्य-संवाद के रूप में १३ पत्रों में यह पद्यात्मक ग्रन्थ है।^२

५. चतुःश्लोकी-भागवत

श्रीमद्भागवत के चार श्लोकों पर प्रियादास ने इस नाम से 'सर्वमङ्गला' टीका लिखी है।^३

डा० हरदत्त शर्मा ने 'चतुःश्लोकी भागवत के अतिरिक्त प्रियादास-कृत उपर्युक्त सभी ग्रन्थों का उल्लेख किया है।^४

६. भक्ति-सिन्धु-प्रेम-तरङ्गिणी

इसका लिपिकाल १८९३ वि० है।^५

७. सुमत-निर्णय — इसका रचनाकाल १८१५ ई० है।^६

विरवनाथसिंह के ग्रन्थ :

विरवनाथसिंह का साहित्य-सर्जन हिन्दी और संस्कृत दोनों क्षेत्रों में है, किन्तु उनका संस्कृतसाहित्य प्रौढ़तर है। वे भगवान् राम के उपासक थे। प्रियादास कृष्णोपासक थे, किन्तु विरवनाथसिंह को कवि का उन्होंने ध्यान रखा और उन्हें 'उभयमन्त्रोद्देश' (कृष्ण और राम दोनों की उपासना) से दीक्षित

१. सं० को० भा० : बस्ता १३८ स्टोक ३८ ।

२. वही, भाषोराम द्वारा संवत् १८७९ (१८२२ ई०) में लिखित ।

३. वही, बस्ता ८०।१९०। इस ग्रन्थ की दो और प्रतियाँ (बस्ता ८०।१५-५ तथा ८०।१५-२) भाण्डार में हैं। पहली सं० १८९२ (१८३५ ई०) और दूसरी १८८८ वि० (१८३१ ई०) में अयोध्यालाल द्वारा रोवा में लिखी गईं। दो अन्य प्रतिलिपियाँ (८०-१५।१ तथा ८०।१५-४) भी हैं, जिनमें अधिक विस्तृत व्याख्या है, किन्तु रचनाकाल, लिपिकाल और लिपिकार का उल्लेख नहीं है।

४. 'दि वैष्णव किलासकर प्रियादास एण्ड हिज बक्स' : ६० हि० भाग १६ : कलकत्ता : १९४० ।

५. ना० प्र० सं०, काशी के रोवा स्थित प्रतिनिधि को १९५६ ई० में प्राप्त ।

६. सरस्वती-कोष-भाण्डार, रोवा ।

क्रिया । परिणामस्वरूप, जहाँ प्रियादास के ग्रन्थ कृष्ण-पर्यवसायो है, वहाँ विश्व-
नाथसिंह के ग्रन्थ श्री राम की ही सर्वशक्तिसम्पन्न पूर्ण ब्रह्म स्वीकार करते हैं।^१

विश्वनाथसिंह का यह उपासना-परक साहित्य चार कोटियों में विभक्त किया
जा सकता है—(क) अष्टात्मपरक सिद्धान्त-प्रतिपादक ग्रन्थ ।

(ख) अष्टात्मपरक टीकाएँ ।

(ग) काव्य ।

(घ) लक्षणग्रन्थ ।

कोई भी ग्रन्थ प्रकाशित नहीं है ।

(क) १. राधावल्लभीय-मत-प्रवर्तक-ब्रह्मसूत्रभाष्यम्^२

विश्वनाथसिंह की कृतियों में तथा बबेलखण्ड के सम्पूर्ण साहित्य में इस
ग्रन्थ को प्रथम स्थान दिया जा सकता है । हित-हरिवंश के राधावल्लभीय मत के
प्रतिपादक ग्रन्थों में तथा भारतीय दर्शन-ज्ञान में इसे एक स्वावलम्बी मौलिक
महत्त्व दिया जाना चाहिए । यह ब्यास के वेदान्त-सूत्रों पर विस्तृत भाष्य है ।

१. वही, विश्वनाथसिंह-कृत-राधावल्लभीय-ब्रह्मसूत्रभाष्य : मङ्गलाचरण :
श्लोक २

‘स श्रीरामोऽवतान्नः परमपरतमः प्रेयसोभावगम्यः ।’

२. संस्कृत वर्कसं : ज० रा० ए० सो० : २९ अक्टूबर १९४० में उल्लि-
खित आठे० भाग १।३८५ शिक्षासागर पुस्तकालय रोवा में १ प्रति
और सरस्वती-कोष भाण्डार, रोवा में ३ पाण्डुलिपियाँ हैं । शिक्षा-
सागर की प्रति सं० १९०४ (१८७४ ई०) की लिखे हुए पत्रों
में है ।

अन्तिम पुष्पिका—

‘इति श्रीमद्-भगवदवतार-वेदार्यनिर्णायक-श्रीमद्देव-वेदान्ताचार्य-श्रीमद्-
वेदव्यासकृत - वेदान्तसूत्राणां सिद्धि-श्रीमहाराजाधिराज - श्रीमहाराजा-
श्रीराजाबहादुर-श्रीसीतारामचन्द्र-कृपापात्राधिकारि-विश्वनाथसिंहजुदेव-
कृते श्रीराधावल्लभीयमतप्रवर्तकभाष्ये चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥
चतुर्थाध्यायस्य मिद्धः ४ श्लो० भूयात् ॥ श्रीसीतारामचन्द्राय (भ्यां)
नमः ॥ मितो ज्येष्ठ शुक्ल नवमो संवत् १९०४ ।’

रचनाकाल के लिये देखिये अन्तिम श्लोक—

‘अन्दे सप्तनवाष्टेन्दावविरोधिन्ववजिते ।

वैशाख शुक्ल-पञ्चम्यां भाष्यास्फारम्भणं कृतम् ॥

भाष्यस्य कृष्ण-पञ्चम्यां पूर्णतां समगादिदम् ।

विश्वनाथोदितं भाष्यं भूयाद् वैष्णव-तोषदम् ॥’

यह ग्रन्थ बेशाख शुक्ल पञ्चमि सं० १८९७ (१८४० ई०) को प्रारम्भ होकर उसी वर्ष माघ कृष्ण पञ्चमि (१८४१ ई०) को सम्पूर्ण हुआ । साढ़े आठ माह में लिखित यह बृहदाक्षर सिद्धान्त-ग्रन्थ विश्वनाथसिंह की प्रकाण्ड विद्वता, अद्भुत रचनाशक्ति और मौलिक विचारधारा का सूचक है ।

२. सर्वसिद्धान्तम्^१

८९ पन्ना के इस ग्रन्थ में पाँच सिद्धान्तों के पृथक्-पृथक् प्रतिपादन है । यह ग्रन्थ मिथुकाचार्य ओझा^२ और राजकुमार विश्वनाथसिंह के मध्य संवाद के रूप में है ।

मिथुकाचार्य को मिथिला से वेदान्त में शास्त्रार्थ करने के लिए आमन्त्रण मिला था । इन्होंने विश्वनाथसिंह से विषय का मन्थन किया और शास्त्रार्थ में विजयी होकर लौटे । यही पूर्व चर्चा संवाद-शैली में अङ्कित की गई । प्रतिपादित विषय को 'द्वैत मत' बतलाया गया है । प्रथम सिद्धान्त है राम का परश्व । द्वितीय में राम के नाम, रूप, लीला, धाम और गुण का नित्यत्व निरूपित है । तृतीय सिद्धान्त में प्रतिविम्बादिवाद और श्रुति-सूत्र-विचार है । चतुर्थ में आचार्यों की उत्पत्ति और मत-समन्वय प्रदर्शित है । पञ्चम-सिद्धान्त के अन्तर्गत वेष्णवों की आचार-पद्धति और भक्ति की विधाएँ वर्णित हैं । अन्त में चारों वेष्णव सम्प्रदायों की गुरु-शिष्य-परम्परा प्रस्तुत की गई है । रचनाकाल का कहीं निर्देश नहीं है, किन्तु 'राजकुमार' शब्द का प्रयोग होने से इसे १८३४ ई० से पूर्व रचित मानना होगा ।^३

१. सरस्वती-शोष-भण्डार, किला, रीवा । तीन सिद्धान्तों तक की एक प्रति मिशनामागर पुस्तकालय, रोदा में (क्रमांक १३२२) प्राप्त है । साथ ही देखिये, आर्क० भाग १।७०२-७०३ तथा भाग ७।२३२९ : कंठे अथ० भाग ३।२० ; ५।२४ ; १३।९८; ११८ मित्रा० भाग ७।२३२९ ।

२. विश्वनाथसिंह-चरित्र : युगलदास कृत : (सं० ११११) :
'आदि मिथुकाचार्य पंडित मंडित जित सभा ।
रचत ग्रन्थ ओ कर्म राजहूँ को कछु करत है ॥'

३. धरो :

'मिथुकाचार्य ओझा जान मिथिला को कहे,
तहाँ धार हीइगी वेदान्त ही में सुमहान ।
द्वैत मत कोजे, सुनि तिर्नाहि लगाइ दीजे,
सुनि सुनि अर्थ कीन्हों, सुनि तेऊ हरपान ॥

३—रामरहस्यत्रयार्थः ।

प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रथम रहस्य के रूप में अष्टाशर मन्त्र 'ॐ नमः सीतारामान्याम्' की व्याख्या, दूसरे रहस्य के रूप में मन्त्रद्वय 'श्रीमद्रामचन्द्र-धरणी धरणं प्रपद्ये' और 'श्रीमते रामचन्द्राय नमः' को मिलाकर पञ्चविंशतिशर मन्त्र की साधना तथा तीसरे रहस्य के रूप में शरणागति के महत्त्व का प्रतिपादन है । ग्रन्थ में मङ्गलाचरण का एक श्लोक छोड़ने पर कुल ८ श्लोक हैं, जिनकी व्याख्या 'रामरहस्यत्रय-प्रकाशिनो टीका' नाम से ग्रन्थकार की आज्ञा से रामानुजदास ने लिखी है । ग्रन्थ की पुष्पिका में 'महाराज' शब्द है तथा एक टीका का लिपिकाल सं० १८६४ है ।^१

अतः रचनाकाल १८३४ से १८३७ ई० के बीच हो सकता है ।

सरव-सिद्धान्त पुनि ग्रन्थहि बनाइ दोन्ही
जामें सीताराम पर पांचहि सिद्धान्तवान ।
ताहि पढ़ि जीति आए तहां ते बवारज जू
परसंख्यो विश्वनाथ आपु सों न कोऊ जान ॥'

अन्तिम पुष्पिका : 'इति श्री सर्वसिद्धान्ते श्रीमहाराजकुमार-श्रीबाबूसाहेब विश्वनाथसिंह-विरचिते मिस्रकाचार्य-संवादे पञ्चमः सिद्धान्तः समाप्तः ॥ संवत् १८८९ के साल मिति मार्ग सुदि १४ का लिखा ॥' संवाद शैली—'श्री राजकुमार श्री विश्वनाथसिंह ! सर्वतः परः पदार्थः कः सर्वप्रतिपादितं सर्वाविष्टं मतं किं कर्तव्यं च किमिति ?

श्री मिस्रकाचार्य शृणु । सर्वतः परः पदार्थः श्रीरामचन्द्रः...।'

१. शिवासागर पुस्तकालय, रीवा : क्र० १३०१ : पन्ना १५ (टीकासहित) : मूल की पुष्पिका—'इति श्रीमहाराजाधिराज-श्रीमहाराज-श्रीराजाबहादुर-श्रीसीतारामचन्द्रकृपावात्राधिकारि-श्रीविश्वनाथसिंहकृत-श्रीरामरहस्य-त्रयार्थः समाप्तः ।' तथा टीका की पुष्पिका 'इति श्रीमद्रामानुजदास-कृता श्रीरामरहस्यत्रयप्रकाशिनो-नाम टीका-समाप्ता । सावन सुदि ५ संवत् १८९४ सीताराम ।'

टीकारम्भ—श्रीरामानुजनामासावष्टश्लोकी यथामति ।

श्रीविश्वनाथराजेन्द्राश्रितो व्याकुरुते मुदा ॥ २ ॥

इसी पुस्तकालय में प्राप्त एक अन्य प्रति में संवत् के अङ्क लुप्त है—
'शुद्ध चैत्र द्वितीया संवत्...रीवा राजे ।'

युगलदास के अनुसार रामानुजदास अयोध्या के रत्नसिंहासन मठ के महन्त थे ।^१ रघुराजसिंह ने इन्हें अपना विद्यागुरु बतलाया है । ये रामचन्द्रपाद के शिष्य थे ।^२

४. राम-मन्त्रार्थ-निर्णयः

इस ग्रन्थ की पुष्पिका में विश्वनाथसिंह के लिए 'महाराजा' शब्द है ।^३ चिन्ताहरण चक्रवर्ती के अनुसार इस ग्रन्थ की एक प्रति बंगला लिपि में है, जो सं० १९०७ (१८५० ई०) में लिखी गई । अतः यह ग्रन्थ १८३४ से १८५० ई० के बीच कभी निर्मित हुआ ।^४ यह मूलतः गद्यात्मक है । इसमें राममन्त्र का विवरण है । युगलदास ने इसका नाम 'राम-मनु-अर्थ' बताया है ।^५

५. रामपरत्वम्

इसका विवरण अध्याय ४ (४) में प्रस्तुत किया जायगा ।

६. तरवमस्यर्थ-सिद्धान्तः

५४ पत्रा में लिखित इस समग्र ग्रंथ में तत्त्वमसि महावाक्य का विवेचन है । रचनाकाल का निर्देश नहीं है, किन्तु पुष्पिका में 'महाराज' शब्द होने से रचनाकाल १८३४ से १८५४ ई० के मध्य होगा ।^६

१. सं० को० भा० : विश्वनाथसिंह-चरित्र (प्रकाशित) : 'रामानुजदास भें महन्त श्री अयोध्या के' ।
२. रघुराजसिंह-कृत रामरसिकावली (भवतमाला) : विश्वनाथसिंह का विवरण तथा राम-स्वयंवर : प्रकाशित-वैकटेश्वर प्रेस, बम्बई : सं० १९८० पृष्ठ ९७० : 'विद्यागुरु रामानुजदासा ।' साथ ही देखिये, आनन्दाम्बुनिधिः प्रकाशित : बम्बई : अन्तिम विवरण ।
३. सं० को० भा० । १ प्रति में १९ पत्रा (बस्ता १३० स्टाक १२७।३) और दूसरी में १८ पत्रा (बस्ता १३०।१२९) हैं । दोनों सम्पूर्ण हैं । दूसरी में लिपिकाल सं० १९१० : चैत्र कृष्ण ३ भुगो (१८५४ ई०) है । पुष्पिका—'इति श्री सिद्धिश्चोमहाराजाधिराज-श्रीमहाराजा विश्वनाथसिंहदेवकृतमन्त्रार्थनिर्णयः सम्पूर्णः समाप्तः शुभम् ।'
४. 'संस्कृत वक्त्रसं० : ज० रा० ए० सो० : अवतूबर २९; १९४० : साथ ही देखिये आफे० भाग १ । ५१८ : कैटे० अवष : भाग ५।२८ : १५।१२८ ।
५. विश्वनाथसिंह-चरित्र : सं० १९११ ।
६. सं० को० भा० १२।२४ : प्रारम्भ का उल्लेख—'वक्ष्येऽहं विश्वनाथः कुमल-गज-रिपुं तत्त्वमस्यर्थसारम्' ॥ १ ॥ तथा पुष्पिका—'इतिश्चो

(ख) अध्यात्मपरक टीकाएँ

१—ज्योत्स्ना (सुमार्ग की टीका)

पोछे प्रियादास के ग्रन्थों में 'सुमार्ग' नाम आया है। विश्वनाथसिंह ने इसकी टीका 'ज्योत्स्ना' नाम से लिखी है। ३९ पत्रों के इस ग्रन्थ का निर्माण संवत् १८८४ (१८२७ ई०) में हुआ।^१ हरदत्त शर्मा ने इसे हिन्दी में रोवा को बोली में लिखित सरस्वती कोष भाण्डार में उपलब्ध बतलाया है।^२ सम्भव है, इस नाम से हिन्दी टीका भी लिखी गई हो, किन्तु उपलब्ध नहीं हुई।

२—बाल्मीकि-रामायण की तात्पर्य-तरणि टीका

बालकाण्ड के अतिरिक्त दोष समस्त काण्डों की संयुक्त पाण्डुलिपि प्राप्त है, जो संवत् १९०२ (१८४५ ई०) में चित्रकूट में लिखी गई। सुन्दरकाण्ड के लिपिकार कामतादास और दोष काण्डों के लाला माधोप्रसाद हैं। टीका का नाम तात्पर्य-तरणि-सम्बन्ध है। पृथिव्या में महाराज शब्द होने से रचनाकाल सं० १८९१ (१८३४ ई०) और १९०२ (१८४५ ई०) के बीच होगा।^३

सिद्धिश्री-महाराजाधिराज - विश्वनाथसिंहकृत—छान्दोग्योपनिषद्-उत्तर-
मस्यर्ष-सिद्धान्तः समाप्तः ॥

१. सं० को० भा० : वस्तु १३१ । १०६ : अन्तिम उल्लेख—

'अग्ने वेद-गजेम-चन्द्र-गणिते (१८८४) पक्षेऽवलक्षे शुचे-

वरि सोमसुतेऽष्टमो-तिथियुते श्रीविश्वनाथाभिधः ।

लोकानामुपकारिकां रघुपतेः प्रोत्थं सुटीकामिमां

ज्योत्स्नां नाम सुमार्ग्यां गुरुमतां पूर्णामकार्षीन्मुदा ॥

इति सुमार्ग्या टीका समाप्ता ।.....संवत्

१८८५ के मार्ग वदि ७ का लिखा दलई..... ॥'

साय ही देखिये, रामरसिकावली: पृ० १८६ :

'गुरु-ग्रंथ सुमारग-तिलक..... ।

२. 'बाघेल रूतसं० ।'

३. पं० नन्दकिशोर पीप्टाचार्य, रीवा के समीप प्राप्त । अयोध्याकाण्ड-पौष वदो ७ पत्रा ८ : अरण्यकाण्ड पौष सुदो १० पत्रा १७ : किष्किन्धाकाण्ड पौष वदो ११ पत्रा १० : सुन्दरकाण्ड-भाष वदो १३ पत्रा १३ : युद्धकाण्ड-भाषवदो ६ पत्रा १३ : उत्तरकाण्ड-भाष वदो ११ पत्रा २८ सभी में संवत् १९०२—(१८४१-४६ ई०) है।

अयोध्याकाण्ड की पृथिव्या—

'इति सिद्धिश्री-महाराजाधिराज-विश्वनाथसिंहजुदेवकृत-श्रीमद्बाल्मीकि-

३—अध्यात्म-रामायण की ध्वनि-प्रकाशिका टीका

रघुराजसिंह^१ और युगलदास^२ दोनों ने इन टोका का उल्लेख किया है। यह ग्रन्थ तुलसी-संग्रहालय रामवन (सतना) में उपलब्ध है। पाण्डुलिपि का नाम 'ध्वनि-प्रकाशिका' टीका है किन्तु अन्तिम उल्लेख में 'व्यङ्ग्य-प्रकाशिका' नाम भी है। रचनाकाल, लिपिकाल या लिपिकार का कोई उल्लेख नहीं है। पुष्पिका में महाराज शब्द होने से १८३४ और १८५४ ई० के बीच ग्रन्थ-रचना हुई होगी।^३

४—श्रीमद्भागवत-तिलक (चण्डभास्कर)

रघुराजसिंह ने इसकी गणना संस्कृत ग्रन्थों में की है।^४ काशी-नरेश ने विश्वनाथसिंह के समीप देवी-भागवत भेजा था। विश्वनाथसिंह ने 'चण्ड-भास्कर'

रामायणोप-अयोध्याकाण्डस्य तारयन्-तरणि-नाम्नि सन्दर्भे ।
कृष्णमाचारियर के अनुसार आधे ने रामायण के टीकाकारों में विश्वनाथसिंह को भी माना है (हि० बला० सं० लिट्० पृ० २४) ।

१. राम-रसिकावली (भवउमाला) : अम्बई : पृष्ठ ९८९ :

'तिलक अध्यात्महूँ केरो....'

तथा आनन्दाश्वनिधि : अम्बई : पृष्ठ ६ :

'रामायण अध्यात्महि तिलकै । तिलक चारमोकी किय भल के ॥'

२. विश्वनाथसिंह-चरित्र (प्रकाशित) : सं० को० भा० ।

३. रामवन-पाण्डुलिपि क्रमाङ्क ११६० : अन्तिम उल्लेख—

'अध्यात्म-रामायणस्य टीका व्यङ्ग्य-प्रकाशिका ।

श्री विश्वनाथ-स्वागतःस्थ-श्रीरामेण प्रकाशिता ॥

इति सिद्धि-धीमहाराजाधिराज-श्रीविश्वनाथसिंह-विरचितायां बृहद्-ब्रह्माण्डपुराणान्तर्गताध्यात्मरामायण-टीकाया उत्तरकाण्डे नवमोऽध्यायः ।
ग्रन्थ के शरम्भ में स्वामी रामानुज और प्रियादास की वन्दना की गई है ; सखी सम्प्रदाय के मतों का प्रतिपादन है। बालकाण्ड में ७ अध्याय—५५ पत्रा, अयोध्या में ६ अध्याय—३२ पत्रा, अरण्य में १० अध्याय—३७ पत्रा, किष्किन्धा में ६ अध्याय—३६ पत्रा, सुन्दरकाण्ड में ५ अध्याय—२१ पत्रा, युद्धकाण्ड में १६ अध्याय—९५ पत्रा और उत्तरकाण्ड में ६ अध्याय—७७ पत्रा है। ७७ से ८६ पत्रा तक मरदाज-वशिष्ठ-संवाद के रूप में परमधाम का वर्णन जुड़ा हुआ है।

४. आनन्दाश्वनिधि : पृ० ६ : 'तिलक भागवत की अति भारी ।'

नाम से श्रीमद्भागवत की टीका लिख कर भेजी और उसकी श्रेष्ठता प्रमाणित की ।^१ ग्रंथ उपलब्ध नहीं हो सका ।

५—वेदस्तुति-टीका

मुगलदास ने विश्वनाथसिंह के संस्कृत-ग्रन्थों में इस कृति का उल्लेख किया है ।^२ सरस्वती-कोप-भाण्डार, रीवा में १२ पत्रा में लिखित एक 'निकुञ्जज्यो-वेद-स्तुति' की टीका (खण्डित) प्राप्त है । इसका लेखक 'हरिवंश' का भक्त और 'जयसिंह-मुनि' है ।^३ ये विश्वनाथसिंह ही प्रतीत होते हैं । उक्त वेदस्तुति का श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध में वेदों द्वारा की हुई कृष्ण की स्तुति से सारपर्य है ।

६—रामगीता की प्रबोधिका टीका

बिन्ताहरण चक्रवर्ती ने लिखा है कि इस ग्रन्थ में राम के श्रेष्ठत्व को स्थापना की गई है ।^४ रामचरित में ५६ पत्रा की इस 'ग्रन्थ' को सम्पूर्ण पाण्डुलिपि प्राप्त है । स्कन्दपुराण के निर्वाण खण्ड में ३२, ३३ और ३४ अध्यायों में श्रीराम की बन्दना की गई है । विश्वनाथसिंह ने इन्हीं तीनों अध्यायों की प्रबोधिका टीका लिखी है । मूल ग्रन्थ में शुक-वनक-संवाद के रूप में यहाँ राम-तत्त्व

१. रामरसिकावली : पृष्ठ १८७ :

'एक समय महं काशि-नरेशा । करि देवी भागवतहिं शंशा ॥
विश्वनाथ के निकट पठायो । यह भागवत सत्य अस गायो ॥
दुर्जनमुख-वपेटिका नाना । ग्रन्थ पठायो अतिहि ललामा ॥
पितु किय चण्ड-भास्कर ग्रन्था । श्री भागवत सत्य सतपंथा ॥'
मुगलदास (विश्वनाथसिंह-चरित्र) के अनुसार दुर्जनमुख के द्वारा प्रेषित 'वपेटिका-ग्रन्थ' के उत्तर में चण्ड-भास्कर भेजा गया था, जिसमें राम और कृष्ण में अमेद स्थापित किया गया । ४ पत्रों का एक 'दुर्जनमुख-वपेटिका' नामक ग्रन्थ भाण्डार में (बस्ता ८०।१३२) है, जो रामाश्रम-कृत है ।

२. विश्वनाथसिंह-चरित्र ।

३. बस्ता ८०।२२: 'श्री राधाशक्तनो विजयते :—'हरिवंशं हृदि न्यस्य—
जयसिंहमुनिः श्रीमान्—।'

४. संस्कृत वषटं अ० रा० ए० सो० : कलकत्ता : अक्टूबर : १९४० :
भाके० १।६१० : कूटे० अवध-१०।२२ स० को० भा० रीवा में
विश्वनाथसिंह के संस्कृत ग्रन्थों की सूची में इस ग्रन्थ का नाम है, पर
ग्रन्थ नहीं है ।

का निरूपण है। कथा रावणवध के पश्चात् अयोध्या में राज्य करते समय श्रीराम की स्तुति के रूप में है। ये तीन स्तुतियाँ क्रमशः रुद्रगीता, विष्णुगीता और ब्रह्मगीता भी हैं। रामवन की प्रति का लिपिकाल संवत् १८९४ (१८३७ ई०) है किन्तु पुष्पिका में 'महाराजकुमार' शब्द होने से रचनाकाल १८६१ वि० से पूर्व का होगा। टीकाकार ने अपना नाम 'देवदास' भी लिखा है।^१

७. भक्तिरसामृत-सिन्धु-टीका

सनातन-गोस्वामी-कृत भक्तिरसामृत-सिन्धु नामक ग्रंथ की विश्वनाथसिंह ने सं० १८८४ (१३२७ ई०) में टीका लिखी। संवत् १८६८ में लिखित इसकी एक प्रति उपलब्ध हुई है।^२

(ग) काव्य-ग्रन्थ

१. सङ्गीत-रघुनन्दनम् ।

२. रामचन्द्राह्निकम् ।^३

१. ग्रन्थ क्रमाङ्क २३८२ : टीका का आरम्भ इस प्रकार होता है—

'श्रीतारामं हनुमन्तं गणेशं चक्रुरं तथा ।

प्रियादासं गुहं नत्वा कुर्वे टीका प्रबोधिकाम् ॥

कृत्वा भीरघुनाथपादकमले बुद्धिप्रदं वन्दनं

गीताया रघुनन्दनस्य कुर्वते श्रीदेवदासाभिधः ।

टीकां नाम प्रबोधिकां परतर-श्रीरामभक्तिप्रदा-

मज्ञानान्ध-तमोनिवृत्ति-करणौ मोदप्रदां सर्वदाम् ॥ २ ॥

..... स्कन्दपुराणे निर्वाणखण्डेऽध्यायत्रितयेन—शुकसप्तकसंवादमाश्रित्य

श्रीरामं निरूपयितुं सप्तकस्य प्रथममुत्थापयति... ।'

प्रथम अध्याय के अन्त में मूल—

'इति श्रीस्कन्दपुराणे निर्वाणखण्डे द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ।'

टीका—'इति श्रीमन्महाराजकुमार.....'

तृतीय अध्याय के अन्त की पुष्पिका—

'इति श्री-महाराजाधिराजाकुमार श्रीविश्वनाथसिंहदेवविरचितायां

श्रीरामगीताटीकायां प्रबोधिकायां तृतीयोऽध्यायः । श्रीराम । संवत्

१८६४ के साल । समाप्तश्चार्यं ग्रन्थः ।'

२. सन् १८५६ में श्री रघुनाथ शास्त्री द्वारा रोवा में प्राप्त यह ग्रन्थ नागरीप्रचारिणी समा, काशी को भेजा गया ।

३. सङ्गीत रघुनन्दन और रामचन्द्राह्निक के परिचय के लिए देखिये आगे अध्याय ५ (ख) ।

३. गोपालचम्पू^१ ।

४. आनन्दरघुनन्दननाटकम्^२ ।

५. वासुदेव-सहस्रनाम स्तोत्रम् । १७ पत्रों में सम्पूर्ण इस ग्रंथ की पाण्डुलिपि रोवा में सुरक्षित है । इसमें २३० श्लोक हैं । यह वासुदेव की नामावली है । पुष्पिका में 'महाराजाधिराज' शब्द है और ग्रन्थ का लिपिकाल सं० १८६६ (१८४२ ई०) है । अतः रचनाकाल सं० १८६१ और १८९९ वि० के बीच होगा ।^३

(घ) लक्षण-ग्रंथ

१. धनुर्विद्या

रोवा में यह सम्पूर्ण ग्रन्थ १८६ श्लोकों में २२ पत्रा की पाण्डुलिपि के रूप में प्राप्त है । इसमें धनुष के प्रयोग की विधियाँ हैं । इसी नाम से विश्वनाथसिंह का एक ग्रंथ हिन्दी पद्यों में भी प्राप्त है, जो सं० १८६६ (१८४२ ई०) की रचना है ।

२. धर्मशास्त्र (त्रिंशत्श्लोकी)

आचार-पद्धति पर विश्वनाथसिंह का यह ग्रन्थ ३० श्लोकों और २४ पत्रा में रोवा में प्राप्त है ।^४

विश्वनाथसिंह के हिन्दी-ग्रंथ^५

हिन्दी के क्षेत्र में विश्वनाथसिंह की कृतियाँ और भी अधिक हैं । इनकी सूची इस प्रकार है :—

१. हि० षला० सं० लिट्० : पृष्ठ ५१८-१९ : परि० ५४२ तथा टिप्पणी, मित्रा० १८७० :

२. देखिये आगे अध्याय ६ ।

३. स० को० भा० : अस्ता १३० । १२८ : इस स्तोत्र में वासुदेव के सभी नाम 'वकार' से प्रारम्भ होते हैं, अतः इसे वकारादि-वासुदेव-सहस्रनाम स्तोत्रम्' कहा गया है । अन्त में पुष्पिका इन प्रकार है—

'इति श्रीमहाराजाधिराज—विश्वनाथसिंहज्जुदेश्विरचितं वकारादि-श्रीवासुदेव-सहस्रनाम-स्तोत्रं समाप्तम् । लिपि शुक्ल महादेउराम । सं० १८६६ के सला (साल) मित्रि चित्र शुक्ल ३ बुधवासरेकः ॥'

४. स० को० भा० ।

५. यही, अस्ता १२ । ११५ ।

६. इस जानकारों के स्रोत निम्नलिखित हैं—

(१) स० को० भा०, रोवा की सूची; (२) आचार्य रामचन्द्र ६ व०

१. आनन्द-रघुनन्दन नाटक^१

यह नाटक पहले हिन्दी में १८२० से १८३० ई० के बीच लिखा गया । यह हिन्दी साहित्य का प्रथम नाटक कहा जाता है ।

२—शान्तिशतक (लिपिकाल १८३८ ई०), ३—द्रुवाष्टक (८ कवित्त, लिपि० १८४० ई०), ४—धनुषविद्या, ५—गोतावली (पूर्वादि), ६—रामायण (आनन्द रामायण या भुशुण्डीरामायण १८२३ ई० से पूर्व रचित), ७—भजन (या फुटकर भजन या व्योघ्या जी के भजन), ८—अष्टयामश्लोक (१८१७ ई०), ९—गीतरघुनन्दन (चैतन्य सम्प्रदाय के गोसाईं जमुनादास द्वारा प्रणीत काव्य) की प्रमाणिका टीका (१८४४ ई०), १०—परमतत्वप्रकाश, ११—राग-सागर, १२—परमधर्म-निर्णय, १३—कबीरदास-कृत बीजक की पाण्डु-खण्डिनी टीका, १४—अनुभव-पर-प्रदर्शनी टीका (कबीरदास के १२ ग्रन्थों की टीका), १५—विश्वभोजन प्रकाश, १६—वेदान्त-पंचक (सटीक), १७—उत्तम काव्य-प्रकाश, १८—गंगाष्टक, १९—अबोधनीति, २०—रामचन्द्र की सवारी, २१—विनयपत्रिका की टीका, २२—हनुमान जी के कवित्त, २३—शृङ्गार के कवित्त, २४—अयोध्या-यशोवर्णन (या माहात्म्य १८४४ ई०), २५—चित्रकूट माहात्म्य, २६—दानमयूख, २७—कृष्णाह्निक, २८—विनयमाला आदि ।^२

पुस्तक : हिन्दी साहित्य का इतिहास : काशी : २०१८ : पृष्ठ ५७८ ; (३) महाराणा उदयपुर (मेवाड़) पुस्तकालय की पाण्डुलिपियों की सूची (श्री एम० एल० मेनेरिया द्वारा स्व० श्री पी० के० गोडे, तत्कालीन क्यूरेटर, भाण्डारकर ओरियंटल रिसर्च इं०, पूना को १९४३ ई० में प्रेषित) पृष्ठ १८८-२८६; (४) अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर की सूची (श्री के० एम० शर्मा, क्यूरेटर द्वारा श्री चिन्ताहरण चक्रवर्ती को १९३९ ई० में प्रेषित); (५) हिन्दी पाण्डुलिपियों के वार्षिक विवरण, प्रयाग, 'सन् १९०३, १९०४, १९०५, और १९०७ ई०); (६) बाबू श्यामसुन्दरदास द्वारा प्रस्तुत त्रैवार्षिक विवरण, प्रयाग, सन् १९१२ तथा १९१४ ई०; (७) रायबहादुर हीरालाल द्वारा प्रस्तुत हिन्दी पाण्डुलिपियों का शोध-विवरण, प्रयाग, १९२९ ई०; (८) चिन्ताहरण चक्रवर्ती : 'संस्कृत वर्षसं०'; (९) गोडे 'संस्कृत ऐंड हिन्दी वर्षसं०' ।

१. प्रकाशित : १९६० ई० : विन्ध्यप्रादेशिक हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, रोवा । साथ ही देखिये—हि० सा० को० भाग २ : पृष्ठ ३० ।

२. देखिए मेरा लेख—'विश्वनाथसिंह के हिन्दी ग्रन्थ' : 'मध्यप्रदेश-सन्देश' : ग्वालियर : २४ मार्च, १९४२ : पृष्ठ १५-१८ ।

रघुराजसिंह के संस्कृत-ग्रंथ

महाराज रघुराजसिंह^१ के निम्नलिखित संस्कृत-ग्रन्थ उपलब्ध हैं^२—

- (१) सुवर्मा-विलासः ।
- (२) जगदोशशतकम् ।
- (३) शम्भुशतकम् ।
- (४) नर्मदाष्टकम् ।
- (५) लोकनायाष्टकम् ।
- (६) रघुराज-मङ्गल चन्द्रावली ।

सातवाँ ग्रन्थ राजरञ्जन, जिसमें रम-सिद्धांतों पर प्रकाश डाला गया है, लुप्त है। महाराज ने स्वयं इन ग्रन्थ का उल्लेख किया है।^३

१. जन्म—कार्तिक कृष्ण ४, गुरुवार, सं० १८८० (१८२३ ई०)। राज्या-
रम्भ सं० १९११ (१८९४ ई०)। मृत्यु—भाष कृष्ण ९, सं० १९३६
(४ फरवरी, १८८० ई०)।

२. विवरण के लिए देखिये आगे अध्याय ४ (५-ख)।

३. रघुराजसिंह-कृत रामस्वयंवर : प्रकाशित : बम्बई : सं० १९८० :
पृष्ठ ४ :

'रघुओं संस्कृत-ग्रन्थ कछु, शतक एक जगदीश।
समा सुवर्मा-विलास एक, शम्भुशतक नत ईश ॥
रघुओं राजरंजन बहुरि, सब रस मत्तन प्रकाश।'
तथा पृष्ठ ९७०-७२ : 'रघिर राजरंजन सुरबानी।'

सूचना-विभाग, रोवा से १९५७ में प्रकाशित पुस्तक 'दतिया-मुस्तकाल-
लय' में दतिया के पुराने महल में उपलब्ध ग्रन्थों की सूची में संस्कृत
ग्रन्थों में राजरंजन (क्र० १६४) का उल्लेख है किन्तु यह रघुराज-
सिंह कृत नहीं है। यह किसी भाष्य कवि द्वारा रचित हस्ति-विज्ञान-
परक ग्रन्थ है। श्री ब्रजकिशोर त्रिवेदी, रोवा ने सूचित किया है कि
रामवन में रघुराजसिंह-कृत संस्कृत-ग्रंथ यादवेन्द्राष्टक की ९ श्लोकों की
१ पत्रा की पाण्डुलिपि सुलभ है। यह ठीक हो तो संस्कृत-ग्रन्थों की
संख्या ८ होगी। साथ ही, देखिये मेरा लेख 'रघुराजसिंह की संस्कृत
रचनाएँ' : 'विश्वशिक्षा' : रोवा : १९५६।

रघुराजसिंह ने श्रीमद्भागवत की हिन्दी (व्रजभाषा) टीका सं० १९०७ (१८५०) में लिखी । रीवा में एकादश^१ और द्वादश^२ स्कन्धों की टीकाएँ सुरक्षित हैं । प्रारम्भिक दश स्कन्धों की टीकाएँ नहीं मिलीं । इस टीका का नाम 'व्यङ्ग्यार्थ-चन्द्रिका' है और यह महाराज विदनाथसिंह द्वारा संशोधित है । द्वादश-स्कन्ध के आरम्भ में विदनाथसिंह द्वारा की हुई वन्दनाएँ संस्कृत में प्राप्त हैं ।

कुछ हिन्दी ग्रन्थों में देवस्तुतियाँ हिन्दी-छन्दों में किन्तु संस्कृत भाषा में प्राप्त हैं^३ तथा पुष्पिकाएँ भी संस्कृत की शैली में हैं ।^४

रघुराजसिंह के हिन्दी ग्रन्थ

रघुराजसिंह का कवित्व मुख्यतः हिन्दी के क्षेत्र में प्रस्फुटित हुआ है । इनके हिन्दी काव्य-ग्रन्थ निम्नलिखित हैं^५—

१. स० को० 'भा० (बस्ता ८०।१२) : ३३५ पत्रा । अन्तिम पुष्पिका—'इति श्री भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे सिद्धिश्रीमहाराजाधिराज-जयसिंह-देवात्मज-सिद्धिश्री - महाराजाधिराज-विश्वनाथसिंहजुदेवात्मज-गुवराज - रघुराजसिंहजुदेव-कृत-व्यङ्ग्यार्थचन्द्रिकायां समाख्यायां टीकायां तात-संशोधितायां एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥ सं० १६११ के मिते चैत्र सुदी ४ शनी का । इदं पुस्तकं यकादशेन लिख्यतं दामोदरेण ॥ श्री सोताराम ॥ श्री राधाकृष्ण ॥'
२. वही, बस्ता ८०।२१।५७ पत्रा । वन्दना में—
'भास्वतिसिंहासनस्थं स्मितयुतवदनं विश्वनाथोऽहमोडे ।'
३. 'रामस्वयंवर', पृष्ठ ९७७ : 'तव पदपद्मजमिष्टदं, ये ध्यायन्ति परेश ।
तेषामिह भवसागरे, न भयं भवति रमेश ॥
नमोऽव्युताय राघवाम रावणान्तकारिणे ।....'
४. भानुदाम्बुनिधि : अध्यायो के अन्त में पुष्पिकाएँ—
'इति सिद्धिश्रीमहाराजाधिराज-बान्धवद-विश्वनाथसिंहात्मज—
रघुराजसिंह जू देव कृते..... ।'
५. देखिये—स० को० भा०, रीवा में प्राप्त रघुराजसिंह के हिन्दी ग्रन्थों की सूची । ९ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं । साथ ही देखिये हिन्दी-साहित्य-कोष : भाग २ : सं० २०२० पृष्ठ ४४२ : तथा तुलसी-संग्रहालय, रामवन (सतना) रघुराज-व्रज के ग्रन्थ ।

(क) प्रबन्ध-काव्य

१. हविमणो परिणय—२१ सर्गों का महाकाव्य, रचनाकाल १८५० ई० । प्रकाशित रोवा १८७९, बम्बई १८९६, १९२४ ई० ।

२. धामन्दाम्बुनिधि (भाषा-भागवत—पुराण-कथा, १८५०-५४ ई०) प्रका० रोवा १९०१ ई० ।

३. रामरसिकावली (भक्तमाला)-चरित, १८६४ ई० । प्रका० काशी १८७०, बम्बई १८६३ ई० तथा ३ आवृत्तियाँ ।

४. मृगमाशतक (रघुपति तिकार शतक)-अष्टयाम, १८६८ ई० । प्रका० बनारस १८८९ ई० ।

५. रामस्वयंवर—२३ प्रबन्धों का महाकाव्य, १८७५-७७ ई० । प्रका० रोवा १९००, बम्बई १९०३, १९३३ ई० ।

६. सुन्दरशतक (हनुमत्शतक)-सगडकाव्य, १८४७ ई० । पाण्डु० राम-वन । ४२ कवित्त रामस्वयंवर में सम्मिलित ।

(ख) मुक्तक

७. रघुराजविलास (पदावली)-प्रका० बम्बई १९०४ ई० ।

८. जगन्नाथशतक—१८५६ ई० । प्रका० बम्बई १८५७ ई० ।

९. दिनयत्रिका—१८५० ई० । पाण्डुलिपि स० को० मा० ५।६७।१ खण्डित, ८५।६३६ सम्पूर्ण ।

१०. त्रितयप्रकाश—स. को. मा. खण्डित, ५ पत्रा पद १९—४९ ।

११. चित्रकूट-अष्टक ।

१२. चित्रकूट-महिमा ।

१३. गङ्गाशतक ।

१४. यदुप्राजविलास (सन्दिग्ध) ।

} अनुपलब्ध

(ग) अन्य

१५. नाटक—परमप्रवीण—स. को. मा. ५।६८, खण्डित ।

१६. विष्णुसहस्रनाम (पद्य) प्रका० बनारस १८६८ ई० ।

१७. मञ्जुविलास (लक्षण)—१८७१ ई० । प्रका० रोवा १८७१ ई० ।

१८. गद्यशतक- (अनुपलब्ध, सन्दिग्ध) ।

१९. तात्पर्य-श्रीविका-बालमोहि-रामायण को हिन्दी टीका : नागरो-प्रचारिणी-समा, काशी । (सम्भवतः विश्वनाथसिंह-कृत तात्पर्य-तरणि का हिन्दी अनुवाद ।)

रघुराजसिंह ने आनन्दाभ्युनिधि के अन्त में अपनी काव्य-रचना के सहायक-विद्वानों के नाम दिये हैं। इनमें से रत्नाचार्य^१ संस्कृत के प्रौढ़ विद्वान् थे। उन्होंने रघुराजसिंह के ग्रन्थ जगदीशशतक की टीका लिखी है^२। संस्कृत के अन्य विद्वान् समासर्षों में पौराणिक विहारीराम, काशी के विश्वनाथ शास्त्री, गुरु बलदेवराम अग्निहोत्री, मैहरके स्वामी अवधधरण, पूर्वोक्त विद्यागुरु रामानुजशास्त्र एवं लक्ष्मणबाग के महन्त स्वामी लक्ष्मीप्रपन्न थे। महाराज के सेनापति दादू बलदेव सिंह ने भारत-भ्रमण प्रेस का सञ्चालन करते हुए उत्पीडितों की ओर के अन्तिम भाग में तथा बीसवीं शती के आरम्भ में महाराज के अनेक ग्रन्थ प्रकाशित कराये। रघुराजसिंह के पुत्र डॉक्टरमणिसिंह के राज्यकाल में भी ग्रन्थों का प्रकाशन होता रहा।

काव्यों के भेद-प्रभेद एवं वर्गीकरण

उपयुक्त साहित्य में से बहुत से ग्रंथ संस्कृत टीकाएँ, दार्शनिक विवेचन, लक्षणग्रन्थ आदि होने से हमारी आलोचना की परिधि में नहीं आते। थोड़े उल्लिखित हिन्दी रचनाओं से भी आलोचना का सम्बन्ध नहीं है। यहाँ हमारे समोशात्मक मूल्याङ्कन की सीमा में वे ही ग्रन्थ आते हैं, जिनकी रचना का लक्ष्य प्रधानतः बोधात्मक सामग्री प्रस्तुत करना नहीं है, अपितु जो भावप्रधान, रस-प्रवण, अलङ्कृत, ललित एवं हृद्य है और इसीलिए हम जिन्हें काव्य कह सकते हैं। इनका वर्गीकरण यहाँ प्रस्तुत किया जायगा।

संस्कृत के आचार्यों ने काव्य का प्रथम विभाजन गद्य और पद्य के रूप में किया है^३। दूसरा महत्त्वपूर्ण विभाजन उन्होंने अनिबद्ध और निबद्ध नाम से

१. 'दक्षिण यादवाद्रि के वासी। अति सुशील सुन्दर मति रासी ॥
जिनको नाम अनन्ताचारी। तिनके पुत्र नृसिंहाचारी ॥
रंगाचार्य पुत्र हैं तिनके। दील स्वभाव अनुपम जिनके ॥
व्याय वेदान्त व्याकरण आदिक। सकल शास्त्र शता मर्यादिक ॥
जति घंटावतार परकाला। तिनके शिष्य सुवृद्धि विशाला ॥

२. जगदीशशतक की टीका के आरम्भ में रत्नाचार्यकृत बन्दना है। अन्त में समर्पण का श्लोक इस प्रकार है—

'श्रीबान्धवेश-रघुराज-विनिर्मितस्य
नीलाद्रिनाथ-शतकस्य महार्घपूर्तः।
बाधूल-सत्कुलभवो विरचय्य
रत्नाचार्यो जगत्पतिपदेऽर्पयति स्म टोकाम् ॥'

३. मामहः काम्यालङ्कारः काशी संस्कृत तिरिज ६१ : १९८५ वि-
प्रथम परिच्छेदः श्लोक १६ :

'शब्दार्थो सहितौ काव्यं गद्यं पद्यञ्च तद् द्विधा ।'

किया है ।^१ यद्यपि स्पष्टतः कहा नहीं गया, ती भी अनिबद्ध काव्य के भेद-प्रभेद केवल पद्य में ही बतलाये गये हैं ।

भामह ने अनिबद्ध काव्य के अन्तर्गत गद्या और श्लोक-भात्र आदि दो प्रभेदों की गणना की है ।^२ दण्डी ने मुक्तक, कुलक, कोप और सङ्घात ऐसे चार प्रभेदों की वर्णा कर इन्हें सर्गबन्ध के अङ्ग मान लिया है और उनकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं मानी ।^३ धामन ने अनिबद्ध के प्रभेदों का उल्लेख नहीं किया । राजशेखर ने शरीर-भेद छोड़कर विषय के अनुसार मुक्तक और प्रबन्ध दोनों के १—शुद्ध, २—चित्र, ३—कपोत्य, ४—संविधानकम्, ५—आख्यानकवान् प्रभेद लिखे ।^४ आनन्दवर्धन ने अनिबद्ध और निबद्ध (या मुक्तक और प्रबन्ध) दोनों के प्रभेद एक साथ गिना दिये हैं । अमिनवगुप्त ने लोचन टीका में अनिबद्ध के अन्तर्गत आनन्दवर्धन द्वारा बतलाए हुए इन प्रभेदों को दो खण्डों में बाँटा है । पहला खण्ड है मुक्तक, जो मुक्त हो और दूसरे से स्पष्ट न हो ।^५ अग्निपुराण के अनुसार एक ही श्लोक, जो चमत्कार उत्पन्न करने में समर्थ हो, मुक्तक

१. विश्वेश्वर (आचार्य) : हिन्दी काव्यालङ्कारसूत्र (वामन) : आत्मा-
राम एण्ड संघ, दिल्ली : १९५४ ई० : अधिकरण १ अध्याय
३।२१, २० :

‘काव्यं गद्यं पद्यञ्च—तदनिबद्धं निबद्धञ्च ।’

२. भामह : काव्या० : १।३० : ‘अनिबद्धं पुनर्गाया-श्लोकमात्रादि..... ।’

३. दण्डिन् : काव्यादर्श : भाण्डारकर ओ० रि० ई० : पूना : १९३८ :
प्रथम परिच्छेद श्लोक ११-१२ ‘मुक्तकं कुलकं कोपः सङ्घात इति
तद्दशः । सर्गबन्धांशरूपत्वात्’ ।

४. सारस्वत-नेदारनाथ शर्मा : काव्यमीमांसा (राजशेखर) : बिहार
राष्ट्रमाया-परिषद् पटना : १९५४ : अध्याय ९ : पृष्ठ ११४ :
‘स पुनर्दिधा । मुक्तकप्रबन्धविषयत्वेन । तावपि प्रत्येकं पञ्चधा ।
शुद्धः चित्रः कपोत्यः संविधानकम् : आख्यानकवाश्च ।’

५. ध्वन्यालोक (आनन्दवर्धन) : अमिनवगुप्तकृत लोचन व्याख्या सहित :
दुर्गाप्रसाद और काशीनाथ पाण्डुरंग परब : काव्यमाला २५ : निर्णय-
सागर प्रेस बंबई : १८९१ उद्योत ३ श्लोक ७ की वृत्ति :

‘यतः काव्यस्य प्रभेदा मुक्तकं संस्कृतप्राकृतापभ्रंशनिबद्धम् । सन्दानितक-
विरोपक-कलापक-कुलकानि पर्यायबन्धः ।—मुक्तकेषु हि प्रबन्धेष्विव
रसबन्धामितिचेतिनः कवयो दृश्यन्ते ।—पूर्वापरनिरपेक्षेणापि हि येन
रसवर्षणा क्रियते तदेव मुक्तकम् ।’

कहलाता है ।^१ धानन्दवर्धन के अनुसार कवि लोग मुक्तकों को भी रसबन्ध करते हैं । मुक्तक में पूर्वापर-निरपेक्ष रसनिष्पत्ति होती है । अर्थात् मुक्तक ऐसा एक ही श्लोक है जो अपने विषय की पूर्ति में स्वतन्त्र हो, अन्य श्लोक को अपेक्षा न करे । यह मुक्तक प्रबन्धों के मध्य भी रहता है । इसकी रचना संस्कृत; प्राकृत या अपभ्रंश किसी भी भाषा में हो सकती है ।^२ मामह ने इसी मुक्तक को श्लोक लिखा है ।^३ कमी-कमी वाक्य दीर्घ होने से एक ही श्लोक में क्रिया की समाप्ति नहीं होती । तब दो श्लोकों में सम्पूर्ण होने वाले मुक्तक को सन्दानितक, तीन में विशेषक और चार में कलापक कहा जाता है ।^४ विश्वनाथ दो श्लोकों के मुक्तक का नाम गुग्मक और तीन का सन्दानितक बतलाते हैं । पांच श्लोकों में समाप्त होने वाले मुक्तक को कुलक कहा जाता है ।^५ हेमचन्द्र और नमिसाधु के मत से यह कुलक पाँच से चौदह श्लोकों तक का हो सकता है^६ ।

भानुकर और रामचन्द्र भट्ट के मुक्तक

पीछे हमने 'बभेसखण्ड में साहित्य-निर्माण की गतिविधि' के अन्तर्गत

१. अग्निपुराण : अध्याय ३३७ :

'मुक्तकं श्लोक एवैकवचनकारक्षमः सताम् ।'

२. ध्वन्यालोक : ३।७ अग्निवचगुप्तव्याख्या : '—मुक्तकमन्येन नालिङ्गितम् । तेन स्वतन्त्रतया परिसमाप्तनिराकाङ्क्षार्थमपि प्रबन्धमध्यवर्ति मुक्तकमित्युच्यते । मुक्तकस्यैव विशेषणं संस्कृतेरथादि ।'

३. काव्यालङ्कार (मामह) : १।३० ।

४. काव्यानुशासन : (हेमचन्द्र) शिवदत्त और परब : काव्यमाला ७० : निर्णयसागर प्रेस बम्बई : १९०१ : अध्याय ८ पृ० ३४० : 'एकद्वित्रिचतुष्टयान्दोभिर्मुक्तक-सन्दानितक-विशेषक-कलापकानि ।'

५. साहित्यदर्पण (विश्वनाथ) : शालग्राम शास्त्री (हिन्दी व्याख्या) : मोतीलाल बनारसीदास : वाराणसी : १९५६ : पृष्ठ परिच्छेद : श्लोक ३१४-३३ : ।

'छन्दोबद्धपदं पद्यं तेन मुक्तेन मुक्तकम् ।

द्वाम्यां तु गुग्मकं सन्दानितकं त्रिभिरिष्यते ।

कलापकं चतुर्भिश्च पञ्चभिः कुलकं मतम् ॥

६. काव्यानुशासन : अ० ८ : 'पञ्चवादिभिश्चतुर्विंशतैः कुलकम् ।' तथा काव्यालङ्कार (रघुट) : काव्यमाला २ : निर्णयसागर प्रेस : बम्बई : १९२८

अध्याय १६।३३ : नमिसाधु की टीका : पृष्ठ १७२ :

चोरमानु से सम्बद्ध मानुकर के तीन स्फुट श्लोकों की चर्चा की है। अनेक सुभाषित-सङ्ग्रहों में सङ्कलित होते हुए भी ये परस्पर-निरपेक्ष और क्रम-रहित हैं। इसी प्रकार रामचन्द्र भट्ट के एक श्लोक की भी चर्चा हुई है। इन चारों श्लोकों की अनिबद्ध काव्य की प्रथम कोटि में रखते हुए 'मुक्तक' मान कहा जा सकता है।

डा० बलदेव उपाध्याय ने मुक्तक काव्यों के लौकिक और धार्मिक दो रूप माने हैं।^१ सामान्यतः मनुष्य की स्तुति और विशेषतः राजाओं या राजवंशों की प्रशस्ति के रूप में लिखित स्फुट श्लोक लौकिक मुक्तक हैं तथा देवों की स्तुति के रूप में लिखित स्तोत्र या स्तुति-गीत धार्मिक मुक्तक हैं। इस आधार पर उपर्युक्त सम्बद्ध मुक्तक लौकिक पद्धति के हैं।

अनिबद्ध काव्य का दूसरा सङ्ग है मुक्तकों का क्रम-सापेक्ष सङ्कलन। इस सङ्कलित रूप की ओर ही मामह ने 'गाया' शब्द से सङ्केत किया है, जैसा पीछे लिखा जा चुका है। आनन्दवर्धन ने इसी को पर्यायबन्ध कहा है, जिसे स्पष्ट कर अमिनवगुप्त ने बतलाया है कि बोध में क्रिया समाप्त होने पर भी वसन्त-वर्णन आदि एक वर्णनीय (विषय) के उद्देश्य से प्रवृत्त (लिखित या सङ्कलित) मुक्तकों के एकत्र रूप को पर्यायबन्ध कहा जायगा।^२ हेमचन्द्र का भी कथन है कि मुक्तकों का विषयानुसार सङ्कलन होता है, जिसे पर्मा कहते हैं। यह सङ्कलन कोषों में होता है। स्वकृत तथा अन्य कवि-कृत सूक्तियों का सङ्कलन ही कोष है, जैसे सप्तशती आदि। जब एक कवि द्वारा एक ही विषय पर एक छन्द में रचे हुए मुक्तकों को एकत्र किया जाय, तब वह रचना वृन्दावन या मेघदूत काव्य की भाँति सङ्घात कहलाती है।^३

१. संस्कृत-आलोचना : प्रकाशन ब्यूरो : सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश : १९५७ : पृष्ठ ६५ मुक्तक-मेघ, साय हो देखिये-हिन्दो साहित्य कोष : भाग १ : सं० २०१५ : पृष्ठ : ८६६।
२. ध्वन्यालोक की लोचन टीका : काव्यमाला : बम्बई : १८९१ : उ० ३।७ : 'अवान्तर-क्रिया-समाप्तावपि वसन्तवर्णनाद्येकवर्णनीयोद्देशेन प्रवृत्त : पर्यायबन्धः।'
३. काव्यानुशासन : काव्यमाला ७० : बम्बई : १९०१ : पृष्ठ ३४०-४१ : 'मुक्तकानामेव प्रघट्टकोपनिबन्धः। अवान्तरवाक्यसमाप्तावपि वसन्ताद्ये-कवर्णनीयोद्देशेन मुक्तकानामुपनिबन्धः पर्या। सा कोशेषु प्रचुरं दृश्यते। स्व-पर-कृत-सूक्ति-समुच्चयः कोशः यथा सप्तशतकादिः।एकप्रघट्टके एक-कविकृतः सूक्तिसमुदायो वृन्दावनमेघदूतादिः सङ्घातः।'

नमिसाधु के मत से भी मुक्तकों का ही विषयानुकूल सङ्कलन पर्याययोग या कोष कहलाता है ।^१ विश्वनाथ ने परस्पर-निरपेक्ष श्लोकों के समूह को कोष कहा है तथा उसके द्रव्या क्रम से सङ्कलन अर्थात् सजातीय मुक्तकों के एकत्र सन्निवेश को मनोरम बतलाया है ।^२ इस प्रकार एक विषय पर आश्रित मुक्तकों के सङ्कलित रूप के लिए पर्यायबन्ध, पर्या, पर्याययोग और कोष नाम मिलते हैं ।

हेमचन्द्र ने एक अन्य प्रभेद 'संहिता' की खर्षा की है, जो यदुवंश, दिलीपवंश आदि की भाँति विप्रकीर्ण वृत्तों का एकत्र सन्निवेश हो ।^३ यही सङ्कलन एक कवि के द्वारा एक छन्द में सीमित होने पर सङ्घात कहा जायगा ।

हेमचन्द्र ने सङ्घात-प्रभेद को अनिबद्ध काव्यों के अन्तर्गत स्पष्टतः मानते हुए मेघदूत को उदाहरणार्थ रखा है, जब कि विश्वनाथ ने मेघदूत को खण्डकाव्य के रूप में उदाहृत किया है ।^४ काव्यादर्श की टीका में हरिनाथ ने सङ्घात के उदाहरणार्थ मेघदूत को प्रस्तुत करते हुए 'कल्पितवस्तुक' शब्द का प्रयोग किया है^५, अर्थात् सङ्घात में कथा का आधार स्वीकार किया है । अतः हम यहाँ मान कर चलते हैं कि मेघदूत इसी अर्थ में सङ्घात है कि वह एक कवि द्वारा एक विषय पर एक ही छन्द में रचे हुए श्लोकों का सङ्ग्रह है, अन्यथा वह कथाश्रित एवं नायकाश्रित होने से प्रबन्धात्मक खण्डकाव्य है । उपर्युक्त आधारों पर विचार करने पर अनिबद्ध काव्य की क्रम-सापेक्ष-सङ्कलन की द्वितीय कोटि के अन्तर्गत हमें बघेलखण्ड के ९ और काव्य प्राप्त होते हैं, जो इस प्रकार हैं—

१. काव्यालङ्कार (रुद्रट) : काव्यमाला २ : बम्बई : १९२८ : नमिसाधु को टीका : 'तथा मुक्तकानामेव प्रघट्टकोर्पानिवन्धः पर्याययोगः कोषः ।'
२. साहित्यदर्पण : वाराणसी : १९५६ : पृष्ठ परि० श्लोक ३२९-३० : 'कोषः श्लोकसमूहस्तु स्यादग्योऽन्यानपेक्षकः ।
द्रव्याक्रमेण रचितः स एवातिमनोरमः ॥' :
वृत्ति-सजातीयानामेकत्रसन्निवेशो द्रव्या यथा मुक्तावल्यादिः ।'
३. काव्यानुशासन : काव्यमाला ७० : बम्बई : १९०१ : पृष्ठ ३४१
'विप्रकीर्ण-वृत्तानामेकत्रसम्बन्धानं यदुवंश-दिलीपवंशादिवत्-संहिता ।'
४. साहित्यदर्पण : ६।३२९ : 'खण्डकाव्यं... यथा मेघदूतादिः ।'
५. काव्यादर्श (दण्डिन्) : पूना १९३८ : १।१३ : रङ्गाचार्य रङ्गिशास्त्री द्वारा उद्धृत हरिनाथ की टीका—'कल्पितवस्तुक एकखण्डो-निर्घुम्बः सङ्घातः मेघदूतादिः ।'

२. रामचन्द्र-यशःप्रबन्धः—

राजा रामचन्द्र बघेल की प्रशस्ति में लिखे हुए ३७ श्लोकों का यह सङ्कलन लौकिक पद्धति का कोपग्रन्थ है। इसमें 'प्रबन्धः' शब्द पद्य-बन्धन मात्र का द्योतक है, चरित-बन्धन का नहीं। विश्वनाथ ने गद्य-पद्यात्मक राजस्तुति को विरुद्ध माना है।^१ यदि अनिवार्य कोटि में केवल पद्यात्मक राजस्तुति को भी विरुद्ध माना जाय तो इस ग्रन्थ को विरुद्ध या प्रशस्ति-प्रभेद में सीमित करना अधिक उपयुक्त होगा।

३. रामपरत्वम्

विश्वनाथसिंह (१८३४-५४ ई०) द्वारा पद्य-गद्य के रूप में अनन्ताचार्य के समीप प्रेषित यह एक पत्र है, जिसमें प्रारम्भ के ८ श्लोक अनन्ताचार्य की स्तुति में और परवर्ती ८ श्लोक पत्र-वृत्तान्त के रूप में प्राप्त है। इसके अनन्तर गद्य-भाग में राम का ब्रह्मत्व प्रतिष्ठापित है, जो दार्शनिक विवेचन है। यहाँ विचारार्थ केवल प्रारम्भिक श्लोकों का काव्यत्व है। अतः इन श्लोकों को भी लौकिक पद्धति के कोप-प्रभेद में रखना उचित है। यदि लौकिक व्यक्ति को स्तुति को विरुद्ध या प्रशस्ति माना जाय तो यह भी वही है।

४. बघेल-वंश-वर्णनम्

इस ग्रन्थ में रूपणि मिश्र (१६७८ ई०) ने १०० श्लोकों में बघेल राजाओं का प्रशस्ति-परक वंश-वर्णन किया है। ये श्लोक भी अपने आप में सुवक्तक है, जो क्रम-सापेक्ष रूप में सङ्कलित है। अतः हेमचन्द्र के मत का परिपालन करते हुए हम इस कृति को 'संहिता' प्रभेद के अन्तर्गत एक वंशागत विरुद्ध या प्रशस्ति मानते हैं।

५. जगदीश-शतकम् ६. शम्भू-शतकम् ७. लोकनाथाष्टकम्

८. नर्मदाष्टकम्

धार्मिक पद्धति के मुक्तकों के संकलित रूप हमें आश्रोच्य काव्यों में शतक और अष्टक रूप में प्राप्त है। रघुराजसिंह (१८५४-८० ई०) के द्वारा भिन्न-भिन्न वृत्तों में रचित, देवपरक स्तुति-गीतों के इन चार क्रम-सापेक्ष सङ्कलनों-जगदीशशतकम्, शम्भूशतकम्, लोकनाथाष्टकम् और नर्मदाष्टकम् को हम धार्मिक पद्धति के कोप या पर्यायबन्ध प्रभेद के अन्तर्गत रख सकते हैं।

९. सुधर्माविलास

रघुराजसिंह का ग्रन्थ सुधर्माविलास भक्तिदर्शन के एक साम्प्रदायिक मत के

१. साहित्यदर्पण : धाराणसो : १९४६ : परि० ६।३३७

'गद्यपद्यमयी राजस्तुतिविरुद्धमुच्यते।'

राजाओं के यशोवर्णन को खट्ट ने प्रशस्ति नाम दिया है। देखिये—

काव्यालङ्कार (नमिसाधु-व्याख्या) : १६।३६ : व्याख्या—

'तत्र यस्यामीश्वरकुलवर्णनं यशोव्यं क्रियते सा प्रशस्तिः।'

अनुसार साधक के कल्पित उत्क्रमण का आधार लेकर कृष्ण की समा सुषर्मा तथा अनेक देवाधिष्ठित लोकों और स्थितियों के विवरण के रूप में है। प्रत्यकार ने इसे १७ उल्लासों में विभाजित किया है। इसमें कथागत या नायकादि-सम्बन्धी किसी आधार को ग्रहण नहीं किया गया है। बीच-बीच में गीतगोविन्द की लयों के अनुकरण के रूप में अनेक भावप्रवण स्तुतिगीत प्रवित हैं। अतः उल्लास-बद्ध होने पर भी मुक्त विवरण या भावधारा पर आश्रित मुक्तकों का क्रम-सापेक्ष और एक विषयान्वित सङ्कलन-मात्र होने से इसे अनिबद्ध कोटि में ही रखना उचित है। अतः यह भी धार्मिक पद्धति के कोप या पर्यायबन्ध प्रभेद के अन्तर्गत आता है।

१०. रघुराज-भङ्गल-चन्द्रावली

रघुराजसिंह द्वारा प्रणीत स्तुति-गीतों का रघुराजमङ्गल चन्द्रावली नामक लघु-काव्य एक विषय पर एक ही छन्द में लिखे हुए दशकों का समूह है, जो क्रम-सापेक्ष सङ्कलन में प्रस्तुत होने पर भी परस्पर-निरपेक्ष है। राजशेखर ने घटित वृत्त पर आधारित मुक्तक को कपोत्य संज्ञा प्रदान की है।^१ ये श्लोक भी श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में प्राप्त कृष्ण कथा पर आधारित एवं तदनुसार ८६ अध्यायों में सङ्कलित स्तुतिगीत है। कवि का लक्ष्य कथा-वर्णन नहीं, अपितु भावात्मक देवबन्दना है। अतः इस ग्रंथ की कपोत्य सङ्घात प्रभेद में रखा जा सकता है।

इस प्रकार अनिबद्ध कोटि के अन्तर्गत हमें १० ग्रंथ उपलब्ध हैं, जिनमें से ६ स्तुति-गीत, १ पत्र-गीत और तीन राजस्तुतियाँ हैं। ये सभी लघुकाव्य हैं।

स्वरूप की दृष्टि से भामह ने अनिबद्ध के अतिरिक्त काव्य के चार अन्य भेद १. सर्गबन्ध, २. अग्निनेयार्थ, ३. आख्यायिका और ४. कथा बतलाए हैं। सर्गबन्ध की उन्होंने महाकाव्य माना है।^२ स्पष्ट ही ये भेद निबद्ध काव्य के हैं, जिसके लिए वामन ने निबद्ध, सन्दर्भ और प्रबन्ध^३ तथा राजशेखर^४, आनन्दवर्धन^५ और

१. काव्यमीमांसा (राजशेखर) : पटना : १९५४ ई० : अध्याय ६ पृष्ठ ११४ : 'वृत्तेतिवृत्तः कपोत्यः'।

२. काव्यालङ्कार : १।१८ :
सर्गबन्धोभिनेयार्थं तथैवाख्यायिका-कथे ।
अनिबद्धञ्च काव्यादि तत्पुनः पञ्चबन्धोच्यते ॥'

३. काव्यालङ्कारसूत्र : १।३।३० : वृत्ति—'सन्दर्भेषु प्रबन्धेषु ।'

४. काव्यमीमांसा : पटना : १९५४ : अध्याय ९, पृष्ठ ११४ :
'स पुनर्दिष्टा । मुक्तक-प्रबन्ध-विषयत्वेन ।'

५. ध्वन्यालोक : ३।७ वृत्ति '... प्रबन्धेष्विव...'। तथा अभिनवगुप्त को टीका ।

रुद्रट^१ ने प्रबन्ध शब्द का प्रयोग किया है। उपर्युक्त चार श्रेणियों में से विरुद्ध पद्यात्मक प्रबन्ध के रूप में केवल सगर्बन्ध स्वीकृत है। दोष तीन में से कथा के लिये हेमचन्द्र ने कहा है कि वह गद्य और पद्य दोनों में हो सकती है।^२ रुद्रट ने सभी प्रबन्धों के लिए महत् और लघु दो रूप बतलाए हैं।^३ विश्वनाथ ने महाकाव्य की परिभाषा पूरी करने के पश्चात् निम्नलिखित पंक्तियाँ लिखी हैं—

‘भाषा-विभाषा-नियमात् काव्यं सर्गसमुज्जितम् ।

एकार्य-प्रवणेः पद्यैः सन्धि-सामग्र्य-वर्जितम् ॥

खण्डकाव्यं भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारि च ॥’^४

इन पंक्तियों का ‘सर्ग-समुज्जितम्’ शब्द पाठ-भेद से ‘सर्ग-समुत्थितम्’ भी मिलता है; साथ ही ‘सन्धि-सामग्र्य-वर्जितम्’ शब्द के अर्थ पर भी टीकाकारों में मतभेद है।^५ फिर भी इतना स्पष्ट है कि महाकाव्य से न्यून कोटि का, सम्पूर्ण

१. काव्यालङ्कार : काव्यमाला २ : बम्बई : १९२८ : अध्याय १६।२ :

‘सन्धि द्विधा प्रबन्धाः ।’ तथा तमिसाद्यु की व्याख्या ।

२. काव्यानुशासन : काव्यमाला ७० : बम्बई : १९०१ : अध्याय ८ : पृष्ठ

३३८ : ‘धीरशान्तनायका गद्येन पद्येन वा सर्वभाषा कथा ।’ तथा इसी की वृत्ति : ‘—कावित् पद्यमपी यथा लीलावती ।’

३. काव्यालङ्कार (रुद्रट) : १६।२

‘सन्धि द्विधा प्रबन्धाः काव्यकथाहयायिकादयः काव्ये ।

वत्साद्यानुत्पाद्या महल्लघुत्वेन भूयोजयि ॥’

४. साहित्यदर्पण : रामचरण तर्कवागीश-टीका : निर्णयसागर प्रेस :

बम्बई : १९२२ : पृष्ठ ३७५ दशोक्त ३२८ : ‘यावत् सन्धिरहितं यत्तत्काव्यमित्यर्थः ।’

५. साहित्यदर्पण :

(१) जीवानन्द विद्यासागर : कलकत्ता : १९३४ : पृष्ठ ५३७ :

श्लोक ५८३ : ‘सर्ग-समुज्जितम् सर्गबन्धरहितम् । एकार्यप्रवणैः

एकार्यप्रतिपादकैः एकरवावयवताग्नेरिति यावत् । मुख-प्रति-

मुखादि-सन्धिसमुपायहीनं यत् तत् काव्यम् ।’

(२) हरिदत्तसिद्धान्तवागीश-टीका : कलकत्ता : शकान्द १८६७ :

पृष्ठ ४२५ : श्लोक० ३०६ ‘सर्गसमुज्जितम् । अध्यायवर्जितम् ।

...एकविषयप्रतिपादकैः पद्यैः निबद्धम् । सन्धीनां सामग्रयेण

समुदायेन वर्जितम् ।’

(३) शिवदत्त कविरत्न-टीका : बेंकटेश्वर प्रेस बंबई : पृष्ठ ५४२

श्लोक ६२५-२६ : ‘सर्गसमुज्जितम् सर्गहीनम् ।सन्धि-

कथा पर आधारित प्रबन्धात्मक पद्यकाव्य केवल 'काव्य' कहा जायगा तथा एकदेशीय कथा पर आधारित प्रबन्धात्मक पद्यकाव्य खण्डकाव्य कहलायेगा। द्रष्ट के मत से हम खण्डकाव्य में अनुवर्ग में से एक ही वर्ग फल-फल में सिद्ध किया जायगा तथा उसमें अनेक रसों का स्पर्श कर एक रस का सम्पूर्ण परिपोष होगा।^१ नमिसाधु ने लिखा है कि नायक के चरित का बन्धन हो प्रबन्ध है।^२

इस प्रकार पद्यात्मक प्रबन्ध काव्यों के तीन भेद हो जाते हैं—महाकाव्य, बाध्य और खण्डकाव्य। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि खण्डकाव्य के पर्याय के रूप में लघुकाव्य या लघु-प्रबन्ध शब्द का प्रयोग अनुपयुक्त है। खण्डकाव्य अर्थ ही लघुकाव्य या लघुप्रबन्ध है, उसी प्रकार लघु-रूपक या लघु-कथा भी लघु-काव्य या लघु-प्रबन्ध है। साथ ही अनिबद्ध कोटि के सञ्चलित क्रम-सापेक्ष या विषय-सापेक्ष मुक्तक भी लघुकाव्य कहे जाते हैं, जैसे मर्तुहरि का शृङ्गार या वैराग्यगतक या अमरगतक। इसी प्रकार महाकाव्य जिस प्रकार महा प्रबन्ध है, उसी प्रकार नाटक और प्रकरण आदि बड़े रूपक या कादम्बरी वृक्षकथा आदि बड़े कथाकाव्य भी प्रबन्ध हैं।

द्रष्ट का यह स्वीकरण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि सभी प्रबन्धों के उत्साह और अनुत्साह दो स्वल्प हो सकते हैं। त्रिन प्रबन्धों का सम्पूर्ण गीतर कवि द्वारा उद्गादित हो और नायक की उत्पत्ति कल्पित हो, ऐसे प्रबन्ध उत्साह कहे जायेंगे। इतिहासादि (रामायणादि कथा) में प्रसिद्ध पञ्चर (कथाशरीर) को सम्पूर्ण या आंशिक रूप में आधार बनाकर त्रिनमें कवि उस पर अपना वाणी

सामग्र्या सहितं मुखादिपालि सर्गहीनं यत् तत् काव्यं नाम काव्यम् ।^३

(५) मातृग्राम शास्त्री : हिन्दी टीका : मोतीलाल बनारसीदास : दारापक्षी : १९५६ : पृष्ठ २२४ श्लोक ३२८-२९ : 'सर्ग-समुत्पितम् ।' टीका—'एक कथा का निरूपक पद्यबद्ध सर्गमय ग्रन्थ, त्रिनमें सब सन्धिदाँ न हो, काव्य कहलाता है ।'

१. काव्यालङ्कार : १६।९ : 'ते लघवो विज्ञेया येऽन्यत्रमो भवेच्चनुवर्गान् ।
असमप्रानेकरमा ये च समप्रैकरस-युक्ताः ॥'

नमिसाधु—'ते मेघदूतादयो लघवः ।'

२. वही : १६।२ : नमिसाधु की दृष्टि :

'प्रबन्धाः प्रवक्ष्यन्ते नायकचरितमेतैर्विचित्रि कृत्वा ।'

का आवरण बढ़ाता है, वे अनुत्पाद्य प्रबन्ध होते हैं ।^१ इस प्रकार प्रथम धेनी के उदाहरण के रूप में कादम्बरी और दूसरी के रूप में किराताजुनीय को प्रस्तुत किया जा सकता है । नमिसायु ने मूल से लिखा है कि उत्पाद्य में प्रसिद्ध नायक को स्वीकार कर उसका चरित्र-बन्धन माध काव्य की भाँति कवि-कल्पित होगा ।^२ नमिसायु का यह तर्क मानने पर दोनों कोटियों में अन्तर करना दुष्कर हो जायगा, क्योंकि दोनों ही कोटियों में कवि कल्पना तो रहेगी ही ।

महाकाव्यों में से अधिक संख्या उनकी है, जो अनुत्पाद्य हैं, अर्थात् जो रामायण, महाभारतादि की प्रसिद्ध कथाओं को आधार बनाते हैं । उत्पाद्य-वस्तु वाले महाकाव्य, जिनमें सर्वथा कल्पित आधार हो, असम्भव हैं । कवियों ने अपने समकालीन नरेशों और कुछ ऐतिहासिक घटनाओं को आधार बनाकर उन पर कहरना का आवरण बढ़ाते हुए ऐतिहासिक शैली के महाकाव्य लिखे हैं । वास्तव में यह तीसरी कोटि है, किन्तु यहाँ हम इन्हीं को उत्पाद्य मान कर चलते हैं, क्योंकि ये दृष्ट के उत्पाद्यों के लक्षण का अनुसरण करते हैं । कथा आदि के क्षेत्रों में यह विभाजन स्पष्ट है ।

— ११. धीरभानूदय काव्यम् ।

उपरोक्त पद्यात्मक प्रबन्धों के अन्तर्गत सर्गबन्ध रचना धीरभानूदयकाव्य हमें प्राप्त है । यह महाकाव्य के लक्षणों से युक्त ऐतिहासिक शैली का द्वादश सर्गात्मक उत्पाद्य प्रबन्ध है ।^३

१२. सङ्गीतरघुनन्दनम्

विश्वनाथसिंह की १६ सर्गों में रचित शृङ्गार-पीयक कृति सङ्गीतरघुनन्दनम् गीतगोविन्द की अनुकृति है । धीराम के रास-विलास की सामान्य आंशिक कथा लेकर इसका प्रथम हुआ है । अतः यह अनुत्पाद्य सण्डकाव्य है । कवि ने यहाँ रसात्मक वाक्यों का सङ्गीतात्मक सन्निवेश किया है और बोध-बोध में उचित-परिवर्तनों के लिए निर्देशात्मक प्रास्ताविक गद्य भी दिये हैं । सासेन ने गीतगोविन्द की एक गीतनाट्य (लिरिक ड्रामा) और पिरोल ने भावमय शृङ्गार-नाट्य लिखा

१. काव्यमलङ्कार : १९।३-४ :

‘तत्रोत्पाद्या धेनां शरीरमुत्पाद्येत् कविः सकलम् ।
कल्पितमुत्पाद्यति नायकमपि कृत्रिभित् कृत्यात् ॥
पञ्जरमितिहासादि-प्रसिद्धमस्त्रिंशं तदेकदेशं वा ।
परिपूर्वेत् स्व-वाचा यत्र कविस्ते रघुनृत्पाद्याः ॥’

२. वही १६।३ : व्याख्या—‘नायकं प्रसिद्धं गृहीत्वा—यथा माधकाव्ये ।’

३. विस्तृत चर्चा के लिए देखिये भागे—प्रथमाग ३ (ए)

है। सङ्गीतरधुनन्दन के गद्य-निर्देशों ने इसे गीतगोविन्द की अपेक्षा और भी अधिक गीतिनाट्य बना दिया है।

गद्य-प्रबन्ध

गद्यरमक प्रबन्धों में आख्यायिका और कथा को सभी ने मान्यता दी है। दण्डी ने आख्यान की सभी जातियों को इन्हीं दोनों में अन्तर्भूत कर दिया है।^१ विश्वनाथ का भी यही मत है।^२ आनन्दवर्धन ने इन दो प्रभेदों के अतिरिक्त परि-कथा, सबलकथा और खण्डकथा—ये तीन प्रभेद और विनाए हैं।^३ हेमचन्द्र ने आख्यायिका के अतिरिक्त इन सभी प्रभेदों का कथा में अन्तर्भाव कर दिया है तथा आख्यान, निर्दशन, प्रवह्लिका, मत्तलिका, मणिकुल्या, उपकथा और बृहत्कथा—ये ७ प्रभेद कथा के अन्तर्गत अधिक बतलाए हैं। उन्होंने आनन्द-वर्धन के अनुसार ही सकलकथा को समस्त फलों के लाभ में पर्यवसित होने वाली एवं इतिवृत्तवर्णन पर आधारित चरित बतलाया है। खण्डकथा के सम्बन्ध में हेमचन्द्र का कथन है कि अन्य ग्रन्थ में प्रसिद्ध इतिवृत्त का मध्य से या किसी छोर से वर्णन करने वाली खण्डकथा कहलाती है।^४

१. कीच - ए० बी० (डा०) : ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर : आक्सफोर्ड : १९२८ : पृष्ठ १६१ कीच, लासेन और पिचोल से इस रूप में असहमत है कि गीतगोविन्द एक नाट्य है। वे सर्वबन्ध रचना होने से इसे प्रबन्धकाम्य ही मानते हैं, साथ ही उसका सङ्गीत निमित्तक उद्देश्य स्वीकार करते हैं। सङ्गीतरधुनन्दन का भी यही रूप है। यह भी सभी की भाँति राग-ताल-लय-बद्ध है।

२. काम्यादर्श : १।२३ : 'अपादः पदसन्तानो गद्यमाख्यायिका कथा।' तथा १।२८ : 'तत् कथाख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञा-द्रव्याङ्गिता।

अथैवान्तर्भविष्यन्ति शेषाश्चाख्यानजातयः ॥'

३. साहित्यदर्पण : वाराणसी : १९१६ : परिच्छेद ६।३३२-३४ : वृत्ति-
'आख्यानादयश्च' ।'

४. ध्वन्यालोक : ३।७-वृत्ति : 'यतः काव्यस्य प्रभेदाः' । परिकथा-
सकलकथा-सबलकथा-सर्वबन्धोऽभिनेयार्थमाख्यायिका अपेत्येवमादयः ।'
अभिनवगुप्त-व्याख्या-आदिग्रहणाच्चम्पूः ।'

५. काव्यानुशासन : काव्यमाला ७० : बम्बई : १९०१ : पृष्ठ ३३८-
३४० : 'मध्यानुपागततो वा मन्वान्तरप्रसिद्धमिति वृत्तं यस्यां वर्णयते
सेन्दुमर्यादिवत् खण्डकथा। समस्तफलान्तेतिवृत्तवर्णना समरादित्यवत्
सकलकथा (चरितम्) ।'

१३—दशकुमारपूर्वकथासारः

वीरभद्रदेव ने दण्डी के दशकुमारचरित को पूर्वपीठिका का सार गद्य में ही प्रस्तुत किया है। इसे हम उपर्युक्त गद्य-प्रभेदों में से खण्डकथा मानते हैं, क्योंकि यह सम्पूर्ण कथा के एक अंश पर अवलम्बित है। कल्पित कथा होने से यह उत्पाद्य लघु प्रबन्ध है।

मिश्र-काव्य

दण्डी ने काव्य के गद्य और पद्य - दो प्रमुख भेदों में मिश्र भी जोड़ दिया है। उन्होंने नाटक को इसी मिश्र काव्य के अन्तर्गत माना है। पहला सम्भवतः इसलिए कि उसमें गद्य और पद्य दोनों का प्रयोग होता है, दूसरा इसलिए कि उसमें प्राकृत आदि भाषाओं का मिश्रण रहता है। इस प्रकार भामह तथा अन्य अनेक आचार्यों द्वारा स्वीकृत अभिनेयार्थ नामक प्रबन्ध यहाँ मिश्र काव्य का अङ्ग है। दण्डी ने मिश्र के अन्तर्गत चम्पू को भी माना है।^१

हेमचन्द्र ने काव्य का विभाजन भिन्न रूप से प्रेक्ष्य (अभिनेय) और श्रव्य नाम से किया है। उन्होंने प्रेक्ष्य के भी पाठ्य (नाटकादि) और गेय दो भेद किये हैं। श्रव्य के प्रमुख भेद उन्होंने महाकाव्य, आख्यायिका, कथा, चम्पू और अनिवद्ध वतलाए हैं। यहाँ से चम्पू को निबद्ध काव्य के अन्तर्गत महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त होता है। हेमचन्द्र के मत से यह संस्कृत भाषा में गद्य-पद्य दोनों में मिश्रित रूप में उच्छ्वासों में निबद्ध होता है।^२ विश्वनाथ ने हेमचन्द्र की भाँति ही काव्य को विभाजित किया है और प्रेक्ष्य को दृश्य संज्ञा दी है। गद्य-पद्य से मिश्रित काव्य की कोटि में उन्होंने चम्पू और विह्वद की गणना की है।^३

१. काव्यादर्श : १।३१ : 'मिश्राणि नाटकादीनि... ।

गद्यपद्यमयी काचिच्चम्पूरित्यभिधीयते ॥'

तथा १।३७ : 'नाटकादि तु मिश्रकम् ।' टीका-'नाना भाषामि-
मिश्रितम् ।'

२. काव्यानुशासन : काव्यमाला ७० : बम्बई : पृष्ठ ३ '७-४० :

'काव्यं प्रेक्ष्यं श्रव्यं च, प्रेक्ष्यं पाठ्यं गेयं च । प्रेक्ष्यमभिनेयम् । पाठ्यं
नाटकादिः । श्रव्यं महाकाव्यमाख्यायिका कथा चम्पूरनिबद्धं च ।—
गद्यपद्यमयी साङ्ख्यो सोच्छ्वासा चम्पूः संस्कृताभ्यां गद्यपद्याभ्यां
रचिता । प्रायेण यान्यङ्कनानि स्वनाम्ना परनाम्ना वा कविः करोति
तैर्युक्ता । उच्छ्वासनिबद्धा चम्पूः यथा वासवदत्ता दमयन्ती वा ।'

३. साहित्यदर्पण : वाराणसी : १९५६ : परि० ६।१ 'दृश्य-श्रव्यरव-
भेदेन पुनः काव्यं द्विधा स्मृतम् । दृश्यं तत्राभिनेयं तद् रूपारोपात्त

वस्तुनः काव्य के मूलतः तीन भेद—गद्य, पद्य और मिश्र होते हैं। गद्य-पद्य तो श्रव्य ही होते हैं। मिश्र भी श्रव्य ही होता है किन्तु उसका एक अंग दृश्य (प्रेक्ष्य या अभिनेय) भी होता है। भरत ने नाट्यवेद को दृश्य-श्रव्य (दोनों) माना है।^१

१४—आनन्दरघुनन्दन नाटक

हेमचन्द्र ने नाटक को प्रेक्ष्य काव्य के पाठ्य भेद के अन्तर्गत माना है। विश्वनाथ ने दृश्य काव्य के अन्तर्गत १० रूपक और १८ उपरूपक गिनाए हैं। रूपकों में सर्वप्रथम नाटक माना गया है।^२ इस भेद के अन्तर्गत विश्वनाथ सिंह द्वारा रचित आनन्दरघुनन्दन नाम का नाटक हमें आलोच्य काव्यों में उपलब्ध है। इतिहास-प्रसिद्ध कथा के कारण इसे अनुत्पाद्य प्रबन्ध माना जायगा।

१५—वीरभद्रदेव-चम्पू

पद्यनाम मिश्र द्वारा रचित यह चम्पू काव्य कवि के समकालीन एवं आश्रय-दाता राजकुमार वीरभद्र की नायक रूप में प्रस्तुत करता है। यह ७ उच्छ्वासाओं में विभक्त प्रशस्त्यात्मक चम्पू है। वस्तु के आधार पर वीरभद्रदेव-चम्पू उत्पाद्यवस्तु है।

१६—रामचन्द्रचम्पू या रामचन्द्राह्निकम्

अनुत्पाद्यवस्तुक कोटि का चम्पू काव्य विश्वनाथसिंह का रामचन्द्राह्निकम् या रामचन्द्रचम्पू है इसके नायक श्री राम हैं। श्री राम की आठों प्रहर की दिनचर्या इसमें आठ यामों में विभाजित है। इन यामों को उच्छ्वास-स्थानीय माना जा सकता है।

इस प्रकार निबद्ध कोटि के अन्तर्गत हमें ६ ग्रन्थ प्राप्त हैं, जिनमें से १ महाकाव्य (वीरभानुदयम्), १ खण्डकाव्य (सङ्गीतरघुनन्दनम्), १ खण्डकथा (दशकुमारपूर्वकथासारः), १ नाटक (आनन्दरघुनन्दनम्) और २ चम्पू-काव्य (वीरभद्रदेव-चम्पू तथा रामचन्द्राह्निकम्) उपलब्ध हैं। वस्तु को दृष्टि से वीरभानुदय महाकाव्य, दशकुमारपूर्वकथासार खण्डकथा और वीरभद्र-देवचम्पू तीन उत्पाद्य प्रबन्ध और सङ्गीतरघुनन्दनम् खण्डकाव्य, आनन्द-

रूपकम् ॥' तथा ६।३३६—'गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते।' और ६।३३७।

१. नाट्यशास्त्र १।११ :

'क्रीडनीयकमिच्छामो दृश्यं श्रव्यश्च यद् भवेत्।'

२. साहित्यदर्पण : ६।३—७

रघुनन्दनम् नाटक एवं रामचन्द्र-चम्पू तीनों का पञ्जर रामायण पर आधारित होने से वे अनुत्पाद्य प्रबन्ध हैं ।

इस वर्गीकरण को एक ही दृष्टि में निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है :—

अनिबद्ध काव्यः (१) लौकिक पद्धति के मुक्तक—प्रशस्तियाँ

(क) क्रमहीन शुद्ध— (१) चार मुक्तक (भानुकर के तीन और रामचन्द्रभट्ट का एक श्लोक ।

(ख) क्रम-सापेक्ष, संकलित,
कोप या पर्यायबन्ध—

राजस्तुति—

(२) रामचन्द्र-यशः-प्रबन्धः ।

मुनि-स्तुति—

(३) रामपरत्वम् ।

वंशप्रशस्ति—संहिता—

(४) बधेलवंशवर्णनम् ।

(२) धार्मिक पद्धति के मुक्तक—स्तुतिगीत

क्रम-सापेक्ष, कोप या पर्यायबन्ध— (५) जगदीशशतकम्

(६) शम्भुशतकम्

(७) लोकनायाष्टकम्

(८) नर्मदाष्टकम्

(९) यादवेन्द्राष्टकम्

(१०) सुधर्माविलासः

(ग) कथोत्थ—सङ्घातकाव्य—

(११) रघुराजमङ्गलचन्द्रावली ।

निबद्ध काव्यः (१) पद्य-प्रबन्ध

(क) उत्पाद्य सर्गबन्ध महाकाव्य

(१२) वीरमानुदयकाव्यम् ।

(ख) अनुत्पाद्य खण्डकाव्य

(१३) सङ्गीत-रघुनन्दनम् ।

(२) गद्य प्रबन्ध

उत्पाद्य खण्डकथा

(१४) दशकुमार-पूर्वकथासारः ।

(३) मिश्र-प्रबन्ध

(क) अनुत्पाद्य दृश्यकाव्य नाटक

(१५) आनन्दरघुनन्दनम् ।

(ख) १ उत्पाद्य श्रव्यकाव्य-चम्पू

(१६) वीरभद्रदेवचम्पू ।

२ अनुत्पाद्य श्रव्यकाव्य-चम्पू

(१७) रामचन्द्रचम्पू या

रामचन्द्राह्निकम् ।

वीरभानूदयकाव्यम्

(क) परिचयात्मक विवरण

१. पाण्डुलिपि और उसका प्रकाशन

वीरभानूदय काव्य की प्रकाशित प्रति में उसकी पाण्डुलिपि के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सूचनाएँ उपलब्ध हैं। दीवान बहादुर पं० जानकीप्रसाद चतुर्वेदी^१ ने प्राक्वर्णन (फोरवर्ड) में लिखा है कि पाण्डुलिपि का समीक्षात्मक परीक्षण लगभग १२ वर्ष पूर्व हो चुका था।^२ डा० हीरानन्द शास्त्री ने १९३८ में लिखित आमुख (प्रिफेस) में लिखा है कि श्री चतुर्वेदी ने बहुत वर्षों पूर्व उनके पास 'एकमात्र उपलब्ध पाण्डुलिपि' भेजी थी। १९२५ ई० में श्री शास्त्री ने इसके आधार पर 'दि बघेल डायनेस्टी आफ रोवा' (रोवा का बघेल राजवंश) निबन्ध लिखा। प्रो० एस० एच० होदीवाल की आलोचनाओं के कारण श्री शास्त्री ने सन् १९३० में 'फर्दर नोट्स आन दि बघेल डायनेस्टी आफ रोवा'^३ (रोवा के बघेल राजवंश पर अतिरिक्त टिप्पणियाँ) निबन्ध लिखा।

प्रस्तुत प्रकाशित प्रति का सम्पादन और अंग्रेजी सारानुवाद धार के उत्कालीन इतिहास-विभाग के प्रमुख (हिस्ट्री आफिसर) श्री काशीनाथ

१. वर्तमान रोवा नरेश के पिता महाराज गुलाबसिंह के दीवान, १९१८ ई० में रोवा कौंसिल के होम-मेम्बर, १९२२ ई० में दरबार सेक्रेटरी। देखिये बि० प्र० इ० पृष्ठ २७९ तथा रोवा राज्य का इतिहास (यादवेन्द्र सिंह) : रोवा; १९४० : पृष्ठ १५०-५१।

२. नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से प्रकाशित। इस प्रति में प्रकाशन-तिथि नहीं है। साथ में प्रकाशित चतुर्वेदी जी के 'फोरवर्ड' में भी तिथि नहीं है, किन्तु डा० हीरानन्द शास्त्री ने आमुख (प्रिफेस) में ९ जुलाई १९३८-तिथि दी है।

३. 'ज० दि० ओ० सो०' में १९३० ई० में प्रकाशित।

कृष्ण लेले ने किया था। आपके सहायक श्री लक्ष्मण उपाध्याय के पुत्र पं० अनन्त शास्त्री थे।^१

प्रकाशित प्रति के अंग्रेजी अंश के अन्त में यह सूचना प्रकाशित है कि ग्रन्थ की प्रतिलिपि (संशोधित) श्री लक्ष्मण के पुत्र अनन्त शास्त्री ने फाल्गुन कृष्ण अष्टमी, सं० १९७७ वि० (मार्च, १९२१ ई०) की की।

इससे प्रतीत होता है कि श्री चतुर्वेदी ने १९२० ई० के निकट पाण्डुलिपि संशोधनार्थ श्री लेले के समीप धार भेंजी थी और श्री अनन्त शास्त्री द्वारा संशोधित प्रतिलिपि तैयार होने पर दोनों प्रतियाँ बड़ोदा में डा० हीरानन्द शास्त्री के समीप भेंजी गईं। जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, सम्भवतः १९३५ ई० तक में शास्त्री जी ने ग्रन्थ का समीक्षात्मक विश्लेषण (क्रिटिकल एनलिसिस) तैयार किया, जो साथ ही प्रकाशित है। श्री शास्त्री लिखते हैं कि (उपर्युक्त दो लेख, १९२४ और १९३० ई० में प्रकाशित करने के पश्चात्) उन्होंने ग्रन्थ को प्रकाशित कराने की आवश्यकता पं० जानकी प्रसाद को सूचित की, जिसके साथ समीक्षात्मक विश्लेषण भी प्रकाशित हो।

डा० हीरानन्द शास्त्री ने, जो बड़ोदा के पुरातत्व विभाग के संचालक थे, श्री पी० के० गोडे (पूना) को १५ मई, १९३५ ई० को पत्र लिखा था कि वीरभानूदयकाव्य उनके समीक्षात्मक विश्लेषण के साथ-साथ रोवा-शामन द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है। श्री गोडे ने इस पत्र का उल्लेख अपने १९३५ ई० के लेखों में किया है।^२ महाराजा सा० (गुलाबसिंह) ने राज्य के व्यय पर यह प्रकाशन सहर्ष स्वीकार किया। श्री शास्त्री ने सरस्वती की सेवा के रूप में प्रकाशन-सम्बन्धी श्रम किया।

प्रकाशित प्रति में काव्य के मूल संस्कृत अंश के अन्त में रोमन अक्षरों में २०-५-३५ तिथि छपी हुई है। अतः इस समय तक श्री लेले तथा श्री अनन्त शास्त्री द्वारा मुद्रणार्थ ग्रन्थ सम्पादित हो चुका था। अंग्रेजी सारानुवाद और

१ वीरभानूदयकाव्यम् : 'फोरवर्ड', तथा 'प्रिफेस'। अन्वयाश्री ने ही मुद्रणार्थ प्रति १९३१ ई० में तैयार की थी। (देखिये अंगरेजी सारास, पृष्ठ ५०) श्री निजामो के कथनानुसार मुद्रण के पश्चात् पाण्डुलिपि सरस्वती कोप भाण्डार, किला, रोवा में रख दी गई थी, किन्तु वहाँ पता नहीं चलता।

२. देखिये—ओ० ज० में प्रकाशित श्री गोडे के लेख—'सम इंटान' तथा 'आइडेंटिफिकेशन'। साथ ही देखिये श्री गोडे द्वारा वीरभानूदय काव्य की समीक्षा—एतत्स १९४७ : भाग २७ पृष्ठ १६३-६५।

नामानुक्रमिका (इंडेक्स) पीछे तैयार हुआ होगा । श्री शास्त्री का आमुख ९ जुलाई १९३८ ई० को (बढ़ोदा) में लिखा गया । अतः १९३८ ई० के अन्त तक ग्रन्थ पूर्णतः प्रकाश में आ गया होगा ।^१ जानकी प्रसाद जी ने फोरवर्ड में महाराज रीवा की ओर से डा० हीरानन्द शास्त्री, श्री लेले और श्री उपाध्याय को उनके प्रीतिपूर्ण परिचय (लेबर आफ लव) के निमित्त धन्यवाद दिया है ।

श्री शास्त्री ने पाण्डुलिपि का परिचय इस प्रकार दिया है—

काशमीरी कागज पर लिखे हुए ५५ पत्रा, प्रत्येक १२" X ४"२" । प्रत्येक पृष्ठ पर आठ पंक्तियाँ । प्रत्येक पंक्ति पर प्रायः ४८ अक्षर । लिपि स्वच्छ एवं ललित ।^१

(२) कवि-परिचय और ग्रन्थ का रचनाकाल

वीरभानूदय काव्य के प्रणेता माघव ने ग्रन्थ के प्रत्येक सर्ग की समाप्ति पर एक समान श्लोक^२ तथा अन्तिम सर्ग की समाप्ति पर कुछ और श्लोक अपने सम्बन्ध में दिये हैं । इन श्लोकों के आधार पर माघव के पिता अभयचन्द्र ऊरव्य थे ।^३ माता का नाम दुर्गा था । इनका कुल उच्च एवं विष्णुपूजक था । बघेलनरेश वीरभानु के चरित्रवर्णन के रूप में यह भूपाश्रित काव्य लिखा गया है । अतः प्रतीत होता है कि माघव राज्याश्रित कवि था । वीरभानूदय काव्य की समाप्ति पर वीरभानु के लिए कवि ने 'आसीत्' शब्द का प्रयोग किया है ।^४ अतः वह वीरभानु के पुत्र रामचन्द्र का समासद था । काव्य में

१. पब्लिशड अंडर दि अघारिटी आफ रीवा दरबार (रीवा दरबार के प्राधिकार से प्रकाशित) ।

२. वीर : १२।४२-४५ ।

उभयकुलविशुद्धः धीपतिप्रसन्नचित्तः शृतगुणजनतोपी माघवो यः प्रभाति ।

गुह्नपतिदयार्थी पापकर्मप्रमाथी जगति जयति काव्यं तस्य भूपाश्रयत्वात् ॥

ऊरव्योऽभयचन्द्र एधितमशा यो भाति साधुश्रिय—

स्तस्याभात् पतिदेवता कुलभया दुर्गेति नाम्ना वधूः ।

मातुस्तेन सदुक्तमार्गगतिना श्रीमाघवेनोजितं

काव्यं राजति राजवर्णनशुभं तत्कीर्त्तिगङ्गामृतम् ॥^१

तथा—'सुतकाव्ये सुचरित्रवर्णनविधौ श्रीवीरभानुप्रभोः ।'

३. श्री लेले ने ऊरव्य का अर्थ वैश्य किया है । सम्भवतः उसका तर्क—

'ऊरू यदस्य तद् वैश्यम् ।' उक्ति पर आधारित है, (अंग्रेजी सारा-नुवाद पृ० ५०) किन्तु हीरानन्द शास्त्री ने 'कायस्थ' अर्थ लिया है (वीर० कि० ए० पृ० ५) ।

४. वीर० १२।४१ : 'आसीदेवं...श्रीमशा वीरभानुः ।'

माघव ने गहोरा राजधानी का, वहाँ के जीवन, निवासियों, भवनों, समीपस्थ नदियों और पहाड़ों तक का बड़ा सजीव वर्णन किया है ।^१ इससे प्रतीत होता है कि वह स्वयं गहोरा का ही निवासी था । वीरभानु और रामचन्द्र के शासन-काल में, सोलहवीं शती के प्रथम तीन-चतुर्थांशों में, विशेष रूप से मध्य भाग में कवि का स्थिति-काल माना जा सकता है । काव्य के अन्तःसाक्ष्य के बल पर कहा जा सकता है कि कवि माघव विद्वान्, सुशिक्षित और अनेक शास्त्रों से परिचित था । इससे अधिक कोई भी जानकारी कवि के सम्बन्ध में उपलब्ध नहीं है ।

वीरभानुदयकाव्य की यह 'एकमात्र उपलब्ध पाण्डुलिपि', संवत् १६४८ (१५९१ ई०) में लिखी गई, जैसा कि उसको पुष्पिका से विदित होता है ।^२ ग्रन्थ की रचना अवश्य ही इससे पहले की होगी ।

होरानन्द शास्त्री ने समीक्षात्मक विदलेपण (क्रिटिकल एनलिसिस) में ग्रन्थ के रचनाकाल पर पर्याप्त प्रकाश डाला है । आपका कथन है कि सम्भवतः पाण्डुलिपि रीवा-राज्य की उत्तराधिकार सम्पत्ति थी और वीरभद्र^३ को इसमें विशेष रुचि रही होगी, क्योंकि काव्य में उनके जन्मोत्सव का वर्णन है । पाण्डुलिपि के प्रथम और अन्तिम पृष्ठों पर दो मुहरें (पूयक्-पूयक्) हैं । पहली 'वीरभद्र बन्दह शाह अकबर १६५' और दूसरी है 'वीरभद्र बन्दह सुलतान सलीम' । आगे श्री शास्त्री लिखते हैं कि गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, बनारस में सोमदेव-कृत कथासरित्सागर की एक पाण्डुलिपि है, जिसके आवरण पृष्ठ पर लगभग इसी तरह की मुहर पड़ी है । उसमें हिजरी सन् ९७७ (१५६९ ई०) अङ्कित है तथा इसमें भी 'वीरभद्र' अपने को सुलतान सलीम का 'बन्दह' (गुलाम) कहता है । सलीम का जन्म इसी वर्ष हुआ था और वीरभद्र अन्त तक सलीम की सेवा में रहा (सलीम को जन्म से ही सुल्तान कहा जाता था^४) । अतः इन मुहरों का वीरभद्र वास्तव में 'वीरभद्र बघेल' ही है ।

१. वीर० २।७-३०

२. वीर० : अन्तिम पुष्पिका : पृष्ठ १४२ :

'संवत् १६३८ समये अगहन शुक्लपक्ष द्विती । ती) यायां भोमवासरे
लिखितं (त) मिदं कायस्य तुलसिदास-पुत्र श्रौं नाइ काशिवासी (?)
विश्वेश्वर सन्निधे ॥'

३. राजा रामचन्द्र बघेल का पुत्र, मृत्यु १५९३ ई०; संस्कृत ग्रन्थों का प्रणेता । देखिये आगे अध्याय ४ (२) ।

४. जहाँगीरनामा (अनु० बेबरिज) : १९०९ : पृष्ठ २ ।

अकबर का राज्यारोहण ९६३ हिजरी में हुआ। यह तिथि १८ फरवरी १५५६ ई० है।

श्री शास्त्री की इन सूचनाओं के अनुसार काव्य की पाण्डुलिपि पर प्राप्त पहली मुहर ९६५ हिजरी अर्थात् १५५८ ई० की होती है। मुहर की इस तिथि को हीरानन्द शास्त्री ने पर्याप्त महत्त्व दिया है, किन्तु मुहर के अङ्क अन्तःसाक्ष के विरुद्ध हैं। अतः इस सम्बन्ध में हमें यहाँ विस्तार के साथ विचार करना होगा।

वीरभानुदयकाव्य के अन्तिम सर्ग में वीरभद्र के जन्मोत्सव का विवरण है। इस उपलक्ष में 'दिल्लीश्वर-यवनाधिनाथ मुद्गलेश' हुमायूँ ने, जिसके साथ वीरभानु का 'भ्रातृभाव' था, वीरभानु के घर हुए पौत्र-जन्म को अपने घर का पौत्र-जन्म माना और उसने उपहार भेजे।^१

श्री शास्त्री का यह तर्क है कि 'उक्त उपहार भेजते समय हुमायूँ दिल्लीश्वर था। यह समय या तो १५३० ई० से १५४० ई० के बीच हो सकता है या १५५५ ई०, जब हुमायूँ ने पुनः सूर-मुल्तानों से दिल्ली वापस ली।^२ १५५५ ई० में वह अपनी चिन्ताओं में ही अत्यधिक व्यस्त था, अतः पहली अवधि को मानना ही उपयुक्त है। इस प्रकार वीरभद्र के जन्म के लिए १५३५ ई० को एक सम्भव तिथि के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। उक्त मुहर की तिथि (१५५७-५८ ई०) तक वीरभद्र लगभग २२ वर्ष का रहा होगा और इस समय वह अकबर के दरबार में अपने पिता की ओर से प्रतिनिधित्व करता रहा होगा।'^३

१. वीर० १२।२०-२१, २३

'आकर्ण्य दिल्लीश्वर-भूपमोलिः श्रीमान् हुमाऊ यवनाधिनाथः ।

श्री वीरभानोस्तनयस्य जातं सुतं प्रमोदं बहुधा प्रपेदे ॥

स प्रेषयामास निजैरमात्यचरैः शुभान्याभरणानि हृष्टः ।

अश्वांश्च वासांसि सुगन्धवस्तु भ्रात्रीकृतस्तेन - हि वीरभानुः ॥

पौत्रं तमेवं नृप-वीरभानोजातं किलाहं निजमेव मन्ये ।

को भ्रातृपौत्रेऽपि निजे विशेष इत्याह लेखिन व मुद्गलेशः ॥'

२. हुमायूँ शेरशाह से चौसा की लड़ाई में २ जून, १५३९ ई० में हारा।

३. हुमायूँ की दिल्ली में वापसी २३ जुलाई १५५५ ई० में हुई और २७ जनवरी १५५६ ई० में उसकी मृत्यु हुई।

४. वीर० क्रि० ए० : पृष्ठ १-७

श्री शास्त्री आगे कहते हैं कि 'काव्य का निर्माण स्पष्टतः वीरभद्र के जन्म-समारोह के उपलक्ष्य में किया गया होगा। सर अलेक्जेंडर कनिंघम के मतानुसार यह तिथि १५४० ई० के निकट होगी; किन्तु काव्य से स्पष्टतः ज्ञात होता है कि उसकी रचना वीरभद्र के जन्म के पश्चात् और वीरभानु के जीवनकाल में हुई।'^१

इस सम्बन्ध में शास्त्री जी ने काव्य के एक उल्लेख^२ की चर्चा की है और लिखा है कि '१५५५ ई० में इब्राहीम सूर से परास्त हो कर अदली (आदिल-शाह सूर) भाठ (बघेलखण्ड) आया। यह उल्लेख इसी घटना की ओर संकेत करता है। इम्पीरियल गेजेटियर के आधार पर वीरभानु के पुत्र रामचन्द्र का शासनारम्भ १५५५ ई० से हुआ, यही वीरभानु की निघन-तिथि होगी। अतः काव्य की रचना (अदली के आगमन के पश्चात् और वीरभानु की मृत्यु से पूर्व) १५५५ ई० में ही हुई होगी।'^३

शास्त्री जी के उक्त तर्कों पर विचार करते हुए हम सर्वप्रथम ग्रन्थ के रचनाकाल का निश्चय करना चाहते हैं। अवश्य ही ग्रन्थ की परिसमाप्ति वीरभद्र के जन्म और आदिलशाह सूर की भाठ-मात्रा के पश्चात् हुई, क्योंकि काव्य में इन तथ्यों के उल्लेख है, किन्तु हम शास्त्री जी द्वारा निर्णीत रचना-तिथि को और पीछे लाना चाहते हैं।

अन्तिम सर्ग में वीरभद्र के जन्मोत्सव-वर्णन के पश्चात् कवि वीरभानु के पुत्र-पौत्र से युक्त सुसमय जीवन बिताने का वर्णन करता है। आगे कवि लिखता है कि वीरभानु ने सुयोग्य पुत्र को राज्य-भार सौंप कर त्रिवेणी-वास किया। इस समय कुछ काल तक त्रिवेणी-तट पर ज्ञानियों के साथ वीरभानु की अध्यात्म-चर्चाओं के भी उल्लेख है। अन्त में यद्यपि कवि वीरभानु की मृत्यु की दुःखप्रद सूचना देकर रसिकों का मन नहीं दुखाता, तो भी वह कहता है कि वीरभानु इस प्रकार के गुणवान् राजा थे। यहाँ स्पष्टतः 'आसीत्' शब्द का प्रयोग है।^४ स्पष्ट है कि काव्य राजा वीरभानु के जीवनकाल में नहीं, किन्तु उनके परलोकवास के पश्चात् सम्पूर्ण हुआ।

१. वीर० क्रि० ए० : पृष्ठ १-७।

२. वीर० : १०।१३ : 'स ईदिलिस्तं शरणागतोऽभूत् स्वयं सुरवाण-मुहम्मद-दादिः।'

३. वीर० क्रि० ए० : पृ० १-७।

४. वीर० सर्ग १२: श्लोक २४—'रेजे तदानां तु सपुत्रपौत्रः श्रीवीरभानुः-।'
श्लोक २८—'धुरं धराया विनिषाय धुर्ये निजात्मजे रामगुणानिरामे।
श्रीरामचन्द्रे नृपवीरभानुस्तत्पात्र राज्योद्बहनप्रयासम् ॥'

काव्य में रामचन्द्र के वर्णन में तानसेन का भी उल्लेख है। (तानसेन के साथ रामचन्द्र का समय सानन्द बीता करता था^१ ।) तानसेन का अकबरी दरबार में १५६२ ई० में जाना ज्ञात है।^२ अतः निश्चित रूप से प्रस्तुत काव्य को रचना १५५५ और १५६२ ई० के बीच हुई। १५६१ ई० के निकट ब्रिटिशेश्वर बाग्यवगड आए थे। रामचन्द्र ने उनका स्वागत किया था। तानसेन से उनकी भेंट हुई थी^३। अदली के जाने के पश्चात् रामचन्द्र ने नये आक्रान्ता इब्राहीम मूर को प्रायः उसी वर्ष बन्दी बनाया था और बाद में स्वागत भी किया था^४। काव्य में इनमें से किसी घटना की चर्चा नहीं है, साथ ही यह भी प्रतीत होता है कि अपने आश्रयदाता वीरभानु की महायात्रा की तैयारियों के वर्णन में और निघन के पश्चात् उनके लोकोत्तर गुणों के स्मरण में कवि का शोकोच्छ्वास नवीन है। अतः काव्य की रचना वीरभानु के जीवनकाल में प्रारम्भ हुई होगी और उसकी सम्पुति १५५५ ई० के अन्त तक अथवा १५५६ ई० के प्रारम्भ में हुई, यह माना जा सकता है।

पाण्डुलिपि के सम्बन्ध में भी यहाँ चर्चा करना असंभव न होगा। पाण्डुलिपि पर अद्विन वीरभद्र की दो मुहरों में से एक, जिसमें अकबर का नाम है, ९६५ हिजरी (१५५८ ई०) की बतलाई गई है। यह पाण्डुलिपि १५९१ ई० (सं० १६४८) में लिखी गई, जैसा कि प्रकाशित ग्रन्थ में मुद्रित है। जो

श्लोक २९—'निवर्त्य चेतो विषयाभिलाषादुवास गङ्गायमुनोपकण्ठम् ।

निपेवितोऽलकपुरे सुताद्यैः॥'

श्लोक ३०—'अचिन्तयद् ब्रह्म परं प्रशान्तः ।'

श्लोक ४१—'आसीत्सर्वं...वीरभानुः ।'

१. वीर० : १०।२६-३१ : श्लोक २७—

'अष्टौ स यामान् नयति स्म तेन रागादिना सत्समुदीरितेन ।'

२. आईन : 'दि प्रैण्डीज आफ दि इम्पायर (साम्राज्य के गणनीय व्यक्ति) : क्र० ८९ राजा रामचन्द्र बघेला—राजा आफ भाठ (भाठ-बघेलखण्ड का राजा) : पृ० ४०६... (शासन के) सातवें वर्ष (१५६२-६३ ई०) शाहंशाह (अकबर) ने तानसेन को आगरा आने पर राजी करने के लिए जलालुद्दीन कुर्ची को भाठ भेजा ।.....'

३. शैलत—जे० एम० अकबर : भाग २ : भार० वि० भ० वम्बई० : पृष्ठ २१८ तथा पारेख—भाई मणिलाल : श्री बल्लभाचार्य : राजकोट : १९४३ : पृष्ठ २६८ ।

४. लो—डब्ल्यू० एच० : अल—बदाओनी : भाग १ : पृष्ठ ५५३-५४ ।

पुस्तक १५९१ ई० में लिखी गई, उस पर (उससे पहले की) १५५८ ई० (१६५ हिजरी) की मुहर कैसे अङ्कित की जा सकती है, यह एक प्रश्न है । १५९१ ई० लगभग ९९९ हिजरी होता है ।

शास्त्री जी ने १६५ हिजरी में वीरभद्र को लगभग २२ वर्षों का माना है और उसकी जन्मतिथि ५३५ ई० के समीप स्थिर की है । इससे भी सहमत नहीं हुआ जा सकता ।

वीरसिंहदेव की बाबर से मित्रता थी अर्थात् वे उसके समकालीन (५२६-३० में) थे^१, किन्तु उनकी मृत्युतिथि ज्ञात नहीं है । वीरमानुदय काव्य के सातवें सर्ग में वीरमानु की गर्भवती रानी राजमती स्वप्न में वीरसिंह की वैकुण्ठ से आकर गर्भस्थ शिशु को उपदेश देते हुए देखती है ।^२ इससे इतना निश्चित होता है कि वीरमानु के पुत्र रामचन्द्र के जन्म से पूर्व ही वीरसिंह की मृत्यु हो गई । वीरसिंह १५२७ ई० में कनवाहा में राणा सांगा के पक्ष से बाबर के विरुद्ध लड़े थे^३ । यदि १५२८ ई० में उनकी मृत्यु मानी जाय तो भी १५५८ ई० (१६५ हिजरी) तक तीस वर्षों की अवधि में कभी रामचन्द्र का जन्मकाल मानने पर रामचन्द्र के पुत्र वीरभद्र को २२ वर्ष की आयु देना सम्भव नहीं है ।

रीवा की स्थानीय जमाबन्दियों (लेखापत्रों) में वीरमानु का जन्म १४८६ ई०, रामचन्द्र का १५३५ ई० और वीरभद्र का १५५४ ई० में बतलाया गया है ।^४ वीरमानुदय काव्य में प्राप्त सङ्केत कि वीरसिंह की मृत्यु के बाद ही रामचन्द्र का जन्म हुआ, १५३५ ई० में रामचन्द्र के जन्म को सङ्गत कर देता है । काव्य में यह सूचना भी है कि रामचन्द्र का विवाह होने पर शीघ्र ही पिता वीरमानु ने उन्हें युवराज पद दे दिया ।^५ जमाबन्दियों में १५५१-५२ ई० में

१. वीरमानुदय० २।६७—'तस्माद् भियं प्राप स दबबरोऽपि' तथा—
१२।१२—'श्रीवीरसिंहस्य यथा बभूव सुभ्रातृभावः सह बाबरेण ।'
२. वही, ७।४०—'वीरं श्री वीरसिंहं च (वं) कुण्डभवनागतम् ।'
३. निशामी—ए० एच० : दि बघेल डायनेस्टी आफ रीवा : वि० यू० जर्नल : जिल्द २ क्र० २ : मई १९५८ : पृष्ठ २ ।
४. एकत्रा बांयोगढ़ः—'—राजा वीरमानदेव का जन्म संवत् १५४३ के साल । राजा रामचन्द्रदेव का जन्म संवत् १५६२ के साल । सं० १६०८ के साल राज्याभिषेक ।राजा वीरभद्र का जन्म १६१० के साल का ।'
५. वीरमानुदय ९।४१ : 'गीरापुरात् स्वनगरं समुपेत्य वीरं (रः)

रामचन्द्र का राज्याभियेक सूचित है। यह तिथि वास्तव में युवराज पद की प्राप्ति की ही हो सकती है, क्योंकि वीरभानु १५५५ ई० तक जीवित थे। इस प्रकार यह निष्कर्ष समीचीन प्रतीत होता है कि १५५१ ई० में १६ वर्ष की आयु में रामचन्द्र का विवाह हुआ होगा और तीन वर्ष पीछे वीरभद्र का जन्म १५५४ ई० में हुआ। यह तिथि इसलिए भी सङ्गत प्रतीत होती है कि वीरभानु इस समय जीवित थे और १५५४-५५ ई० में हुमायूँ पुनः दिल्लीवर हुआ। वीरभद्र के जन्म के पश्चात् १ वर्ष के भीतर ही हुमायूँ ने खिलजत और उपहार आदि भेजकर दौरशाह के साथ हुए युद्धों में परीक्षित अपने मित्र वीरभानु के साथ इन बुरे दिनों में सौहार्द सुदृढ़तर बनाया होगा।

इस प्रकार वीरभद्र का जन्म १५५४ ई० में स्थिर होने पर केवल ३-४ वर्षों की आयु में ९६५ हिजरी (१५५८ ई०) में उसका अकबरी दरबार में प्रतिनिधित्व करना असङ्गत ही नहीं, असंभव है।

रीवा के प्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता और लेखक श्री अस्तर हुसेन निजामी, जो वीरभानूदय काव्य के प्रकाशन और होरानन्द शास्त्री के पत्र-व्यवहारों से सम्पृक्त थे, पाण्डुलिपि पर ९६५ अङ्क की पुष्टि करते हैं। ऐसी स्थिति में हमें मुगलकालीन परम्पराओं का स्मरण करना होगा, जब नये शाहशाह के गद्दी पर बैठने पर उसकी अधीनता के चिह्न छोटे-बड़े राज्यों में प्रकट होते थे। प्रतीत होता है कि मुगल अधीनता की स्वीकृति के रूप में महाराज रामचन्द्र बघेल ने यह मुहर ९६५ हिजरी (१५५८ ई०) में तैयार कराई और अपने स्वाभिमान की बचाते हुए शिशु वीरभद्र का नाम उसमें अङ्कित कराया (वीरभद्र बगट्टह शाह अकबर ९६५)। आगे चलकर जब वीरभद्र ने १५९१ ई० (१६४८ वि०) में वीरभानूदय काव्य की प्रतिलिपि तैयार कराई तब उनके कोषाध्यक्ष ने पाण्डुलिपि पर यही मुहर अङ्कित कर दी।

३. वस्तु-सर्व

वीरभानूदय द्वादश-सर्गात्मक काव्य-ग्रन्थ है।^१ यह कुल ८८१ श्लोकों में

श्रीवीरभानुरय मन्त्रिगणैः समेत । श्रीविन्ध्यशैलशिखरे कनकासनस्थः
श्रीरामचन्द्रयुवराजपदं त्रिभौ (विभे) जे ॥'

१. प्रकाशित प्रति में प्रारम्भ में ३५ पृष्ठों में 'फोरवर्ड', 'प्रिफेस' और 'क्रिटिकल एनसिस' है। इसके पश्चात् १४२ पृष्ठों में मूल संस्कृत अंश, ५० पृष्ठों में अंग्रेजी सारानुवाद और ८ पृष्ठों में 'इन्वेक्स' है। यह प्रकाशित प्रति भी अब दुर्लभ है। सन् १९५५ में मैने बिछिया, रीवा, के पं० चिन्तामणि मालवीय (भूत० प्राचार्य डिप्टी कालेज, सोधी) से

है, जिनमें से १२ श्लोक सर्ग-समाप्ति के सूचक और परस्पर समान हैं।^१ अतः यह बान्त्व में ८७० श्लोकों की रचना है।

प्रथम सर्ग में कवि ने बघेलों का वंश-वर्णन किया है। यह वर्णन राजा भीम से प्रारम्भ होता है।

'बघेल वंश में शत्रुओं का नाशक, नीतिमान्, विद्वान् एवं पराक्रमी राजा भीम हुआ। उसके पुत्र रागिह्वदेव ने पृथ्वी जीती और राजमन्त्रों से सञ्जित गहोरा नगरी में रह कर शासन चलाया। वह कृष्णभक्त था। उसके पुत्र बालमदेव ने दीर्घकाल तक शासन किया। बालम का पुत्र बल्लारदेव गहोरा में अभिषिक्त हुआ। उसने अपना साम्राज्य बढ़ाया और उसे निष्कण्टक किया। कारी के चन्देल पशराजदेव की कन्या राजलमल्य देवी बल्लारदेव की रानी थी, जिसने अपने भवन से पूर्व की ओर बावलों और वायव्य कोण की ओर तालाब खुदवाया, जो उसी के नाम से प्रसिद्ध है और वीरमानु ने जिसकी गहरा कराया। इस तालाब के तट पर (हमारे) कुल की इष्टदेवी शोठला का मन्दिर है।

बल्लारदेव का पुत्र मिहदेव और उसका पुत्र वीरमदेव हुआ। मिहदेव ने पूर्वजन्म की किमो स्मृति से प्रेरित होकर त्रिवेणी में प्रवेग कर शरीर त्याग कर दिया। तब शोकातुर बल्लारदेव ने पौत्र वीरमदेव को उत्तराधिकारी बनाया। वीरमदेव से श्लेच्छ भय खाते थे। उसने सेहम्बा (सेवड़ा) नगरी जीत ली और वहाँ आवास बनाया। उसने दिल्लीद्वर गुबराज से भी विग्रह किया। उसकी रानी अपूर्व देवी से ज्येष्ठ पुत्र नरहरि हुआ तथा अन्य रानियों से बहुत से पुत्र हुए। नरहरि ने गहोरा में चिरकाल तक शासन किया। उसकी राजला

ग्रन्थ प्राप्त कर देखा था। वहाँ के श्री रघुनन्दन मिश्र के समीप भी अन्य प्रति थी, जो अब मेरे पास है। उक्त दोनों महोदयों के प्रति मैं आभारी हूँ।

१. प्रथम सर्ग में १०१ श्लोक, द्वितीय में ७४, तृतीय में ९२, चतुर्थ में ६६, पञ्चम में १६५, षष्ठ में ४८, सप्तम में १०५, अष्टम में ४७, नवम में ४८, दशम में ४१, एकादश में ४९ और द्वादश में ४५ श्लोक हैं।

२. देखिये प्रथम सर्ग अन्तिम श्लोक —

'ऊर्ध्वोऽभयचन्द्र एवित्तदगा यो भाति साधुप्रिय-

स्तःसञ्जात-क्लेवरस्य मुधियः श्रीमाधवस्पाचिते ।

वाक्ये स्वान्मगत-प्रमेय-रचने श्रीवीरमानुप्रभोः

सर्वज्ञस्य चरित्र-वर्णन-शुभे सर्गोऽन्माद्योऽभवत् ॥ १०१ ॥'

नामक रानी का पिता गङ्गा-तट पर अवस्थित गङ्गा का राजा अर्जुन था, जिसने विन्ध्याचल पर स्थित इस क्षेत्र में शिवालय बनवा कर यहाँ कर्णतीर्थ (कर्णित) स्थापित किया था। राजला से भैरवचन्द्र उत्पन्न हुआ। उसने काशी, प्रयाग और गया को जीत कर राज्यों का संहार कर डाला। भैरवचन्द्र ने गङ्गा गंगा (कहलाने वाली नदी के पूर्वी तट पर गहोरा में सुन्दर मकान बनवाये, जिन्हें बाद में वीरभानु ने और सुन्दर आकार दिया।

भैरवचन्द्र की रानी उद्धरणदेवी बगोसर के वीर सासक सातन की पुत्री थी। उसके गर्भ से ज्येष्ठ राजकुमार बाहरराय उत्पन्न हुआ। उसकी मृत्यु पर उसकी तीन रानियाँ सती हो गईं। तब भैरवचन्द्र ने छोटे पुत्र शालिवाहन को राज्य दिया। हम्मौर चाहुवाण (चौहान) के वंशज पूरणमल्ल की कन्या कल्याणदेवी शालिवाहन की रानी थी, जिसका पुत्र वीरसिंह हुआ। शालिवाहन की अन्य रानी (अर्धदेवी)^१ से उदयकर्ण नामक पुत्र हुआ। इसने पिता द्वारा प्रदत्त धन और राज्य त्याग कर जगदीशपुरी की यात्रा की और वहाँ गज जाति के राजा पुरपोत्तम की कन्या से विवाह कर वह उरकल देश में ही रहने लगा। वीरसिंह की रानी सुकुमार देवी थी, जिससे वीरभानु और यामिनीभानु दो पुत्र हुए। यामिनीभानु जेठे भाई का आज्ञाकारी था। वीरभानु ने गोसाइनी नामक हैहय वंश की राजकुमारी से विवाह किया। इन सुखों के बीच शालिवाहन बुढ़ हुए और उन्होंने यमुना तट पर प्राण त्यागा।

द्वितीय सर्ग में वीरसिंह के राज्य-सञ्चालन और उनकी दिग्विजयों का वर्णन है। वीरसिंह विष्णुभक्त था। वह दानी, तेजस्वी और प्रजापालक था। वीरसिंह ने राजधानी गहोरा को विशेष रूप से बसाया और सजाया; भवनों, सड़कों और मन्दिरों का निर्माण कराया। कवि ने विस्तारपूर्वक गहोरा के चारों ओर स्थित नदी, पहाड़ और नगरों के बीच स्थित बावली, तालाब, निवासी आदि के वर्णन किये हैं।^२

१. वीर० १।८४ : 'तस्याय (य) देवी कुलपालिकाऽसीत्' इस अंश के आधार पर हीरानन्द शास्त्री ने रानी का नाम अर्धदेवी (क्रिटिकल एनलिसिस, पृ० ९) और श्री लेले ने कुलपालिका (अप्रेजी अनुवाद पृष्ठ ६) लिखा है। प्रतीत होता है कि दो में से कोई भी रानी का नाम नहीं है। 'तस्याऽयदेवी' यही पाठ ठीक जान पड़ता है, जिसका अर्थ होगा 'उसकी महारानी कुल (कुटुम्ब) का पालन करने के गुण से युक्त थी।'

२. वीर० २।७-३०।

अपनी रणयात्रा में वीरसिंह ने सर्वप्रथम दक्षिण में नरो-दुर्ग के विक्रमा-दित्य को घोर युद्ध में परास्त किया। वीरसिंह ने नरो नगरी को सुसज्जित किया। तदनन्तर उसने गढ़ा पर आक्रमण किया। वहाँ का राजा भाग गया। वीरसिंह ने नर्मदा में स्नान किया और नरो लौट आया। उसने भेदनीति द्वारा नारायण कुरुवंशी से बान्धव दुर्ग ले लिया; वहाँ रानियों और पुत्रों के साथ रहा। उसके सेनापति (या मन्त्री) साहू ने विरोधी कुरुवंशियों को यमलोक पहुँचा दिया। वीरसिंह ने गङ्गातट तक शत्रुओं को निर्मूल किया और अलर्क नगर (अरल) में निवास किया। पूर्वजों के अनुसार उसने दिल्ली के म्लेच्छ शासकों^१ के साथ सन्धि कर ली। वीरसिंह ने रतनपुर^२ को जीत लिया और कर उगाहा। उसने डहल^३ और सहजोर^४ जीत लिया तथा भर^५ राजा को अधीनस्थ बनाया। वीरसिंह से दम्बर (बाबर) भी भय खाता था।

वीरसिंह ने दोनों पुत्रों को नौति सिखायी और उनके विवाह सम्पन्न किये। अन्त में उसने बीरभानु को राज्य सौंप कर त्रिवेणी-वास किया।

तृतीय सर्ग के कथानायक वीरभानु की कथा प्रारम्भ होती है। वीरभानु ने गङ्गा (इलाहाबाद) में पिता की अत्येष्टि पूरी कर अलर्क नगर से सेना-सहित प्रस्थान किया। वह शालिवाहनपुर पहुँचा और उसने नगर देखा। अपने फुफेरे भाई रामचन्द्र को उसने नगरी दिखलाई और उसका वर्णन किया। इस वर्णन में प्रकृति-चित्रण भी है। यहीं बाटिका में कुछ दिनों सेना ने विश्राम किया। फिर वीरभानु ने राजधानी गहोरा को ओर प्रस्थान किया।

चतुर्थ सर्ग में वीरभानु की गहोरा की ओर यात्रा पूरी होती है। वह यमुना-तट पर स्थित कोटर ग्राम पहुँचता है और यमुना में स्नान कर देवस्तुति करता है। यहाँ वह विन्ध्य की तराई में स्थित तीर्थों में जाता है। कोटर से गहोरा राजधानी पहुँचने पर प्रजाजन वीरभानु का स्वागत करते हैं।

पञ्चम सर्ग में प्रारम्भ में गहोरा में वीरभानु का अभिषेक वर्णित है। इस अवसर पर अनेक अधीनस्थ राजाओं और सामन्तों ने भेट दी। राजा वीरभानु की शोभा-यात्रा निकली। उसने उपत्यका पर स्थापित अपने कुलदेव कौबेरदेव की अर्चना की। राजा में समस्त राजोचित शुभ गुण थे।

१. लोदी और मुगल।

२. रतनपुर (जिला बिलासपुर)।

३. डहल का अपभ्रंश-कर्मोर-कैहैजूआ का पठार, नर्मदा का उत्तरी क्षेत्र।

४. सहडोल।

५. सतना जिले के भर-वंशीय क्षत्रिय।

वह मुशासक था। उसके पास अनेक दुर्ग थे, जिनमें से एक दुर्ग के आश्रित नगर में वह रहता था। इस वर्णन के साथ सर्गान्त तक विस्तृत रूप से राज्य-तन्त्र का पाण्डित्यपूर्ण विवरण है। वीरभानु ने दानुओं का दमन किया और उज्जट देश को जीत लिया।

षष्ठ सर्ग में वीरभानु द्वारा दास्यानुकूल नीतिपालन और राज्य-सुख-भोग का वर्णन किया गया है।

सप्तम सर्ग में वीरभानु की पिय रानी राय (राज) मती गर्भवती ध्वस्था में स्वप्न देखती है। स्वप्न में दशों अवतार तथा अनेक देवी-देशों के दर्शन होते हैं। कल्कि को देखकर रायमती चाहती है कि 'भलेच्छनाशक कल्कि भगवान मेरी कोख से जन्म ले।' अन्त में धैकुण्ठ से आकर वीरसिंह दर्शन देते हैं एवं गर्भस्थ शिशु को आशीर्वाद देकर राजनीति सिखाते हैं। वे बतलाते हैं कि गर्भस्थ शिशु कल्कि का अवतार है और उसमें चक्रवर्ती के चिह्न हैं। जागने पर रानी वीरभानु से स्वप्न बतलाती है और दोहद-कामना के रूप में कहती है कि उसके उद्दण्ड पिता, रत्नपुर-नरेश दादुराय को परास्त किया जाय। वीरभानु यह कामना पूरी करने वा सञ्चल्य करते हैं। तत्पश्चात् राजकुमार रामचन्द्र के जन्मोत्सव का वर्णन किया गया है।

अष्टम सर्ग में रामचन्द्र के विद्याभ्यास का वर्णन है। गणेश राउत नामक मन्त्री को यह कार्य सौंपा गया। कुमार ने शस्त्र-सञ्चालन, राजनीति और दर्शन की शिक्षा प्राप्त की। उसने गीत-नृत्य आदि कलाएँ भी सीखीं। राजा ने कुमार के सुशिक्षित होने पर गणेश राउत को पुरस्कारस्वरूप दुर्ग का आधिपत्य सौंपा और कुमार के विवाह की चिन्ता की।

नवम सर्ग में कवि ने रामचन्द्र के विवाह और यौवराज्याभिषेक का वर्णन किया है। गौरनगर (या गौरापुर) के अरिष्टनेमि गोत्र के राजा कीर्तिसिंह की पौत्री, पदार्थ देवी और माधवसिंह की पुत्री तथा रत्नसेन की बहन यशोदा के साथ विवाह स्थिर हुआ। भारद्वाज-वंशीय व्याघ्रपाद् गोत्र वाले बघेलों की बारात गौरनगर में पहुँची। बारात विन्ध्यशैल (बान्धवगढ़) से गई थी। विवाह सम्पन्न हुआ। माधवसिंह ने राज्य के अतिरिक्त सारी सम्पत्ति दहेज में दे दी। रत्नसेन बहन को पहुँचाने आए।

विन्ध्य दुर्ग (बान्धवगढ़) पर वीरभानु ने मन्त्रियों से परामर्श कर रामचन्द्र को युवराज-पद दे दिया। रामचन्द्र ने अधिकार संभाला और वीर-भानु ने ब्रह्मविद्या में चित्त लगाया।

विन्ध्य दुर्ग (बान्धवगढ़) पर वीरभानु ने मन्त्रियोंसे परामर्श कर रामचन्द्र

को युवराज पद दे दिया। रामचन्द्र ने अधिकार संभाला और वीरभानु ने ब्रह्मविद्या में चित्त लगाया।

दशम सर्ग में रामचन्द्र का शासनारम्भ है। पिता-पुत्र का संयुक्त शासन चल रहा था। वीरभानु विरक्ति-भार्य की ओर अग्रसर हुए और रामचन्द्र ने शत्रुओं का उन्मूलन किया। रामचन्द्र असाधारण राजा हुआ। अन्तर्वेद, कलिङ्ग और अमरकण्ठक तक उसके राज्य की सीमाएँ थीं तथा उसका प्रभाव दक्षिणी सागर तक था। सुल्तान मुहम्मद अदली स्वयं उसकी शरण में आया। गान्धर्व विद्या के साकार रूप तानसेन को रामचन्द्र ने करोड़ों टंका धन पुरस्कार में दिया। राज्य-सञ्चालन की अपूर्व क्षमता के कारण रामचन्द्र का यश चतुर्दिक् छा गया।

एकादश सर्ग में रामचन्द्र की आखेट यात्रा है। रामचन्द्र धर्म में युधिष्ठिर, बल में भीम, शर-सन्धान में अर्जुन और कर्ण, अश्वारोहण में नकुल और पाण्डित्य में सहदेव को लज्जित करता था। वसन्त ऋतु में उसने आखेट यात्रा की और अनेक जन्तु मारे।

द्वादश सर्ग में रामचन्द्र के पुत्र वीरभद्र का जन्मोत्सव और काव्य का उपसंहार है। यशोदा के गर्भ से वीरभद्र का जन्म होने पर रायमती और वीरभानु को अपार आनन्द हुआ। उत्सव में धूम रही। यशोदा ने माता-पिता पदार्थ दे और माधवसिंह तथा भाभी रमावती और भाई रत्नसेन ने भी उत्सव मनाया। इस अवसर पर यवनराज हुमायूँ ने अमात्य और दूतों के हाथ उपहार भेजे।

राजा वीरभानु ने पुत्र-पौत्र के साथ कुछ समय सुख के साथ बिताया। उन्होंने धर्म से राज्य का भोग किया, बल से शत्रुओं को जीता, धन से विद्वानों को तृप्त किया और सन्तति देखकर मन में सुख माना। उन्होंने सर्वथा सक्षम रामचन्द्र पर राज्य का पूर्ण भार सौंप दिया और संसार को असार मान कर त्रिवेणी-तट पर अलर्कपुर में वास किया। वहाँ उन्होंने अपनी वृद्धा-वत्सा सार्थक की।

वीरभानु इस प्रकार गुणवान् नरेश थे। उनके तेज से सूर्य, सम्पत्ति से इन्द्र और प्रतिभा से बृहस्पति स्पर्द्धा करते थे।

अन्त में कवि ने संक्षेप में अपने सम्बन्ध में भी कुछ पवित्रियाँ लिखी हैं—“द्विष्णु के भक्त, गुणीजनों को सन्तुष्ट रखनेवाले, गुरु और राजा को दया चाहनेवाले माधव का यह काव्य राज्याश्रित होने से यश प्राप्त करेगा।

अमयचन्द्र ऊरव्य की साध्वी पत्नी दुर्गा ने अपने पुत्र को सन्मार्ग पर लयाया । यह वीरभानूदय काव्य उसके यश रूपी गङ्गा के समान सुशोभित है । यह सदा प्रसिद्ध रहेगा ।”

(ख) काव्यात्मक विरलेपण

महाकाव्य के लक्षण और वीरभानूदय काव्य का परीक्षण

वीरभानूदयकाव्य में १६ वीं शती में उत्पन्न बघेल नरेश वीरभानु का १२ सगौं में सम्पूर्ण चरितबन्धन किया गया है । अतः छट्ट वी व्याख्या के अनुमार यह प्रबन्ध काव्य है । साथ ही यह पद्यात्मक सर्गबन्ध संस्कृत-रचना है ।

आचार्यों ने प्रबन्धकाव्य के चार प्रमुख भेद किये हैं—सर्गबन्ध, अभिनेयार्थ, आख्यायिका और कथा ।^१ सर्गबन्ध काव्य महाकाव्य और अन्य भी हो सकता है, जैसे अभिनन्द कृत अष्ट-सर्गात्मक कादम्बरीकथासार अथवा गीतगोविन्द आदि ।^२ इसलिए महाकाव्य बनने के लिए सर्गबन्धता-मात्र लक्षण नहीं हो सकता । अभिनेयार्थ शब्द नाटक आदि मिश्र एवं दृश्य काव्यों के लिए प्रयुक्त हुआ है । आख्यायिका के सम्बन्ध में दण्डी^३ और हेमचन्द्र^४ ने स्पष्ट लिखा है कि वह गद्यकाव्य ही हो सकता है । हेमचन्द्र के मत से कथा गद्य और पद्य दोनों में लिखी जा सकती है ।^५ साथ ही कादम्बरीकथा-सार एक सर्गबन्ध कथाकाव्य के उदाहरण के रूप में प्राप्त है ।

सर्गबन्ध पद्यात्मक रचना होने से वीरभानूदय न तो अभिनेयार्थ है और न आख्यायिका । वह या तो कथा-प्रबन्ध है या चरित-प्रधान प्रबन्ध काव्य, जिसके अन्तर्गत महाकाव्य, काव्य और खण्डकाव्य आते हैं ।

अतः प्रबन्धों के अन्तर्गत पहले हमें वीरभानूदय का कथा के क्षेत्र में परीक्षण करना होगा ।

१. भामह . काव्यालङ्कार : बनारस : १९८५ वि० : परि० १।१८ ।
२. ध्वन्यालोक : काव्यमाला २५ : निर्णयसागर प्रेस बम्बई : उ० ३।७ : अभिनवगुप्त व्याख्या ।
३. काव्यादर्श १।२३ : ‘अपादः पदसन्तानो गद्यमाख्यायिका कथा । इति तस्य प्रभेदो द्वौ-’
४. काव्यानुशासन : काव्यमाला ७० : निर्णयसागर प्रेस बम्बई : १९०१ अध्याय ८, पृष्ठ ३३८ : ‘नायकाख्यातस्ववृत्ता भाव्यर्यसंसि वक्त्रादिः सोच्छ्वासा संस्कृता गद्ययुक्ताख्यायिका ।’
५. वही, अ० ८ पृ० ३३८ : ‘वीरशान्तनायका गद्येन पद्येन वा सर्वभाषा कथा ।’

हेमचन्द्र ने कथा के दस प्रभेद किये हैं, जिनमें आनन्दवर्धन द्वारा निश्चित प्रभेद भी सम्मिलित हैं।^१ इनमें से आख्यान किसी को नीति, आचरण, धर्म आदि समझाने की दृष्टि से कथन के रूप में प्रबन्धों के मध्य में लाया जाता है। इसके अन्तर्गत उपाख्यान भी होते हैं। निदर्शन में पञ्चतन्त्र आदि की भाँति पशु-पक्षियों की चेष्टाएँ निर्णयों का आधार बनती हैं।^२ प्रवह्लिका और मत्तल्लिका में संस्कृतेतर भाषाओं का प्रयोग होता है। मणिकुल्या में आज-कल के जासूसी उपन्यासों की भाँति वस्तु का प्राकट्य अन्त में होता है। खण्डकथा और उपकथा आंशिक कथा या घटना पर आश्रित होती है।^३ इन आठ प्रभेदों के अन्तर्गत वीरभानूदयकाव्य पर विचार नहीं हो सकता। शेष दो अर्थात् परिकथा और सकलकथा के अन्तर्गत विचार किया जा सकता है।

आनन्दवर्धन के परिकथा प्रभेद पर अभिनवगुप्त का मत है कि धर्म आदि किसी एक पुरुषार्थ को लक्षित कर प्रकार-वैचित्र्य के द्वारा अनन्त वृत्तान्तों का वर्णन प्रस्तुत करने वाली परिकथा होती है।^४ हेमचन्द्र ने यह व्याख्या स्वीकार की है और कहा है कि शूद्रक की भाँति कोई विजय का इच्छुक जब कुशल

१. काव्यानुशासनः काव्यमाला ७०: निर्णयसागर प्रेष्ठ बम्बई : अध्याय ८ पृ० ३४० : 'एते च कथाप्रभेदा एव ।'

२. वही, अध्याय ८ पृ० ३३९ : 'प्रबन्धमध्ये पर-प्रबोधनार्थं नलाद्युपा-
ख्यानमिवोपाख्यातमभिनयन् पठन् गायन् यदैको ग्रन्थिकः कथयति तद्
गोकिन्दवदाख्यानम् ।—' तथा 'तिरश्चामतिरश्चां वा चेष्टामिर्यत्र
कार्यमकार्यं वा निश्चीयते तत् पञ्चतन्त्रादिवत् घूर्तविटकुट्टिनीमत-
मयूरमार्जारिकादिवच्च निदर्शनम् ।'

३. वही, अ० ८ : पृष्ठ ३४०-४१ : व्याख्या-

'लम्माद्धिताद्मुतार्था पिशाचमापामयो महाविपया ।

नरवाहनदत्तादेशचरितमिव बृहत्कथा भवति ॥'

पृष्ठ-३३९-'....साज्जंप्राकृतरचिता चेटकादिवत् प्रवह्लिका । प्रेत-महा-
राष्ट्रभाषया क्षुद्रकथा—मत्तल्लिका ।—यस्यां पूर्वं वस्तु न लक्ष्यते
पश्चात्तु प्रकाश्यते सा मत्स्यहंसितादिवन्मणिकुल्या ।'

पृष्ठ ३४०- : 'मध्यादुपान्ततो वा ग्रन्थान्तरप्रसिद्धमिति वृत्तं यस्यां
वर्ण्यते सेन्दुमत्यादिवत् खण्डकथा । "एकतरचरिताश्रयेण प्रसिद्धकथा-
न्तरोपनिबन्ध उपकथा ।'

४. धन्यालोक : ३१७ : अभिनवगुप्त : 'एकं च धर्मादि-पुरुषार्थमुद्दिश्य
प्रकार-वैचित्र्येणानन्त-वृत्तान्त-वर्णन-प्रकारा परिकथा ।'

जनों से बहुत से प्रतियोगियों को कथाएँ क्रमशः सुनता है तब इन कथाओं के संयुक्त रूप को परिकथा कहते हैं।^१ इन व्याख्याओं से हम देखते हैं कि परिकथा वृत्तान्तों का एक सङ्कलित रूप है, जो इतिवृत्तप्रधान वर्णन होता है और जिसका लक्ष्य विस्मय उत्पन्न करते हुए अलौकिक तत्त्व प्रस्तुत कर अन्त में कुतूहल की शान्ति करना होता है।

आनन्दवर्धन ने सकलकथा को प्राकृत में बतलाया है।^२ अभिनवगुप्त ने उसे समस्त फलों की सम्पत्ति करनेवाली एवं इतिवृत्त-वर्णनात्मक लिखा है। हेमचन्द्र इस व्याख्या को मानते हुए सकलकथा को चरित बतलाते हैं।^३

सकलकथा भी इतिवृत्तात्मक है और उसका भी लक्ष्य लगभग वही है, जो परिकथा का है। इसके अतिरिक्त सकलकथा के लक्षणों की अतिव्याप्ति महाकाव्यों में भी होती है, क्योंकि वे भी इतिवृत्तात्मक, चरित और समस्त-फलान्त हो सकते हैं।

इन पद्यबद्ध कथाओं को वर्तमान आलोचकों ने कथा-काव्य नाम दिया है।^४ उनके आधार पर वीरभानुदयकाव्य में और कथा-काव्य में निम्नलिखित प्रमुख भेदक तत्त्व मिलते हैं—

१—कथाकाव्यों का आधार प्रणयकथाएँ होती हैं। उनमें मूलतः शृङ्गार-रस और गीण रूप से वीर-रस का परिपोषण होता है। इन कथाओं की वस्तु उत्पाद्य (पूर्णतः कल्पित) होती है। वीरभानुदय काव्य का आधार एक ऐतिहासिक राजा का जीवनचरित है, जिसकी कथा में कल्पना का बहुत कम योग है तथा इसमें प्रधान रस शान्त है, जो कथाकाव्य का प्रधान रस नहीं हुआ करता।

२—कथाकाव्य का नायक धीरशान्त कोटि का होता है। उसका जीवन समाज या जाति का प्रतिनिधि न होकर व्यक्तिमूलक होता है। वीरभानुदय काव्य का नायक राजा वीरभानु धीरोदात्त है तथा वह एक वीर, प्रजारञ्जक एवं नीतिधर्मपरायण शासक है, जिसका जीवन समाज का प्रतिनिधि है।

१. काव्यानुशासन : अ० ८ : पृ० ३३९-४० : व्याख्या—

‘पर्यायेणबहूनां यत्र प्रतियोगिना कथाः कुसलीः।

श्रूयन्ते शूद्रकवज्जिगीषुभिः परिकथा सा तु॥’

२. ध्वन्यालोकः ३।७ : वृत्ति—‘खण्डकथा-सकलकथयोः प्राकृतप्रसिद्धयोः।’

३. काव्यानुशासनः अ० ८ : पृ० ३४० : वृत्ति तथा व्याख्या—

‘सकलकथेति । चरितमित्यर्थः ।’ वृत्ति—‘समरादित्यवत् ।’

४. हि० सा० को० : भाग १ : कथाकाव्यः पृष्ठ १८२-८३।

३—कथाकाव्य का मूल लक्ष्य लोकरञ्जन होता है। उसमें कुतूहलजनक दृश्य विप्रलम्भ, सङ्ग्राम, कन्याहरण आदि विस्मयोत्पादक दिव्य अलौकिक शक्तियों के प्रयोग, रोमांसिक एवं साहसपूर्ण कथानक तथा अवान्तर कथाओं का बाहुल्य होता है। वीरभानूदय काव्य में इन वस्तुओं का समावेश नहीं है तथा उसका सद्देश्य चरित्र के उत्थान की प्रवृत्ति से समन्वित है।

इन कारणों से वीरभानूदय को कथाकाव्यों की कोर्ट में नहीं रखा जा सकता। पद्यात्मक काव्य के क्षेत्र में विश्वनाथ ने महाकाव्य के पर्याय काव्य और खण्डकाव्य नामक दो प्रभेदों का उल्लेख किया है। रामभूनाथसिंह ने इस प्रसङ्ग में इस प्रकार लिखा है—

“विश्वनाथ कविराज ने ‘साहित्यदर्पण’ में महाकाव्य का लक्षण बताने के बाद खण्डकाव्य का उल्लेख इस प्रकार दिया है—

‘भाषा-विभाषा-नियमात् काव्यं सर्ग-समुत्थितम् ।

एकार्य-प्रदर्शः पद्यैः सन्धि-सामग्र्यवर्जितम् ॥

खण्डकाव्यं भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारि च ॥ ६।३२८-२९’

इस परिभाषा के अनुसार किसी भाषा या उपभाषा में सर्गवद्ध एवं एक कथा का निरूपक पद्यग्रन्थ, जिसमें सभी सन्धियाँ न हों, ‘काव्य’ कहलाता है और काव्य के एक अंश का अनुसरण करनेवाला खण्डकाव्य होता है। विश्वनाथ की इस परिभाषा का अनुसरण करके विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने प्रबन्धकाव्य के तीन भेद किये हैं, महाकाव्य, एकार्यकाव्य और खण्डकाव्य। उनके अनुसार महाकाव्य और खण्डकाव्य के बीच की कड़ी एकार्यकाव्य है, जिसे विश्वनाथ ने केवल काव्य कहा है। ‘...खण्डकाव्य में एकार्यकाव्य की भाँति पूर्ण जीवन का कोई उद्दिष्ट पक्ष नहीं होता’।^१ जिन प्रबन्ध काव्यों में किसी व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन का चित्रण तो होता है, पर समग्र युगजीवन का चित्रण नहीं होता और न महाकाव्य के सभी लक्षण पाये जाते हैं, उन्हें एकार्यकाव्य कहना उचित ही है।”^२

उपर्युक्त तर्कों से सहमत होने से पूर्व हमारे समक्ष कुछ कठिनाइयाँ हैं। प्रमुक्त कठिनाई है विश्वनाथ के उपर्युक्त श्लोक में पाठभेद की समस्या अर्थात् साहित्य-दर्पण के अनेक संस्करणों में ‘सर्ग-समुत्थितम्’ नहीं अपितु ‘सर्ग-समुत्थितम्’ पाठ और उसकी टीकाएँ—सर्गवन्धरहितम्, अब्यायवर्जितम्, सर्गहीनम् आदि उपलब्ध हैं। साथ ही ‘सन्धिसामग्र्यवर्जितम्’ की परस्पर-विरोधितो टीकाएँ (सन्धिसामग्र्य-वर्जितम् तथा सन्धिसामग्री-वर्जितम् के आधारे

१. वाङ्मयविमर्श, द्वितीय संस्करण : पृष्ठ ३९।

२. हिन्दी साहित्य-कोश : भाग १ : पृष्ठ २४६-४७ ; खण्डकाव्य।

पर) 'सन्धीनां सामप्रघेण समुदायेन वर्जितम्' और 'सन्धि-सामग्र्या सहितम्' प्राप्त है। एकार्थप्रवर्णः के अर्थ 'एकार्थ-प्रतिपादकः, एकवाक्यतापन्नः, एक-विषय-प्रतिपादकः, प्रस्तुतार्थप्रतिपादनमात्रपरः' मिलते हैं।

विद्यनाथ ने काव्य-प्रभेद के उदाहरण में भिक्षाटन और आर्याविलास नामक ग्रन्थों के नाम गिनाए हैं^१, जो अप्रसिद्ध हैं। नाम मात्र से ये ग्रन्थ सर्ग-बन्ध रचना की अपेक्षा 'एकार्थप्रवणपद्यों में निमित्त' अनिबद्ध कोटि के सङ्घात या पर्यायवाच्य जैसे सङ्कलनात्मक ग्रन्थ प्रतीत होते हैं। यह भी सम्भव है कि इतिवृत्तात्मक पद्यकथा के लिए विद्यनाथ ने काव्य-प्रभेद की व्यवस्था की हो, क्योंकि वे मानते हैं कि कथा में सरस रचना गद्य में ही सम्भव है।^२ कृष्णमाचारियर ने भिक्षाटन की गणना लघुकाव्यों के अन्तर्गत की है।^३ ऊपर हम यह देख चुके हैं कि कुछ को छोड़कर प्रायः सभी टीकाकारों ने काव्य-प्रभेद को सन्धिसमुदाय से रहित सर्गहीन प्रभेद माना है। अतः वीरभानूदयकाव्य का परीक्षण करते समय हम उसे इस प्रभेद में नहीं रख सकते, क्योंकि यह काव्य सन्धि-समन्वित एवं सर्गबन्ध रचना है, चाहे उसमें महाकाव्य के समस्त लक्षणों की पूर्ति नहीं भी होती हो। साय ही एकदेशीय कथा पर आधारित खण्ड-काव्य या चतुर्वर्गों में से एक को लेकर प्रवृत्त होने वाले लघुकाव्य^४ के अन्तर्गत भी वीरभानूदय को नहीं माना जा सकता, क्योंकि यह सम्पूर्ण कथा पर आधारित एवं समस्त फलान्त रचना है, जैसा हम आगे देखेंगे। अब हम वीरभानूदय काव्य पर महाकाव्य की दृष्टि से विचार करते हैं।

१. साहित्यदर्पण १-सामचरणतर्कवागीशः चतुर्थ संस्करण : निर्णयसागर, बंबई : ६।३२८ : १९२२ : पृष्ठ ३७५ : २-जीवानन्द विद्यासागर : कलकत्ता : १९३४ : पृष्ठ ५३७ : ३-शिवदत्त कविरत्न : बेंकटेश्वर प्रेस बंबई : पृ० ५४२ : ४-पी० बी० काणे : द्वितीय संस्करण : बंबई : १९२३ : ६।३२८।

२. साहित्यदर्पण : निर्णयसागर : बम्बई : १९२२ : ६।३२८ : पृ० ३७५।

३. वही, ६।३३२ : 'कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिमित्तम्।'

४. हि० बला० सं० लिट्० : पृष्ठ ८०।

५. रुद्रट : काव्यालङ्कार : काव्यमाला २ : निर्णयसागर : बम्बई : अध्याय ३६।६।

'ते लघवो विज्ञेया येष्वन्यतमो भवेच्चतुर्वर्गत्।

'असमग्रानेकरसा ये च समग्रैक-रसपुक्ताः ॥'

संस्कृत के आचार्यों ने महाकाव्य प्रभेद की ओर विशेष ध्यान दिया है। उन्होंने किसी महाकाव्य के प्रथम अथवा परोक्षण के लिए जो लक्षण निर्धारित किये हैं, उनमें कहीं मौलिक अन्तर नहीं पड़ा है। स्थूल लक्षणों में अवश्य कुछ घट-बढ़ होती रही है, जिसके कारण ये वे पूर्ववर्ती महाकाव्य, जो सम्बद्ध आचार्य के समक्ष नव-प्रसिद्ध रूप में आ जाते थे। भामह ने रामायण और महाभारत तथा अन्य पूर्ववर्ती महाकाव्यों का अवलोकन किया होगा किन्तु दण्डी ने रघुवंश एवं कुमारसम्भव पर भी विचार किया होगा। इसी प्रकार हेमचन्द्र और विश्वनाथ की परिभाषाएँ किरातार्जुनीय, शिशुपालवध और नैषध से प्रभावित होंगी। इसके साथ ही यह भी कहा जा सकता है कि विक्रम की दूसरी सहस्राब्दी के महाकवि शास्त्रकारों के अनुगामी होते हुए प्रतीत होते हैं।

आचार्यों ने महाकाव्यों के जो लक्षण निर्धारित किये हैं, उन्हें हम स्थूल और सूक्ष्म दो तत्त्वों में बाँट सकते हैं। पहले हम स्थूल तत्त्वों पर विचार करेंगे।

१—महाकाव्य सर्गबन्ध रचना होती है।^१ ये सर्ग अत्यन्त संक्षिप्त या विस्तीर्ण नहीं होने चाहिए। उनको संख्या ८ से अधिक होनी चाहिए। कुछ मतों के अनुसार महाकाव्य की भाषा संस्कृत ही हो सकती है।^२ वीरभानूदय द्वादश सर्गों में तथा संस्कृत पद्यों में आबद्ध रचना है। इसके सर्ग अति संक्षिप्त या अति विस्तीर्ण नहीं है। प्रथम सर्ग में १०१, तृतीय में ९२ पञ्चम में १६५ और सप्तम में १०५ श्लोक हैं। इतनी विस्तीर्णता अन्य महाकाव्यों में भी मिलती है। विश्वनाथ के मत से नाटक के अङ्कों की भाँति सर्गों के अन्त में भावो कथा की सूचना होनी चाहिए।^३ वीरभानूदय में तृतीय, अष्टम और नवम सर्गों में इस नियम का पालन हुआ है। महाकाव्य का नामकरण कवि, वस्तु या नायक के आधार पर होना चाहिए।^४ प्रस्तुत काव्य का नामकरण

१. काव्यालङ्कार (भामह) : १।१९ : काव्यादर्श (दण्डिन्) १।१४ : साहित्यदर्पण : ६।३१५ 'सर्गबन्धो महाकाव्यम्।'

२. साहित्य० ६।३२० : 'नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह'। तथा काव्यानुशासन : अ० ८ पृ० ३३० : 'असंक्षिप्तग्रन्थत्वं अविषम-बन्धत्वं अनतिविस्तीर्णत्वं परस्पर-निबन्ध-सर्गादित्यम्...'। अग्नि० : अध्याय ३३।७।२६-२७ : 'नातिविस्तरम्—नातिसंक्षिप्तसर्गकम्।' तथा ३३।७।२४ : 'आरब्धं संस्कृतेन यत्'।

३. साहित्य० ६।३२१ : 'सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्।'।

४. वही, ६।३२४-२५ : 'कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा। नामास्य'। तथा अग्नि० ३३।७।३४ : 'विश्वविख्यातं नायकाख्यया।'

नायक धीरभानु के नाम पर आधारित है । साहित्यदर्पण^१ के अनुसार धीरभानुदय के सर्गों में एक वृत्तमय पद्य है, सर्गान्त में वृत्त-परिवर्तन होता है तथा ३ सर्ग नानावृत्तमय है ।^२ कवि ने प्रमाणिका, उपजाति, स्वागता, भुजङ्गप्रयात, वसन्ततिलका, मालिनी, शिखरिणी, घादूँलविक्रीडित और स्रग्धरा के प्रयोग किए हैं ।^३

२—शास्त्रकारों ने उद्दीपन और आलम्बन विभावों को लम्बी सूची प्रस्तुत की है, जिनका वर्णन वे महाकाव्य में उचित मानते हैं । इस सूची में कुछ वस्तुओं के साङ्गोपाङ्ग वर्णन भी सम्मिलित हैं ।^४ वास्तव में यह सूची अनेक महाकवियों की रुचियों का सङ्कलन है ।

धीरभानुदयकाव्य में प्रारम्भ में नमस्क्रिया और वस्तुनिर्देश^५ प्राप्त है ।

१. धीर० १२।४४ । एकवृत्तमयः पर्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः ।

२. साहित्य० ६।३२०-२१ । नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते ॥'

३. धीर० सर्ग ६, ७ और ९ : इनमें से अनेक वृत्तों का प्रयोग अग्नि-पुराण (अध्याय ३३७।२६-२८) के निर्देशों के अनूकूल है ।

४. भामहः काव्यालङ्कार १।२० : अग्निपुराण ३३७।२६, २९-३१ । तथा दण्डिन् : काव्यादर्श १। ६-१७ :

'नगराणव - शैलर्तु - चन्द्रार्कोदय - वर्णनैः ।

उद्यान-सलिलक्रीडा - मधुपान - रतोत्सवैः ॥

विप्रलम्भविवाहैश्च कुमारोदय - वर्णनैः ।

मन्त्र-दूत - प्रयाणाजि - नायकाम्युदयरपि ॥'

एवं विश्वनाथः साहित्यदर्पणः जीवानन्द-विद्यासागर-टीका : कलकत्ता : १९३४ : परि० ६ पृ० ५३२-३३ : ।

'आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ।

क्वचिन्निन्दा खलादीना सतां च भुण्क्तीर्तनम् ॥...

सन्ध्या-सूर्येन्दु-रजनी - प्रदोष - ध्वान्त - वासराः ।

प्रातर्मध्याह्न - मृगया - शैलर्तु - वन - सागराः ॥

सम्भोग-विप्रलम्भौ च मुनि-स्वर्ग-गुराध्वराः ।

रणप्रयाणोपयम-मन्त्र-पुत्रोदयादयः ॥

वर्णनीया यथायोग्या साङ्गोपाङ्गा बभूवुः ॥'

साथ ही देखिये—रुद्रट : काव्यालङ्कार : १६।७-८ तथा हेमचन्द्र : काव्या-
नुशासन : काव्यमाला ७० : दम्बई : १९०१ : अध्याय ८ पृ०
३३४-३७ ।

५. धीरभानुदयकाव्यम् : सर्ग १।१-५ । . .

प्रकृत्यङ्गों में से यथावकाश पर्वत^१ वन^२ नदी^३ उद्यान^४ ऋतु^५, उपःकाल^६, तथा सन्ध्या^७ के वर्णन प्राप्त होते हैं। राजा और राज्य से सम्बद्ध वस्तुओं, जैसे मृगया^८ नगर^९, अभियेक^{१०}, नायक का अन्मुदय, नीति और शासन^{११}, सेनाओं के प्रयाण^{१२} और शिविर^{१३}, मन्त्रणा^{१४}, युद्ध^{१५}, विवाह^{१६}, और कुमारोदय^{१७} आदि वर्णन विस्तार के साथ लिखे गये हैं। दुष्टों के प्रति निन्दात्मक और सज्जनों के प्रति प्रशंसात्मक वचन भी कहे गये हैं।^{१८} सम्भोग, रत्नोत्सव^{१९} तथा विप्रलम्भ^{२०} और दार्शनिक चर्चाएँ^{२१}, विरक्तिजनक, त्रिवेणीतट^{२२} आदि वर्णन भी उपलब्ध हैं। महाकाव्य में प्रतिनायक के पराक्रम आदि गुणों का वर्णन करते हुए नायक द्वारा प्रतिनायक की पराजय का वर्णन होना चाहिए।^{२३} इस तत्त्व की पूर्ति के लिए वीरभानूदय काव्य में वीरसिंह के प्रतिनायक विक्रमादित्य परिहार तथा वीरभानु के प्रतिनायक दादुराय के प्रसङ्गों को देखा जा सकता है।^{२४} सूर्योदय, प्रदोष, रात्रि, अन्धकार, चन्द्रोदय, मधुपान, जलक्रीडा और रत्नोत्सव के जो साङ्गोपाङ्ग वर्णन निर्दिष्ट हैं, उन्हें इस काव्य में स्थान नहीं दिया गया है। प्रतिनायक के उदय से क्षुब्ध होकर जिस क्रम से नायक द्वारा मन्त्रणा, प्रयाण और युद्ध आदि के साङ्गोपाङ्ग वर्णनों की अपेक्षा लक्षणों में निर्दिष्ट है, वह भी उस क्रम से यहाँ नहीं है। इसका मूल

१. सर्ग २।९, २. सर्ग ११।१३, २५, ३. सर्ग २।२१-२२, ४. सर्ग ३।१७-५०, ५. सर्ग ११।९-१०, ३०-३१, ३४-३५, ३७, ३९, ६. सर्ग ११।१८, २६, ७. सर्ग ११।३१, ८. सर्ग ११।११-४५, ९. गहोरा, सर्ग २।७-३० : नरो २।४९-५५ : शालिवाहनपुर ३।८-१६ तथा रत्नपुर ७।७१-७५, १०. सर्ग ५।१-२३, ११. सर्ग ५, ६, १०, १२. सर्ग २।३१-४० : ३।२-७, ९१ : ९।१६-१८ तथा ११।१४-२१, १३. सर्ग ३।७१-८५, १४. सर्ग ५।५३, ५८, ७०-७२, १०६, ११९, १५. सर्ग २।४१-४८, १६. सर्ग ९।१-४०, १७. सर्ग १२।६-२३ वीरमद्र की उत्पत्ति, १८. सर्ग ५।४४-४५, १९. सर्ग ३।२१-२२, २६-३०; ६६-७० : सर्ग ६।४३ : सर्ग ७।-२ : सर्ग ८।२८, ३१ : सर्ग ११।६, १०, २०, ३२, ३५, ३९। २०. सर्ग ११।४०-४१, २१. सर्ग १२।३६, २२. सर्ग १२। ३७-३८।

२३. काव्यादर्श : १।२२ : 'बंसवीर्यश्रुतादीनि वर्णयित्वा रिपोरपि ।

तज्जयान्नायकोत्कर्षकथनं च धिनोति नः ॥'

२४. वीरो : सर्ग २।३१-४८ तथा सर्ग ७।६८-७५ ।

कारण यह है कि उपर्युक्त लक्षणों की पृष्ठभूमि में शृङ्गार और वीर-रस-प्रधान महाकाव्यों की ही कल्पना है। यद्यपि विश्वनाथ ने शृङ्गार, वीर और शान्त तीनों में से प्रत्येक को अङ्गीरस होने का अधिकार दिया है,^१ तथापि लक्षणों का निर्देश करते समय वे अपने पूर्ववर्ती आचार्यों की भाँति शृङ्गार-वीर-रसात्मक महाकाव्यों, विशेषतः किरात और शिशुपालवध का ही ध्यान रखते हैं। अतः ये सभी लक्षण शान्तरसप्रधान महाकाव्य के लिए नहीं माने जा सकते। वीरभानुदय के कवि ने शान्त रस की प्रतिष्ठापना की है और अनिवार्य प्रथाओं का पालन करते हुए भी क्रम और वस्तुवर्णन में स्वतन्त्रता ग्रहण की है।

सूक्ष्म और व्यापक तत्त्वों में हम कथात्मक और नायक, सन्धियाँ, लक्षित फल एवं शैली (रस और शब्दशक्ति) आदि ग्रहण कर सकते हैं।

भामह ने विषय-वस्तु की दृष्टि से महाकाव्यों के चार विभाग किये हैं—

१—घटित देवादिकरित का सूचक २—उत्पाद्यवस्तु ३—कलाधित और ४—शास्त्राधित।^२ अग्निपुराण,^३ काव्यादर्श^४ और साहित्यदर्पण^५ में दो ही रूप ग्रहण किये गये हैं—१—इतिहास-कथा पर आधारित तथा २—सज्जनाश्रित अन्य।

रुद्रट ने महाकाव्यों के स्वरूपों, विशेषतः वस्तु-वर्णन पर विस्तृत निर्देश दिये हैं^६। उनका मत है कि सभी प्रवर्णनों के उत्पाद्य और अनुत्पाद्य दो भेद होते हैं। जिन काव्यों का सम्पूर्ण शरीर कवि की प्रतिभा से जनित होता है, उन्हें उत्पाद्य और जिन काव्यों का पञ्जर इतिहास-प्रसिद्ध अर्थात् रामायणादि कथाओं में पूर्व वर्णित होता है और कवि उसके सम्पूर्ण या आंशिक रूप पर अपनी काव्य-कला का प्रयोग करता है, वे अनुत्पाद्य कहलाते हैं।

जैसा पीछे लिखा जा चुका है, रघुवंश, नैषध आदि महाकाव्यों को इसी आधार पर अनुत्पाद्य माना जायगा कि उनका पञ्जर रामायण, महाभारत आदि में प्रसिद्ध है। दूसरी ओर सर्वथा कविकल्पित काव्य को ही यदि उत्पाद्य

१. साहित्यदर्पण : कलकत्ता : १९३४ : पृष्ठ ५३२ :

शृङ्गार-वीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते ।'

२. काव्यालङ्कार (भामह) : १।१७ :

वृत्तदेवादिकरितशंसि चोत्पाद्यवस्तु च ।

कलाशास्त्राश्रयञ्चेति चतुर्धा भिद्यते पुनः ॥'

३. अध्याय ३३७।२५ : 'इतिहासकथोद्भूतमितरद् वा सदाश्रयम् ।'

४. परि० १।१५ ।

५. परि० ६ : पृष्ठ ५३२ : 'इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद् वा सज्जनाश्रयम् ।'

६. काव्यालङ्कार : १६।१-१८ ।

माना जाय तो ऐसे महाकाव्यों का सर्वथा अभाव है। अनुत्पाद्य कोटि से हट कर केवल ऐसे ही महाकाव्य सुलभ होते हैं, जिनका पञ्जर प्राचीन इतिहासों पर आधारित न होकर कवि के समकालीन इतिहासों पर आधारित है। रूद्रट ने उत्पाद्य महाकाव्यों के कथाबन्ध एवं ग्रथन के सम्बन्ध में जो विस्तृत निर्देश दिये हैं, उनका सर्वथा पालन नवीन इतिहास पर आधारित महाकाव्यों में हुआ है, जिन्हें हम ऐतिहासिक शैली के महाकाव्य मानते हैं। रूद्रट के ये निर्देश कथा, नाटक आदि से सम्बन्ध न रखते हुए अत्यन्त स्पष्ट रूप से महाकाव्यों के लिए हैं। इसलिए हम रूद्रट से सहमत होकर ऐतिहासिक शैली के महाकाव्यों को ही उत्पाद्य कोटि में रखना चाहते हैं।

इस प्रकार गजडवहो, विक्रमाङ्कदेवचरित, नवसाहस्राङ्कचरित, पृथ्वीराज-विजय आदि काव्य इसी उत्पाद्य कोटि में गिने जायेंगे। वीरभानूदयकाव्य भी उरपाद्य-वस्तु-परक है, क्योंकि उसके कथानक का आधार प्राचीन नहीं है।

रूद्रट के उत्पाद्यवस्तुपरक महाकाव्यों के अनुसार वीरभानूदय में प्रारम्भ में नगरी-वर्णन^१ तथा नायक के वंश^२ का अवतरण बतलाकर त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) में परायण^३, शक्तित्रय (प्रभु, मन्त्र, उत्साह) से युक्त^४, प्रजारञ्जक^५ एवं विजिगीषु^६ नायक को प्रस्तुत किया गया है, जो सम्पूर्ण राज्य का विधिवत् पालन करता है।^७

रूद्रट का कथन है कि इसके पश्चात् प्रसङ्गतः शरदादि-वर्णन करना चाहिए।^८ वीरभानूदय में ११ वें सर्ग में ऋतुओं की संक्षिप्त चर्चा है।^९ नायक

१. वीरभानूदयकाव्यम् : सर्ग २।७-३० ।

२. वही ,, सर्ग १ ।

३. वही ,, सर्ग ५।३५ 'त्रिवर्गलब्ध्वेर्भुवि दुर्लभायाः पदं नृपोऽभूत् ।'

४. वही ,, ५।१५१ : 'शक्तित्रयात् शत्रुमनासि भिन्दन् ।'

५. वही ,, ५।१२६ : 'तस्मात् प्रजारञ्जन एव सक्तः ।'

६. वही ,, ५।४० : 'द्विपञ्जिगीपापितमानसोऽयम् ।'

७. वही ,, ५।४६ : 'तथा स सप्ताङ्गविचारनिष्ठः ।'

तथा ६।१ :

'स वैमवाय स्पृहयालुचित्तस्तस्यानुकूलं विदधञ्जिगीषुः ।'

अमूद्गुर्वं द्वादशराजचक्रे यथाऽभवद् दाशरथिः सुमन्त्रः ॥'

८. काव्यालङ्कार : १६।९-१८ ।

९. श्लोक ८-११, ३०-३१, ३५, ३७-३९ ।

की धर्मादि वर्णों को अपने निमित्त साधना ५ वें से १२ वें सर्ग तक बतलाई गई है ।^१

रुद्र के मत से नायक का अपना दूत या कुलीन गुणी प्रतिपत्नी का दूत नायक को सभा में पहुँच कर प्रतिनायक के उदय का वर्णन करे । इसके अतिरिक्त दानु के कार्यों को अन्य स्रोत से भी जाना जा सकता है । वीरमानुदय काव्य में वीरभानु को रानी रायमती दोहद-पूति के रूप में अपने पिता दादूराय की अनीतिपरता का विवरण देती है और राजा दादूराय को जीतने का निश्चय करता है ।^२ इसके अतिरिक्त दूतों का प्रयोग संक्षेप में पहले ही बतला दिया गया है ।^३

इसके पश्चात् रुद्र के अनुसार दानु के विशद मन्त्रणा और सैन्ध-प्रयाण होना चाहिए । मार्ग में जनपद, पर्वत, नदी, वनस्पती, तालाब, पवन, मरुस्थल, समुद्र, द्वीप, लोक आदि के वर्णन हों । इसी के साथ मार्ग में शिविर स्थापित होने पर युद्धक सैनिकों की क्रोड़ा, सूर्यास्त, सन्ध्या, अन्धकार, चन्द्रोदय, रात्रि, समाज, सङ्गीत, मधुपान और शृङ्गार (सम्भोग, विप्रलम्भ, रतोत्सव) आदि का वर्णन किया जाय । कवि पुनः कथा-सूत्र ग्रहण करे । क्रोधयुक्त प्रतिनायक समझ आवे और आवश्यकतानुसार नगरो-रोध का वर्णन हो । प्रातःकाल युद्ध हो और रात्रि में मधुपान, क्रोडा आदि । दानु के वर्ग में भेदनीति का प्रयोग किया जाय, व्यूहबद्ध सङ्ग्राम हो तथा कठिनाई के साथ दानु जीता जाय ।^४

इस अन्तिम तत्त्व के पालन के सम्बन्ध में हमारे कवि ने स्वतन्त्रता ग्रहण की है । उसने वीरमानु के पिता वीरसिंह की विजयों का वर्णन पहले ही द्वितीय सर्ग में किया है और प्रतिनायक का पराक्रम-वर्णन युद्ध के साथ ही कर दिया है । युद्ध कष्ट के साथ ही वीरसिंह की विजय में परिणत होता है । तीसरे सर्ग में वीरसिंह की मृत्यु के पश्चात् युवराज वीरभानु (कथानायक) गङ्गातट से गहोरा राजधानी की ओर प्रस्थान करते हैं । यहीं पर सेना के प्रयाण, शिविर,

१. उदाहरणार्थ—धर्म : ५।२६ : 'स ब्रह्मयज्ञादिरतः शुभार्थो...'

पुराणवेदस्मृतिसादरारामा ।

अर्थ : ५।११५ 'ततः कुबेराधिकजातलक्ष्मोः ।'

काम : ६।४३ : 'पत्नीभिः कामलोला विदधति नृपती ।'

२. सर्ग ७।६८-७५ ।

३. सर्ग ५।१०२ : 'चाराभिभिर्मण्डलमोक्षतेऽपि ।'

४. काव्यालङ्कार : १६।९-१८ ।

उद्यान और कामक्रीड़ा आदि का वर्णन है। वीरभानु के प्रतिनायक दादुराय (रत्नपुर) की चर्चा उपस्थित होती है, उसे जीतने का निश्चय होता है^१, किन्तु यह युद्ध दिखलाया नहीं गया।

काव्यकार ने कथानक में रघुवंश की छाया ग्रहण की है। उसने द्वितीय सर्ग में वीरसिंह का नायक की भाँति ही वर्णन किया है तथा दशम और एकादश सर्ग में वीरभानु के पुत्र युवराज रामचन्द्र को भी नायक की भाँति ही प्रस्तुत किया है, तथापि पूर्व वर्णन को उपक्रम और परवर्ती वर्णन को उपसंहार रूप में लेकर शास्त्रोक्त धीरोदात्त^२ नायक रूप में वीरभानु को ही प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि वीरभानु के चरित्र का उद्यान सङ्घर्षों की उपस्थिति में नहीं किया गया, तथापि उसका आधार धर्म और न्याय-प्रियता होने से वीरभानु के व्यक्तित्व को आदर्शोन्मुख बनाया गया है। विवाह, मृगया और पुत्र-जन्मोत्सव के सविस्तार वर्णन तथा तत्कालीन इतिहास के सुन्दर कथा में लोकरञ्जक तत्त्व छाते हैं।^३

आचार्यों के मत से महाकाव्य में नाटकों की सभी सन्धियाँ होनी चाहिए^४। वीरभानुदय का लक्ष्य है वीरभानु का कीर्ति-युक्त चरित्र-वर्णन,^५ अर्थात् एक महान् वंश के महान् राजा की जन्म से अन्त तक की सफल जीवन-शांकी प्रस्तुत करना। इस दृष्टिकोण के साथ बघेल नामक सद्वंश के प्रतापी नरेश वीरसिंह के ज्येष्ठ पुत्र और उत्तराधिकारी के रूप में नृप-लक्षणों से युक्त वीरभानु के जन्म को^६ हम काव्य की मुखसन्धि^७ मान सकते हैं। यही कथानक का बीज और आरम्भ भी है।

१. वीर० : सर्ग ७।६८-७५

२. साहित्यदर्पण : ६।३१६ : 'धीरोदात्त-गुणान्वितः ।'

३. काव्यादर्श : १।१९ : 'सर्वत्र भिन्नवृत्तान्तरूपेण लोकरञ्जकम् ।'

४. भामह : काव्यालङ्कार : १।२० : 'पञ्चनिः सन्धिमिर्युक्तम् ।' तथा विश्वनाथ : साहित्यदर्पण ६।३१७ 'सर्वे नाटकसंघयः ।'

५. वीर० १२।४३ :

'काव्यं राजति राजवर्णन-शुनं तत्कीर्तिगङ्गामृतम् ।'

तथा १२।४५ :

'सत्काव्ये मुचरित्रवर्णनविधौ धीवीरभानुप्रभोः ।'

६. वही, १।८८ : अयास्य देवी सुकुमारदेवी.....

सूते स्म पुत्रं नृपलक्षणं सा ।'

७. दशरूपक (धनञ्जय-प्रणीत) : प्रथम प्रकाश : श्लोक २४-२५ :

वीरमानु का राज्याभिषेक^१ प्रतिमुख सन्धि^२ है। यही बिन्दु की अवस्था है, जिसके पश्चात् राजा सत्ता की पुष्टि और वृद्धि में यत्नशील दिखलाई पड़ता है।^३ प्रताप की पूर्ण अभिवृद्धि के लिए वीरमानु आगे चलकर रत्नपुर के राजा और अपने पूर्वोदय के मार्ग में एक मात्र कष्टक दादूराय के दमनी का मिश्रण करता है,^४ यही गर्भसन्धि है,^५ क्योंकि निष्कण्ठक धर्मराज्य के लक्ष्य की प्राप्त्याशा यहीं होती है। यहीं से वीरमानु के पुत्र रामचन्द्र के जन्म, विवाह, वीरराज्य और धर्म-नीतिमय शासन की स्थापना में पिता क सहायता का प्रकरण आरम्भ होकर अन्त तक चलता है, जिसे हम पताका मान सकते हैं। दादूराय के उपर्युक्त प्रसङ्ग को प्रकरी के रूप में ग्रहण किया जा सकता है, क्योंकि यह वहाँ समाप्त हो जाता है। रामचन्द्र को वीरराज्य में अभिषिक्त कर वीरमानु राज्यचिन्ता से प्रायः मुक्त होकर वृत्तियों को ब्रह्मनिष्ठा की ओर मोड़ता है।^६ इस स्थिति को हम नियताप्ति नामक अर्थ-प्रकृति एवं विमर्श सन्धि मान सकते हैं।^७ काव्य के अन्तिम भाग में हम राजा वीरमानु को जीवन में पूर्ण तृप्त और मुमुक्षु रूप में देखते हैं,^८ यही कार्यावस्था, फलागम एवं निर्वहण (या उपसंहार) नामक सन्धि है।^९ इस प्रकार काव्य सु-सन्धित्व से युक्त है।

‘मुखं बीज-समुत्पत्तिर्नानार्य-रस - सम्भवा ।

अङ्गानि द्वादशैतस्य बीजारम्भ-समन्वयात् ॥’

१. वीर० सर्ग ५।१।

२. दशरूपकः १।३०।

३. वीर० सर्ग ५-६ ।

४. वही सर्ग ७।६८-७५ ।

५. दशरूपकः १।३६ ।

६. वीरः सर्ग ९।४७ :

‘तनय-निहित-भारो वेदरक्षावतारो

नियतकृत-विचारो, धर्मकण्ठकहारः ।

क्षितिपतिरथ गङ्गातोयसंशुद्धिचित्तो

विरलभवननिष्ठो ब्रह्मनिष्ठापरोऽभूत् ॥’

‘विहाय लोक-व्यवहारचिन्तामचिन्तयद् ब्रह्म परं प्रशान्तः ।’

७. दशरूपकः १।४३

८. वीर० १२।३० :

तथा १२।३१ : ‘रराज तस्यां सुकृती दशायां विदेहभूपाल इवोपशान्तः ।’

९. दशरूपक १।४८-४९ :

कुछ शास्त्रकारों का मत है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों वर्गों की प्रस्तुति महाकाव्य में होनी चाहिए और उनमें से एक की फल-सिद्धि होनी चाहिए।^१ अधिक मत इस पक्ष में हैं कि चारों वर्गों की सिद्धि होनी चाहिए।^२ हम पीछे देख चुके हैं कि चरितनायक वीरमानु को त्रिवर्ग की सिद्धि प्राप्त हुई। काव्य के अन्त में वीरमानु का उपरान्त रूप उसके द्वारा चौथे पुरुषार्थ की सिद्धि प्रदर्शित करता है। इस प्रकार हम प्रस्तुत काव्य को चतुर्वर्गफलोपेत पाते हैं।^३

शैली की दृष्टि से भी हमें वीरमानुदय में समस्त वृत्तियाँ, रीतियाँ, गुण और रस प्राप्त होते हैं। आचार्यों ने मुख्यतः रस को ही जीवित माना है।^४ इस काव्य में शान्त रस का सर्वाङ्ग-पोषण हुआ है। इसके साथ ही बलङ्कारों के भी रमणीय प्रयोग हुए हैं।

दण्डों का कथन है कि यदि महाकाव्य विद्वानों को संतोष प्रदान कर सके तो किन्हीं अङ्गों से होन होने पर भी वह दूषित नहीं माना जायगा।^५ विशिष्ट चमत्कारों से युक्त होकर रस-परिपोष करनेवाला महाकाव्य कुछ स्थूल लक्षणों से रहित हो कर भी होन नहीं माना जायगा। 'भामह'^६ के दृष्टिकोण के अनुसार

१. साहित्यदर्पण : ६।३१८ : 'चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत् ।'

काव्यालङ्कार (भामह) : १।२१४ 'भूयसार्योपदेशकृत् ।'

२. अग्निपुराण : ३३७।३४ : 'चतुर्वर्गफलम् ।' तथा

काव्यादर्श : १।१५ : 'चतुर्वर्गफलोपेतम् ।'

काव्यालङ्कार (रुद्रट) : १६।१ : चतुर्वर्ग इति—सम्यक् तानभिदध्यात् ।'

३. उदाहरणार्थ वीर० सर्ग १२।२६ :

'धर्मेण भुक्त्वा पृथिवीं बलेन जित्वारिभूपान् द्रविणप्रदानैः ।

सन्तर्प्य विद्वन्निकरानवाप्य सुखानि सन्तान-विलोकनेन ॥'

तथा सर्ग १२।४० :

'वात्ये विद्या परमधिगता यौवने राज्यलक्ष्मीः ।

.....तस्य को दुर्लभोऽर्थः ॥'

४. अग्नि० ३३७।३१-३३ :

'सर्वं - वृत्ति - प्रवृत्तञ्च सर्वमाव - प्रभावितम् ।

सर्वं - रीति - रसैः स्पृष्टं पुष्टं गुण-विभूषणैः ॥

वाग्-वैदग्ध्य-प्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम् ॥'

५. काव्यादर्श १।२० : 'न्यूनमप्यत्र यैः कैश्चिदङ्गैः काव्यं न दुष्यति ।

यद्युपात्तेषु संपत्तिराराधयति तद्विदः ॥'

६. काव्यालङ्कार (भामह) : १।१९ : 'महतां च महच्च यत् ।'

वीरभानूदय आदर्शोन्मुख एवं उदार चरितबन्धन के महदुद्देश्य से प्रेरित है। अतः उपर्युक्त भूमिका के साथ हम वीरभानूदय काव्य को महाकाव्य स्वीकार करते हैं। राज-प्रशस्ति पर आधारित होने के कारण यह प्रशस्तिमूलक चरितप्रधान महाकाव्य है।

वीरभानूदय काव्य की शैली प्रशस्तिमूलक है तथापि वह महदुद्देश्य से प्रेरित है। काव्य का लक्ष्य एक राजा का, आश्रयदाता का यशोवर्णन है किन्तु राजा के चारित्रिक उत्थान का आधार धर्मपरायणता और नीतिकुशलता है। ग्रन्थ की वर्णनशैली जीवनचरित की शैली है। वह शास्त्रीय प्रबन्ध काव्यों की भाँति अतिशय अलंकृत शब्द-चमत्कारपूर्ण या कोप व्याकरण आदि के पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति से युक्त नहीं है। महत्त्वपूर्ण और कलात्मकता का आधार बनने वाली घटनाओं का समावेश काव्य में नहीं है किन्तु लोक-परिचित वस्तुओं नगरी, देवार्चन, नीति, पुत्रोत्सव, विवाह, मृगया आदि के वर्णन प्राप्त हैं। इन्हीं आधारों पर कवि की रचना सरल, स्वाभाविक, लोकोन्मुख, धर्मप्रवण और कल्याणभिनवेशी बन सकी है।

वीरभानूदय में जीवन का यथार्थ किन्तु आदर्शोन्मुख चित्रण है, अतः वह सत्य और शिव से समन्वित है। कथानायक के पूर्वजों से आरम्भ कर उसके अपने जीवन के ऐतिहासिक घटना-परक पक्ष प्रकाश में लाए गए हैं। नायक का चरित्र आदर्श एवं शास्त्रानुकूल, धर्मशास्त्र के अनुयायी, समर्थ एवं सफल राजा के रूप में उतारा गया है। उसकी नीति-धर्म-परायणता ही सत्य में शिव का योग करती है। कवि ने कथा को सुसूत्र एवं पञ्चसन्धि से युक्त बनाया है और जीवन-कथा का कलात्मक, सुष्ठुपूर्ण, अलंकृत एवं रसमय स्वरूप उपस्थित किया है। कथा का पर्यवेक्षण सम्पूर्ण फल प्राप्ति, चतुर्वर्ग की सिद्धि एवं राम के पूर्ण पोषण में हुआ है। शान्त रस को प्रधान बनाकर कवि ने मुख्यतः वीर और शृङ्गार रस अङ्ग के रूप में रखे हैं। भक्ति को विशेष स्थान दिया गया है। अन्य रसों का भी स्पर्श हुआ है। इस प्रकार कथा में सुन्दर तत्त्व का समावेश सफलतापूर्वक किया गया है। शान्त रस की प्रधानता एवं स्मृत्यनुकूल जीवन-चर्या के साथ धर्मनिष्ठा और लोक-कल्याण की प्रवृत्ति का व्यापक आधार होने के कारण सम्पूर्ण ग्रन्थ में शिव तत्त्व उभर कर प्रधान बन गया है। यह समस्त काव्य प्रधान रूप में प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति, सात्वती वृत्ति एवं शान्त रस से परिप्लावित है। काव्य के अन्तिम भाग के निम्नलिखित श्लोकों में ये चारो वैशिष्ट्य एकत्र हो गये हैं—

‘तं शान्तिवर्त्म-प्रतिपन्नचित्तं विलोभ्य लोका जगदुः किलेति ।

सरयं कलौ भूपतिरेप नूनं प्रवर्तयत्यत्र सुविस्मयोऽप्यौ ॥ .

ददौ धनं याचक-मण्डलाय, त्रिगाय सर्वेन्द्रिय-वैरिवर्गम् ।
 प्राणान् क्रमेणैव वशं तिनया, हित्वापि राज्यं न जहौ स राज्यम् ॥
 वेदान्तसिद्धान्तविदो द्विजेन्द्रा वैशेषिका न्यायविदो महान्तः ।
 मीमांसकाः साङ्ख्यनिविष्टचित्ताः पातञ्जलास्तं निपियेविरं च ॥

आसौदेवविघ्न-गुणगणग्राम-विश्रामधाम—

क्षोणीशानो जगति विदित-श्रीयज्ञा वीरमानुः ।

मानुर्यस्य प्रचुरमहसे सम्पदे देवराजो

देवाचार्यः पृथुलमतये सस्पृहत्वं जगाम ॥

भाषा और पदावली : गुण-वृत्ति-रीति

प्रारम्भ से अन्त तक सम्पूर्ण काव्य में प्रायः अल्प-समासयुक्त, प्रसाद गुण से पूर्ण, सरल एवं बोधगम्य पदावली का प्रयोग किया गया है । पाठक अर्थबोध के लिए उलझा नहीं रहता । यह शैली स्वरित रस-निष्पत्ति के लिए सहायक होती है । विलष्ट अलङ्कारों और गूढ़ार्थों एवं अनेकार्यों से बोझिल भाषा का प्रयोग नहीं हुआ है । भाषा प्रयोज्य, परिष्कृत एवं व्याकरण-सम्मत है । कला-प्रदर्शन के लिए रामचन्द्र के शिक्षण और मृगया तथा वीरसिंह की रणयात्रा आदि स्थल चुने गए हैं, जो रमणीय पदों, प्रभावोत्पादक भावों और आह्लाद-जनक रसों-अलङ्कारों से पूर्ण हैं । समग्र दृष्टि से शैली शान्त रस के सर्वथा अनुकूल है । ललित एवं कोमल-कान्त-पदावली का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

मधुर-सरसगीतैर्लुब्धकैर्लोम्यमाना

नरपतिमुखचन्द्रालोकनानन्दभाजः ।

मदमुदितमृगीणामङ्ग-सङ्ग-स्मरान्धा

न निघनमुपद्रग्मुः सायकात्तस्य यूनः ॥^१

प्रसादपूर्ण, सरल एवं स्निग्ध पदावली के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

रामत्रयीव ज्वलनत्रयीव त्रयी श्रुतीनामिव पुष्कराणाम् ।

त्रयीव देवाधिपतित्रयीव त्रयी त्रिवेणीव रराज तेषाम् ॥^२

प्रजानुरागाद् दृढतामुपैति प्रजाविरागात् परहस्तगामि ।

राज्यं भवेन्नीतिरियं प्रमिद्धा तस्मात् प्रजारञ्जन एव सक्तः ॥^३

जोयाज्जलजपत्राक्षो जलदानकलेवरः ।

जलधौ सेतुकर्त्तसौ जलसायो जनार्दनः ॥^४

विवृत्य कुसुमान्येष राजतं घरणीश्वरः ।

अशोकपादपः कान्ता-सनूपुर-पदाहतः ॥^५

१. सर्ग ११।३२

२. सर्ग १२।२५

३. सर्ग ५।१२६

४. सर्ग ४।३८

५. सर्ग ३।२२

रस परिवर्तनों के साथ साथ अन्य गुणों, सभी वृत्तियों और रीतियों के प्रयोग काव्य में सुलभ है । माधुर्य गुण के साथ शृङ्गार रसात्मक कैंदिकी की कोमल वृत्ति तथा पाञ्चाली रीति के प्रयोग निम्नलिखित श्लोकों में द्रष्टव्य है—

ये जना जित-कन्दोस्तकटाश-धाराहताः ।
 प्रमोहं प्राप्नुवुस्तेऽपि प्रेक्ष्य रूपवतीः स्त्रियः ॥^१
 भजताऽऽनुपतीन्मार्यस्त्वया मारं न लभ्यते ।
 यौवनं गतमित्येव किं करोति विक्रः स्वयम् ॥^२
 पत्नीभिः कामलीलां विदधति नृपतौ पुष्पदाभाभिरामे ।
 भूमिःकन्दर्पचापप्रकृतिभिर्जितं तं वशं कुर्वतीभिः ॥
 बाणक्रीडैः फटाई. सरसनूपमभुं कम्पयन्तीभिरच्छैः ।
 कामोद्दीपावतंगैः मुहश्चिरवदनं याति कालो विशालः ॥^३

नगर-विविध-रघ्या-मर्दिसम्मर्द-मध्ये

नृप-सुत-बदनेन्दोः कान्ति-पीयूषसारम् ।

तदनु किरण-नालासङ्गिमिलोचनैः स्वैः

पपुरधिगतपुष्पैर्जलमार्गं तरुण्यः ॥^४

इसी प्रकार रोद्र और वीर रसात्मक गौडो रीति, आरमटो वृत्ति और ओज गुण से पूर्ण कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

अथ तुरग कदम्ब-हेपया मत्त-दन्ति-

प्रलय-जलद-गर्जा-धोर-घण्टा-निनादैः ।

रथ-बलयित-सिञ्जत्-किङ्किणीनां रवेण

क्षणमिति पुर-सिन्धौ कोऽपि कोलाहलोऽभूत् ॥^५

इति निगदितभात्रे तद् दृशंवाज्ञया तै-

र्गहनमखिलमार्गैर्वावृतं तत्तथैव ।

भुज-परिष-निदृष्टे जन्तु-आले स कोपात्

सुरभि-रिपुरिति द्राम्जघ्नवान् व्याघ्रमुच्चैः ॥^६

अथाश्ववारा ययुरस्ववारान् पदातयः पत्तिगणान्निहन्तुम् ।

आधोरणा हस्तिपकान्निग्रधुर्मुद्धं बभूवैरथमतीव धोरम् ॥^७

ओज के साथ मात्रवती वृत्ति का भी एक उदाहरण देखिये—

तं विक्रमादित्यनृपः प्रपेदे, युद्धाय शोभ्यन्तकरीन्द्रयुथः ।

योषाप्रणीभिः परिहारजार्तर्वृतो महत्त्वानिव देवजार्तैः ॥^८

१. सर्ग ३।६७

२. सर्ग ३।२६

३. सर्ग ६।४३

४. सर्ग ११।२०

५. सर्ग ११।१९

६. सर्ग ११।२६

७. सर्ग २।४२

८. वीरमानुदय : सर्ग २।४१

भारती नामक व्यापक वृत्ति का कृष्ण रस के साथ एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है—

तस्माद्दिना राजनुनिविलापं कृत्वा निजप्रावतन-कर्मनिन्दः ।
प्राणान् कथञ्चित् प्रतिगृह्य राज्यं स पालयामास निरस्तशत्रुः ॥^१

अद्भुत और भयानक रस के मिश्रण के साथ भारती वृत्ति का दूसरा उदाहरण द्रष्टव्य है—

विनिखनय विभिद्य प्रौढ शार्दूल-कायं
कणिपुरमुपयात वोक्ष्य लीलावराहः ।
निशित-विकट-दंष्ट्राकोटि-निभिन्नभूमिः
प्रहरण-भयभीतो विस्मितोऽप्यास भूयः ॥^२

माधुर्यगुण, कैशिकी वृत्ति और शृङ्गार रस के साथ वैदर्भी रीति का एक उदाहरण देखिये । इस श्लोक में श्लेष अलङ्कार का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है । यह काव्य के उत्तम श्लोकों में से एक है—

नक्ष-धान-कल-स्वनाङ्कुगा परिरम्यंकनुजेन वल्लकी ।
हृदि रागवती निवेशिता रमणो रामनरीरमद् गुणः ॥^३

प्रसाद गुण के साथ वैदर्भी रीति का दूसरा उदाहरण देखिये—
मृपा न चोक्तं न हठो व्यघायि न दैन्यमाळम्बि महेश्वरेऽपि ।
वाणो न रुशाऽभिहिताऽपि शत्रौ मुधिष्ठिरेखेव नृपेण तेन ॥^४

रस

दृश्य काव्य के आचार्यों ने आठ ही रस माने हैं तथा शान्त रस का निषेध किया है, किन्तु उन्होंने श्रव्य काव्य में शान्त रस को अस्वीकार नहीं किया । काश्मीर के प्रत्यभिज्ञा-सम्प्रदाय के प्रतिपादकों ने, जिनमें अभिनवगुप्त प्रमुख हैं, दृश्य और श्रव्य दोनों क्षेत्रों में शान्त रस का अस्तित्व मान कर उसे श्रेष्ठ रस कहा है । उन्होंने इसका स्थायी भाव शम वतलाया है ।^५ अतः महाकाव्य में शान्त की स्थिति निर्विवाद है ही ।

दशरूपक की टीका करते समय घनिक ने लिखा है कि शान्त रस अभिनेय नहीं होता, उसका नाट्य में समावेश नहीं किया जा सकता, सो भी उसका

१. सर्ग १।६६

२. सर्ग १।१२७

३. सर्ग ८।३१

४. सर्ग ५।४१

५. बलदेव उपाध्याय (डा०) : संस्कृत आलोचना : सूचना विभाग : उत्तरप्रदेश : वाराणसी : १९५७ : पृष्ठ २१०, २२९-२३० ।

काव्य का विषय होना नहीं रोका जा सकता ।^१ मम्मट ने निर्वेद की स्थायी भाव मान कर शान्त को नवम रस माना है ।^२ रट्ट सम्पत् ज्ञान को शान्त रस का स्थायी भाव मानते हैं और नमिसाधु के मत से भी शान्त रस को अस्वीकार करना ठीक नहीं है ।^३ विश्वनाथ ने शम की स्थायी भाव माना है तथा अनित्यता, निःसारता, परमात्मा का स्वरूप आलम्बन और पवित्र आश्रम, दान, तीर्थ, तपोवन, साधुसङ्ग आदि को उद्दीपन रूप में ग्रहण किया है; साथ ही रोमाञ्च आदि को अनुभाव एवं निर्वेद, हर्ष, स्मरण, मति, दया आदि को व्यभिचारी माना है । उन्होंने महत्त्वपूर्ण बात यह लिखी है कि शान्त रस में निरहङ्कार-रूपत्व आने से दयावीर में उसका अन्तर्भाव नहीं हो सकता । युक्त (विषयव्यावृत्त) एवं विमुक्त (सिद्धिप्राप्त) दशा में अवस्थित शम रसत्व को प्राप्त होता है । वह वैदिक सुख-दुःख के अभाव और तृष्णाशय के मुख के रूप में होता है । जब धर्मवीर, दानवीर, दयावीर और देवताविषयक रति (भक्ति) सर्वथा अहङ्कार-शून्यता में परिणत हो जाते हैं तब इनका भी शान्त रस में अन्तर्भाव हो जाता है ।^४ विश्वनाथ का यह मत वीरभानूदय काव्य में शान्त रस के परिपोष का सम्पूर्ण समर्थन करता है ।

हम प्रारम्भ में ही श्यामायक वीरभानु में देवता-विषयक रति पाते हैं । वह पद्मपुराणोक्त विधि से यमुना में स्नान कर सूर्य, कृष्ण आदि देवताओं की स्तुति करता है^५ तथा राज्याभिषेक के पश्चात् कुल-पूजित कौबेर देव को अर्चना करता है ।^६ वह राज्यारम्भ से ही युधिष्ठिर की भाँति धर्मनिष्ठ है ।^७ हम

१. दशरूपक ४।४४ : वृत्ति—‘शान्तरसस्य...काव्यविषयत्वं न निवार्यते’ ।
२. काव्यप्रकाश ४।३५ : ‘निर्वेदः स्थायिभावोऽस्ति शान्तश्च नवमो रसः ।’
३. काव्यालङ्कार (रट्ट) : १५।१५-१६ : नमिसाधु की व्याख्या—
‘केचिच्छान्तस्य रसत्वं नेष्टम् । तदयुक्तम् । भावादिकारणानामत्रापि
विद्यमानत्वात् ।’
४. साहित्यदर्पण : जीवानन्द विद्यासागर : कलकत्ता : १९३४ : पृष्ठ
२५६-२६१ . ‘सर्वकारमहङ्काररहितत्वं व्रजन्ति चेत् ।
अशान्तर्भावमर्हन्ति दयावीरादयस्तदा ॥’
वृत्ति—‘आदिशब्दात् धर्मवीर-दानवीर-देवताविषयरतिप्रभृतयः ।’
५. वीर० : सर्ग ४।१०-५२
६. सर्ग ५।२२-३१
७. सर्ग ५।३३—‘द्वितीय-धर्मात्मज एव जातः ।’ तथा ५।४१ : ‘युधि-
ष्ठिरैश्लेष...’ ।

उसे कामादि-पङ्कग की जीतते हुए पाते हैं ।^१ वह गो-ब्राह्मण-प्रतिपालक है ।^२ वह ऐसे ही कार्य करता है, जो ऐहिक और आमुष्मिक कल्याण के अनुकूल हों ।^३ ब्रह्मपन्न में लीन राजा पुराणों, वेदों और स्मृतियों के प्रति आदर का भाव रखता है ।^४ वह संयम-नियम को उपासना करते हुए जितेन्द्रिय रूप प्राप्त कर विष्णु को प्रसन्न रखता है ।^५ वह पर-स्त्री-विमुख है ।^६ वह पुष्पलाम के लिए देवालयों और जलाशयों का निर्माण कराता है ।^७ वह दूसरों के स्वत्व पर अधिकार नहीं करता ।^८ वह हिंसा से बचने के लिए शास्त्रों द्वारा निषिद्ध भूगया का परित्याग कर देता है ।^९ वह वर्णाश्रम धर्म को मानता है ।^{१०}

इसी प्रकार हम वीरभानु को दयावीर के रूप में भी पाते हैं । अभिषेक के समय पर वह बन्धियों को छोड़ देता है, बँलों का जोता जाना और गायों का दुग्ध जाना बन्द कराता है; क्रोड़ा के निमित्त पकड़े हुए शुक-सारिका आदि पक्षियों को भी मुक्त कर देता है ।^{११} वह आगे अपने कर्मचारियों के दुःख दूर करता है ।^{१२} वह अपने देश में अभ्युपात नहीं सहन करता ।^{१३}

वीरभानु के पास जो याचक पहुँच जाते हैं, वे फिर याचक नहीं रह जाते । वे इतना धन दान में पाते हैं कि उनके पुत्र-पौत्रों के लिए भी वह पर्याप्त हो जाता है ।^{१४} उसके सेवक उससे इतना धन पाते हैं कि वे कुबेर का उपहास करते हैं ।^{१५} वह जनपदों में भी धन का वितरण करता है ।^{१६} यह वीरभानु का दान-वीररूप है । वीरभानु उन्माद-जनक आयु (यौवन), लक्ष्मी और रून के उत्सेक (अभिमान) से सदा दूर रहा ।^{१७} क्रमशः देवता-विषयक रति तथा धर्मवीरता,

१. सर्ग ५१५० : 'कामादि-पङ्कग-जय-प्रतिष्ठम् ।'

२. वही ५१६७ : 'द्विजगोहितोऽभूत् ।'

३. वीर० सर्ग ५१=० ४. सर्ग ५१९६ ५. सर्ग ५१९८

६. सर्ग ५१२०० ७. सर्ग ५१११८

८. सर्ग ५१४७ : 'अनेन राजा परवित्तलिप्सा स्पन्देपि नालिङ्गि... ।'

९. सर्ग ६१३३ १०. सर्ग ६१११

११. सर्ग ५१७-८ :

स संयतान् मोचयति स्म सर्वान् वध्यान्पि त्याजयति स्म सद्यः ।

.....व्वसर्जयद् धर्ममतिः शुकादीन् ॥'

१२. सर्ग ५१६९ १३. सर्ग ५१११३ ।

१४. वीर सर्ग ५१२०५ १५. सर्ग १६० १६. सर्ग ६१३५

१७. सर्ग ६१४५ : 'नोत्सेकवान् शमोल्दमोरूपेण्मत्तत्प्रदेः ।'

दयावीरता और दानवीरता के उत्साह भावों को हम निरहङ्कारता में परिणत देखते हैं। इस प्रकार भक्ति और वीररस के इन अङ्गों का राम भाव में अन्त-भाव होता चला जाता है।

इस दिशा में विचार करने पर उदाहरणार्थ हम निम्नलिखित श्लोक ले सकते हैं, जिसमें उत्साह (दानवीर, धर्मवीर का स्थायीभाव) उत्पन्न होकर राम (दान्तरस) के रूप में परिणत हो जाता है—

‘ददौ धनं याचकमण्डलाय जिगाय सर्वेन्द्रिय वैरिवर्गम् ।

प्राणान् क्रमेणैव वशं निताय हिस्वापि राज्यं न जहौ स राज्यम् ॥’^१

वह (वीरभानु) याचकों को (जीवन के अन्तिम भाग में) दान दिया करता था, उसने समस्त इन्द्रिय रूपी वैरियों के समूह को जीत लिया था, उसने क्रमशः प्राणों को (योग द्वारा) वश में कर लिया। उसने राज्य तो त्याग दिया था पर राजापन (वीर-कर्म) नहीं त्यागा।

यहाँ राज्य त्यागने की बात एक सत्य है, जो प्रबल है और राजापन का त्याग न कर इन्द्रियों और प्राणों को वश में करने पर शीघ्र प्रकट करना उसी सत्य के लक्ष्य विरहित, मुमुक्षुत्व आदि की पुष्टि के लिए सुन्दर तत्त्व है। क्रिया के लक्ष्य राम की प्राप्ति, तृष्णा का क्षय ही उत्साह को राम में परिणत कर देता है। अतः वीर रस की उद्भावना अन्त में दान्तरस में बदल जाती है।

दान्तरस का सुन्दर परिपोष निम्नलिखित श्लोकों में हुआ है।

‘आलिङ्ग्यमानं जरसा वपुः स्वं विचार्य विज्ञाय च लोकचेष्टाम् ।

धुरं धराया विनिधाय धुर्ये निजात्मजे रामगुणाभिरामे ॥

श्रीरामचन्द्रे नृपवीरभानुस्तप्तोज राज्योद्धहन-प्रयासम् ।

निवर्त्य चेतो विपयाभिलाषादुवाप्त गङ्गा-यमुनोपपङ्कटम् ॥’^२

यहाँ अनित्यता आलम्बन है, जरावस्था उद्दीपन है, विचार उत्पन्न होना, राज्य पुत्र को सौपना अनुभाव है, मति नामक सञ्चारी भाव है तथा विदियों का त्याग कर त्रिवेणी-वास करने से राम की सतत आगूति ही राम नामक स्थायी भाव है। यह भी कह सकते हैं कि निर्वेद यहाँ सञ्चारी और स्थायी दोनों रूपों में विद्यमान है। कुछ अन्य उदाहरण लीजिये—

‘विहाय लोक-भयवहार-चिन्तामचिन्तयत् ब्रह्म परं प्रशान्तः ।

रराज तस्यां मुकृती दशामां विदेहभूपाल इवोपशान्तः ॥’^३

‘गङ्गातरङ्गेषु कलिन्दजायाः कल्लोलमालामिलितेषु दृष्टिः ।

विवेश वैश्याग्र-गतस्य तस्य सरस्वती द्रष्टुमिवातिगुप्ताम् ॥’

हरथं परीवार-निषेव्यमाणः सुतेन तिष्ठन्नुपलम्भतस्वः ।

स वार्धकं बधितकीर्तिवल्लिनिनाय सार्धक्षममुदार-बुद्धिः ॥^१

अग्य रसों के उदाहरण पीछे प्रस्तुत किये गये हैं । वीभत्स^२ और हास्य^३ के प्रयोग यत्र-तत्र प्राप्त हो जाते हैं, किन्तु वे नगण्य हैं । अङ्गभूत रसों के रूप में वीर और शृङ्गार ही प्रयुक्त हुए हैं । वीर रस का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है—

‘श्री वीरसिंहस्य बलेन शौर्यात् श्रीविक्रमादित्यचमूविजिग्ये ।

जितां स्वसेनां महतीं विलोक्य स्वयं जगामाथ रणाय धन्वी ॥’^४

विप्रयोग शृङ्गार को निम्नलिखित श्लोक में देखा जा सकता है:—

‘अपि वरतरुणीभिस्तजितस्तर्जनाभिः

स्मितविकसितकान्तिः सम्भ्रमात् किञ्चिद्दृश्यात् ।

इह हि नगरसीम्नि प्रेषितुं मामि शीते

क्षणमिह तुरगाणां घावतां कौतुकानि ॥’^५

सम्भोग शृङ्गार के उदाहरण नीचे प्रस्तुत किये जाते हैं :—

‘युवति-तनु-मूढनां तूलिकानां निकाये

मृगमद-युसुणार्धर्वासिते वासरान्ते ।

अशिषिल-परिरम्भारम्भि-कुम्भस्तनाभिः

शिशिर-समम-सौर्यं भाग्यवन्तो भजन्ति ॥’^६

‘स्त्रियं सुललितां धीक्ष्य स्मराज्ञा-वर्तिमोऽभवन् ।

विजानन्तीऽपि मर्यादां कामः खलु दुरत्ययः ॥’^७

‘एके मुक्तं लभन्ते स्म वारयोपिदिभरावृता ।

विपरीत-रतारम्भे शृङ्गारस्य महौदधी ॥’^८

‘क्रीडन्ति मत्र स्फुट-वारिजाक्षयः प्रियैः कलाज्ञाः स्मरतन्त्रविज्ञैः ।

पीनोन्नतः-श्रोणि-कुचाः पिवद्भिस्त्वदाननं पार्वण-चन्द्रमुद्ययः ॥’^९

‘तदनु मदन-लोलाचाप निर्घोषभाञ्जि प्रतिविपिनमलोनां गुञ्जिताग्न्याविराज

रसिक-नृपति-चेतःप्रीतये प्रेषितानां बुभुसु-समयमित्रेणोव तद् गायनाताम् ॥’^{१०}

अलङ्कार एवं भावव्यञ्जना :

अलङ्कारों के क्षेत्र में वीरभानुदय काव्य में अच्छे चमत्कारपूर्ण पदों की कमी

१. वही १२।३७, ३९	२. वही, ११।४६	३. वही ९।२२
४. वही २।४५	५. वीर० सर्ग ११।४०	६. सर्ग ११।३९
७. सर्ग ३।७०	८. सर्ग ३।६८	९. सर्ग २।१९
१०. सर्ग ११।९	:	:

दृष्टिगत होती है। व्यञ्जना के स्थल कम है और अभिघातक शैली का अधिक प्रयोग है, तो भी बलङ्कारों का प्रयोग कहीं-कहीं रमणीय है। उपमा और उत्प्रेक्षा के प्रयोग बहुत हैं। यमक, श्लेष, अनुप्रास के प्रयोग भी सूचिपूर्वक किये गये हैं। इनके अतिरिक्त अन्य बलङ्कार भी प्राप्त होते हैं। कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं—

अनुप्रास—‘रमाभजानिः कमनीयशानिः शोणाङ्घ्रिशानिः कृतशत्रुहानिः ।

धनन्तसेनः प्रभया जितेनः पृथ्वीपत्तोनः पृथुवत्कुलीनः ॥’^१

यमक—‘यशोदया यशो-दया-सुरूप-सञ्चरित्रया ।

अरिष्टनेमि-सम्भवं पवित्रितं गुणैः कुलम् ॥’^२

‘नम-शास्त्रविचारतोऽभवद्विनयस्थोऽभ्युदयोऽयं नित्यशः ।

नलता च तथाऽप्रवशिशयाऽनलता वाऽभ्यतुलप्रतापतः ॥’^३

श्लेष—‘नलपात-कलस्वनाङ्कगा परिरम्यैकभुजेन वल्लकी ।

हृदि रागवती निवेशिता रमणी राममरोरमद् गुणैः ॥’^४

‘अयमिष्टदलक्ष्मणान्वितः परशशुघ्नपराक्रमाञ्चितः ।

श्रयते भरताभिवन्दितो स्वगुणाद्रामपदं न नामतः’ ॥’^५

उपमा—‘वदरो फलभाषाजन्नुद्यानत्राणकारणात् ।

रोपिता शौरिवाभाति सनक्षत्राचलद्युतिः ॥’^६

‘दिवसानि ययुर्यथा यथा ववृधुस्तस्य गुणास्तथा तथा ।

गिरिजा इव सिन्धु-सम्मुखाः सरितः प्रावृषि नीरपूरिताः ॥’^७

सीतेव शुद्धवरिते गिरिजेव रूपे धर्मस्थितौ द्रुपदराजसुतेव साध्वी ।

सस्ये सतीव सुरसिन्धुरिव प्रभावे वंशद्वये वितनुते हि यशो यशोदा ॥’^८

अनल-विषम-दैन्य श्येनसम्पातभीतान्निजभुवि परिवक्षन् विदपारावतीघान् ।

घिविरिव शिवशेवां शीलयन् शीलराशिः शिशिरहृदनुकम्पा-सागरत्वेऽभिषेचि ॥’^९

अन न्वय—‘पयोधिराभाति यथा पयोधिरिदं विहायोऽस्ति यथा विहायः ।

दाने महत्वे महनीय माने रामो यथा राजति रामबन्ध्रः ॥’^{१०}

उत्प्रेक्षा—‘गायन्ति यस्यां सुदशः समन्तान्मञ्जु सुलोकादिव देवनार्यः ।

समागताः श्रीवदना गहोरासुखानि भोक्तुं दिवि दुर्लमानि ॥’^{११}

‘दहन्त्या स्नानमात्रेण जग्मिना कलुषश्रजम् ।

उत्पापदाह-सम्बन्धादिव श्यामलतोयया ॥’^{१२}

१. वीर० सर्ग २।२	२. सर्ग १०।७	३. सर्ग ८।२४
४. सर्ग ८।३१	५. सर्ग ८।३८	६. सर्ग ३।४०
७. वीर० सर्ग ८।३३	८. सर्ग ९।१०	९. सर्ग ११।६
१०. सर्ग १०।२५	११. सर्ग २।२०	१२. सर्ग ४।२

अतिशयोक्ति—'धनुरानमनेन विद्विषो नमितं तेन समुन्नतं शिरः ।
घृतजोवतपा पुनः कृतं कतमेपामपि जीवकर्षणम् ॥'^१

व्यतिरेक—'बलिबंलीयानपि दान-वारिप्रदानतोऽभून्निगडेन बद्धः ।
अयं तु नाना-नरपुङ्गवानां विच्छेद बन्वान् मणिहेमदानैः ॥'^२

अर्थान्तरन्यास—'स्त्रियं सुललिता बीक्ष्य स्मरान्नावर्तिनोऽभवन् ।
विजानन्तोऽपि मर्यादां कामः खलु दुरत्ययः ॥'^३

स्वभावोक्ति—प्रियतम-हरिणीनां शृङ्गकण्डूविनोदैः
स्वपिति हरिणयूथं सर्वतः शाद्वलेषु ।'^४

अत्युक्ति—'तत्पुत्रस्य तव प्रयाण-समये, जेतुं दिशां मण्डलं
धूलोमिः परिपूरिते त्रिभुवने, दीनोऽर्क्षिभिर्वासवः ।
ब्रह्मा विश्वलयाकुलो, रिपुवधू रिक्ता विभूषाम्बरैः
लङ्घ्यायां च विभीषणोऽम्बुधिवृत्तौ निद्रा-दरिद्रायते ॥'^५
'दित्सो नरेन्द्रे सति रामचन्द्रे, वसुन्धरा नव्य-वराधिनीयम् ।
भीतोऽभवत् काञ्चन-शैलराजः, कपालि-सह्यं कुरुते घनेशः ॥'^६

इसी प्रकार अन्य अनेक उदाहरण बलङ्कारों के क्षेत्र में प्रस्तुत किये जा सकते हैं ।

कालिदास के काव्यों की छाया :

वीरभानूदय काव्य पर संस्कृत के अन्य काव्यों का भी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । विशेष रूप से हमारा कवि कालिदास का ऋषी है । कथा-योजना, भाव और शब्दावली को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत काव्य के लिए रघुवंश उपजीव्य ग्रन्थ सा रहा है । नीचे कतिपय श्लोक तुलनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत किये जाते हैं :—

वीरभानूदयकाव्यम्

रघुवंश०

बद्धहृतेजा नृपतिर्वभूव
तरस्विना तेन समोरखेन ।
सहसा शिखीव प्रवलेन सम्मक्
कपोलभेदेन यथा गजेन्द्रः ॥

विभावसुः सारथिनेव वायुना
..... ।
वभूव तेनातितरां सुदुःसहः
कटप्रभेदेन करोव पार्थिवः ॥

(सर्ग १।८२)

(सर्ग ३।३७)

१. सर्ग ८।१०

२. वीर सर्ग १०।१६

३. सर्ग ३।७०

४. सर्ग ११।१३

५. सर्ग ९।३०

६. सर्ग १०।१८

स राज्यमस्मिन्ननघे तनूजे
निषाय तस्थौ भवने मुत्तन ।
अन्ते दिनस्य शुभणिर्यथा स्वं
दोषितग्रजं वायुसत्ते समर्प्य ॥
(सर्ग १।८३)

अथ प्रतस्थे द्विपतां जयाय
... .. रक्षितमूलदेशः ॥
(सर्ग २।३१)

अथाश्ववारा मयुरश्ववारान्
पदातयः पत्तिगणान्निहन्तुम् ।
आघोरणा हस्तिपकान्निजघ्नु-
मुद्धं बभूवैत्थमतीव धोरम् ॥
(सर्ग २।४२)

भजताशु पतीन्नार्य-
स्व्यक्त्वा मानं न लभ्यते ।
शौवनं गतमित्येव
किं करोति पिकः स्वनम् ॥
(सर्ग ३।२६)

स संयतान् मोचयति स्म सर्वान्
वध्यानपि श्याजयति स्म सद्यः ।
अवाहकत्वं च धुरन्धराणां
गवामदोह्यत्वमचीकरच्च ॥
नर्मप्रदान् पत्रिगणान् प्रविष्टो
व्यसर्जयत् धर्ममतिः शुकादीन् ।
विमोक्षसञ्जातमुखा विरावै-
स्तदाशिष्यः किं जनयन्ति ते स्म ॥
(सर्ग ५।७-८)

मृपा न चोषतं न हठो व्यघ्रायि
न इग्यमालम्बि महेश्वरेऽपि ।
बाणी न रुक्षाऽहिताऽपि शत्रो ... ॥
(सर्ग ५।४१)

स राज्यं गुरुणा दत्तं
प्रतिपद्याधिकं बभौ ।
दिनान्ते निहितं तेजः
सवित्रेव हृताशनः ॥
(सर्ग ४।२६)

स गुप्त-मूल-प्रत्यन्तः.....
प्रतस्थे दिग्जिगीषया ।
(सर्ग ४।२६)

पत्तिः पदाति रघिनं श्वेष-
स्तुरङ्गसादो तुरगाधिहृदम् ।
यन्ता गजस्याभ्यपतद् गजस्यं
तुस्य-प्रतिद्वन्दि बभूव युद्धम् ॥
(सर्ग ७।३७)

त्यजत मानमलं बत विग्रहै-
र्न पुनरेति गतं चतुरं वयः ।
परभृशभिरितीव निवेष्टिते
स्मरमते रमते स्म बधूजनः ॥
(सर्ग ९।४७)

वन्धच्छेदं स वदामां
वघार्हाणामवध्वताम् ।
धुर्माणा च धुरो मोक्ष-
मदोर्हं चादिशद् गवाम् ॥
क्रीडा-पतत्रिणोऽप्यस्य
पञ्जरस्थाः शुकादयः ।
लब्धमोक्षास्तदादेशा-
द्यधेष्टगतयोऽभवन् ॥
(सर्ग १७।१९-२०)

न कृपणा प्रभवत्यपि वासवे
न वितथा परिहास-कथास्वपि ।
न च सपत्नजनेष्वपि तेन वा-
गपहया पहयाक्षरमीरिता ॥
(सर्ग १।८)

सम्बर्धमानः पितरं कृतायं
करोति तत्सङ्गमजाततोपम् ।
यथा जमन्तः पुष्टदूतमङ्गे
क्रीडन्..... ॥

उमा-वृषाङ्गी शरजन्मना यथा
यथा जमन्तेन शची-पुरन्दरी ।
तथा नृपः सा च सुतेन मागधी
मनन्दतुस्तसदृशेन तत्समी ॥
(सर्ग ३१२३)

दिने दिने तेन तथाङ्कुनाजा
नृपः सुखोभूय गुरुत्वमेति ।
यथा गणेशेन मृगाङ्कुमौलि-
यथा कुमारेण स एव देवः ॥
(सर्ग ७१९४, ९६)

इसी प्रकार यत्र-तत्र मेघदूत के साथ भी भावों या शब्दों के साम्य देखे जा सकते हैं, जैसे—

अध्रंलिह्वंते शान्तः
प्रांशुभिः पर्वतरिव ।
: (सर्ग ७१७२)

उच्चैः पयोदा इव भान्ति यस्यां
गृहाः सचित्राश्चलकेतुमालाः ॥
(सर्ग २१२३)

साशादिव स्वः समुपेतमस्यां
श्रीवीरसिंहस्य विशालधर्मैः ।
(सर्ग २१५५)

इसी प्रकार वीरभानूदय में कुछ अन्य काव्यों की छाया भी यत्र-तत्र प्राप्त होती है ।

प्रमुख चरित्र

वीरभानूदय काव्य का कथानायक राजा वीरभानु है । कवि ने प्रमुख रूप से इसी का चरित्राच्छुन किया है । वीरभानु के पुत्र युवराज रामचन्द्र का चरित्र-वर्णन करने में भी कवि ने पर्याप्त उत्साह प्रदर्शित किया है । साथ ही वीरभानु के पिता वीरसिंह की विजयों का वर्णन भी सुहृत्पूर्ण है । यही तीन काव्य के प्रमुख पात्र हैं । इनके अतिरिक्त वीरसिंह के पूर्वज-वंशधरों और रानियों के तथा वीरभानु और रामचन्द्र के कुछ सहकारियों के भी उल्लेख हैं, जिनका महत्त्व केवल ऐतिहासिक है । रानियों के सम्बन्ध में चर्चा करते समय उनमें पातिप्रत, देवभक्ति, लोककल्याण आदि गुण प्रदर्शित किये गए हैं । बल्लारदेव की रानी भ्रांजलमस्तु देवी ने गहौरा में सातार, सुदक्षिणा और उसके सट पर

..... सचित्रा.....
... ..तुङ्गमध्रलिहाषाः ।.....
प्रासादास्त्वां तुलयितुमलम्
..... ।”
(उत्तर मेघ, १)
स्वगिणां शां गतानां
शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः
कान्तिमत् खण्डमेकम् ॥
(पूर्वमेघ, ३०)

शोतला देवी की प्रतिष्ठापना की तथा बावली बनवाई ।^१ भेदचन्द्र के ज्येष्ठ राजकुमार बाहरराय की मृत्यु होने पर उसकी गन्धर्वदेवी आदि तीन रानियाँ सती हो गईं ।^२ वीरभानु की रानी राजमती ने गर्भवती अवस्था में स्वप्न में दशावतारों के दर्शन किये ।^३ उसने दोहद पूर्ति के रूप में अपने पिता को धनोत्ति-परायण बतला कर वीरभानु से उसको जीतने के लिए कहा ।^४ रामचन्द्र की रानी यशोदा गङ्गा-जल से ही सश स्नान करती थी और घर्मावरण में ही समय व्यतीत करती थी ।^५

१—वीरभानु :

कवि ने कथानायक वीरभानु को अरघन्त उदात्त रूप में चित्रित किया है । वह 'नेता' के शास्त्रोक्त गुणों^६ से युक्त है तथा महाकाव्य के लिए आवश्यक घोरोदात्त कोटि का नायक है ।^७

वीरभानु का जन्म सद्गुणों और समस्त पुण्यों से पूरित बघेल वंश में हुआ ।^८ वह दिग्विजयी सम्राट् वीरसिंह (और मुकुमार देवी) का ज्येष्ठ पुत्र, अतः जन्म से साम्राज्य का उत्तराधिकारी था ।^९ वह बघेल वंश के प्रतापी नरेश भीम और वीरम के वंश का केतु था^{१०}, जिनका गोत्र भारद्वाज व्याघ्रपाद था ।^{११}

वीरभानु में धर्म-प्रवणता का गुण प्रमुख रूप से प्रारम्भ से ही विद्यमान था । पिता वीरसिंह का त्रिवेणी में और्ध्वदैहिक कृत्य पूर्ण कर युवराज अवस्था में ही राजधानी गहोरा की ओर छोटते समय कोटर तीर्थ में हम उसे यमुना में स्नान और देवस्तुति करते हुए पाते हैं । इन स्तुतियों से वीरभानु कृष्णोपासक सिद्ध होता है ।^{१२} मार्ग में वह गुप्त-वाराणसी तीर्थ की यात्रा भी करता है ।^{१३} गहोरा

१. वीर० १।२४-३०

२. वही, सर्ग १।६४-६५

३. वही सर्ग ७।१-६०

४. वही, सर्ग ७।६६-७४

५. वही, सर्ग १२।३-५

६. दशरूपक (धनञ्जय) : २।१-२ :

'नेता विनीतो मधुरस्वयागी दक्षः प्रियम्बदः ।

रघतलोकः शुचिर्वाग्मी रुढवंशः स्थिरो युवा ॥

बुद्धयुत्साह-स्मृति-प्रज्ञा-कला-मान-समन्वितः ।

शूरो दृढश्च तेजस्वो शास्त्र-ब्रह्मश्च धार्मिकः ॥'

७. वही, २।४-५ : 'महासत्त्वोऽति गम्भीरः क्षमावानविकल्पनः ।

स्थिरो निगूढाहङ्कारो घोरोदात्तो दृढव्रतः ॥'

८. वीर० सर्ग १।५ : 'साद्गुण्य-समस्तपुण्य-सम्पूरितं तत्कूलम् ।'

९. सर्ग १।८६-९०

१०. सर्ग ५।१४६-४७

११. सर्ग ९।१५, २१, २८ । १२. सर्ग ४।१-५२ १३. सर्ग ४।५३-५७

में राज्याभिषेक होने पर राजा वीरभानु सर्वप्रथम बघेलों के कुलदेव कौवेरदेव की अर्चना करता है ।^१ कवि ने राजा वीरभानु को 'द्वितीय धर्मात्मज'^२ कहकर उसकी युधिष्ठिर के साथ तुलना की है ।^३ वीरभानु काम आदि पड्वर्ग के जीतने में प्रारम्भ से ही प्रयत्नशील रहता है ।^४ वह नित्य ही आतिथ्य सत्कार में लीन रहता है ।^५ वह जानता है कि अन्यायमार्ग पर चलने वाले राजा समूल नष्ट हो जाते हैं, अतः वह श्याय पर दृढता के साथ प्रवृत्त होता है ।^६ वह गो-ब्राह्मण-प्रतिपालक है^७ तथा दयावश राज्याभिषेक के समय बन्धियों की मुक्ति एवं वैलों के 'अवाहकत्व' का आदेश देता है और क्रीड़ा में सहायक शुक आदि पक्षियों को भी मुक्त करा देता है ।^८ वीरभानु ने भृत्यों का भी कष्ट दूर किया ।^९ वह ऐसे ही कार्य करता था जो ऐहिक और आमुष्मिक (पारलौकिक) दोनों प्रकार के कल्याण कर सकें ।^{१०} वह व्यसनों से मुक्त था । उसकी दास्यों और धर्मग्रन्थों में रुचि और निष्ठा थी । वह धर्म से सम्बद्ध विवादों पर स्वयं निर्णय देता था तथा ब्रह्मयज्ञ आदि किया करता था । वह जितेन्द्रिय था तथा यम-नियम आदि का पालन एवं विष्णु की भक्ति करता था, साथ ही वह शङ्कर के चरणों का उपासक भी था ।^{११} वह अत्यन्त दानशील^{१२} और दयालु था^{१३} । अपने देश में वह अध्रुपात नहीं देख सकता

१. सर्ग ५।२२-३१ । २. सर्ग ५।३३ ३. सर्ग ५।४१

४. सर्ग ५।५० : 'कामादिपड्वर्ग-जयप्रतिष्ठम् ।'

मृषा न चोर्वत न हठो व्यघ्रायि, न दैन्यमालम्बि महेश्वरेऽपि ।

वापो न रुक्षाऽभिहिताऽपि शत्रौ, युधिष्ठिरेखेव नृपेण तेन ॥'

५. सर्ग ५।६२ 'तस्यातिथौ सत्कृतिरस्ति नित्यम् ।'

६. सर्ग ५।६६ : 'अन्यायमार्ग-प्रवृणाः समूलं

जग्मुर्गमिष्यन्ति च यान्ति नाशम् ।

महीभूतस्तन्नय-मार्ग एव, प्रवर्तते "'।' तथा सर्ग ५।१२१

७. सर्ग ५।६७

८. सर्ग ५।७-८

९. सर्ग ५।६७

१०. सर्ग ५।८० : 'यदैहिकामुष्मिकशर्मयोग्यं, तत्कर्म कर्तव्यमनीदृशं नो ।'

११. सर्ग ५।९४, १०० : 'पुराणवेदस्मृतिसादरात्मा ।' तथा

'मभान् विवेकी नियमानुपास्ते हरि-प्रसन्नं विजितेन्द्रियोऽग्रम् ।

हरि-प्रसादेन नरैर्दुरापा धर्मादपो नेति जनः कृतार्थः ॥'

१२. सर्ग ५।१०५

१३. सर्ग ५।११० :

'सांसारिकैः कष्टशतैरजस्रं तप्ताः प्रजाः सन्ति दयाजलोधिः ।

सेध्या भवन्तीति विचार्य राजा दमापरस्थास्वसृजत् सुखानि ॥'

था ।^१ वह लोकनिन्दा से भय खाता था । उसने पुण्यार्जन के लिये देवालयाँ और जलाशयों के निर्माण कराये थे ।^२ राजलक्ष्मण देवी द्वारा खनाए हुए तालाब को उसने ही गहरा कुराया था^३ । वह चरित्रहीन सुन्दरियों की चर्चा से भी विरक्त था तथा पर-स्त्री-विमुख था ।^४ वह शास्त्रों द्वारा निषिद्ध कर्मों को कभी नहीं करता था ।^५ उसने पराये धन का लोभ कभी नहीं किया ।^६ वह वर्णाश्रम का परिपालक था ।^७ उसने प्रमादवश भी पाप नहीं किया ।^८ उसने हिंसा से दूर रहने के लिए भृगुया का भी श्याग कर दिया था ।^९ उसने नवीन वय, लक्ष्मी और रूप का कभी अभिमान नहीं किया ।^{१०}

वीरभानु का व्यक्तित्व राजोचित गुणों से पूर्ण था । उसने विचार किया कि शत्रुओं की भूमि जीत लेनी चाहिए । उसने एक दुर्ग (बान्धवगढ़ ?) का आश्रय लेकर शत्रुओं को जीतने का निश्चय किया ।^{११} इसके लिए उसने सप्ताङ्ग-नीति का अवलम्बन किया ।^{१२} उसने युद्ध के लिए समर्थ सेना का निर्माण किया ।^{१३} अर्जुन की भाँति नीतिज्ञ राजा वीरभानु ने कोप और दण्ड को व्यवस्था कर प्रताप बढ़ाया ।^{१४} उसने घोड़े और हाथी बढ़ाए^{१५} तथा गुप्तचरों को नियुक्त की ।^{१६} वह अपनी मन्त्रणायें गुप्त रखता था ।^{१७} उसने प्रभु, मन्त्र और उत्साह तीनों शक्तियों के प्रयोग किये तथा सन्धि, विग्रह, यान, स्थान, द्वेष और संशय इन छहों गुणों के उपयोग में कुशलता प्राप्त की ।^{१८} वह प्रमादयुक्त सचिवों को हटा देता था ।^{१९} इस प्रकार शक्तिसम्पन्न हो कर उसने शत्रुओं को निर्मूल कर

१. सर्ग ५११३ २. सर्ग ५११७-११८ ३. सर्ग ११२-२७

४. सर्ग ५१२२, १०० :

५. सर्ग ५१२४-निषिद्ध-कर्माणि विधातुमेव न सस्पृहोऽभूत्सुकृत-प्रसक्तः

६. सर्ग ५१२८, १४७ ७. सर्ग ६११ ८. सर्ग ६१२०

९. सर्ग ६१३३ १०. सर्ग ६१४५

११. सर्ग ० ५१३९-४० :

अनेक दुर्गेषु यदेकदुर्गं तदाश्रितं पतनमावसन् सः ।

..... द्विषजिगीपापित-मानसोऽयम् ॥'

१२. सर्ग ५१४६

१३. सर्ग ५१६४-६५

१४. सर्ग ५१७४ 'तस्मान्भरेन्द्रोऽर्जुनकन्ययज्ञः कोरोऽपि दण्डेऽन्वभक्तु सयततः

१५. सर्ग ५१६५-८८ : सर्ग ६१३६-३९

१६. सर्ग ५११०२-१०३, १३१, १५१

१७. सर्ग ५११०६ १८. सर्ग ५१२३१, १५१-५३ १९. सर्ग ५११३६

दिया ।^१ सहस्रों शत्रु भी उसे सहन नहीं कर सकते थे । वीरभानु के पिता वीरसिंह ने प्रायः सभी शत्रु निरक्षेप कर डाले थे, अतः युद्धोन्मुख होते हुए भी वीरभानु के लिए रणयात्रा दुर्लभ थी, तथापि उसने शत्रुओं की वृद्धि नहीं होने दी और आक्रमण कर उज्जट देश को जीत लिया ।^२ क्रमशः वह द्वादश राज-चक्र का अधिकारी हो गया ।^३ इस प्रकार हम वीरभानु को स्थिरता, दृढ़ता, प्रजा, उत्साह, मान, शूरता और तेजस्विता आदि गुणों से सम्पन्न पाते हैं ।

वीरभानु व्यवहार में चतुर था ।^४ उसकी वाणी में अमृत था ।^५ वह सज्जनों को दूर नहीं करता था और दुर्जनों एवं नीच जनों को समीप नहीं आने देता था ।^६ वह प्रजा का सर्वथा अनुरञ्जन करता था, अतः लोकप्रिय था ।^७ उसकी वृद्धि तीक्ष्ण और शुद्ध थी ।^८ उसमें मिथ्या भाषण, हठ, कातरता, रूक्षता आदि दोष नहीं थे ।^९ उसके द्वार हितैषियों के लिए कभी बन्द नहीं होते थे ।^{१०} वह बहुत बार बहुत लोगों से बहुत कुछ सीखा करता था ।^{११} वह वाम्भी^{१२} और शुचितासम्पन्न था ।^{१३}

कवि ने उपर्युक्त रीति से वीरभानु को नामकोषित गुणों से विभूषित तो बतलाया ही है, साथ ही उसे शास्त्रोक्त नीतियों के आधार पर एक सफल, सतर्क एवं समर्थ शासक के रूप में भी उपस्थित किया है । वह राज्य का सुयोजित सञ्चालन करता था । वह त्वरित कार्य करने में समर्थ होने से अपने कार्य सिद्ध कर लेता था ।^{१४} उसने दुर्ग की रक्षा के लिए ऐसे हितैषी और कुलीन कर्मचारी नियुक्त किये, जिन्हें शत्रु कभी फोड़ न सकें ।^{१५} यद्यपि वह एकान्त में ही राज्य के उदय के लिए मन्त्र की साधना करता था, तथापि वह प्रजा के अनुराग की प्राप्ति के लिए संभा में भी बैठता था ।^{१६} उसके परीक्षित कर्मचारी

१. सर्ग ५।५१ २. सर्ग ५।१५४-१५८ ३. सर्ग ६।१ :

‘अमृद् ध्रुवं द्वादशराजचक्रे ।’

४. सर्ग ५।५२ ५. सर्ग ५।१२६ ६. सर्ग ५।४४, ४०, ११४

७. सर्ग ५।१०९, १११, १२६, १२८ : ८. सर्ग ५।७३, १०७

९. सर्ग ५।४१ १०. सर्ग ५।४३

११. सर्ग ५।३४ :

‘श्रुत्वा बहुभ्यो बहुधा बहूनि शिष्टेभ्य एव प्रतिपत्तिमागात् ।’

१२. सर्ग ५।१०४ १३. सर्ग ६।१६

‘लोकान्लोकमनोहरोऽप्यमसिपद् भद्रोक्तिभिः प्रःयहं,
पथानं न शुर्वि विमुञ्चत जना यूयं स्वकामादितः ।’

१४. वीर० सर्ग ५।४२ १५. सर्ग ५।४८-४९ १६. सर्ग ५।५३

कार्यों में प्रमाद नहीं करते थे ।^१ आय-व्यय की चर्चा करते समय उचित सम्मति देने वालों का वह सम्मान करता था ।^२ वह निष्ठावान् सेवकों और सामन्तों को भूमि आदि देकर सन्तुष्ट रखता था तथा सैन्य और क्रोध की वृद्धि करने में उनकी सहायता लेता था ।^३ उसने कृषि का विकास किया^४ तथा वाणिज्य के मार्गों का निर्माण कराया ।^५ वह आय के अनुसार ही व्यय करता था । वह अच्छे जाँचे हुए लोगों को ही आय-व्यय के कार्य में नियुक्त करता था तथा प्रत्येक पक्ष या मास में यथावकाश स्वयं आय-व्यय का निरीक्षण करता था । वह स्वयं के आय-व्यय की आनुमानिक राशियाँ भी स्थिर करता था^६ और सिद्धि प्राप्ति के पूर्व कर्मपथ को छोड़ता नहीं था । वह कर्मचारियों पर ही आश्रित न रह कर स्वयं देख भाल करता था । वह कार्यों को करते समय तन्द्रा और व्यसन से दूर रहता था तथा शौघ्रता के साथ कार्य करता था, जिससे विघ्न बीच में न आ जायें ।^७ उसने कुबेर से भी अधिक लक्ष्मी अर्जित कर ली ।^८ वह प्रजा से घूस लेने वाले कर्मचारियों का घन छीन कर उन्हें दण्डित भी करता था^९ साथ ही अन्यायी सामन्तों को दण्डित करता था और उनकी भूमि और घन छीन लेता था ।^{१०} उसके राज्य के अन्तर्गत सुचारु व्यवस्था से सेवकों में सार्धसाह सुरुक्षित रहते थे तथा पर्वत और नदियाँ भी सुविधापूर्ण थी ।^{११} न वह अत्यन्त तीक्ष्ण रहता था और न अत्यन्त मृदु । वह स्मृतियों में विहित मध्यम क्रम से ही प्रवृत्त होता था ।^{१२} सभी मनुष्यों के लिए ऋण लेना निन्द्य है, अतः राजा वीरभानु अपनी आय के आधार पर काम चलाता था ।

१. सर्ग ५।५७ २. सर्ग ५।४९-६० ३. सर्ग ५।६१

४. सर्ग ५।६८ ५. सर्ग ५।७८

६. सर्ग ५।८३, ८९-९१, १६१-६२ तथा सर्ग ६।४०

७. सर्ग ५।९२ :

‘यत्कार्यमद्वाऽऽरभते विना तत् फलं न मुञ्चत्यवनीश्वरोऽयम् ।’
आरभ्य मे कार्यमुदासते ते न सिद्धिभाजः कथिता नयज्ञैः ।’
तथा सर्ग ५।९४

८. सर्ग ५।११५ : ‘ततः कुबेराधिक-जातलक्ष्मीः ।’

९. सर्ग ५।१४०-१४१

१०. वीर० सर्ग ५।१४४

११. सर्ग ५।१५० :

‘तस्याटवी सार्धसुखप्रदाऽऽसीत्तस्याद्रयो राजपथा इवेष्टाः ।
तस्य सक्न्ती पथिकद्रजानां स्वगेहवापीव तनोति धर्मं ॥’

१२. सर्ग ६।४

उसने सभी व्योह्रों के ऋण चुका दिये ।^१ नीतिज्ञों के द्वारा प्रोत्साहित किये जाने पर भी वीरभानु उनकी चाटुकारिता के कुचक्र में नहीं उलझता था और अनुचित कार्य कभी नहीं करता था ।^२

इस प्रकार बहुत वर्षों तक वीरभानु शासन करता है और अपने तरुण एवं सुयोग्य पुत्र रामचन्द्र का विवाह कर उसे युवराज-पद प्रदान कर देता है । यही कवि ने नायक वीरभानु की निस्पृहता का पक्ष उभारा है—

तनय-निहित-भारौ वेद-रक्षावतारो

नियत-कृत विचारो धर्मकण्ठैकहार ।

क्षितिपतिरथ गङ्गा-तोय-संशुद्धचित्तौ

विरल भवन-तिष्ठो ब्रह्मनिष्ठा-परोऽमृत ॥^३

वीरभानु दीर्घजीवी था । उसने पौत्र का मुख देखा और प्रभावी होने के कारण अपने मित्र मुगल सम्राट् हुमायूँ से उपहार प्राप्त किये^४ । वीरभानु ने धर्म के अनुकूल पृथ्वी का उपभोग किया, बलपूर्वक शत्रु राजाओं को जीत लिया, विद्वानों को घन से तृप्त किया और सन्तति देख कर सुख पाया ।^५ उसने देखा कि उसका पुत्र राज्य करने में समर्थ है तथा प्रजा उस पर अनुराग रखती है, साथ ही उसका अपना शरीर वार्धक्य से आक्रान्त होता आ रहा है, तब संसार की गति का विचार कर उसने रामचन्द्र पर राज्य का भार रखा और स्वयं राज्यसंचालन का प्रयास त्याग दिया ।^६ उसने विषयों से मन को खींच कर गङ्गा-यमुना के समीप ललकपुर (अरैल) में निवास किया और सांसारिक चिन्ताओं को त्याग कर ब्रह्म-चिन्तन में लीन हो गया ।^७ उस उपरान्त स्थिति में वह विदेहराज जनक-सा प्रतीत होता था । उसकी यह स्थिति देख कर लोग कहते थे कि यह राजा कलियुग में सत्ययुग का प्रवर्तन कर रहा है । इस प्रकार वीरभानु ने याचकों को घन दिया तथा क्रमशः इन्द्रियों को जीत कर प्राणों को भी वश में कर लिया । दार्शनिक और विद्वान् उसके

१. सर्ग ५।८६ : ६।१३, १४, १७ २. सर्ग ६।३०

३. सर्ग १४७

४. सर्ग १२।२०-२३

५. सर्ग १२।२६ :

धर्मेण भुक्त्वा पृथिवी धनेन जित्वारिभूपान् द्रव्येण-प्रदानैः ।

सन्त्यज्य विद्वन्निकरानवाप्य सुखानि सन्तान विलोकनेन ॥'

६. सर्ग १२।२७-१८

७. सर्ग १२।२९-३० :

'निवार्य चेतो विषयानिलापादुवास गङ्गा-यमुनोपकण्ठम् ।

...विहाय लोक-व्यवहार-चिन्तामचिन्तयद् ब्रह्म परं प्रशान्तः ॥'

समोप आ कर ज्ञान-चर्चा किया करते थे । भवन के ऊंचे भाग से वह त्रिवेणी के दर्शन किया करता था ।^१

वीरभानु ने बाल्यावस्था में विद्योपाजन किया, यौवन में राजलक्ष्मी का उपभोग किया तथा शत्रु राजाओं को प्रस्त रखा और वृद्धावस्था में त्रिवेणी में निवास कर उमे भी सार्थक बनाया । इस प्रकार का संसार में प्रसिद्ध महास्वी राजा वीरभानु था, जो गुणो और शान्ति का धाम था और जिसको तेजस्विता से सूर्य, सम्पत्ति से देवराज इन्द्र तथा वृद्धिमता से बृहस्पति स्पृहा करता था ।^२

वीरभानु का उपयुक्त चरित्राङ्कन यद्यपि अतिरञ्जित एव प्रशस्तिमूलक है, तथापि इसी आधार पर कवि का लक्ष्य मानव-जीवन के चरमोत्कर्ष को प्रकट करना भी स्पष्ट होता है । भारतीय जीवन अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि को ही लक्ष्य मानता है और इसी लक्ष्य को स्थापना कवि की प्रेरणा है ।

रामचन्द्र

वीरभानुदय काव्य में द्वितीय श्रेणी का चरित्राङ्कन वीरभानु के पुत्र युवराज रामचन्द्र का किया गया है । रामचन्द्र के विवरण में अधिक अतिरञ्जन है तथा अलौकिक तत्वों का भी समावेश किया गया है ।

सातवें सर्ग में, जब रामचन्द्र गर्भ में है, उधकी माता राजमता स्वप्न में अवतारों के दर्शन करती है जिनमें कल्कि रूप, जो म्लेच्छ-नाशक है, प्रमुख है । वीरभानु के दिवङ्गत पिता वीरसिंह भी स्वप्न में हा प्रकट हो कर गर्भस्थ बालक को आशीर्वाद तथा निर्देश देते हैं और उसे म्लेच्छनाशक कल्कि का अवतार हो बतलाने है ।^३ स्पष्ट है कि काव्य पर यह प्रभाव तत्कालीन मुस्लिम शासकों के साथ वघेलो के पीढ़ियों से चले हुए ऐतिहासिक सङ्घर्षों के कारण है ।

चक्रवर्तित्व के लक्ष्णों से सम्पन्न बालक रामचन्द्र का जन्मोत्सव उत्साह के साथ मनाया जाता है ।^४ दृष्ट्य अवस्था की ओर अप्रसर होने वाले कुमार को

१. सर्ग १२।३१. ३३-३८ :

२. सर्ग १२।३ -४ :

‘आसं देवविध-गुणगणद्राम-विश्रामधाम, .

सःणीक्षानो जयति विदित-श्रीयशा वीरभानुः ।

भानुर्यस्य प्रचुरमहसे न-पदे देवराजो.

देवाचार्यः पृथुलमतये संपूहृत्वं जगाम ॥’

३ वीर० सर्ग ७।१-६२

४. सर्ग ७।८०-९२

विद्वान् मन्त्री गणेश रावत ब्रह्म-शस्त्रों के सञ्चालन, मल्लविद्या, दर्शन नीति, घोड़े और हाथों के नियन्त्रण मोत-नृत्य आदि विद्याओं और कलाओं की शिक्षा देने हैं जिन्हें बालक अपनी तीक्ष्ण प्रतिभा के कारण अत्यंत शीघ्रता के साथ ग्रहण कर लेता है ।^१ तबसे सर्ग में मौर नगर के राजा कोनिसिह की पौत्री यमोदा के साथ रामचन्द्र का विवाह हो जाता है और शीघ्र ही विन्ध्यशैल (दान्बकगढ़ दुर्ग) पर उनका धीवरार्याभियेक हो जाता है । यहीं में पिता के निर्देशन में रहने हुए भी रामचन्द्र सम्पूर्ण रूप से शासन अपने हाथ में ले लेता है ।

रामचन्द्र का प्रचार शीघ्र ही शत्रुओं के लिए दाहक हो गया ।^२ उनमें अन्तर्गत में कलिङ्ग, अमरकण्टक और दक्षिण समुद्र तक बयेल राज्य की सीमा का विस्तार कर लिया ।^३ रामचन्द्र गुणों का सागर था । वह गम्भीर, स्थिर, धीर, उदार और दानवी था । स्वयं सुल्तान मुहम्मद जदली (मूर) उसकी शरण में आया था ।^४ उसका यश अतुल्य था ।^५ वह अपनी समा के मापक ताननेत को प्रत्येक राग प्रत्येक तान और प्रत्येक छन्द पर करोड़ों टंका पुरस्कार दे चुका था तथा आठों प्रहर गीत सुनता था ।^६ वह अत्यन्त शूर, गम्भीर और यगस्वी हुआ ।^७ धारहवें सर्ग में रामचन्द्र की मृगया का वर्णन है, जिसमें उनका उत्साह और पराक्रम सूचित होता है ।

बारहवें सर्ग में रामचन्द्र के पुत्र वीरभद्र के जन्म का वर्णन है । रामचन्द्र को शीघ्रता की ओर कवि ने यहाँ संकेत किया है । वह अपने पिता वीरमानु को उत्स्यति में अपनी प्रथम पुत्र के जन्म का समाचार सुनता है और यद्यपि उसके अन्तःकरण में उल्लास फूटता है, वह पिता के समझ लज्जित हो जाता है—

तदातिगुडातिमुखेन पुमः, प्रोल्लासिद्वक्त्रः सुधयेव चन्द्रः ।

स्नेः सरस्वानिब रामचन्द्रः, पितुम्ब्रान-नम्र द्वावत्स्ये ॥^८

१. सर्ग ८।०-१४

२. सर्ग १०।३ :

'प्रतापतीश्वरुनैः परेषा तामाय रामो यदमूद् धुरीणः ।'

३. सर्ग १०.७

४. सर्ग ६।१०-२१ :

५. सर्ग १०-२३

६. सर्ग : ०।१६-३१

७. सर्ग १०।३०-३५ ।

'अनन्यतानान्यगुणैकमिन्धु. संसारवन्तुर्न रामचन्द्र. ।

जोशय-शौर्यैक-निवासवानः परन्तपौर्य मुदमन्त्रितुत्तः ।

महागभीरः प्रगते द्वावान् स रामचन्द्रो धरणीन्द्रचन्द्रः ॥'

८. वीर० सर्ग १२।१७

काव्य के अन्तिम भाग में बतलाया गया है कि वीरभानु ने रामचन्द्र की क्षमता पर सन्तुष्ट होकर ही निश्चिन्त भाव से विरचित ग्रहण की। इस समय रामचन्द्र राज्य-मंचालन में समर्थ था। वह गुणशाली था तथा राजा उसे चाहती थी।^१

३ वीरसिंह

प्रस्तुत काव्य में तीसरा महत्त्व वीरभानु के पिता वीरसिंह के चरित्राङ्कन को दिया गया है। तीसर महत्त्व का अर्थ यह नहीं कि वीरसिंह तीसरी श्रेणी का पात्र है, केवल इतना ही है कि उसका वर्णन द्वितीय सर्ग में संक्षेप में किया गया है।

वीरसिंह सुरूप, मधुरभाषी, कलाओं का मर्मज्ञ, विद्या-प्रेमी, उदार, दयालु, बुद्धिमान् वाग्मी एवं संयमी था। वह शत्रुनाशक, राजाओं के लिए भयङ्कर, प्रभावी और अर्कम्पित था तथा उसने विशाल सेना खड़ी की थी।^२

वीरसिंह इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि उसने राजधानी गहोरा को नया रूप दिया; उसे सड़कें और भवनों से सुसज्जित किया।^३

वीरसिंह ने बघेल राज्य का अत्यधिक विस्तार किया और शत्रुओं को निःशेष कर दिया। उसने कितने ही दुर्गों पर अधिकार किया और नगर बसाये। बाबर मुगल भी उसके पराक्रम से भय खाता था। उसने प्रयाग (अरैल) से लेकर गढ़ा (जबलपुर) तक का भूभाग स्थापित कर लिया था।^४ वीरसिंह की विजयों का समस्त उल्लेख ऐतिहासिक है।

महाकाव्यों की परम्परा और वीरभानूदय काव्य

भामह ने निम्नलिखित ४ काव्य-प्रभेदों की चर्चा की है—(१) वे काव्य, जिनमें देवादिकों के पूर्वघटित चरित्रों का वर्णन हो। स्रष्ट के अनुस्वाद्य प्रवच, जिनमें इतिहासादि (रामायण, महाभारत तथा अन्य पुराणों) में प्रसिद्ध पञ्जर आधार

१. वही, सर्ग १२।२७

'विलोक्य भूपालनयोग्य वीर्यं प्रजानुरागास्पदमारमजं च ।'
तथा १२।२८—

'धुरं धराया विनिधाय धुयं निजार्मजे रायगुणाभिरामे ॥'

२. वही, सर्ग २।१-६

३. सर्ग २।७ :

'स.राजयामास युवा गहोरां चतुर्दिशा राजित-राजमार्गम् ।'

४. सर्ग २।४०-६८ ।

बनाया गया हो, इसी कोटि में आते हैं। प्रायः समस्त उत्कृष्ट महाकाव्य इसी प्रमेद के अन्तर्गत आ जाते हैं—जैसे रघुवंश आदि पञ्च महाकाव्य तथा पीछे के नलाम्बुदय, रामचन्द्रोदय, सितिकण्ठविजय, ताराशशाबु, राघवीय काव्य आदि।

मामत द्वारा सूचित अन्य प्रमेद हैं २. उत्पाद्य-वस्तुक, ३. कलाश्रयी और ४. शास्त्राश्रयी काव्य।

कलाश्रयी काव्य चमत्कार-प्रधान होते हैं, जिनमें यमक-श्लेष आदि के बल पर अनेकानेक प्रयोग किये जाते हैं, जैसे राजचूडामणि दाशित का राघव-न्यादव-पाण्डवीयम्, हरदत्त का राघव-नैपथीयम् अथवा सूर्य कवि का राम-कृष्ण-विलोम-काव्य।

शास्त्राश्रयी काव्य या तो चन्द्रालोक, साहित्यदर्पण की भाँति विशुद्ध पद्यात्मक लक्षण ग्रन्थ हैं अथवा किसी आश्रयशाता को आधार बनाकर उनमें रस-अलङ्कार, नायिका-भेद आदि बतलाए गए हैं, जैसे मञ्जराजयशोभूषण, जप्पाराम-भरश्चन्द्रोदय आदि।

महाकाव्यों के क्षेत्र में दूसरा स्थान उन उत्पाद्यवस्तुक महाकाव्यों को प्राप्त है, जिन्हें आजकल ऐतिहासिक शैली के प्रबन्ध काव्य कहा जाता है। इनमें प्राचीन कथा का आधार छोड़ कर आधुनिक दृष्टि से ऐतिहासिक आधार स्वीकार किया गया है। इनमें मानव का चरित-वर्णन पाया जाता है। ऐसे महाकाव्य भी धार्मिक और लौकिक दो आधारों पर लिखे गये हैं। धार्मिक आधारों पर प्रभोत उत्पाद्यवस्तुक महाकाव्यों में गणनीय हैं अश्वघोष के बुद्धचरित, सौन्दरनन्द तथा पीछे के देवतन्दात्म्युदय, दिग्विजयमहाकाव्य, शङ्कराम्बुदय, पतञ्जलिचरित सत्यनायाम्बुदय, महावीरचरित आदि। इन महाकाव्यों में नायक को मर्त्य रूप में प्रस्तुत करते हुए उसे तपोबल या पूर्व जन्म के प्रभाव से दिव्य-शक्तियों से सम्पन्न बतलाया गया है। कवि ने प्रायः अपने धर्म के प्रवर्तक को दिव्यादिव्य नायक रूप में रखा है और उसका काव्य-प्रणयन का प्रमुख लक्ष्य अपने धर्म-विशेष के उत्कर्ष की साधना रहा है। इस प्रकार महाकाव्य के अनेक लक्षणों से युक्त होने पर भी ये रचनाएँ कलाश्रयी और शास्त्राश्रयी काव्यों की भाँति ही बहुत कुछ एकाङ्गी ही गई हैं। उदाहरणार्थ सौन्दरनन्द में नन्द का नायकत्व उपहासास्पद हो जाता है। उसका व्यक्तित्व बुद्ध के अलौकिक प्रभाव से आक्रान्त, अतः पराश्रित है। उसमें हृदयता का पक्ष निर्बल है और ज्ञान-साधना का पक्ष प्रबल। कवि लालित्य और रञ्जनात्मकता को साधन बना कर बौद्ध मत को साध्य बनाता है और नायक नन्द एवं नायिका सुन्दरी को मिश्र-मिश्रुता में परिणत कर देता है। काव्य-कला का प्रदर्शन लोक-रुचि को आकृष्ट करने का साधन-मान है।

लौकिक आधारों पर रचित प्रायः समस्त महाकाव्य राजाओं की प्रशस्ति की भावना पर आधारित है। ये राजा आधुनिक दृष्टि से इतिहास के केन्द्र-बिन्दु हैं। अतः इन्हीं को वास्तव में ऐतिहासिक शैली के महाकाव्य कहा जा सकता है। ईसा की दूसरी सहस्राब्दी में ऐसे महाकाव्यों की रचना अच्छी संख्या में उपलब्ध होती है। नवसाहस्राब्द-चरित, मृष्वीराज-विजय और विक्रमादित्य-चरित इम कोटि के गणनीय महाकाव्य हैं। गुजरात में वारहवी-तेरहवीं शताब्दियों में इस कोटि के अन्तर्गत कुमारपाल-चरित, वसन्तविलास, हम्मीर-महाकाव्य और कीर्तिकौमुदी जैसे सुन्दर ग्रन्थों की रचनाएँ हुई हैं। इमी कड़ी में १६ वीं शती में हमारा वीरभानुदय काव्य जुड़ जाता है। १७ वीं शती में तंजौर केन्द्र में अच्युतरायाम्पुदय, अच्युतेन्द्राम्पुदय, रघुनाथाम्पुदय, रघुनाथ-भूप-विजय जैसे महत्त्वपूर्ण महाकाव्यों की सर्जना हुई। अन्तर्गत शिवाजी-चरित, ताराचन्द्रोदय, विशालराज-महाकाव्य और रावजीराव-कीर्ति-विलास जैसे महाकाव्यों के प्रणयन हुए। इन ग्रन्थों को दृष्टि में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि लौकिक-उत्पाद्य-वस्तु, ऐतिहासिक शैली के प्रशस्तिमूलक चरित-प्रधान महाकाव्यों की सर्जना करने की प्रवृत्ति ईसा की दूसरी सहस्राब्दी में अत्यन्त बलवती रही है। वीरभानुदय की रचना इसी प्रवृत्ति का परिणाम है। इन्हीं महाकाव्यों की परम्परा में वीरभानुदय को स्थान दिया जा सकता है।

ऐतिहासिक शैली के काव्य इतिवृत्तात्मक भी होते हैं, जैसे राजतरङ्गिणी। इनका कलेवर ऐतिहासिक घटनाओं के विवरणों से भर जाने से उसकी रसवत्ता और हृद्यता क्षीण हो जाती है। इनका मूल लक्ष्य ऐतिहासिक कुतूहल का निवारण हो जाता है, उनमें सन्धियों की अन्विति नहीं होती। इसी कारण इन्हें महाकाव्य नहीं कहा जा सकता।

ऐतिहासिक शैली के चरित-प्रधान महाकाव्यों की शैली प्रायः जीवनचरित की शैली होती है। इनमें प्रारम्भ में ऐतिहासिक नायक के पूर्वज, माता-पिता या वंशानुक्रम का वर्णन रहता है। किसी-किसी में नायक के जन्म से लेकर मृत्यु तक का वर्णन रहता है। ये प्रायः उद्देश्य-प्रधान होते हैं। इनका मूल लक्ष्य राजा की प्रशस्ति रहता है। यत्र-तत्र ऐतिहासिक घटनाओं का समावेश करते हुए भी रसात्मकता को प्रधान रखा जाता है। कथावस्तु में अलौकिकता और कल्पना का समावेश भी पाया जाता है। उपर्युक्त तत्त्व नवसाहस्राब्द-चरित, मृष्वी-राज-विजय, विक्रमादित्य-चरित, वसन्तविलास और वीरभानुदयकाव्य में थोड़े-बहुत अन्तर के साथ समान रूप से पाये जाते हैं। विशेष अन्तर यह है कि उक्त चारों महाकाव्यों में जहाँ नायक के आशिक जीवन का चित्र है, वहाँ

वीरभानूदय में नायक के समग्र जीवन की झाँकी है। इसमें अपेक्षाकृत अधिक इतिहास-तत्त्व है। वीरभानूदय में महाकाव्य की परम्पराओं (पुद्ग, चन्द्रोदय, शृङ्गार कौंडाओं के परम्परात्मक वर्णनों) का इतना परिपालन नहीं है जितना अन्यत्र प्राप्त होता है। इसमें बल्लु-कल्पना का समावेश भी बहुत कम है। इनका ऐतिहासिक आधार अधिक ठोस है। तत्कालीन स्थितियों, समाज, संस्कृति, प्रदेशों, नगरों आदि के सम्बन्ध में वीरभानूदय काव्य में अपेक्षाकृत अधिक सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। समग्र रूप में यह कहना उचित होगा कि काव्य-कला की दृष्टि से वीरभानूदय उक्त काव्यों में नीचे है, यद्यपि बहुत नीचे नहीं। भाव ही ऐतिहासिक महाकाव्य के रूप में वह उक्त काव्यों से ऊपर है। वीरभानूदयकाव्य का महत्त्व इस बात में है कि १६ वीं शती में वह ऐतिहासिक शैली की काव्य-परम्परा की महत्वपूर्ण कड़ी बनता है, जब कि इस अवधि में अन्यत्र इस श्रेणी के महाकाव्यों की सर्जना बन्द-सी दिखाई देती है। हम पीछे देख चुके हैं कि वीरभानूदय की काव्य-शैली भी उत्कृष्ट है।

संक्षेप में यह कहना उच्युक्त होगा कि रघुवंश, कुमारसम्भव, नैपथीयचरित आदि प्रथम श्रेणी के महाकाव्यों की महनीयता के दर्शन हमें वीरभानूदयकाव्य में नहीं होते किन्तु महाकाव्य के लक्षणों की परिपाटी पर जो अन्य द्वितीय श्रेणी के महाकाव्य पर्याप्त संख्या में लिखे गये हैं, उनकी श्रेणी में स्थान पाने से वीरभानूदय काव्य का रोक नहीं जा सकता।

(१) काव्य में उपलब्ध ऐतिहासिक तत्त्व

वीरभानूदय काव्य में कथानायक वीरभानु के चरित्राङ्कन के साथ-साथ अनेक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सूचनाएँ भी प्राप्त हैं। ये सूचनाएँ निम्नलिखित तीन विभागों में बाँटी जा सकती हैं—

- (१) बघेलों की पूर्वज-परम्परा ।
- (२) तत्कालीन प्रदेश, नगर, जाति और व्यक्ति ।
- (३) तत्कालीन बघेलखण्ड का समाज एवं संस्कृति ।

(१) बघेलों की पूर्वज-परम्परा

कवि ने काव्य के प्रथम सर्ग में वीरभानु की पूर्वज-परम्परा का वर्णन किया है। संस्कृत के अन्य काव्य बघेलवंशवर्णनम् तथा इतर साहित्य को देखने से हमें पूर्वजों के कुछ नामों पर प्रस्तुत काव्य की सूचनाओं से मतभेद प्राप्त होता है। बघेल-वंशवर्णनम् में प्रारम्भ में अधिक नाम प्राप्त हैं तथा स्थितियों में भेद है। इस भिन्नता की वृत्ति हम अगले अध्याय में बघेलवंशवर्णनम् पर विचार करते समय करेंगे और इस स्थान पर हम केवल वीरभानूदय काव्य में प्राप्त सूचनाओं पर ही अपने को सीमित रखेंगे।

प्रस्तुत काव्य के अनुसार पुण्यवान् बघेलवंश में भीम नामक राजा हुआ।^१ (यहाँ यह बात ध्यान में रखने की है कि कवि यह नहीं कहता है कि भीम इस राजवंश का प्रवर्तक या मूल पुरुष था। साथ ही वह भीम की राजधानी भी भी नहीं बतलाता।) भीम के पुत्र राणिङ्गदेव ने कृपाण के बल से पृथ्वी को जीता और गहोरा का अधिकारी बनकर राज्यारम्भ किया।^२ यहाँ से चलकर वीरभानु तक सभी राजाओं की राजधानी गहोरा नगरी ही है। अतः हम कह सकते हैं कि प्रस्तुत काव्य गहोरा-शाखा की सम्पूर्ण सूचना से युक्त है।

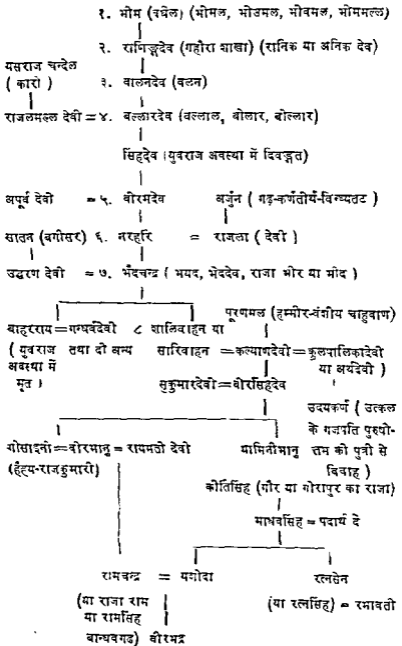
१. वीर० सर्ग १।६-८ : '...भीमनरेन्द्र आसीत् । ...बघेलवंश्यः...लेभे स पुत्रं...राणिङ्गदेवं...' ।

२. सर्ग १।१० :

राणिङ्गदेवः पुंयुराजबुद्धिजिता कृपाणस्य बलेन पृथ्वीम् ।

शशास नानानुपगेहभूषां लब्ध्वा गहोरां तपन-प्रतापः ॥'

वीरभानूदय काव्य में प्राप्त बघेलवंश की सूची हम एक दृष्टि में निम्न-
लिखित रूप में पाते हैं—



बल्लारदेव

जैसा उपर्युक्त बंशवृक्ष से विदित होगा, राणिङ्गदेव का पुत्र बालनदेव^१ और उसका पुत्र बल्लारदेव^२ था। अन्यत्र प्राप्त सूचनाओं के आधार पर बालनदेव तक के पूर्वज ठाकुर कहे जाते थे। बल्लारदेव ही प्रथम राजा हुआ तथा उसने विजय प्राप्त कर जिलालेख सुदशाय^३। इस समय कारी नामक स्थान पर चन्देल-वंशीय यसराराजदेव शासक थे। उनको पुत्री राजलमल्लदेवी बल्लारदेव को स्थायी गई थी। इस रानी ने राजभवन से पूर्व दिशा में गहोरा में बावलो खुदवायो और वायु-कोण में विशाल तालाब का निर्माण कराया, जो कवि के समय तक उस रानी के नाम से प्रसिद्ध था, जिसे पीछे बीरभानु ने धीरे गहरा कराया था। इस तालाब के तट पर स्थापित द्योतना देवी की प्रतिमा को कवि ने कुलदेवी कहा है।^४ बल्लारदेव के जीवनकाल में ही उनके युवक पुत्र सिंहदेव ने, जिसे पूर्वजन्मों का स्मरण था, त्रिवेणी में प्रवेश कर स्वयं प्राण त्याग दिये^५। बल्लारदेव ने सिंहदेव के पुत्र बीरम-

१. बीर० १।१५ : 'तदात्मजो बालनदेव आसीत् ।'

२. बीर० १।१९ :

'पुत्रश्च संसारसमुद्रपोतो बल्लारदेवो बलिदान-शौण्डः ।'

३. बीर० क्रि. ए० पू० १७ : गहोरा-जिलालेख-१६६० ई०। विजयों के लिए देखिये—परिशिष्ट १ (क) तथा १ (ख)—जमाबन्दियाँ तथा परिशिष्ट ४ : (जिलालेख)।

४. बीर० सर्ग १।२४-३० :

'श्रीमच्चन्देलान्वयमण्डनं यः कारीपतिः श्रीयसराराजदेव ।
तस्माज्जनि प्राप्य रराज तन्वी या पर्वतेन्द्रादिव दसकन्या ॥
स्व-मेहतः पूर्वदिशाविभागे यद्वापिका राजति पूर्णतोया ।
साज्य प्रिया राजलमल्लदेवी पत्नी तयाश्रानि तडागसिन्धुः ।
स्वकीय-मेहादृशि मारुतस्य तदाख्यया यः प्रथितः पृथिव्याम् ॥
यः श्रीमता तत्कुलभूषणेन श्रीबीरभानुसिद्धिपेन नूनम् ।
अतीव निम्नो विहितो गभीर ।

तटे यस्यास्ति, देवी कलिकामधेनुः । सा शीतलाख्याया नः
कुलस्पष्टकरो .. ॥'

५. बीर० सर्ग १।३१-३४ : 'बल्लारदेवेन तनूभवोऽस्यां सिंहो..... ।
जातिस्मरोऽग्नौ । प्राग् सुतं बीरमदेवमार्यम् ।.....

स्मृत्वा स किञ्चित् खलु जातु धीरः श्रीसिंहदेवः परमात्मदर्शी ।

अहो तनुं जह्नुनुता जलोधे यमस्वसुवार्तिमिराप्तसङ्गे ॥'

इस घटना की पुष्टि जमाबन्दियों से होती है। इनके अनुसार सिंहदेव

देव का पोषण किया और उसे राज्याधिकारी बनाया^१। वीरमदेव का सामना म्लेच्छ राजा और उनके घुड़सवार नहीं कर पाते थे। उसने सेहूँडा (सेवडा, जिला दतिया) नगरी को जीत कर वहाँ निवास किया तथा दिल्लीश्वर यवन से भी विग्रह कर लिया।^२ उसको रानी अपूर्व देवी से नरहरि उत्पन्न हुआ।^३ गङ्गा के समीप गढ़ नामक स्थान के राजा अर्जुन ने विन्ध्य तट पर निवालय बनवाये द। इस स्थान का नाम कर्गनीय (वर्तमान कन्तिन, उत्तर प्रदेश) था। इस

ने अपने वंश की अचरता की कामता में काश्मूर में बैठकर प्राण छोड़े :
देन्दिये एकत्रा - राजा विहदेव बेनी महू गरमारामायण के कोलू महें
उहराइ दीन्देनि इह इना के के को हमारि सन्नानि अत्रे गज्व करे ।
स० १ ६३ माघवरी ३० सोमे कहूं ।' १९वीं शती की अन्य जमा-
बन्दिगों में यह संवत् १३२५ गके माघवदि ३० लिखा हुआ है। शक
संवत् होने में यह १४९० ई० के समान होगा किन्तु इसके पूर्व ही
इसके पुत्र वीरमदेव (१३९१-१४१३ ई०) की स्थिति आती है
(निजामी : मलिकजादा जयनैस्टी आरु कालपी : मध्यप्रदेश इतिहास
परिपद् : मोपाल : ११ अप्रैल, १९५७ में पठित लेख पृष्ठ २-३)
अतः यह संवत् सन्दिग्ध है। (देखिये परिशिष्ट १ (क) तथा (ख) ।)

१. वीर० सर्ग १।३५-३७ :

२. वीर० १।३९ :

'न गते तेन धनुर्भूता स्म म्लेच्छाधिनाथा. सुखमश्नुस्ताः ।'

तथा १।४४ :

'हृत्वा सद्गुण-नगरी महीयान्मानध्युवामाशु किमत्र विवम् ।

विगूह्य रजे यवनाधिपेन दिल्लीपुरी-मत्सदिना यदेवः ॥'

षोडशवीं शती के अन्तिम भाग में दिल्ली के तुगलक मुल्तानों के विरुद्ध
दाव में विद्रोह खडा हुआ था, जो चलता गया। इस समय कालपी
में नव-प्रतिष्ठित नानिश्हीन महमूदशाह (१३२०-१४११) ने १३९५
ई० में गहोरा के 'मुकद्दम' वीरम वषेल पर आक्रमण किया और
अगले वर्ष गहोरा को नैस्तनाद कर दिया (तारीखी मुहम्मदी : मो०
विहानिद खानों - पृष्ठ ४७२ , । बघेलों ने जोनपुर के शकी इब्राहीम-
शाह (४००-४०) का साथ किया तथा उसके सहायक के रूप में
दिल्ली के तुगलकों और कालपी के मलिकजादा (१४१३ ई०) पर
कई हमले किये (निजामी : मलिकजादा जयनैस्टी आरु कालपी :
म० प्र० इति० परि० ११५७ पृ० ३) ।

३. वीर० १।४६-४७ :

अर्जुन ने अपनी पुत्री राजला नरहरि वघेल को दी थी, जिससे भेदचन्द्र का जन्म हुआ। भेदचन्द्र ने काशी, प्रयाग और गया आदि अनेक देशों को जीत कर शत्रुओं को समाप्त कर दिया तथा गहोरा को और भी सजाया और गङ्गा (गन्ता) नदी के पूर्वीय तट पर कलात्मक भवन बनवाये। पीछे वीरभानु ने इन भवनों को अधिक कला वैभव से समृद्ध किया^२। बगसर (बक्सर-विहार)

१. वीर० १।५१-५३ :

..... धी भेदचन्द्रं सुपुत्रेऽयं पुत्रम् ।
 सा राजलास्या महिषी सुशोला हरेर्नरादेः परनागहन्तुः ॥
 पिता यदीयोऽर्जुन नामघेषो गङ्गासमीपस्थ गङ्गाधिराजः ।
 नरादयेऽदाद्धरये यदेनां वेदोक्त-वैवाहिक-कर्मरोत्या ॥
 येनार्जुनेनाप्तवतीयमुर्वा शोककर्णतीर्थस्य नितान्तशोभाम् ।
 पार्याजुनेनैव विशाल-त्रिन्ध्यप्रभाव-युक्तस्य शिवालयस्य ॥'

२. वीर० १।५६ : 'काशीं प्रयागं च गयां च त्रिन्वा'

तथा १।५७-६० : भेदचन्द्र के नाम भयद, भेददेव भी मिलते हैं। इसका विवाह बक्सर में हुआ था और वहाँ तक तथा जौनपुर, कर्णित, मिर्जापुर, अरैल और प्रयाग से गहोरा तक उत्तरी क्षेत्र इसके अधिकार में थे। इसके राज्य-विस्तार तथा लोदी मुल्तानों से संबंधों के लिए देखिये—

(१) नियामतउल्लाह : तारीखी खानजहान लोदी : ईलियट एण्ड हाउसन : जिल्द ५ : पृष्ठ ८९, ९३-९५

(२) तारीखे फरिस्ता : त्रिगस : जिल्द १ : पृष्ठ ५६९-७१ :

(३) अलबदाओनी : ली : जिल्द १ पृष्ठ ४० = : इन समस्त उल्लेखों में भेददेव को जौनपुर के शर्की मुल्तान के पक्ष में बतलाया गया है। मुस्लिम लेखकों ने राजा का नाम 'भीद' या 'भेद' लिखा है, जिसका अनूदित रूप अंग्रेजों ने 'भीर' रखा है। यह फारसी लिपि के 'दे' और 'दे' अक्षरों की लिपि के भ्रम के कारण है। साथ ही देखिये— एकथा परिशिष्ट १ (क) — 'राजा भेददेव घानेहि आए' सं० १४७२ के साल'। यह सं० भेददेव के जन्म का १४१५ ई० हो सकता है, क्योंकि इनके पुत्र शालिवाहन का जन्म इसी एकत्रा में सं० १४९२ (१४३५ ई०) है तथा अन्य जमावन्दियों (परि० १-ग) में इनका राज्य सं० शक १९९४ (१४७२ ई०) है। उपर्युक्त मुस्लिम लेखक इनकी मृत्यु १४९५ ई० बतलाते हैं।

देश के राजा सातन की पुत्री उद्धरण देवी भैदचन्द्र की पत्नी थी। उसके गर्भ से ज्येष्ठ पुत्र बाहरराय हुआ। यह पराक्रमी राजकुमार युवावस्था में दिवङ्गत हो गया और उसकी गन्धर्वदेवी आदि तीन गनियों उसके साथ सती हो गईं।^१

ज्येष्ठ पुत्र की मृत्यु से शोकग्रस्त राजा ने छोटे पुत्र शालिवाहन को राज्य दिया। वीर हम्मीर चाहुवण (चौहान) के वशधर पूरणमल्ल ने अपनी पुत्री कल्याणदेवी शालिवाहन को व्याही, जिससे वीरसिंह का जन्म हुआ।^२ शालिवाहन की अन्य रानी (अर्धदेवी) का पुत्र उदयकर्ण था। उसने पिता द्वारा प्रदत्त धन और राज्य का त्याग कर उत्कल देश की यात्रा की तथा वहाँ के गज-

१. वीर० १।६१ : 'ज्येष्ठस्ततो बाहरराय आसीत्'। एकत्रा बान्धोगढ़ मे शालिवाहन को ज्येष्ठ तथा बाहरराय को चौथा पुत्र बतलाया गया है। अन्य जमाबन्दा (परि० १ ग०) मे भैददेव द्वारा विजयगिरि की विजय और बादशाह (पातसाहि) की चढाई का भी उल्लेख है। इसमें भी बाहरराय छोटा भाई है। साथ ही देखिये वीर० १।६२ : हीरानन्द शास्त्री के अनुसार यह बनसर उत्तर प्रदेश में उन्नाव जिला केन्द्र से ३४ मील दक्षिण पूर्व है। नियामतउल्ला (ईलियट एण्ड डाउसन : जिल्द ५, पृष्ठ ८९) ने लिखा है कि बनसर में राय तिलोकचन्द बहुलोल लोदी का प्रशासक था और भाठ के राजा (भैदचन्द्र) के साथ (१४८४-८८ ई० मे) उसके सवर्ष हुए थे। (वीर० क्रि ए० पृष्ठ २१-२२)।

२. वीर १।६७ :

'ततः कनीयांसमदन्नवीर्यं यमाह्वयया वाहनमामनन्ति ।
श्री शालि-पूर्व' तमसी विधाय राजानमापद् वसुदेव-सूनुम् ॥'
तथा १।७१ :

'तस्मात्तनूजं लभते स्म राज्ञी कल्याणदेवी स्व-कुल-प्रवृद्ध्यै ।'
और १।७२ :

'यस्याः पिता पूरणमल्लनामा

श्रीचाहुवाणान्वय-चक्रवर्ती हम्मीर-वीरावतरायमाणः ॥'

वीरसिंह का जन्म जमाबन्दियों मे संवत् १५२४ (१४६७ ई०) बतलाया गया है (परि० १ क)। साथ ही देखिये—वीर० क्रिटि० एन० पृष्ठ १८ : डा० हीरानन्द शास्त्री ने लिखा है कि यह पूरणमल्ल रायसेन (मध्यप्रदेश का संभागीय केन्द्र) का वही पूरणमल्ल प्रतीत होता है, जो गहनोत्त राजपूत पुरधिया सलहदी का पुत्र था। इसे 'भैया' भी लिखा गया है। (ई० डा० : ग्रन्थ ४- तारीखी खान-

वंशो राजा पुरुषोत्तम की पुत्री से ब्याह कर वहीं बस गया ।^१ वीरसिंह की रानी मुकुमारदेवी से ज्येष्ठ पुत्र वीरभानु और उनसे छोटे यामिनीभानु हुए । यामिनीभानु (अन्यत्र जमुनीमान) बड़े भाई (राजा वीरभानु) के आज्ञापालक थे ।^२ हैहय वंश की राजकन्या गोमादनी के साथ वीरभानु का विवाह हुआ ।^३

जहान लोदी पृष्ठ (११ और ३९७ टि०) । यह शेरशाह द्वारा १५४३ ई० में मारा गया । इस समय वह अत्यन्त वृद्ध था । शालिवाहन का राज्यारम्भ १५९५ ई० है । साथ ही देखिये इ० ग० : ग्रन्थ २१ पृ० ६३ । शेरशाह के विरुद्ध हुमायूँ की सहायता कर वीरभानु न शेरशाह का कालिजर और रीवा पर आक्रमण मोल लिया था, इसका यह सम्बन्ध भी एक कारण प्रतीत होता है (एन० बी० राय० सर्वेमेर्स आरु शेरशाह : १९३४ पृ० ६) ।

१. वीर० १।८४-८५ :

'तस्यार्धदेवी कुलपालिकासीत् ' आपत्, वीरं ततः सौदयकर्णपुत्रम् ।
यस्तातदत्तं धनदेशमिष्टमुदारचेनास्तुणवद् विहाय ।
आराध्यमीशानमगाज्जगत्या गजेन्द्रनाथं पुरुषोत्तमं च ॥
तेनार्चयित्वाऽर्पित-राज्यलक्ष्मीः समं तु तस्थौ जनित-प्रतापः ।
पत्न्युर्गजाता च विवाह्य पुत्री तमृत्कलं देशमलञ्चकार ॥'

श्री कशीनाथ कृष्ण लेले ने काव्य के अन्त में अंग्रेजी सारांश देते समय 'तस्याऽप्य देवी कुलपालिकासीत्' पाठ स्वीकार कर इसे वीरसिंह की रानी बतलाकर उदयकर्ण को वीरसिंह का पुत्र लिखा है (दे० वीर० अंग० पृ० ६) । किन्तु एकत्रा (परि० १ क) में हमें विदित होता है कि उदयकर्ण शालिवाहन के चौथे पुत्र थे—'जठे राजा विरसिंहदेव', बाबू नागमल्ल केउटी के, बाबू भीलमदेव लूकभरुका के, उदैकर्ण ।' इसकी पुष्टि अन्य जमाबन्दियों से भी होती है ।

२. वीर० १।८८ : 'अयाऽस्य देवी मुकुमारदेवी ।' तथा १।९० : 'श्री वीरभानुं' '।' १।९३ . 'श्री वीरसिंहात् मुकुमारदेवी श्रीयामिनीभानुमथावर्ध्मम् ।' तथा १।९५ 'श्री यामिनीभानुहृदयकीर्तिभ्रीतुनिवेशे किल वर्तमानः ।' एकत्रा (लगभग १७३५ ई०) ने यामिनीभानु (जमुनीमानदेव) को भैहर (जिला सतना) का बतलाया है । (परि० १ क) ।

३. वीर० १।९८ :

'गोसादनीत्याहितनामधेयाम्'..... ।

श्री वीरभानुः परिणीतवास्तां वशम्बदां हैहयवंशजाताम् ॥'

यह बात यहाँ ध्यान रखने की है कि इस रानी की आगे कोई चर्चा नहीं होती । सम्भवतः इससे कोई सन्तान नहीं हुई, क्योंकि हम वीरभानु के एक ही पुत्र रामचन्द्र से परिचित हैं, जिसकी माता राजमती (या रायमती) है ।^१ जमावन्दियों में वीरभानु का जन्म सं० १५४३ (१४८६ ई०) है, जब कि रामचन्द्र का जन्म वीरभानु की ५० वर्ष की आयु में सं० १५९२ (१५३५ ई०) बतलाया गया है, जो ठीक प्रतीत होता है ।^२ काव्य में वीरभानु के जन्म के पश्चात् पितामह गालिवाहन की मृत्यु का विवरण है^३ । १४९९ ई० में हम शालिवाहन की सिकन्दर लोदी से युद्ध करते पाते हैं । अतः वीरभानु का जन्म उक्त १४८६ ई० मान लेने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती । इसी प्रकार हम वीरसिंह को १५९५ ई० में सिकन्दर लोदी के विरुद्ध बघेल सेनापति के रूप में पाते हैं,^४ अतः इससे २९ वर्ष पूर्व १४६७ ई० में जमावन्दियों द्वारा सूचित वीरसिंह की जन्मतिथि भी स्वीकार की जानी चाहिए ।

वीरभानु के पिता वीरसिंह की युद्ध एवं सन्धि में सम्बद्ध नीतियों पर भी काव्य में ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है । वीरसिंह ने गहोरा से दक्षिण का और प्रस्थान कर विक्रमादित्य परिहार की राजधानी नरो पर आक्रमण किया और

१. वीर० सर्ग ७ ।

२. एकत्रा (परि० १ क) 'राजा रामचन्द्रदेव का जन्म संवत् १५१२ के साल । सं० १९०८ के साल राज्याभिषेक । बेटा २ जेठे राजा वीरभद्र । राजा वीरभद्र का जन्म १६१० के साल का ।' तथा अन्य जमावन्दियाँ (पार० १ ग) ।

इस संदर्भ में प्राप्त रामचन्द्र के राज्याभिषेक का संवत् १६०८ (१५५२ ई०) और वीरभद्र के जन्म का संवत् १६१ (१५५४ ई०) है । किन्तु काव्य के अनुसार वीरभद्र का जन्म वीरभानु के जीवनकाल में हुआ । अतः यहाँ प्राप्त सं० १६०८ राज्याभिषेक का न होकर यौवराज्याभिषेक का होगा, जब वीरभानु ने रामचन्द्र को सारे अधिकार सौंप दिये थे ।

३. वीर० २:१९९ ।

४. नियामतउल्लाह : तारीखी त्वाज्जहान लोदी : ई० डा० ग्रन्थ ५ : पृष्ठ ९४-९५ ; तारीखे फरिस्ता : ग्रन्थ १ : पृष्ठ ५९६-७१ : पृ० ४६२ तथा अलबदाओनी (मूनुसख उतवारोस) : लो : ग्रन्थ १ : पृष्ठ ४१७ ।

अधिकृत नगरी को बसाया ।^१ नरा से उसके आक्रमण की वार्ता सुन कर गढ़ा का शासक वहाँ से भाग गया । गढ़ा पर अधिकार कर नर्मदा में स्नान कर वीरसिंह नरो-पुरी को लौट आया ।^२ वीरसिंह के पूर्वजों ने दिल्ली के जागलक म्लेच्छ सम्राटो से सन्धि कर रखी थी, अतः वीरसिंह ने भी दिल्लीश्वर से सन्धि कर ली ।^३ वीरसिंह ने बान्धव नामक दुर्ग को नारायण नामक कुद्द राजा से

१. वीर २।४०-४८ :

‘तस्यायत शौर्याविधि विधुय जिगाय तं विक्रम-भूमिपालम् ।’

२।४१-०६ :

‘ततो गहोरामिव देशयुक्ता जितां पुरं चैव नरोमिधानाम् ॥

स भासयामास वणिवायेन मनोरमां सर्वपदार्यभाजम् ॥

या कोट्टचक्रेण चर्वास्ति दीर्घा श्रीवीरसिंहेन त्रिधापितेन ।’

नरो एक एहाड़ी है, जो सतना से रोवा की ओर पक्की सड़क पर १० मील जाने पर दक्षिण की ओर सड़क से लगभग ३ मील दूर दितती है । यहाँ प्राचीन दुर्ग के भग्नावशेष बतलाए जाते हैं । सड़क पर सज्जनपुर नामक एक पुराना कस्बा है, जो नरोपुरी कहलाता रहा होगा । नरो के परिहार इस समय पश्चिम की ओर गए होंगे । सम्भवतः नागोद-उंचेहरा (जिला सतना) के परिहार दक्षिण इत्यादि विक्रमादित्य के वंशज हैं ।

२. वीर २।५६-५८ :

‘गढ़ापति जेनुमगाच्च वीर. ।’

नरो नगर्यामुपितं नृपेण यावन्नयज्ञेन जगर्ज तावत् ।

गढ़ापतिस्तस्य पुनः प्रयाणं श्रुत्वा दिशः सेवितवान् स भीतः ॥

पत्न्यौ गढ़ायाश्च पलायमाने

नर्मदाया, स्नात्वा जगाम स्व - नरोपुरीं सः ॥’

३. वार० २।६३ :

‘दिल्लीपुरी-स्वामिभिरस्य पूर्वं सन्धि प्रचक्रुः सतताप्रमत्तैः ।

म्लेच्छाधिराजैरिति सोऽयमृद्ध्ये दिल्लीपुरीशेन चकार सन्धिम् ॥’

गढ़ा (जिला जबलपुर) १६ वी शती के पूर्वार्ध में गोड़ सत्ता का प्रमुख केन्द्र और चौरागढ़ दुर्ग था । यहाँ का युवराज अमानदास पिता से विद्रोह कर वीरसिंह बघेल की शरण में आया । वीरसिंह ने उसे पुत्रवत् रखा और जब सुलतान सिकन्दर लोदी की हाजिरी में गया, तब अमानदास को युवराज वीरभानु के संरक्षण में

भेद-नीति द्वारा छीन लिया। उसने वहाँ स्थित शत्रुओं को मार कर अपने लोग बसा दिये और स्वयं पत्नियों और पुत्रों सहित वहाँ निवास किया। उस समय जिन कुर्बंशियों ने उसका विरोध किया, उन्हें उसने अपने प्रधान (या सेनापति या दोनों) साहू के द्वारा ममलोक पहुँचा दिया^१। वीरसिंह ने

छोड़ गया। इस समय वीरभानु अल्पवयस्क था। (वीरभानु का जन्म १४८६ ई० है। अतः यह घटना १५०५ ई० के निकट की होगी।) बाद में अमानदास ने पिता की हत्या कर दी। गढ़ा के सरदारों ने यह समाचार वीरसिंह को भेजा, जो उस समय सिकन्दर लोदी के पास था। वीरसिंह सुलतान से छुट्टी लेकर गढ़ा पर बढ़ आया। अमानदास पहाड़ों में छिप गया। लौटते समय वह वीरसिंह से मिला और पिता कह कर रो कर क्षमा माँगी। वीरसिंह ने गढ़ा का राज्य उसे लौटा दिया (अबुलफजल : अकबरनामा : ई० डा० : ग्रन्थ २ : कलकत्ता : १९५९ : पृष्ठ ३०-३३) इन विवरणों से दिल्लीशहर (सिकन्दर) से सन्धि और गढ़ा पर आक्रमण की काव्य की सूचनाओं की पुष्टि होती है। १४९६ ई० में हुसेन शर्की को हराने में शालिवाहन ने सिकन्दर की सहायता की थी, जिससे पूर्व-सन्धि की भी पुष्टि होती है। (देखिये — नियामतउल्लाह : ई० डा० : ग्रन्थ ५ पृष्ठ ९३-९५ तथा अन्य मुस्लिम लेख)।

वीर० सर्ग २।५९-६१ :

‘श्री बान्धवाख्यं स ततश्च दुर्गं जप्राह भेदेन विनीत-विश्वः ।
नारायणाख्यान्पतेः कुरूणां वितीर्ण-देशः पर-कौरवाय ॥
दुर्गं स तस्मिन् मुमुदे नृपालो वसन् सदारः समुतः ससैन्यः ।
तत्र स्थितं ये कुरवः कदाचित्तं कोपयाञ्चक्रुरतस्वयत्नम् ।
तान् सौज्जित्योन् कारितवान् यमस्य प्रधानसाह्वेन तथाज्ययोधैः ॥’
सर्ग २।६६ : ‘श्री बान्धवाख्यं जगृहे च दुर्गम् ।’

कटनी से बिलासपुर जाने वाली पूर्वी रेलवे के उमरिया स्टेशन से उत्तर की ओर रोवा मार्ग पर २० मील जाने पर पूर्व दिशा में बान्धव-गढ़ की पहाड़ी दिखती है। यह समुद्र तल से २६६४ फीट ऊँचा है और २३°४१' उत्तरी अक्षांश तथा ८१°३' पूर्वी देशान्तर. पर स्थित है। मध्य प्रदेश के शहडोल जिले में इसी नाम से एक तहसील है। रोवा के बपेल राजाओं की, 'बान्धवेश' उपाधि आज भी प्रयुक्त होती है। पुरातत्त्व की दृष्टि से यहाँ के भग्नावशेष महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं और

रतनपुर के राजा को जीत कर उससे कर लिया ।^१ उसने बहार और सहजोर

यह पर्याप्त समय तक बघेल राजधानी रहा है । परम्परा के अनुसार बघेलों के मूलपुरुष व्याघ्रदेव के पुत्र कर्णदेव के विवाह में सोमदत्त हैहय ने अपनी कन्या पद्मकुंवरि के साथ दहेज में बान्धवगढ़ दिया था । वीरभानुदय काव्य में हम पहली बार वीरसिंह को कुखवंशियों से बान्धवगढ़ जीतते हुए पाते हैं । वीरसिंह का राज्यकाल अनुमानतः १५०५ से १५३० ई० तक है । किन्तु मुस्लिम लेखों (अब्दुल्ला-तारीखी दाऊदी-ई० डा० : ग्रन्थ ४-पृष्ठ १६२ : तथा अल बदाओनी-लो-ग्रन्थ १ पृ० ४१७) के अनुसार १४९८-१५०० ई० में सिकन्दर लोदी ने वीरसिंह के पिता शालिवाहन को बान्धवगढ़ में घेरा था । इन लेखों में यह दुर्ग इस क्षेत्र का सुदृढ़तम दुर्ग लिखा गया है । डा० हीरानन्द शास्त्री ने मुस्लिम लेखों को अस्वीकृत कर काव्य के आधार पर वीरसिंह को दुर्ग का प्रथम बघेल शासक माना है । पं० जानकी प्रसाद का कथन है कि वीरसिंह ने दुबारा दुर्ग पर अधिकार किया होगा, मुस्लिम लेख प्रामाणिक है । जानकी प्रसाद का मत ठीक प्रतीत होता है । साथ ही एक सम्भावना और प्रतीत होती है । शालिवाहन और भेदचन्द्र के राज्यकाल में भी वीरसिंह बघेल सेना का नेतृत्व करता था, जैसा पीछे लिखा जा चुका है । अतः सम्भव है, १४६८ ई० के पूर्व युवराज अवस्था में ही कभी वीरसिंह ने बान्धवगढ़ को कुखवंशियों से छीना हो (वीर० क्रि० ए० पृ० २२ २३-२७) ।

१. वीर० २।६५ :

‘यदा नृपो रतनपुरस्य दर्पान्न शासनं मूर्धनि वैरसिंम् ।
आदत्तवास्तं स तदा विजित्य करं च तस्माद् बहुधा भयात्तात् ॥’

यह रतनपुर मध्यप्रदेश के विलासपुर से १६ मील उत्तर एक गाँव रतनपुर है । १० वीं शती में इसे रतनदेव कलचुरि ने बसाया था । यहाँ सैकड़ों मन्दिरों-तालाबों के अवशेष हैं । यहाँ १२ वीं शती के अन्तिम भाग तक तुम्माण शाखा के कलचुरियों का शासन ज्ञात है (डा. हि. ना. इ. पृष्ठ ८१९) संभवतः इन्हीं के वंशजों से बघेलों के संघर्ष हुए । काव्य में वीरभानु को पत्नी राजमती का पिता रतनपुर का दादूराय बतलाया गया है, जिसके साथ वीरभानु की शत्रुता थी । (वीर० ७।६८-७९) । इस समय रतनपुर को समृद्ध नगरी बतलाया गया है । यह संभव है कि

देश भी जीत लिया ।^१ उसने भर-वंशीय राजा को परास्त कर दिया ।^२ बम्बर

वीरसिंह द्वारा अधीनस्थ बनाया जाने वाला यही दादुराय हो तथा पोछे पुनः शत्रु हो गया हो । बघेलखण्ड के साहित्य में १६ वीं शती के उत्तरार्द्ध में पुनः वीरमद्र बघेल की रत्नपुर पर चढ़ाई की सूचना मिलती है । (देखिये आगे-अध्याय ५ क ।)

१. वीर० २।६६ : 'जितो डहारः सहजोरदेशः ।'

सीधी और सहडोल जिले में विन्ध्य पर्वत की कैमोर, केहेंजुआ और मेरुल नामक शृंखलाओं से घिरा हुआ क्षेत्र डहार कहलाता है । यह प्राचीन डहल-मण्डल का उत्तरी भाग और डहल शब्द का परिवर्तित रूप है । इस क्षेत्र में जडलपुर का उत्तरी क्षेत्र भी सम्मिलित है ।

सहजोर को शास्त्री जी ने वर्तमान सहडोल (कटनी-विलासपुर रेलवे का स्टेशन) माना है । (वीर० क्रि० ए० पृ० २४) ।

२. वीर० २।६७ : 'जितो मराणां नृपतिर्नृशंसः ।'

सतना के दक्षिणी-पश्चिमी क्षेत्रों में प्राचीन भारद्वाज-सत्ता के अनेक अवशेष उपलब्ध हैं, जिनमें प्रसिद्ध बौद्ध स्तूप भरहूत भी है । इसका प्राचीन नाम भर (या भार-) मुक्ति होने का अनुमान है । इससे इस क्षेत्र में भर जाति के प्रचीन निवासी होने की सूचना मिलती है । बघेलों की सत्ता का आरंभ कालिजर के भर-वंशीय शासकों के सेवकों के रूप में हुआ था (एकत्रा-परि० १ क तथा, बघेल० : श्लोक १२ : 'भरान्वये वीसलदेव एषितः...कलिजरे ।'

इम्पीरियल गजेटियर के अनुसार जब चन्देलों और कलचुरियों की सत्ता टूटी, तब तेरहवीं शती में यमुना के दक्षिणी भाग में अनेक राजपूत जातियों ने स्वतन्त्र सत्ताएँ स्थापित की, जिनमें भर-वंशीय क्षत्रिय भी थे (भाग ६ : पृष्ठ १४९ तथा ३४६) । महोबा और हमीरपुर (जिला बांदा-उत्तर प्रदेश) की परम्पराओं से विदित होता है कि बुदेलखण्ड के पश्चिमोत्तर भाग में भर राजपूतों ने कम से कम १२५२ से १२८० ई० तक शासन किया (हबीबुल्ला : दि फाउण्डेशन आफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया : १९४५ : पृष्ठ १४२) । मिर्जापुर जिले के मुँडहार लोग अपने को भर राजाओं के वंशधर और सूर्यवंशीय राजपूत कहते हैं । देखिये—वसु : हिन्दी विश्वकोष : कलकत्ता : भाग १५ : पृ० ७२७-२८) ।

(बाबर मुगल) भी उससे भय खाता था। आगे चल कर काव्य के अन्तिम भाग में बतलाया गया है कि बाबर के साथ वीरसिंह का भ्रातृभाव था।^१

(२) तत्कालीन प्रदेश, नगर, जाति और व्यक्ति

उपर्युक्त तथ्यों के अतिरिक्त वीरभानूदय काव्य में ऐतिहासिक गवेषणा को आगे बढ़ाने वाले निम्नलिखित तथ्य प्राप्त होते हैं :-

१—व्याघ्रपाद मुनि और भारद्वाज व्याघ्रपाद गोत्र : लगभग सभी वंशावलियों में प्राप्त होने वाले मूलपुरुष व्याघ्रदेव की चर्चा न करते हुए प्रस्तुत काव्य में बघेलों का भारद्वाज व्याघ्रपाद गोत्र बतलाया गया है, साथ ही बघेलों को व्याघ्रपाद मुनि के वंशज लिखा गया है।^२

२—हुमायूँ : वीरसिंह का जिस प्रकार बाबर के साथ भ्रातृभाव था, उसी प्रकार वीरभानु का हुमायूँ के साथ था। वीरभानु के पौत्र (वीरभद्र) का जन्म होने पर दिल्लीश्वर यवनाधिनाथ मुद्गलेश हुमायूँ ने उपहार भेजे थे।^३

१. वीर० १२।२२ :

'श्री वीरसिंहस्य यथा बभूव सुभ्रातृभावः सह बाबरेण।'

तथा—२।६७ : 'तस्माद् भियं प्राप स दबरोर्षि।'

बाबरनामा के उल्लेखों के अनुसार १५२७ ई० में सीकरो से ५ कोस दूर कनवाहा के युद्ध में वीरसिंह ४००० घुड़सवारों के साथ बाबर के विरुद्ध राणा सांगा के पक्ष में लड़े थे। पीछे सन्धि हो गई और बाबर ने वीरसिंह को मानकार दिया। -- ग्लो० बा०, रीवा-१९४८ पृष्ठ ३ तथा आई० न० पृ० ४०६।

२. वीर० ९।१३, १५, १९, २१, २८ :

३. वीर० १२।२०-२३। वीरशाहसे पराजित हुमायूँ की सहायता वीरभानु बघेल ने की थी। विवरण के लिए देखिये (१) गुलबदन बेदम : हुमायूँ नामा (बेवरिज) पृष्ठ १३५-३६ : २७ जून १५३९ ई० की घटना— वीरभानु ने अरल में हुमायूँ को नदी पार कराई और भूखे सैनिकों के लिए बाजार लगवा दिया। (२) अस्किन : बाबर एण्ड हुमायूँ : भाग २ : पृष्ठ १७४ : राजा परमान (वीरभानु) ने फरीद गौर और शाह मो० अफगन के बीच फँसे हुए हुमायूँ को आगे निकालने के लिए फरीद गौर से युद्ध किया। (३) जोहर : मेमायर्स आफ हुमायूँ : पृष्ठ १८—अरलके राजा परवहान (वीरभानु) की सहायता स्वीकार की गई। (४) आ० रि० ६० : जिल्द २१ : पृष्ठ १०९ : असनी (उ० प्र०) और रोथ को अर्पित वार्ता : उक्त मगदह में छूटी हुई हुमायूँ की एक बेगम को वीरभानु ने बहुत कह कर उसे शरण दी थी।

३—सुलतान मुहम्मद अदली : सूर बंद का सुलतान मुहम्मदराह आदिल (अदली) इब्राहीम सूर से परास्त होकर रामचन्द्र बघेल की शरण में आया । इस समय काव्य में रामचन्द्र युवराज है ।^१

४—तानसेन : जिन दिनों रामचन्द्र युवराज ही था, उसकी सभा में गायक तानसेन था । वह गान्धर्व-विद्या की प्रतिभूर्ति था । इस कलाकार की प्रत्येक ध्रुपद, प्रत्येक राग और तान पर रामचन्द्र ने उसे करोड़ों चन्द्रांकित टंका (स्वर्ण-मुद्राएँ) दान दिये । तानसेन सभी भाषाओं में (सम्भवतः संस्कृत, हिंदी, फारसी) में चतुर था और समस्त विद्याओं का ज्ञाता था । ऐसा निर्दोष कलामर्मज्ञ न कमो हुआ है, न उस समय था, न होगा । उसकी ध्रुपद के गीत रामचन्द्र के यश से मरे हुए थे ।^२

१. वीर० १०।१३ : स ईदिलिस्तं शरणागतोऽभूत् स्वयं सुरत्राण मुहम्म-
दादिः।' वीरमानु की मृत्यु १५५५ ई० में हुई और अदली १५५४ ई० में
आया था । इस प्रकार काव्य के उल्लेख की पुष्टि होती है । इस घटना
की चर्चा अनेक मुस्लिम लेखकों ने की है । (देखिये, अस्किन : बाबर
एण्ड हुमायूँ : भाग २ : पृष्ठ ४६४ । 'पहले पन्ना फिर चुनार गया ।'
तथा पृष्ठ ५०४ : 'मियां तानसेन ने अपने को (गीत-नृत्य में) अदली का
शिष्य स्वीकार किया है । (१५५४ ई० में तानसेन रामचन्द्र के पास
था) ।

२. वीर० १०।२६-३१ :

गान्धर्व-विद्यामय-देहमाजे यस्तानसेनाय कलाविदेव्यात् ।

रागं प्रतीह प्रतितानमेतत् प्रतिध्रुम् कोटि शशाङ्क-टङ्काः ॥

मृतो नविष्यन्नपि वर्तमानो न -तानसेनेन समो धरण्याम् ।

सामान्यतः माधव कवि का यह वर्णन भावातिरेक से पूर्ण प्रतीत होता
है । किन्तु हम मुसलमान इतिहासकारों के लेखों में भी यही शब्द पाते
हैं—(१) आईन० पृष्ठ ६१२ : 'उसके समान गायक भारत में पिछले हजार
वर्षों में नहीं हुआ ।' तथा पृष्ठ ४७५-७६ : 'पाँचवें वर्ष (१५६१ ई०)
जलाल खां कुर्ची तानसेन को दरबार में आने की अनुमति प्राप्त करने
रामचन्द्र बघेल के पास गया ।' (२) अक० भाग २ पृष्ठ २७९-८० :
'इम वर्ष (१५६२ ई०) की घटनाओं में से एक थी तानसेन का दर-
बार में आना । वह पन्ना के राजा रामचन्द्र की सभा में दिन बिता
रहा था । राजा ने तानसेन को चलते समय बाघ और बहुत सा धन
देकर उसे गुलाम बना लिया ।' (३) बदायूनी : ईलियट भाग ५ :

५—पुरुषोत्तम गजपति : शालिवाहन बघेल की एक रानी (अर्षदेवी) से उत्पन्न उदयकर्ण का विवाह उत्कल देश (उड़ीसा) के गजवंशीय नरेश पुरुषोत्तम की पुत्री के साथ हुआ था । हीरानन्द शास्त्री के अनुसार यह उड़ीसा के राजा कपिलेन्द्र (१४३५-६९) का पुत्र था । कपिलेन्द्र के काँची-विजय की घटनाएँ जगन्नाथ-मन्दिर (पुरी) की दीवारों पर चित्रित हैं ।^१ पुरुषोत्तम ने असमिया भाषा में नाममालिका और दीपिकाचन्द्र नामक ग्रन्थों की रचना की थी इनका अनुवाद माधव देव ने किया ।^२

६—राजा कीर्तिसिंह : यह गोरापुर या गौरनगर का राजा था । यह अरिष्टनेमि गोत्र का था । इसके पुत्र का नाम माधवसिंह और पुत्रवधू का पदार्थ दे था । राजा कीर्तिसिंह की पौत्री यशोदा थी, जो रामचन्द्र को ब्याही गई । यशोदा के माई का नाम रत्नसेन और रत्नसेन की पत्नी का रमावती था ।^३ रामचन्द्र का यौवराज्याभिषेक १५५२ ई० में हुआ ।^४ विवाह के पश्चात्

पृष्ठ ५३८ : 'यह रामचन्द्र शाही दरियादिली में बेमिसाल था । बहुत सी बीजों के साथ उसने मियां तानसेन गवैये को एक दिन में एक करोड़ जर (सोना) दिया । मियां राजा को छोड़ना नहीं चाहता था ।' (४) जहाँगीरनामा (बेबरिज) १९०९ : पृष्ठ ४१३ : 'दर असल उसके सरीसा पाने वाला किसी वषत किसी जमाने में नहीं हुआ ।'

१. बीर क्रि० ए० पृष्ठ १७ । साथ ही देखिये बी० सी० मजूमदार : ओरीसा इन द मेकिंग : पृष्ठ २१३-१४ ।

२. हि० बला० सं० लिट्० : पृष्ठ १३४ : 'दीपिकाचन्द्र की पुष्पिका' ।

'पुरुषोत्तम मोर गजपति नाम ।

रचिली पयार हाकि बोला राम राम ॥'

तथा' नाममल्लिका, छन्द ७ का अनुवाद—

'पुरुषोत्तम नामे नरेश्वर गजपति ।' साथ ही देखिये—प्रो० बी० के० बहभा : 'पुरुषोत्तम गजपति आफ ओरीसा इन अलों आसामीज लिटरेचर' : बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के अखिल भारतीय सम्मेलन के १२वें अधिवेशन १९४३-४४ में पठित निबन्ध, सम्पादक: अल्तेकर ।

३. बीर० सर्ग १।९-१३, १८, २२, २६, ३१, ३४-३९, ४१-४२ : तथा सर्ग १२।१६-१८-देखिये तबकात-नासिरी (मिनहाजुद्दीन-१९६० ई०) अनु० रेवटी: पृष्ठ ५८४-८८ : 'गंगा का सम्पूर्ण पश्चिमी प्रदेश, जिसमें जाजनगर, लखनावती, बंग, कामरूद और तिरहुत के इलाके थे, गौर कहलाता था ।'

४. एकत्रा (परि०: १-क.): सं० १, १६०८: १.

सौम्य हो उसे युवराज पद दिया गया था ।^१ अतः विवाह १५५० ई० में मान सकते हैं । विवाह के समय यशोदा को विदा करनेवालों में रमावती का नाम नहीं है, किन्तु वीरभद्र का जन्मोत्सव मनानेवालों में उसका नाम आता है । अतः रत्नमेन यशोदा से छोटा प्रतीत होता है । उसका और रमावती का विवाह १५५० ई० के पश्चात् हुआ होगा । इसके अतिरिक्त कवि वीरभद्र के जन्मोत्सव के समय रत्नमेन के साथ नृप शब्द का भी प्रयोग करता है ।^२ इससे प्रतीत होता है कि १५५४ ई० के पूर्व रत्नमेन को युवराज पद प्रदान किया जा चुका था, क्योंकि कवि ने युवराज रामचन्द्र को भी नरेन्द्र आदि विशेषण दिये हैं ।^३

७—गणेश-राजतः : यह वीरभानु का एक विद्वान् मन्त्री था ।^४ इसने कुमार रामचन्द्र को सम्पूर्ण शिक्षा दी और पुरस्कार-स्वरूप वह जागीरदार और दुर्गपति बनाया गया ।^५

८—रामचन्द्र (राजा) : यह कोई राजा था जो वीरभानु की फूफी का लड़का था ।^६ वीरसिंह का अन्तिम संस्कार कर प्रयाग से गहौरा लौटते समय यह वीरभानु के साथ रहता है ।^७ अमिषेक के समय यही छत्र-प्राप्ती बनता है ।^८

९—भगीरथ : यह यमुना के दक्षिणी तट पर कोटर गाँव में बसने वाला एक ब्राह्मण (सम्भवतः पंढा) था ।^९

१. वीर० १।४१

२. वीर० १०।१८ :

‘नन्द चाकण्यं सुतं स्वदेशे स्वसुनितान्तं नृप-रत्नमेनः ।
रमावती-वत्सलमया समेतः... ।’

३. वीर० १०।१८ : ‘दिसौ नरेन्द्रे सति रामचन्द्रे... ।’

४. वीर० ८।२,५

५. वीर० ८।४४ : ‘वियमानगजान् गजान् पुनः पुनरस्मिं जवराजि-वाजिनः ।
पुयुवत् पूषिवीपतिस्तदा समदाद् दुर्गपतित्वमादृतः ॥

हीरानन्द शास्त्री के अनुसार बुन्देलखण्ड में ‘जुनीतिया ब्राह्मण
‘राजत’ बोले जाते हैं (वीर० क्रि० ए० पृ० १९) ।

६. वीर० ३।६, ३३ (‘—पैतृवसेप ।—’), ६०

७. सर्ग ३

८. सर्ग ५।१५ : ‘शुभ्रावपत्रेण च चामराम्यां तद्रामचन्द्रनितयेन विष्णुः ।’

९. सर्ग ४।३, ५ ।

१०—आटविक : रामचन्द्र की। मृगया में सहायता देने वाले ५ शवर आटविक बतलाए गए हैं, जो आदिवासी प्रतीत होते हैं। इनके नाम हैं— बघनक, सहदेव, भोर, अमानी और हरिकर्ण ।^१

११—मल्लिनाथ उन्नाय : काव्य के अनुसार १५५०-६० ई० में उन्नाय कायस्थ गहोरा में समृद्ध जीवन बिता रहे थे। इनका वहाँ बहुत बड़ा धाग था। ये किन्हीं मल्लिनाथ के वंशज थे।^२ कवि माघव स्वयं कायस्थ (ऊरव्य) था^३, सम्भव है, वह भी इन्हीं कायस्थों में से कोई हो। इस काव्य की पाण्डुलिपि भी कृष्णदास और नाइ (उन्नाय) कायस्थ के पुत्र तुलसीदास ने तैयार की थी।^४

१२—गहोरा नगरी : उत्तर प्रदेश के बाँदा जिले में करवी से १४ मील पूर्व रैपुरा गाँव है। इसके दक्षिण जुड़ा हुआ गाँव गहोरा खास है, जो दो नदियों के बीच में है। इसके पूर्व नदी के दूसरे पार खेरवा गाँव है, जहाँ अभी तक प्राचीन महलों, मन्दिरों और घरों के अवशेष मिलते हैं। वास्तव में रैपुरा और खेरवा मिला कर प्राचीन गहोरा नामक बघेल राजधानी के स्मारक हैं। गहोरा के निकट गंगा, केवयी और धीरवती नदियाँ थीं, जो वर्तमान खेरवा के पास की गन्ता, केवई और धिरवा है। खेरवा के दो मील पश्चिम वाल्मीकि जो का आश्रम है, जिसके पास केदारनाथ की प्रतिमा है। तीसरा पहाड़ और भी है, जिसे रामपुर का पहाड़ कहते हैं। सम्भवतः यही काव्य का शिलो-वच्य है।^५

१. सर्ग ११।२३।

२. सर्ग २।२३ : 'श्रीमल्लिनाथान्वय-सम्भवानामुन्नाय-शब्दं दधताम....।' तथा २।२८।

३. सर्ग १०।१।

४. सर्ग १२ के अन्त में पुष्पिका।

५. वीर० सर्ग २।८-९ :

'यस्याः समीपे प्रतिमागृहेषु कीबेरचण्डो-गिरिशाः जयन्ति ।'

कीबेर-केदार-शिलोन्वयाद्याः प्रभान्ति यस्याः परितो महीधराः ।'

तथा २.२१-२२ : गङ्गा नदी यत्र चकास्ति ।

या केवयी सूर्यमुताप्तसङ्गा प्रवर्धमानामृततोय-रम्या ।

वैष्णोपदं घर्तुमिह समाऽऽस्ते सरस्वती-धीरवती-समेता ॥

देखिये वीर० क्रि० ए० पृ० २०-२१ तथा इ० ग० भाग ६ पृष्ठ १८६ : गहोरा में एक 'रानी का ठालाव' कहलाता है, जिसको काव्य में चर्चा हुई है—सर्ग १।२६-३०।

भीम के पुत्र राणिङ्गदेव को गहोरा का प्रथम अधिकारी बतलाया गया है ।^१ जमाबन्दियों के अनुसार बीसल और भीम [अन्यत्र विषाल देव, भीमल देव, भीममल्ल आदि] दो भाई कालिंजर के भर-वंशीय शासकों के सैनिक बने । इस समय गहोरा में लोघियों का शासन था । भीम ने लोघियों के मन्त्री तिवारी बाह्यण को आधा राज्य देने की लालच देकर फोड़ लिया और लोघी शासक को मार कर गहोरा को जीता तथा उसे कालिंजर में सम्मिलित कर लिया ।^२ सम्भवतः राणिङ्गदेव प्रथम व्यक्ति था, जो गहोरा में स्वतंत्र रूप से बस गया । रीवा की परम्परा के अनुसार बघेल राजकुमार यज्ञोपवीत संस्कार के समय गहोरा राज मोगा करता है ।^३ सम्भवतः बघेलों के हाथ से गहोरा को अन्तिम रूप से छत्रसाल बुन्देले ने छीना । मुस्लिम लेखों में बघेल राज्य का नाम भाठ गहोरा मिलता है ।^४ १५६६ ई० में जब कालिंजर रामचन्द्र बघेल के हाथ से अकबर के अधिकार में चला गया,^५ तब से रामचन्द्र ने बान्धवगढ़ को राजधानी बना लिया होगा । इसके पूर्व लगभग ४०० वर्षों तक गहोरा बघेलों की राजधानी रहा ।

१३-अल्लर्कपुर : वीरभानुदय काव्य के अनुसार यह गंगा-तट पर बसा हुआ नगर था । यहाँ वीरसिंह ने कुछ दिनों तक वास किया था^६ । वीरभानु ने यहीं पर वीरसिंह की अन्त्येष्टि क्रिया की थी^७ तथा अन्तिम दिनों में वे स्वयं यहीं रहते थे ।^८ शालिवाहन के द्वारा यमुना-तट^९ पर वीरभानु^{१०} एवं

१. वीर० ११० : 'लब्ध्वा गहोराम् ।'

२. एकत्रा तथा अन्य (परि० १ क, ग) ।

३. वीर० क्रि० ए० पृष्ठ २३-२४ ।

४. मिनहाजउद्दीन (१२६० ई० के निकट) :

तबकात-नासिरी (रैवटी) पृ० ७४३ :

'भाठ-गहोर, जिसका केन्द्र कालिंजर था कमरुद्दीन द्वारा १२४३ ई० में लूटा गया ।'

५. अक० : भाग २ : पृष्ठ ४९८-९९ ।

६. वीर० २१६२ : '..... रराज तिष्ठन् गङ्गा-तटस्थे नगरेऽप्यलकं ।'

७. वीर० ३११-२ । 'अन्त्येष्टि विदधाति स्म..... ।

: अथाऽलकत् स नगरात् गङ्गा-तीर प्रतिष्ठितात् ।'

८. वीर० । १२।२९ : '.....उवास गङ्गा-यमुनोपकण्ठम् ।

निषेधितोऽलर्कपुरे सुतायैः..... ॥'

९. वीर० ११९९ : 'रवेः सुतायां, ततो जहाति स्म तनुं..... ।'

१०. वीर० ११४८ : 'जह्नुसुतामयाप्तस्तत्यात्र देहं..... ।'

सिंहदेव^१ द्वारा त्रिवेणी में प्राण-त्याग करने का उल्लेख है। इससे प्रतीत होता है कि अलर्कपुर का उपयोग प्रायः बाघंक्षय बिताने के लिए ही होता था।

१४—शालिवाहनपुर : अलर्क से गहोरा के बीच में वीरभानु की यात्रा में शालिवाहनपुर नाम की बस्ती बतलाई गई है। यह शालिवाहन के नाम पर सम्भवतः वीरसिंह द्वारा बसायी गयी थी। इसमें ऊँचे भवन तथा समृद्ध बाजार थे^२ यहाँ वीरसिंह द्वारा लगाया गया विशाल उद्यान था^३।

१५—कोटर-गुप्त-वाराणसी और कुमारहृद् तीर्थ : वीरभानु शालिवाहनपुर से (पश्चिम) चलकर यमुना तट पर अवस्थित कोटर तीर्थ पर पहुँचा था, वहाँ विष्णु शिव और सूर्य आदि की मूर्तियाँ थीं। यह गाँव यमुना तट पर बाँदा जिले में है। इसमें एक प्राचीन मण्डप और कई गुफाएँ हैं, एक में शिव की मूर्तियाँ भी हैं।^४

१. वीर० १।३४ : '.....थो सिंहदेवः परमात्मदर्शी।

जहो तनुं जह्लुसुता-जलोघे यमस्वसुर्वादिभिराप्तसङ्गे ॥'

यह अलर्क नगर ही त्रिवेणी तट का स्थान अरैल है (वीर० क्रि० ए पृ० १३-२४)। सिकन्दरलोदी ने भद्रचन्द्र के अधीनस्थ अरैल क्षेत्र को १४९४ ई० में लूटा था (नियामत उल्लाह : ई० डा० जिल्द ५ : पृष्ठ ९४) तथा वीरभानु को तत्कालीन मुस्लिम सेवकों ने अरैल या अरैल का राजा' लिखा है। देखिये (१) गुलबदन वेगम : हुमायूँ-नामा : बेवरिज : पृष्ठ १०५ तथा जीहर : मेमावर्स आफ हुमायूँ : पृष्ठ १८। ईलियट ने लिखा है कि राजा राम बघेल (१५५५-६२) ने अरैल के ब्राह्मणों को ३६० गाँव दान किये थे (नोट आन चौरासीजः सप्लीमेंटरी ग्लासरोज-संपादन वीन्स : भाग २ : पृष्ठ ५६)। १५६९ ई० में कालिजंद के बदले में अकबर ने रामचन्द्र को अरैल का परगना और प्रयाग की जानीर दी थी, जिसके अधीन तिरोहन (तरहार या र्योंघर तहसील, जिला रोवा) भी था (अल-बदाओनी : लोः भाग २ : पृष्ठ १२३)।

२. वीर० ३।८-९ : 'श्रीशालिवाहनपुरं महाजनवृतं पुरा।

अदशि युवराजेन प्रासादव्रज-शोभितम् ॥'

तथा ३।१०-१६ '...पितामहस्य नाम्नेदं वासितं नगरं पुरा।'

३. वही, ३।१७-५० तथा ३४ : 'बाटी सा वीरसिंहस्य।'

४. वही ४।१ : 'अथ प्रयातो वीरोश्र्यं कोटरं क्रमतोजगम्।

कालिन्दा . विष्णुशर्वादि-प्रतिमाभिरलङ्कृतम् ॥'

कोटर से दक्षिण का क्षेत्र गुप्त-वाराणसी कहा जाता था । यहाँ अक्षयवट, मणिकर्णिका घाट और हुण्डिदेव की मूर्ति आदि पवित्र स्थल थे^१ । आगे चल कर कुमारहृद^२ नाम का सरोवर मिला था । उपर्युक्त रैपुरा गाँव से ७ मील पूर्व रामनगर नामक गाँव में एक मण्डप के साथ तालाब है, जो कुंवरहृद कहलाता है ।^३

यह कोटर गाँव भावसिंह बघेल (१६७५-९४ ई०) के राज्य की सीमा पर था ।^४

१६—सहुण्डा नगरी : काव्य में एक सहृण्डा नामक नगरी का भी उल्लेख है, जिसे जीतकर धीरमदेव ने वहाँ निवास किया था ।^५ यह दतिमा (म० प्र०) जिले के अन्तर्गत सेंवड़ा गाँव है ।

१७—कर्ण तीर्थ : इस तीर्थ को शिव-मन्दिर से सुसज्जित करने वाले राजा अर्जुन ने, जो गढ़ का राजा था, नरहरि बघेल को अपनी पुत्री राजला प्रदान की थी^६ । यह स्थान गङ्गा के किनारे का वर्तमान कन्तिव है । अकबर के समय में इस कस्बे के पास हाथी पकड़े जाते थे । यहाँ एक किला भी था । यह इलाहाबाद की सरकार के अन्तर्गत था ।^७

१८—प्रदेश और जातियाँ : रामचन्द्र बघेल के युवराज होने पर बनेल राज्य की सीमा अन्तरावेद से कलिङ्ग, दक्षिणसागर और दूसरी ओर अमरकण्टक तक बतलाई गई है ।^८ यह अन्तरावेद स्पष्ट ही अन्तर्वेद (गङ्गा-यमुना के बीच का भू-भाग द्राव -उ० प्र०) है और अमरकण्टक सहडोल जिला (म० प्र०) की दक्षिणी सीमा पर पहाड़ी है, जो नर्मदा और सोन नामक नदियों का उद्गम

तथा ४।१४-५२ (बीर० क्रि० ए० पृष्ठ २४-२५)

१. सर्ग ४।५३-५५ : 'कोटराद् दक्षिणामुर्वी विन्ध्यपाद-विराजिताम् ।

गुप्तवाराणसीं प्राहुः..... ॥

यत्राक्षयवटोज्यास्ति यत्रास्ति मणिकर्णिका ।

दण्डपाणिः प्रभुर्यत्र यत्र हुण्डिविराजते ॥'

२. सर्ग ४।५८-५९ : 'गहोरा-गमनोत्कोशो कुमारहृदमागतः ।'

३. बीर० : क्रि० ए० : पृ० २५ । ४. देखिये आगे अध्याय ४ (३)-

५. बीर० १।४४

६. बीर० १।५१-५३ :

७. ग्लोबलिन : अवुलफुलकृत आर्नि-अकवरी : पृ० ३२०, ४८१ ।

८. बीर० १०।७ :

'इत्वान्तरावेदमपो कलिङ्गं सीमेतरामरकण्टकं च ।

आ-दक्षिणाम्भोनिधि यः प्रतापं रामः स राजाऽभवदद्वितीयः ॥'

स्थल है। वीरभानु के द्वारा उज्जट देश की विजय का उल्लेख है, जिसकी जानकारी नहीं है।

इनके अतिरिक्त कवि ने परम्परात्मक बङ्ग, गौड़, मिथिला, गुर्जर और लङ्का तथा भारत देश के नामों के उल्लेख किये हैं।

साय ही म्लेच्छ, यवन, तुर्क, मुद्गल आदि शब्द तत्कालीन मुस्लिम जातियों के लिए तथा पुलिन्द, भिल्ल, मल्ल, और शबर आदि शब्द अन्य जातियों के लिए प्रयुक्त किये हैं।^२

(३) तत्कालीन बघेलखंड का समाज एवं संस्कृति

वीरभानुदय काव्य में ऐसे अनेक उल्लेख प्राप्न होते हैं, जिनसे उस काल की बघेलखंड की सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। यह काव्य १६ वीं शती के मध्य भाग में लिखा गया है, जब मुगल शासन देश में क्रमशः जड़ें जमा रहा था और मुसलमान शक्तियों में परस्पर तथा हिन्दू सत्ताधारियों के साथ संपर्क चल रहे थे। तथापि यह कहा जा सकता है कि इस काल तक हिन्दू राज्यों की संस्कृति और सम्पत्ता पर मुसलिम प्रभाव नगण्य था, साय ही प्राचीन धर्मशास्त्रों पर आधारित मानदंडों को परिवर्तित करने की आवश्यकता का अनुभव नहीं हुआ था।

संस्कार

बघेलखण्ड जनपद में संस्कारों के रूपों में कोई अन्तर नहीं पड़ा था।

१. वीर- ५।१५८ : 'तेनोउज्जटः सन्नुविनासहेतोर्देशः.....'।

२. वही, १।२९ :

'यन्नाम्ना गुर्जरेसी गिरिविवरमगाद् दाग्निगात्याः पयोधि ।

पारुषात्या भोतिमुक्तास्तुहिनगिरि-शिलां मौचरो गौडराजः ।'

१।३० : 'लङ्काया च विभीषणोऽम्बुधिवृत्तो निद्रा-दरिद्रापते ।'

१।३१ : 'मल्ला भिल्लाः पुलिन्दा गिरिगहनचरा

अङ्ग-बङ्गाः कलिङ्गाः ।'

१।१ : 'सम्बन्धी मिथिलापतेः' ।

१।४४ . 'आस्ते भूर्भारतम्.....' ।

१।३९ : 'न शरते तेन धनुर्भृताः स्म म्लेच्छाधितायाः....'। तथा

२।६३ : ५।१४५ : ७।१५, २३

१।४४ : 'विगृह्य रेजे यवनाधिपेन....'। तथा ३।५३ : १२।२० ।

४।४९ : 'तुर्क-जलधिः....'।

१२।२३ : 'इत्याह लेखेन स मुद्गलेराः ।'

। ११।३३ : 'शबरपतिरवादीत् ।'

राजघरानों और सम्पन्न घरों में संस्कारों के पालन अधिक व्यवस्थित रूप में होते थे। किसी रात्री के (कम से कम प्रथम बार) गर्भवती होने पर पुंसवन आदि विधियाँ होती थीं।^१ गर्भ की पूर्णता के समय दोहद-पूति की जाती थी।^२ राजकुमार का जन्म होने पर राजा पुत्र का दर्शन करते थे।^३ पुत्र की उत्पत्ति पितृ-ऋण से मुक्ति मानी जाती थी।^४ इस समय विशेष उत्सव होते थे।^५ जातकर्म संस्कार के साप नान्दीमुख श्राद्ध भी होता था।^६ राजा मुक्त रूप से दान^७ और संकल्प^८ करते थे। दान पाने वालों में ब्राह्मण, याचक, स्वजन, कुलबधुएँ, सेवक और अतिथि होते थे।^९ शिशु की माता के नैहर में भी आनन्दोत्सव होते थे।^{१०} और अनेक स्थानों से उपहार आते थे।^{११} पुत्र-जन्म के पश्चात् नामकरण को विशेष महत्त्व दिया जाता था।^{१२}

१. वीर०, ७।७९ : '... पुंसवनादीनि कृत्वा कर्माणि निर्वृतः ।'
२. बही, ७।६५-६६ : 'सा पृष्टेत्यवदत् साध्वी दोहदं स्वस्य पूजितम् ।
कृशाङ्गो गर्भ-सम्पूर्णा गौरीव स्वल्पभूषणा ॥'
३. बही, ७।८५ । 'तस्माद्दुत्थाय तूर्णं नृपतिरपमणात् पुत्र-सन्दर्शनाय'
पश्यन् पुत्रं प्रहृष्टोऽभवदथ क्रुस्ते जातकर्मानवद्यम् ।'
४. बही, ७।८९ । 'राजा पूर्णमुवतः ... तेन पुत्रीदमवेन ।'
५. बही, ७।८६ : 'शब्दायान्ते स्म वाद्यानि ... ।' तथा ७।८१-८८ ।
६. बही, १२।८ : 'विधाय नान्दीमुखभागमोक्तम् ।'
तथा १।७४ : 'अथास्य चक्रे ... जातकर्म ।'
और १।९० : 'कृतजातकर्मा ... ।'
७. बही, ७।९१ : 'किमन्यत् स तथा दानं ददाति स्म सुतोद्भवै ।
याचकेभ्यो यथा ध्वं देसे कोसे न क्षेपितम् ॥'
'ह्यान् गजान् काञ्चन-भूषणानि वासांसि रत्नानि च याचकेभ्यः ।
ददौ यथा येन न यावदायुः प्राणुः पुनस्तेर्षयजन-प्रयासम् ॥'
८. वीर० ७।८५ : 'पुत्रं सङ्कल्पतोर्मं विसृजति बहुलं वित्तमुद्दिश्य चानु ।'
९. वीर० ७।८९ :
'... .. द्विजेभ्यः ।
सर्वेभ्यो याचकेभ्यः स्वजनकुलबधू-किङ्कुरेभ्योऽतिथिभ्यः ।'
१०. सर्ग १२।१६ :
'यथैव गेहे नृपवीरभानोर्महोत्सवोऽभून्मुदितस्य भूयान्
तथाऽभवन्माधवसिहनाम्नो मातामहस्यापि सवल्लभस्य ॥'
११. सर्ग १२।२०-२१ ।
१२. सर्ग १।४७, ७६, ९० : ७।९२ : १२।१२ ।

अन्य संस्कारों में से चूडाकर्म की सूचना प्राप्त है।^१ उपनयन संस्कार का उल्लेख नहीं है, किन्तु यज्ञोपवीत पहने जाने की सूचना है।^२ विद्याभ्ययन की ओर कवि ने विशेष ध्यान दिया है।^३ राजकुमारों को शास्त्र के पूर्व शास्त्र-विद्या प्रदान की जाती थी।^४ लहंग और ढाल के सञ्चालन के इक्कीस भेदों की खर्चा की गई है।^५ इसके अतिरिक्त धनुष-बाण के प्रयोग,^६ मल्लविद्या,^७ अपवारोहण,^८ और हाथियों की वश में करने की शिक्षाएँ प्रमुख थीं।^९ इनके साथ चार विद्याएँ (आन्वोदिको, त्रयो, वार्ता और दण्डनीति)^{१०} और पद्दशन एवं राजनीति^{११} के अतिरिक्त सङ्गीत (गीत, वाद्य और नृत्य)^{१२} की भी शिक्षा दी जाती थी।

विवाह-यज्ञ वेद-विधि के साथ सम्पन्न होते थे।^{१३} यह राजकुमार का विवाह होने पर सार्वजनिक उत्सव बन जाता था।^{१४} विवाह स्थिर करते समय उच्च वंश के साथ गुणवती एवं रूपवती कन्या का विशेष विचार किया

१. सर्ग १।७८ :

'कर्माणि चक्रे निखिलानि चूडाकर्माश्चकादीनि यथाक्रमेण ।'

२. सर्ग १।१४ : 'यज्ञोपवीतेन ।'

३. सर्ग १।८०, ९७ तथा सर्ग ८

४. सर्ग ८।६ :

'गुहभिः प्रतिपादिताः क्रमात् परमदृष्टे स रामचन्द्रमाः ।

सहितः क्षितिपालबालकैः प्रथमं शास्त्रपथोचिताः क्रियाः ॥'

५. सर्ग ८।७ : 'असिभेदानयमेकविंशतिः ।'

६. सर्ग ८-१० : 'धनुरानमनेन ।'

७. सर्ग ८।१३-१७

८. सर्ग ८।२६ : 'जवनेन नवेन वाजिना ।'

९. सर्ग ८।२७ : 'स वशीकरणे मदच्युतां करिणां ।'

१०. सर्ग १।९७ : 'आदाय विद्याः प्रयतद्वत्स्रः ।'

११. सर्ग ८।१८ :

'गुह-गीतम-शङ्कराक्षपाद् गुह-पातञ्जल-शाङ्ख्य-सम्मतोः ।'

तथा ८।१९ : 'स नयं विनयादतीपिबत् ।'

१२. सर्ग ८।२९ : 'स्वर-सप्तक-तालमूर्च्छनाः सह नृत्येन ... ।'

१३. सर्ग १।५२ : 'वेदोक्त-वैवाहिक-कर्मरीत्या ।'

तथा १।८० :

'विवाह-यज्ञं जनकोऽस्य सूनीरकारपद् वेद-विधानतोऽपि ।'

१४. सर्ग ९

जाता था ।^१ बारात रणदाहिनी को भौंति सजती थी ।^२ कन्या पक्ष के पुरुष बारात का सम्मान करते थे और स्त्रियाँ उपहास करती थीं ।^३ चौक पर सौ सधवाएँ रत्नदीप से वर को आरती उतारती थीं ।^४ कन्या का पिता भरपूर दहेज देता था ।^५ मण्डप में गोत्रोच्चार होता था, जिसमें चारण लोग वंश और कीर्ति का वर्णन करते थे । पुरोहित भी इसमें भाग लेते थे ।^६ बिदा के पश्चात् बधू का भाई उसे पहुँचाने जाता था ।^७ पति की नगरी में बधू की शोमा-याना निकलती थी, फिर बधू-प्रवेश होता था ।^८

विवाह के पश्चात् प्रायः शीघ्र ही तरुण राजकुमार को पृथक् निवास और युवराज-पद प्रदान कर दिया जाता था ।^९ युवराज को क्रमशः सारे अधिकार दे दिये जाते थे और राजा विरक्त-जीवन का अभ्यास करने लगता था ।^{१०} अन्तिम समय में बघेल राजा त्रिवेणी-वास किया करते थे ।^{११} उनकी निवपन आदि अन्त्येष्टि-क्रियामें प्रायः गङ्गा-तट पर ही होती थीं ।^{१२}

१. सर्ग ९।६-७ :

‘एतत्सुत्या यशोदा सकलगुणवती कीर्त्तिसिंहस्य पौत्री ।
गौराक्षे पत्न्याप्रे तुहिनगिरिसुतेवार्त्तिव नान्या धरायाम् ॥’
यशोदमा यशो-दया-सुरूप-सञ्चरित्रया ।
अरिष्टनेमि-सम्भवं पवित्रितं गुणैः कुलम् ॥’

२. सर्ग ९।१५-१६

३. सर्ग ९।२२ : ‘माघवेन बहुधा कृतमानो
निन्दितश्च हसितैरवगोषः ।’

४. सर्ग ९।२४ : ‘साध्वी-शतैः प्रमुदितैः कृत-रत्नदीपः ।’

५. सर्ग ९।२६ : ‘स्वापतेयमखिलं तनयार्थं यौतकेष्वदित माघवसिंहः’

६. वीर० ९।२७ : ‘—मण्डपे सन्निविष्टो ।’

गोत्राचार-प्रचारं रचयति मुदितो वंशशंसि-प्रवीणैः ॥’

तथा ९।३४ : विन्ध्य-दुर्ग-नरपाल-पुरोषा.—।’

७. सर्ग ९।३८ :

‘स च स्वमुः स्नेहभरेण राज्ञा सहैव मार्गे कतिचिद् दिनानि ।’

८. सर्ग ९।४० ।

९. सर्ग ९।४१-४६ : ‘पुत्रे दधामि युवराजपदं ततोऽहम् ।’

१०. सर्ग ९।४७ : ‘तनय-निहितमारो...क्षितिपतिरथ...’

विरलभवन-निष्ठो ब्रह्मनिष्ठापरोऽभूत् ।’

११. सर्ग १२।२९ : ‘उवास गङ्गा-यमूनोपकण्ठम् ।’

१२. सर्ग १।१०० : ‘न च तनयनिवासे सुसुहृत्पौर्बभूवुः ।’ तथा

राज्याभिषेक के उत्सव भी विशिष्ट विधियों के साथ होते थे। ब्राह्मण जन-राजकुमार को सिंहासन पर बैठाकर मन्त्रोच्चारण करते हुए स्वर्णकलशों में भरे हुए तीर्थोदक से स्नान कराते थे।^१ इस समय तूर्यनाद के साथ चारण श्लोक कीर्ति-गान करते थे।^२ राजा दान करता था और बन्दिनों की मुक्ति के आदेश देता था।^३ भद्रासन पर माला, घूर, चन्दन, ब्रह्मराग, रेसमो वस्त्र और रत्नजडित साफा से राजा का शृंगार किया जाता था।^४ वह कुण्डल मोतियों के हार, अंगूठी, केयूर और मणिमय कंकण भी धारण करता था।^५

राजसभा में अधीनस्थ राजा और सामन्त तथा अन्य सभासद पहले से उप-स्थित रहते थे।^६ राजा के सिंहासन पर बैठने पर प्रथम श्रेणी के सामन्त शुभ्र-वर्ण का छत्र ग्रहण करते और चंवर हुलाते थे।^७ राजाके शरणों के समीप नजर निछावर होती थी और हाथी, घोड़े और रत्न भेंट किये जाते थे।^८ इसके पश्चात् राजा हाथी पर सवार होता था और राजधानी में उसकी शोभायात्रा^९

२।७३: 'भी वीरसिंहः... सन्त्यज्य देहं सुकृतिमयमसौ जह्नु कन्यापयस्सु ।'

और ३।१ : 'अथ तस्य स तातस्य विष्णुसायुज्यमीयुषः ।

अन्त्येष्टि विदधाति स्म वीरभानुर्पयाविधि ॥'

१. सर्ग ५।१ : 'राज्याभिषेकार्हाङ्गुहे निषण्णं सिंहासने तं क्रतुकर्मदशाः ।
द्विजातयो राज्यधरं समन्त्रैस्तीर्थोदकीर्षः स्नपयन्त्यय स्म ॥'
२. सर्ग ५।२-५ : 'तमस्तुवन् बोधकरास्तदानीम् ।'
३. सर्ग ५।१-७ :
'स संयतान् मोचयति स्म सर्वान् वध्यानपि त्याजयति स्म सद्यः ।'
४. वीर० सर्ग ५।९-१० :
'श्रम्बो स भद्रासनमन्यदेत्य ततो विविक्तालय-मध्यवसति ।
घृषेन सौरभ्ययुजश्च केशान् कृत्वा शपुश्चन्दनलेप-शीभि ॥
उष्णीषमादत्त वरं द्विधाज्यं पट्टाम्बरेणाऽपि तथा च भङ्ग्या ॥'
५. सर्ग ५।१०-१३
६. सर्ग ५।१४ : 'अगात् समा भूपतिमण्डितां तां सम्पैर्जनैः...'
७. सर्ग ५।१५ : 'शुभातपत्रेण च चामराभ्याम्...'
८. सर्ग ५।१७ :
'तस्याद्दिघ्ननम्रा उपदीकृतानि हस्त्यस्वरत्नानि निवेदयन्तः ।'
९. सर्ग ५।२०
'आरुह्यं राजा द्विरदं सहर्षैरपेक्षमातैः प्रचरन् पुरस्थम् ।'

निकलती थी। अन्त में राजा कुलदेवता का विशेष पूजन करता था। बघेलखण्ड में कौबेरदेव का पूजन होता था।^१

वर्ग

समाज में वर्ण-व्यवस्था पूर्ववत् प्रचलित थी। ब्राह्मणों का सम्मान था।^२ जन्म, विवाह, अभिषेक आदि संस्कारों और कृत्यों में ब्राह्मण पुरोहित का काम करते थे। वे श्रौत और स्मार्त विधियों के बेता तथा नीतिज्ञ होते थे। उन्हें ज्योतिष का अच्छा ज्ञान रहता था। मन्त्री के पद पर भी इनकी नियुक्ति होती थी।^३ सत्रिय युद्ध-प्रिय और संघर्षशील थे। वे सबल और दोर होते थे तथा शस्त्र के साथ शास्त्र की भी शिक्षा ग्रहण करते थे। उनमें मृगया की रुचि विशेष थी।^४ नगरों में समृद्ध लोग बसते थे। राजा बाजार सजवाता था।^५ यह वैश्यों की स्थिति का द्योतक है।

द्विजेतर जातियों के लोग भी द्विजों के अनुसार आचरण करते थे। कुछ लोग यज्ञोपवीत भी धारण करते थे।^६ शबर आदि आदिवासी आखेट-प्रेमी होते थे

१. वीर. सर्ग ५।२२ : 'राजा गहोरा-त्रिदशानयाऽऽवत् ।'

तथा ५।२३-२४ : 'कौबेरदेवं प्रथमं स राजा सम्पूज्य ... ।'

अयं बघेलान्वय-वृद्धिहेतुः..... ॥'

२. सर्ग ५।६७ :

'गो-ब्राह्मणानां वधतो ग्रहान्च न दुर्गतिरुद्धरणं सराणाम् ।

तत्पूजया सर्वशुभानि नूनमिति प्रबुध्य द्विजगोहितोऽभूत् ॥'

३. सर्ग १।७४ : 'अथास्य चक्रे सह जातकर्म, पुरोहितेन ... ।'

सर्ग ५।१, ३ : 'आमन्त्रमुक्षतैर्द्विजवर्गमुक्षयैः ।'

सर्ग ७।८५ : 'श्रौत-स्मार्त-द्विजेन्द्रैर्द्विजकृतिनिपुणैर्लौकिकज्ञानविज्ञैः ।'

सर्ग ९।२ :

'ज्योतिर्विदं धरणिदेवगण-प्रधानं..... ॥

आहूय मन्त्रकुशलो..... मन्त्रं सुतस्य सुविवाहकरं चकार ॥'

सर्ग ९।३ : 'विप्रोत्तमः प्रकृतिमण्डल-मध्यवर्ती ।'

४. सर्ग २।४२-४८ : ५।१३-१४, १८-१९ : ११।८, ११, १४ ।

५. सर्ग ३।१० : '.....मया यक्षपत्तनं धनसम्भृतम् ।

हृद्दृचातोव रम्योऽस्मिन्..... ॥'

सर्ग ३।२४ :

'तथोषिताः श्रोत्रहृला यथा स्युर्न तत्समृद्धिः कविनाऽपि बर्ष्या ।'

६. सर्ग ३।१५ : 'अद्विजातीनपि श्लाघ्यानायं सङ्गतिशोभनान् ।

धृतोपवीतान् शुद्धभयं' लौकिकाचारहेतुना ॥

और धनुष आदि अस्त्र-शस्त्र धारण करते थे तथा मृगया करने में राजा की सहायता करते थे । इनके वस्त्र और शरीर काले रहते थे ।^१ वे हरिण पालते थे, सिर पर महूए की मञ्जरी धारण करते थे और राजा को भेंट में मांस लाकर देते थे ।^२ कुछ नाविक आदि के कार्य करते थे और शत्रुओं को पकड़ने में सहायता देते थे ।^३

ध्याश्रम

यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत काव्य के अनुसार इस युग में आश्रम-व्यवस्था के चित्र नहीं मिलते । विद्याध्ययन की स्थिति मात्र को ब्रह्मचर्य अथवा मरणकाल में त्रिवेणीवास को वानप्रस्थ या संन्यास का रूप नहीं दिया जा सकता । इतना अवश्य माना जायगा कि अन्तिम समय में गृहस्थागो एवं विरहज जीवन विताने की ओर रुचि दीय थी, क्योंकि हम वीरभानु को इसी रूप में मोक्ष-प्रापना करते हुए पाते हैं ।^४

गृहस्थ-जीवन का महत्त्व अत्यधिक बढ़ चुका था, किन्तु इसे आदर्श रखने और शास्त्रानुकूल आचरण रखने की ओर अवश्य ध्यान था । राजा वर्णाश्रम की स्थापना करना अपना कर्तव्य समझते थे^५ तथा जितेन्द्रियता भी प्राप्त करते थे ।^६

१. वीर० सर्ग ११।११ : 'मृगयुकुलमुदञ्चच्चापबाणास्त्रजालं
शितिवसन-शरीरं दर्शयामासुरुज्ज्वैः ।'
 २. सर्ग ११।१२ : 'अयमिह शशमांसोपायनं विभ्रदेव
प्रगुणहरिणकोद-अग्रहस्तः स पश्चात् ।
वनतरुणमधुकान् मञ्जरीं मूष्नि धृत्वा
कथयति मृगयायाः कौतुकं काननस्य ॥'
 ३. सर्ग २।१८ : 'विभ्रान्ति यत्राटविकाः सकाण्डै-
र्धनुभिरत्राञ्चितनाविकाश्च ।
वन्या विदग्धास्तरि-वण्डिता ये
कुर्वन्ति शत्रूनपि तत्र लभ्यान् ॥'
 ४. सर्ग १२।२८-४० ।
 ५. सर्ग १।१३ : 'वर्णाश्रमाणां गुरुरेय राजा
वर्णाश्रमान् स्थापयति स्व-धर्मैः ।
स्वे स्वे चतुर्वर्गफलाप्तिहेतो
स्व-धर्मरक्षाहित-चित्तवृत्तिः ॥'
- तथा सर्ग ६।११ ।
६. सर्ग ५।५० : 'कामादि-पद्मवर्ग-जय-प्रतिष्ठम् ।'

वे धर्म और न्याय को प्रश्रय देने थे ।^१ लोक-कल्याण की दृष्टि से बाग लगवाते थे; सड़कें, लाञ्छन और बावर्तियाँ निर्मित कराते थे;^२ लौकिक और पारलौकिक दोनों कल्याणों की साधना करने थे ।^३ ऋषि-ऋण, देव-ऋण और पितृ-ऋण से मुक्त होना आवश्यक समझा जाता था ।^४ तीर्थ-स्थान, देव-पूजन, साधु-सम्मान, दान-आतिथ्य, पुराण-श्रवण, ब्रह्मयज्ञ, यज्ञ-निराम आदि का गृहस्थ-जीवन में महत्त्व था ।^५

दर्शन-प्रपाषना

वीरभानुदस काव्य में पद्ददर्शन का महत्त्व सूचित होता है । रामचन्द्र को छात्रावस्था में पद्ददर्शन पढ़ाए जाते हैं ।^६ वीरभानु की त्रिवेणी-वास की अवस्था में पद्ददर्शन के वेना पण्डित उनके समोर आकर ज्ञानवर्षा करते हैं ।^७ वीरभानु अग्निम दिनों में ब्रह्म-चिन्तन करते हैं ।^८

इन काल में सामान्यतः सभी देवताओं के पूजन होते थे । वीरभानु कोटर तीर्थ पर यमुना में स्नान कर मूर्ध, गणेश, अग्नि, लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा और विष्णु की स्तुति करता है ।^९ वीरभानु की पत्नी रायमती गर्भवती अवस्था में स्वप्न में मत्स्य, कूर्म, बाराह, नरसिंह, वासन, परभुराम, राम, बलराम,

१. सर्ग १।१२३ : 'विचिन्त्य चैतन् स करोति धर्मम् ।'

तथा ४।११४ :

'स नीतिभाजानकरोच्च सङ्गं समासदां निर्मलनासनाम् ।'

और ५।१२१ : 'तस्मादयं न्यायपयानुवर्ता ।'

२. सर्ग ५।११८ : १।२५-२८ : २।२६-२७ :

३. सर्ग ५।८० : 'पदं हि कामुष्मिकसर्मयोग्यं तत्कर्म कर्तव्यम् ।'

तथा ६।१४—'ऋणानि यानि प्रतिमान्ति लोके देवार्थविभ्याणि च ।'

४. सर्ग ७।८६ : 'राजा पूर्वर्णमुक्तः ।'

५. सर्ग ४ तथा सर्ग ५।४५ : 'निवर्ततोऽनाश्रुवना न सम्यग्
वदन्ति तस्मान् स सतः समेति ।'

५।६२ : 'तस्मादियो सत्कृतिरस्त्रि नित्यम् ।'

५।६६ : 'स ब्रह्मयज्ञादिरतः शुभार्थी,
पुराण-वेद-स्मृति-मादरात्मा ।'

५।९८ : 'ममान् त्रिवेणी नियमानुपास्ते
हरिप्रसह्ये विविचेन्द्रियोग्यम् ।'

६. सर्ग ८।१८ ।

७. सर्ग १२।३६ ।

८. सर्ग १२।३० 'अचिन्तयद् ब्रह्म परं प्रशान्तः ।'

९. सर्ग ४।१-५६ ।

बुद्ध और कल्कि के दर्शन करती है ।^१ यह दशावतार की प्रतिष्ठा का द्योतक है । यम, नैऋत्य, अग्नि, इन्द्र, वरुण वायु, कुबेर और शिव—ये आठों दिग्पाल गर्भ की रक्षा करते हैं ।^२ इसी स्वप्नावस्था में वीरभानु के पिता वीरसिंह भी पुत्रबधू को दर्शन देते हैं और वे सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, वृष, गुरु, शुक, शनि, राहु और केतु—इन नवग्रहों की वन्दना करते हैं ।^३ स्वप्नवर्णन में रामचन्द्र को कल्कि का अवतार बतलाया गया है ।^४ गर्भ की रक्षा के लिए गङ्गा-यमुना, विष्णु के आयुध—शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म, मरीचि आदि मुनि, नारद, गरुड़, प्रह्लाद, बलि और भीष्म आदि प्रसिद्ध वैष्णव स्वप्न में रानी को दिखाई पड़ते हैं ।^५ इनके अतिरिक्त गहोरा में तथा तीर्थों में प्रतिष्ठित शिव, पार्वती, चण्डी, शीतला, कुबेर, यम, दुष्टि आदि देवमूर्तियों की सूचनाएँ भी काव्य में प्राप्त हैं ।^६ इस प्रकार हम इस काल में बघेलखण्ड में बहुदेवतावाद का सम्पूर्ण विस्तार पाते हैं ।

काव्य का दृष्टिकोण भक्ति के अन्तर्गत समन्वय की स्थापना से प्रेरित है । कवि के अन्तःकरण में भगवान् कृष्ण की मूर्ति प्रतिष्ठित है । वह वामुदेव की वन्दना से ही काव्यारम्भ करता है,^७ तथापि राम के प्रति उसके भाव अत्यन्त उच्च हैं ।^८ कथानायक वीरभानु विष्णु के ध्यान में मग्न रहा करता है,^९ अन्यत्र वही शिव का सेवक बतलाया गया है ।^{१०} शिव के अंगभूत और नन्दि-गणों के समकक्ष कीबेरदेव कथानायक के कुलदेवता है । उनकी विशाल प्रतिमा गहोरा की सीमा पर उपत्यका के ऊपर बने प्राकारयुक्त मठ में प्रतिष्ठित है ।

१. सर्ग ७।५-२० २. सर्ग ७।३८ ३. सर्ग ७।५१-५८

४. सर्ग ७।२३ : 'कल्किरूपो हरिः साक्षाद् द्रुष्टम्लेच्छापनुत्तये ।

मम निर्वर्तते कुक्षौ मत्पुत्रत्वेन सृष्टिहृत् ॥'

तथा सर्ग ७।५९, ६२, ६४ ।

५. सर्ग ७।२६-३७

६. सर्ग १।२९ : २।८ : ४।५५, ६०

७. वीर० १।१ : 'अजोऽपि देवो वसुदेवजन्मा द्वितीयहीनोऽपि रमाविहारी ।
जनादनः पालयिता जनानां कोऽपि श्रियं सन्तनुतां स ईशः ॥'

८. वही, १।७० :

'निमज्जतां प्राणभृतां समन्तात् पोढो भवाब्धौ किल राम-शब्दः ।'

९. वही, ४।५२ : 'व्यरमत् प्रणमन्नेष वर्णयित्वेत्यमव्युत्तम् ।

एकाग्रचित्तस्तं पश्यन् हरिभक्तावरज्यत ॥'

१०. सर्ग ५।९९ : 'भवन्नुमावल्लभ-पादपद्म-सेवी.....।'

ये देव बघेल राजधानी के गौरव और वंश की सनातनी वृद्धि के हेतु है ।^१ एक ओर कवि गहोरा में राजलमल देवी द्वारा तालाब पर प्रतिष्ठापित शीतला देवी को कुल की इष्टदेवी कहता है,^२ तो दूसरी ओर वह रामचन्द्र को म्लेच्छनाशक कल्कि के अवतार बतलाता है ।^३

समन्वय की इस वृत्ति के साथ-साथ कवि वासुदेव रूप में कृष्णावतार का विशेष रूप से और सामान्यतः वैष्णव धर्म का उपासक है । काव्य का सन्देश है कि सब कुछ छोड़ कर विष्णु को भक्ति करनी चाहिए ।^४ विष्णुलोक की प्राप्ति ही अन्तिम गति है । विष्णु में प्रविष्ट होने से (संसरण का) भय नहीं रहता ।^५

वीरभानूदय काव्य पर स्पष्टतः श्रीमद्भागवत का परिपूर्ण प्रभाव है । जगद्गुरु कृष्ण के बालचरित भी अद्भुत थे ।^६ जिन परमात्मा के उदर में (प्रलयकाल में) सारे जगत् समाधिष्ट हो जाते हैं, उनकी गोवर्धन-धारण आदि वार्ताओं में आश्चर्य कैसा ?^७ शिशुराल आदि उन जगदीश का विरोध करके भी मुक्ति को प्राप्त हुए ।^८ प्राणी उन्हीं की माया में निमग्न रहते हैं ।^९

१. सर्ग ५।३० : 'शिवांसभूर्नन्दिगणैर्न तुल्यः ।'
तथा ५।२७ : 'उपत्यकाधिष्ठितमूर्तिरेप प्राकाररम्योच्च-मठ-प्रतिष्ठः ।'
५।२५ : 'यो मण्डनं नः कुल-राजधान्याः ।'
और ५।२४ : 'अयं बघेलान्वयवृद्धिहेतुः सनातनी नो विदधातु वृद्धिम् ।'
२. सर्ग १।२९-३० 'या तः कुलस्वेष्टकरी कृपानुः ।'
३. सर्ग ७।२३ ५९ : 'गुणसिन्धोर्हरेर्भागः कल्किरूपेण सिद्धयति ।'
४. सर्ग ७।४७ : 'विष्णुमन्त्रिविधातव्या विहाय सकलं विधिम् ।'
७।३१ : 'नास्ति लोके भयं किञ्चित् केवलं हरिकीर्तनम् ।'
७।३२ : 'अन्यत् कलौ न पश्यामि नारायण-कथां विना ।
मोक्षदं सुखदं मित्यं गङ्गामिव..... ॥'
४।३९ : 'किशोरोस्तु मुदेऽस्माकं स्मरणेन हि तुप्यति ।'
२।५ : 'श्रीवासुदेव-स्मरण-प्रसवतः ।'
५. सर्ग १।६४ : 'विष्णु-प्रवेशे न पुनर्भयानि ।'
६. सर्ग ४।३४ : 'यस्याद्भुतानि वृत्तानि बालस्यापि जगद्गुरोः ।'
७. सर्ग ४।३६ : 'यस्योदरे विराजन्ति जगन्ति परमात्मनः ।
तस्याग्ना काञ्चुमुता वार्ता पर्वतोद्धरणादिका ॥'
८. सर्ग ४।३३ : 'यं विरोध्यापि लोकेषां शिशुपालादि-भूमिपाः ।
लेभिरे परमां मुक्तिं..... ।'
९. सर्ग ४।३७ :
'..... नरो मर्त्यैव मायया । न जहाति कुटुम्बान्धिं मञ्जयन्तं..... ।'

इसी कृष्ण रूपी अक्षय तथ्य में कल्पशय के समय अन्य देव प्रवेश कर जाते हैं ।^१ वे वेदों, स्मृतिओं और पुराणों के सार हैं; उनके व्यक्त और अव्यक्त दोनों स्वरूप हैं । उनके स्मरण से समस्त पापों का नाश होता है ।^२

उपर्युक्त सिद्धान्तों के साथ साथ वैष्णव मत में निश्चित मोक्ष के चार भेदों (साष्टि, सालोचय, साहस्य, साद्युज्य) में से साद्युज्य को लक्ष्य माना गया है ।^३ इसके अतिरिक्त वैष्णव आचार-पद्धति के अनुरूप दीक्षा-ग्रहण पर विशेष बल दिया गया है तथा पञ्च संस्कार (जप, पुण्ड्र, नाम, माला, मन्त्र)^४ और नवधा भक्ति (श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सस्य, आत्म-निवेदन) के कुछ अङ्गों पर विशेष आग्रह है, जैसा ऊपर लिखा जा चुका है ।

मह स्मरणीय है कि १६ वीं शती के पूर्वार्द्ध एवं मध्य में लगभग आधी शताब्दी से भागवत धर्म के महान उन्नायक स्वामी बल्लभाचार्य और उनके पुत्रों एवं शिष्यों ने प्रयाग के निकटस्थ अरैल क्षेत्र को अपना प्रचार-केंद्र बना रखा था । यही अरैल प्रस्तुत काव्य का अर्थक है, जो वघेलों का एक महत्त्वपूर्ण नगर बतलाया गया है । इसके अतिरिक्त वघेल-नरेशों के साथ अरैल के इन महात्माओं का सम्पर्क भी था ।

जन-जीवन

वीरभानुदय काव्य में जन-जीवन की कुछ ही भूमिकाएँ उपलब्ध हैं । सामान्यतः प्रजा राजा का अनुसरण करती थी । राजा से सम्बद्ध युद्धों और उत्सवों को सामूहिक रूप प्राप्त हो जाता था । राजा देवाल्यों, तालावों और बाधलियों के निर्माण कराते थे तथा उद्यान लगवाते थे । ये वस्तुएँ तथा राजा द्वारा बनवाई हुई सड़कें और खोले हुए बाजार सार्वजनिक उपयोग की वस्तुएँ

१. सर्ग ४।४७ : 'एनमेव विशन्त्यन्ते सुराः कल्पशये सति । अक्षयोर्ज्यं... ।'

२. सर्ग ४।५१ : 'कर्ममु त्रियमाणेषु' स्मृतो दत्ते च मङ्गलम् ।'

तथा ४।५२ : 'व्यक्तान्कृतस्वरूपाय साराय च नमो नमः ।'

३. सर्ग ३।१ :

'विष्णुसाद्युज्यमीयुषः ।' तथा २।७३ : 'श्रीशं सद्देवमीशं मिलितः... ।'

४. सर्ग ३।१३ : 'अदीक्षितानां लोकानां कर्मस्वनधिकारिताय ।'

दृष्ट्वा गोपाल-मन्त्राणां गृह्यालूनं क्षमामृतः ॥'

३।१४ : 'गोपालमन्त्रदीक्षानिष्पूर्वपुण्ड्र-विराजितान् ।...'

३।१६ : 'गोपाल-भोग-भोग्येन कृतमोगान् कृपावरान् ।'

स्मरतः कृष्णनामानि बह्यादीनि च वैष्णवान् ॥'

बन जाती थीं । वाणिज्य की सुरक्षा की व्यवस्था होती थी और सैनिक-शिबिरों के लिए भी बाजार खोले जाते थे । इनमें विभिन्न देशों से प्राप्त बहुमूल्य वस्तुएँ उपलब्ध होती थीं । भूमि को खेती के योग्य बनाने के प्रयत्न होते थे ।

कला के क्षेत्र में इस समय भवन-निर्माण की ओर विशेष रुचि दिखाई देती है । मेदचन्द्र, वीरसिंह, और वीरभानु ने उच्च कलात्मक भवनों के निर्माण कराये थे । मल्लिनाथ उन्नाय के वंशजों के ऊँचे सचिव गहोरा में महत्वपूर्ण स्थान रखते थे । भवनों पर पताकाएँ फहराई जाती थीं । पार्वत्य उपत्यकाओं पर मंदिर, मठ और दुर्ग भी बनते थे ।

राज्य में सङ्गीत-कला का सम्मान था और ध्रुपद गायकी का विशेष विकास हो रहा था । ठानकेन के ध्रुपद गीतों की धूम थी । सङ्गीत की समाएँ प्रायः नित्य होती थीं । उत्सवों में गणिकाओं के नृत्य भी होते थे । राजधानियों में गणिकाएँ और रूपाजीवाएँ बसती थीं, वे सैनिकों का मनोरञ्जन भी

१. वीर० सर्ग १।२५-२९ : २।२५-२८ : ५।११८
तथा सर्ग ३।६४ : 'वाटी सा वीरसिंहस्म.....'
और सर्ग २।७ :

'स राजमानस मुवा गहोरा चतुर्दिशा राजित राजमार्गान् ।
प्रासादजातैर्जनितप्रसादैः

२. सर्ग ५।७८ : 'वणिकूपयान्—विधापयत्येव.....'
५।१५० : 'तस्मादवी सार्धमुस्रप्रदासी तस्माद्रयो राजपया इवेष्टाः ।
तस्य स्रवन्ती पयिकश्रजानां स्वगेहवापीव तनोति सर्ग ॥'

३. सर्ग १।६५ : 'नानादेशेषु जाठानि पश्य वस्तूनि बुद्धिमन् ।
अस्यापणेषु राजन्ति बहुमूल्यानि सम्प्रति ॥'

४. सर्ग ५।६८ ।

५. सर्ग १।५९-६० तथा २।७-१४ ।

६. वीर० सर्ग १।५९-६० तथा २।७-१४ ।

७. सर्ग २।३३ :

'उच्चैः पयोदा इव भ्रान्ति यस्यां गृहाः सचित्राश्चलकेतुमालाः ।'

८. सर्ग ५।२७, ३९ : 'अनेकदुर्गेषु यदेकदुर्गम्..... ।'

९. वीर० सर्ग १०।२६-३० : 'मस्य ध्रुपज्जीवति सर्वकालम् ।'

१०. सर्ग १।७५ : 'निर्घोषयामामुरतल्पबृद्धेर्गृहे च राज्ञः पदहानि मेर्यः ।
मृदङ्गशब्देननुतुः सुमुख्यः सुनृतविजाः किल वारनायः ॥'

करती थीं ।^१ अन्य मनोरञ्जनों में मृगया^२, मल्लयुद्ध^३ एवं मुक्क-सारिका^४ आदि पक्षियों का पालना था । युद्ध के वाद्यों में बाँस, भेरी और ढक्का थे ।^५ सञ्जीव-समाजों में मृदङ्ग, वेणु और वीणा का विशेष स्थान था । तूर्य, पटह और भेरी के भी उल्लेख है ।^६

काम्य-शला का राजा सम्मान करते थे । प्रस्तुत भूपाश्रित महाकाम्य स्वयं इसका उदाहरण है ।^७ ब्रह्म आदि उरसवों पर कविता-पाठ होते थे ।^८ चारणों द्वारा कीर्ति गान^९ संभवतः हिन्दी काम्य के रूप में ही होते थे ।

नारियाँ भी सांस्कृतिक विकास में योग देती थीं । नारियाँ लोक-कल्याणार्थं तालाब, बावलो और देवालय निर्मित कराती थीं ।^{१०} पति और पिता के बीच युद्ध की स्थिति होने पर वे पति का पक्ष लेती थीं ।^{११} वे पतिव्रता, शीलवती और धर्मप्रवण होती थीं ।^{१२} स्नान करने और पीने के लिए वे गङ्गाजल का

१. सर्ग २।२०, ३० : 'बाराङ्गना यत्र..... क्रीडन्ति ।'

३।६६ : 'रूपाजोवाः स्म तन्वन्ति पटवेरमानि... ॥'

तथा ३।६८ ।

२. सर्ग ११ ।

३. सर्ग ८।१३-१७ ।

४. सर्ग ५।८ ।

५. सर्ग २।३४ ।

^१ 'दध्वान भेरी रुधिरं पुरस्तात् कम्बुर्गभोरं च ननाद ढक्का ।'

तथा २।४३ : 'ढक्का जगजोभयतो गभीरं भृशं युयुत्सून् प्रति दत्तहर्षा ।'

६. सर्ग १।७५ : ७।८६ : ततानि मुषिराण्यस्य घनानन्दानि मन्दिरे ।'

तथा ८।३१ : 'नखघातकलस्वनांकगा परिरम्पकभुजेन बल्लही ।'

हृदि रागवती निवेदिता रमणी राममरीरमद् गुणैः ॥'

७. सर्ग १२।४२ : 'जगति जयति काव्यं तस्य भूपाश्रयत्वात् ।'

८. सर्ग ७।८२ : 'नृत्यन्तर्कभासुरा सुकविता सम्मोदिपर्यन्तुता ।'

९. सर्ग ९।२७ तथा ५।५ :

'उमस्तुवन् बोधकरास्तदानीं नानाविधैर्बुधैर्ततश्चैर्विनोताः ।'

१०. सर्ग १।२५-२९ ।

११. सर्ग ७।७० : 'मदीयः स पिता त्यक्त्रराजनीतिविजीयताम् ।'

१२. सर्ग १२।३ : 'पतिव्रतानां घुरि संस्थितायाः ।'

तथा सर्ग १।६५ :

'पत्न्योऽनुजम्बुर्ज्वलनं प्रविश्य तिस्रोऽनुकूलाः ध्रुवशास्त्रसाराः ।'

सपभोग करती थीं ।^१

सोभायात्राओं के समय नगर की कन्यायें लाजा-मुष्क बरसाती थीं ।^२ हाटों और बाजारों में स्त्रियाँ शृङ्गार करके निकलती थीं । शृङ्गार में विशेषक (मुखचित्रण) भी होता था ।^३ बर को आरती सधवाएँ उतारती थीं ।^४ बारातियों को गीतों में गाली देने का भार भी उन पर ही था ।^५

राज्य-संज्ञ

देश के अन्य भागों की भांति बघेलखण्ड में भी इस काल में राजा की सत्ता सर्वोपरि थी । राजा द्वारा नियुक्त प्रमुख अधिकारी के लिए काय्य में बनाव्य, सचिव और मंत्री तीन शब्द प्राप्त होते हैं । गणेश राउत को सचिव और मंत्री दोनों ही कहा गया है ।^६ अतः सपर्युक्त तीनों शब्द पर्यायनाम प्रतीत होते हैं । मन्त्री अनेक रखे जाते थे ।^७ ये राजा के हितैषी, धर्मार्य मत देने वाले, सजग, गुणवान् और स्मृतिमों के ज्ञाता होते थे ।^८ राजा प्रायः

१. सर्ग १२।५ : 'न जाह्नवीवारि विहाय मस्याः

स्नानाय पानीयमभूत् कदापि ।

जलान्तरं प्राणभयेऽपि नाज्जात्

सगोऽपि धर्माचरणं विना च ॥'

२. सर्ग २।३६ : 'पीरात्मजाभिः कृतलाजवृष्टिः ।'

३. सर्ग २।५३ : 'मदीयहृद्दी मृगलोचनानां मञ्जोर-सङ्कार-रवेण रम्यः ।

जैह्वीमते मन्दगतिप्रसूनां लोकस्य हृद्दृश्य-विशेषकाणाम् ॥

४. सर्ग १।२४ ।

५. सर्ग १।२२ ।

६. वीर० ८।३ :

'...गणेश-राउतः । ...मन्त्रिणा, गणनामेति गणेषु योऽप्रतः ।'

८।४ । '...विलोचय तं सचिवं ' । तथा ८।४३ 'सचिवं-।'

७. सर्ग ६।४१ : 'श्री वीरभानुरय मन्त्रिगणैः समेतः ।'

८. सर्ग ५।५५ :

'अमात्मवर्गो नृपतेर्विकासी श्रियं परां दुष्यति तद्धितैथी ।'

सर्ग ५।५६ :

'येऽमात्मवर्गाः स्मृतिवेददृष्ट्या न लङ्घयन्ते पदवीम् ... ।

... यथार्थवाद ... प्रतिपन्नपुण्याः ॥'

सर्ग ५।७२ : '...तेऽवहिता इति स्युः ।'

तथा ५।११९ : '... स्मृतिवाक्यनिष्ठाः ।

प्रतिदिन इनसे राज्य-सम्बन्धी चर्चा करता था ।^१ मन्त्रणाएँ गुप्त रखी जाती थीं^२ और प्रमादी मन्त्रियों को हटा दिया जाता था ।^३

छोटे पदों के नाम काव्य में प्राप्त नहीं हैं । केवल सामूहिक शब्द 'भृत्य' और 'नियोगी' मिलते हैं । दुर्ग की रथा में कुलीन, सु-परीक्षित, सजग एवं धनु द्वारा अभेद्य मृत्यु नियुक्त किये जाते थे ।^४ भृत्य के सामान्य गुण थे राज्य की वृद्धि में सशम, राज्य-भक्त, अश्रमत्त, कुल-परम्परा के पालक, राजा के हितोंसे एवं शुद्ध आचरण वाले होना ।^५ सकल भृत्यों और अनुकूल सामन्तों को सम्मानित एवं व्यवस्था का उल्लङ्घन करने वाले तथा प्रमादी एवं भ्रष्ट सामन्तों और भृत्यों को दण्डित किया जाता था ।^६

१. सर्ग ५।७० : 'निरन्तरं यस्य समामु चर्चा राज्यस्थिरत्वस्य भवत्यसोपा ।
द्वेषं च रागं च भयं च मुक्त्वा प्रस्तूयमाना सचिवैरदुष्टैः ॥'

२. सर्ग ५।१०६ : 'मन्त्रं करोति प्रतिवासरं सः.....
ज्ञातोऽभवत् कैरपि नैव मन्त्रः.... ॥'

३. सर्ग ५।१३६ : '... नृपतिः प्रमत्तानमात्यवर्गानिवमन्यते स्म ।'

४. सर्ग ५।४९ :

'रसात्मनस्तेन विभीतिनाऽपि मौलैः कृता ते न भवन्ति जातु ।
भेद्या रिपूणां द्विविधैर्महर्षैः शीलं प्रमाणं कुलमनः चास्ति ॥'
५।४८ : दुर्गे... हितैरपिभिः पालयते स भृत्यैः ।'

५. सर्ग ५।६४ :

'नियोगिनस्ते विधिषु प्रयुक्तास्तेन स्व-चिह्नं दधति स्म येऽमी ।
वृद्धिक्षमा राज्यपदस्य भक्ता जिष्णोरिवात्यक्त-कुलक्रमाश्च ॥'

६. वीर० सर्ग ५।१४८ :

'प्रभुः स सर्वाधिहतान् परीच्य प्रसाददण्डो विदधाति बिडान् ।'
तथा ५।१४२ :

'कार्य-व्यवस्थाहति-सम्प्रवृत्तैरनियोगिभिः शिष्टपदं बहद्भिः ।
राज्यं विपर्यस्तमयं विलोभय यद्योचितं दण्डमघादमीयाम् ॥'

सर्ग ५।१४० :

'उत्कीर्णभाजां चतुरत्वमाजा नृपेण हस्त्यश्व-हिरण्यजातम् ।
उद्धारलक्ष्येण गृहीतमासीद्..... ॥'

सर्ग ५।१४४ :

'सामन्तलोकानपि दण्डयित्वा..... ।
तेषामन्तीति भजतां च भूम्या स्वभूमि-देशस्य समर्थकोऽभूत् ॥'

दुर्ग, हाथी, घोड़े, ऊँट और पैदल योद्धा ये सैन्य-शक्ति के अङ्ग होते थे ।^१ घोड़े प्रायः वनायु देश के अच्छे समझे जाते थे^२ और हाथी विन्ध्य पर्वत के ।^३ घोड़ों के लिए गुड़ पौष्टिक माना जाता था ।^४ राजधानी में अश्वशालाएँ और गजशालाएँ निर्मित की जाती थी ।^५ शिविरों में सैनिकों को मनोरञ्जन की छूट रहती थी ।^६ सामन्तों को अपनी सेनाएँ होती थी, जो युद्ध के समय राजा के उपयोग में आती थी ।^७ गुप्तवरों की सूचनाओं के आधार पर आक्रमण किये जाते थे ।^८ युद्धों में तलवार के साथ-साथ धनुष-बाण का भी प्रयोग किया जाता था ।^९ रथों के प्रयोग की भी सूचना प्राप्त होती है ।^{१०}

१. सर्ग ५।३९ :

'अनेकदुर्गेषु यदेकदुर्गं तदाश्रितं पतनमावसन् सः ।

न शत्रुभीतिं मनसाऽथ वऽऽपत्..... ॥'

सर्ग ५।४८-४९, ११६ : 'अगम्य-दुर्गस्थित-शत्रुवृन्दम् ।'

सर्ग ५।८१ : 'गर्जश्च भूमिः स्थिरतामुपैति ।'

सर्ग ५।६५ : 'अश्वैर्हि भूपैर्विजिता परोर्वी ।'

सर्ग ३।७२-७९ : 'उष्ट्रा व्यराजन् प्रसूताः ।'

सर्ग २।१७ : 'पदातयो यत्र विराजमानाः ।'

२. सर्ग २।१५ : 'वनायु-देश्याः.... ।'

३. सर्ग ६।३९ : 'विन्ध्याद्रिप्रभवास्तदीय-करिणः ।'

४. सर्ग ३।७१ : 'तुरङ्गा बलसङ्घस्य भुञ्जते स्म गुडादिकम् ।

यद् भक्षणाद् भवेत् क्षिप्रममोषां श्रमसंशयः ॥'

५. सर्ग २।१४ : 'यत्राश्वशालाः सुतरां विशालाः ।'

६. सर्ग ३।६६-७०

७. सर्ग ५।६१ :

'संसेवने दत्तहृदः समस्तान् सामन्तलोकानपि भानयन् सः ।

तद्-भूपरित्साय-विवृद्धराज्यैस्तैः सैन्यकोशैरपि बद्धितोऽभूत् ॥'

८. सर्ग ५।१०२ : 'चाराक्षिभिर्मण्डलमोसतेऽश्वी ।'

सर्ग ५।१०३ : 'स्वेषां परेषां निखिलं चरित्रं.... ।

अबोधि चारैः प्रहितैः नृपालः ॥'

सर्ग ५।१५१ : '... शक्तिभयं तेषु निराम्य चारैः ।

उच्छिन्नवास्तान्..... ॥'

९. सर्ग ८।७-१२ : 'शरवृष्टिर्न वृषाऽभवत्ततः ।'

१०. सर्गः ३।७२ : 'शुष्टु रिङ्गन् शताङ्गयः ।'

कोश की वृद्धि के लिए राजा खदान, खेती और वाणिज्य की सुविधाओं को और ध्यान देता था ।^१ अग्यायी सामन्तों और भ्रष्ट भूत्यों को भूमि और धन छीन कर तथा कर-सङ्ग्रह द्वारा राज्य और कोश की वृद्धि की जाती थी ।^२ व्यय का अनुमान पहले कर लिया जाता था और उसे आय के अनुरूप रखा जाता था ।^३ इस प्रकार आय और व्यय का संतुलन रखा जाता था ।^४ राजा अन्य कार्यों के साथ-साथ आय-व्यय का स्वयं निरोक्षण भी करता था ।^५ वह धाम, दान, दण्ड और भेद का यथावश्यक प्रयोग करता था ।^६ ब्राह्मणों को दण्ड नहीं

१. वीर० सर्ग ५।७४ : 'कोशोऽपि दण्डेऽवभवत्सयरतः ।'

सर्ग ५।७५ : 'कोशेन राज्यं दृढतामुपैति ।'

सर्ग ५।६८ :

'कृष्टा परीता च निवासिता च सितिर्नृपाणां दशगा फलाय ।'

सर्ग ५।७८ : 'वणिक्पथान् कोशविवृद्धि-हेतोः ।'

सर्ग ५।८१ : 'सनिश्च राजाऽस्पद-कामधेनुः ।'

२. सर्ग ५।१४४ तथा ५।८५ :

'आयोचितं साधु करोति पूर्णं व्ययं नृपाणां कर-सङ्ग्रहोत्कृः ।'

३. सर्ग ५।५९ : 'दैनन्दिनाय व्यय-चर्चकोऽयं..... ।'

सर्ग ६।४० ।

'वयं मेऽस्ति कियान् वरो व्यय इयानित्यादि सञ्चिन्तयन् ।'

सर्ग ६।१५ :

'राजा यथा रक्षति भूमिमेता तथैव भूमिस्तनुतेऽस्य वृद्धिम् ।'

वन्देगंजैराकर-रत्नदातः कृष्ण निरीत्या फलवृद्धिमत्या ॥'

४. सर्ग १।४३ : 'आयानुरूपं व्ययमेव कुर्वन् ।'

५. सर्ग ५।८९, ९३ :

'प्रभुः स्वयं यावदिदं न पश्येत्तावन्न सम्पक् फलयोगिकार्यम् ।'

६. सर्ग ५।१४५, १४९ :

'सामाद्युपायेषु नृपः प्रयुङ्क्ते येनैव साध्या रिपवस्तमेव ।'

सर्ग ६।२९ : 'सामादेशं सुतीतेः ।'

सर्ग ६।१८ : 'द्रागु दण्डयन् दण्डपातैः :'

सर्ग ६।५ :

'अकारि कृत्यं स्वमवाप्य रघ्नं रिपुर्गभेदि स्वमगोपि चैतत् ।'

दिया जाता था, वे गाय की भाँति अवध्य होते थे ।^१ प्रजा के सुख-दुःख का ध्यान रखा जाता था ।^२

काव्य में नीति-शास्त्रों के आधार पर शक्ति-त्रय^३ (प्रभु, मन्त्र और उत्साह), षड्गुण^४ (सन्धि, विद्रह, यान, आसन, द्रुघ और आश्रय) तथा सप्ताङ्ग नीति^५ (स्वामी, अमात्य, सुहृद्, कोश, राष्ट्र, दुर्ग और बल) के उपयोगों का उल्लेख किया गया है । इनके अतिरिक्त आशु क्रिया,^६ और तन्द्राहीनता^७ भी राज्य वृद्धि के लिए आवश्यक गुण बतलाये गए हैं । इन सूचनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस काल में प्राचीन धर्मशास्त्रों और नीतिशास्त्रों का राज्यतन्त्र में पूर्ण अवलम्बन लिया जाता था ।

१. सर्ग ५।६७

२. सर्ग ५।१०९-११०; ११३, १२६ : 'तस्मात् प्रजारञ्जन एव सक्तः ।'

३. सर्ग ५।१३१ : 'शक्तित्रय-सद्विवेकः ।' तथा सर्ग ५।१५१

४. सर्ग ५।१३१ : 'स षड्गुणानामुपयोगविज्ञः ।'

५. सर्ग ५।४६ : 'तथा न सप्ताङ्ग-विचारनिष्ठः ।'

सर्ग ५।०१, ८८ : 'राज्यस्य सप्तस्वपि सावधानः, सोऽङ्गेषु...।'

६. सर्ग ५।४२ : 'क्रियाशुकारी...संसाधयति प्रहृष्टः ।'

७. सर्ग ५।९४ : 'अथं वितन्द्रः...।'

सर्ग ५।१४६ : 'राज्यस्य वैरी स यतः प्रमादः ।'

लघु काव्य

(१) प्रशस्तिकाव्य : रामचन्द्रयशः-प्रबन्धः

(फ) परिचय

१९४६ ई० में प्राच्यवाणी से 'रामचन्द्र-यशः—प्रबन्धः' नाम से एक संस्कृत ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ है ।^१ इस ग्रन्थ को पाण्डुलिपि रायल एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल में सुरक्षित है ।^२ हरप्रसाद शास्त्री ने सोसायटी के संस्कृत ग्रन्थों की सूची में इस पाण्डुलिपि की खर्चा की है ।^३ बीकानेर महाराज के पुस्तकालय में इस ग्रन्थ की दूसरी पाण्डुलिपि की सूचना भी प्राप्त है ।^४ प्राच्यवाणी से ग्रन्थ के प्रकाशन के समय सम्पादक डा० जतीन्द्र विमल चौधुरी को बीकानेर को पाण्डुलिपि निरोधणार्थ नहीं मिल सकी थी ।^५ अतः यहाँ पर हमारे विचार का आधार प्राच्यवाणी द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ ही है । यह आठ पृष्ठों का है । प्रारम्भ में डा० चौधुरी की भ्रंशेजी भूमिका है ।

ग्रन्थ के अन्त की पुष्पिका सूचित करती है कि कवि का नाम गोविन्द भट्ट था और उसे 'अकबरवी कालिदास' को उपाधि प्राप्त थी ।^६ यह उपाधि

१. दि रामचन्द्र-यशः—प्रबन्ध आक गोविन्द भट्ट एलिपस अकबरवी कालिदास : (चौधुरी) : प्राच्यवाणी : ३, फेडरेशन स्ट्रीट : कलकत्ता : १९४६ ।
२. क्रमाङ्क ३१०९ ।
३. कैंटलाग आफ संस्कृत मैन्सक्रिप्ट्स : जिल्द ४ : कलकत्ता १९२३ : पृष्ठ ८५ : क्रमाङ्क ८२६९—देशी वांगम-देवनागरीलिपि-आकार १० “-३” पृष्ठ-सङ्ख्या १८-प्रत्येक पंक्ति पर यत्र-तत्र त्रुटिपूर्ण लेखन ।
४. केटे० बीकानेरः पृष्ठ २४७ क्रमाङ्क ५२२ ।
५. राम० प्र० भ्रंशेजी भूमिका ।
६. जही, पृष्ठ ८ : 'इत्यकबरवी-कालिदास-कवि-श्रीगोविन्दभट्ट-विरचित-श्री महाराजाधिराज-रामचन्द्र-यशः-प्रबन्धः समाप्तः ।' नन्दन नामक व्यक्ति ने यह पाण्डुलिपि लिखी थी ('इदं पुस्तकं लिखितं नन्दनेन ।')

कवि को मुगल बादशाह अकबर (१५५६-१६०५ ई०) का समकालीन सिद्ध करती है। सुमापित-सङ्ग्रहों में अकबर को लक्षित कर लिये गए इस कवि के अनेक श्लोक उल्लेख हैं^१, जो उक्त समकालीनता का पोषण करते हैं। अकबर का जन्म १५४२ ई० में हुआ था। उसने प्रौढ जीवन में सुस्थिर राज्य-काल में ही कवियों और विद्वानों को इस प्रकार की उपाधियाँ प्रदान की होंगी। अकबरी कालिदास की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् कभी गोविन्द भट्ट ने यह ग्रन्थ लिखा होगा। अतः अनुमानतः इस ग्रन्थ की रचना १५८० ई० के पश्चात् कभी हुई होगी, जैसा कि डा० चौबुरी ने भी भूमिका में अनुमान प्रस्तुत किया है।

पुष्पिका के अनुसार ग्रन्थ महाराजाधिराज रामचन्द्र की प्रशस्ति है। यह रामचन्द्र अन्तःसाक्ष के अनुसार बघेल है और वीरसिंह तथा वीरमानु का वंशवर्धन है। ग्रन्थ में वीरभद्र नाम भी आता है^२, जो बघेलखण्ड के शासक रामचन्द्र बघेल का पुत्र है। अतः यही बघेल (१५५५-९२ ई०) इस प्रशस्ति का लक्ष्य है। इस प्रकार ग्रन्थ की रचना की तिथि १५७० और १५६२ ई० के बीच है। कृष्णमाचारियर ने भूल से इस ग्रन्थ को बीकानेर के राजा की प्रशस्ति माना है।^३

“अकबरी (अकबरी) कालिदास” का एक श्लोक “दलपति-गृहिणी” को लक्षित कर लिखा हुआ प्राप्त है।^४ १५६४ ई० में अकबर के सेनापति आसफ खाँ से लड़ते-लड़ते मरनेवाली रानी दुर्गावती दलपतिशाह गौड़ राजा की विधवा रानी थी। यह चौरागढ़ (गढ़ा-कटंगा-जिला जबलपुर) की शासिका

रचनाकाल या लिपिकाल नहीं दिया गया है। साथ ही देखिये डा० हरदत्तगर्मा : ‘दि मूक्तिमुन्दर आफ मुन्दरदेव : ओ ज० : जनवरी, १९३६ : अकबरी कालिदास ।’

१. पद्यवेणी० : ५३ ‘हुमाऊ-कुल-तिलकमणै’ तथा १३८, १६८ : पद्यामृत० ८९, ९७ ‘पद्य० २९।२७ : मूक्ति० १५८ : ... ‘वीर त्वं कामुकञ्चे-दकबर...’ । तथा १७४-‘जलाल-शोणिपाल’ (अकबर का नाम जलालुद्दीन भी था) : रसिक० १४।२९ ।
२. राम० प्र० पृष्ठ ४ : ‘वीरसिंहकुलक-धुरन्धर वीरमानु-महोपति-वंश-करीर-कीरक राम जय ।’ तथा ‘वीरमद्र-सुरद्रुम’ और पृ० ८ : ‘प्रमु-रामबघेलमहं कलये ।’
३. हि० कला० सं० लिट्० : पृष्ठ २७४ : परि० १९९ ।
४. पद्यवेणी० ७९—‘दलपति-गृहिणि त्वदशः.....’।

थी। बघेलखण्ड और इस गौड़ राज्य में निकट सम्पर्क था।^१ अतः गोविन्द भट्ट ने दुर्गावती पर ही उषत श्लोक लिखा है। इससे प्रतीत होता है कि गोविन्द की काव्य-कला १५६० ई० तक प्रौढ़ता प्राप्त कर चुकी थी। इससे गोविन्द भट्ट की जन्म तिथि १५३० ई० के निकट मानी जा सकती है तथा सोलहवीं शती का सम्पूर्ण उत्तरार्द्ध उसका काव्य-काल माना जा सकता है।

गोविन्द भट्ट ने एक स्थान पर किसी गुर्जरेंद्र की प्रशस्ति भी लिखी है।^२ इन प्रशस्तियों से इतना ही ज्ञात होता है कि गोविन्द भट्ट अनेक राजसभाओं में पहुँचा था। उसने अनेक देवी-देवताओं की स्तुतियाँ लिखी हैं, जो सुभाषित सङ्ग्रहों में प्राप्त हैं। अतः भक्ति-ग्रन्थ में यह किसी सम्प्रदाय विशेष से सम्बद्ध नहीं प्रतीत होता, तथापि यह किसी ज्वालामुखी या जालपा देवी का विशेष उपासक था।^३

सुभाषित-सङ्ग्रहों में प्राप्त मुक्तकों के अतिरिक्त उसके ग्रन्थों में से एक स्तुति-ग्रन्थ का पता चलता है, जो ज्वालामुखी देवी के सम्बन्ध में है।^४ एक पद्य-मुक्तावली नामक ग्रन्थ भी गोविन्द भट्ट कृत बतलाया जाता है।^५ इससे अधिक कवि के जीवन और कृतियों पर जानकारों प्रकाश में नहीं आई।

१. अबुलफजल : अकबरनामा : ई० डा० : जिल्द २ : कलकत्ता : १९५९ पृष्ठ ३०-३३।

२. पद्यवेणी० : श्लोक ७७ : 'विस्फार्य ध्योमगङ्गा...गुर्जरेंद्र ...।' तथा सूक्ति० : श्लोक ८० : यहाँ 'काविलेंद्र' शब्द है।

३. पद्यवेणी० : श्लोक ३७ : '...अम्ब ज्वालामुखि...।'।

श्लोक ४६ : '...कनकच्छत्रमम्बायाः...।'।

श्लोक ४७ : '... देवि दुर्गे...।'।

श्लोक ३८ : 'श्रीमज्ज्वालप्य पुष्यरुचरण...।'।

४. ए० देस० के० : सूची क्रमाङ्क ५६४८ : ज्वालामुखी (काण्डा) देवी की स्तुति-७५ श्लोक : लिपिक गंगाधर : अन्त में अकबर के प्रति ६ श्लोक-इति अकबरी-कबरी-विलास-कुसुमीभवत्-पद्यान् गङ्गाधरोऽ-लिखदिमान्...।' साथ ही देखिये-कृष्णमाचारिअर : हि० बला० सं० लिट्० : पृष्ठ ३९० बी : परिच्छेद ३७३ ए० टिप्पणी) हरदत्त शर्मा ने भूल से अनुमान लगाया है कि गङ्गाधर अकबरी कालिदास का नाम होगा।

५. हि० बला० सं० लिट्० : पृष्ठ ३८८ : परि० ३७३।

ऐतिहासिक तथ्य

रामचन्द्र यशः १६६५ में रामचन्द्र बघेल से सम्बद्ध कुछ ऐतिहासिक तथ्यों पर प्रकाश पड़ा है। कवि के वर्णन के अनुसार रामचन्द्र ने अज्झ, बज्झ, कलिञ्ज, कर्णाटक, चोल, लङ्का और लाट आदि देशों को कम्पित कर छागर सट तक राज्य का विस्तार किया था। यह वर्णन केवल परम्परात्मक प्रशस्ति प्रतीत होता है। इनके अतिरिक्त कुछ ऐतिहासिक घटनाओं के सङ्केत भी हैं रामचन्द्र ने किसी मराठा नरेश से कर लिया था तथा करहाटक के राजा को क्षुकाया था।^१

रामचन्द्र बघेल ने १५५५ ई० में इब्राहीमशाह सूर को परास्त किया था। इस घटना को मुस्लिम लेखकों ने पर्याप्त महत्व दिया है।^२ गोविन्दमट्ट ने प्रस्तुत लघु ग्रन्थ में चार बार इस घटना की ओर संकेत किया है। यहाँ इब्राहीम का नाम तीन बार 'बाराहिमनूप' और चौथी बार 'इबराहिम' दिया गया है। इस उल्लेख में यह भी स्पष्ट है कि इब्राहीम सूर के साथ साथ उसकी बेगमों भी बन्दी बनाई गई थी।^३ अन्यत्र प्राप्त एक श्लोक में आक्रामक 'काविलेन्द्र' को 'बघेल' द्वारा परास्त किये जाने की सूचना है।^४ कृष्णनाचारियर ने अक्षर की ही काविलेन्द्र लिखा है।^५ यह मत तर्कसम्मत नहीं प्रतीत

१. राम० प्र० : पृष्ठ ७ : 'मरहट्ट-महीपति-दत्त-करम् ।

करहाटक-भूपति-नित्य-नतम् ॥'

२. श्रल-बदाओनी : (अनु०—ली) : भाग १ : पृष्ठ ५४९-४४, १५३-५४, तथा अस्किन : वावर एण्ड हुमार्थु : भाग २ : पृष्ठ ५०१ तथा ४९४ ।

३. राम० प्र० पृ० २ : '(वारा) हिमनूपदारापहरणसार... ' ।

'कारागृहघूत-बाराहिमनूप राम' 'अय जय साहि-बाराहिम-श्रीठ... ।'

तथा पृ० ६ :

'विलुण्ठितेवराहिम-प्रचण्डसाहिवस्त्रमा-कवप्रपञ्चमल्लिका-सदचिता-द्वि-पल्लव ।'

४. 'बेलामुल्लङ्घ्य हेला-दलित-धरणिमृद्-बाहिनी-कोटि-पुरे-

रदवेस्त्रत्-काविलेन्द्र-प्रबल-जलनिधिः प्लादनायोज्ज्वलमे ।

स्पाग्मना मेदिनीयं प्रबल-मुजबल-श्रीठ-चञ्चत्-प्रताप-

प्यालामिः सन्ततं-चेहृति न बटवा-वीतिहोत्री बघेलः ॥'

(पद्यामृत० ७२ : सु० हा०-६७ : सूक्ति० १२१ : पद्यवेणी० ६६)

५. हि० बला० सं० लिट्० : पृष्ठ सं० ३९० बी-परि० ३७३-ए ।

१३ व०

होता। अकबर से परास्त हो कर रामचन्द्र को सन्धि करने पड़ी थी।^१ दूसरी ओर गोविन्दमठ एक ही समय में अकबर और रामचन्द्र दोनों का कृपापात्र था। अकबर पर रामचन्द्र को विजय की हास्यास्पद कल्पना यह नहीं प्रस्तुत कर सकता था। मूरवंश के बादशाह अरुगान थे। उन्हें काबुली (काबिलेन्द्र) कहा जा सकता है। अतः यह काबिलेन्द्र भी इशाहीममूर ही है। उसके पूर्व आदिलशाह मूर 'अदली' भी रामचन्द्र को शरण में आया था।^२ प्रस्तुत काव्य में रामचन्द्र को सम्भवतः इसी अर्थ में 'पारसीक' राजा द्वारा वन्दित कहा गया है।^३ काव्य में 'साहालम' और 'सिलेमेन्द्र' नाम भी आते हैं।^४ सम्भवतः वे मुलतान सलोम के लिये प्रयुक्त हुए हैं। इनके अतिरिक्त रामचन्द्र ने किसी परिहार राजा और नारायण परमार को भी परास्त किया था।^५ किसी दुर्ग देश के राजा से उसने कर लिया था।^६ इनके अतिरिक्त रामचन्द्र के वैयक्तिक गुणों की ओर भी काव्य में अनेक संकेत हैं— जैसे वह यामलमन्त्र और गीत, नृत्य, भरत-नाट्य आदि जानता था; झोड़ा और कला का प्रेमी था।^७

(ख) भाव व्यञ्जना और कला-सौन्दर्य

रामचन्द्र-मराः प्रबन्ध में विचित्र छन्दोयोजना की गई है। इसमें १० अक्षरा छन्दों के अतिरिक्त बीच-बीच में ८ प्रबन्ध हैं। प्रथम प्रबन्ध में ८, ८ मात्राओं की यति के साथ दीर्घ-पद-योजना है। कहीं नगण और यगण तथा कहीं सगण और दो गुरु हैं। यति के साथ तुकान्तरता और लयबद्धता का ध्यान रखा गया है।^८ दूसरे प्रबन्ध में स्रग्विणी की लय पर सम्पूर्ण प्रबन्ध केवल

१. अक० भाग २ पृष्ठ २८१-८३। २. वही।
३. राम० प्र० पृष्ठ ४ : 'पारसीक-महीपति-वन्दित ।'
४. राम० प्र०, पृष्ठ ३ : 'श्री सुरिनाण-साहालम....' तथा 'सिलेमेन्द्र-भूमिन्द्र—'।
५. वही, पृष्ठ २ : 'नतपरिहारावनिप्रति-नारायणपरमार....'।
६. वही, पृष्ठ ७ : 'करदान-दरिद्रित-दुर्गनृपं....'।
७. वही, पृष्ठ ४ : 'यामलोदितमन्त्रविदप्रज....'।
एवं 'चिल्लीविलास-हतदिल्लीपतिप्रभृति-हृल्लीस-हास-जलवे ।'
तथा पृ० ५ : 'भरत-नादित-बहु-नृत्यक्रम-बुध..... ॥'
८. 'जय अय राम, क्षितिघर राम-प्रतिकृति-राम प्रतिनिधि-राम प्रतिभट-साम-ध्वनि-रसकाम स्फुरदभिराम प्रतिनव-धाम....'। 'मङ्गलालय पर शृङ्गारनिलय वङ्गाधिप-बृहदङ्गावनिप कलिङ्गा....'।

रण में है ।^१ तीसरा प्रबन्ध ११ अक्षरों में (र, न, स, ल, ग) यति देकर चलता है, किन्तु इसमें अनेक स्थलों पर गति-भङ्ग है और कहीं कहीं गद्यवत् प्रयोग है ।^२ चौथे प्रबन्ध में ४ सगणों के साथ २ गुरु चलते हैं ।^३ पाँचवें प्रबन्ध में तगण और भगण के साथ एक लघु देकर ७-७ अक्षरों के चरणों का प्रयोग चलता है ।^४ छठे प्रबन्ध में प्रमाणिका छन्द (ज, र, ल, ग,) का प्रयोग किया गया है ।^५ सातवें प्रबन्ध में एक पंक्ति का टेक (ध्रुव) देकर तीटक छन्द का प्रयोग है ।^६ प्रकाशित पुस्तक में इस छोटक प्रबन्ध के अन्तर्गत श्लोकों को सङ्ख्या दे दी गई है, जिसको आवश्यकता नहीं थी । अन्त में तीन पंक्तियों का आठवाँ प्रबन्ध है, जिसमें लघु अक्षरों के साथ सन्धिषो की लय-वद्धता निश्चित है ।^७ प्रस्तुत पद्यका कवि ने इन प्रबन्धों में नहीं माना है । अतः उक्त समस्त छन्द दण्डकजातीय कहे जा सकते हैं । ये सभी शब्दविनात्मक अक्षर काव्य हैं ।

डा० चौधरी ने इस पद-योजना के सम्बन्ध में लिखा है कि 'यह न तो गद्य है, न पद्य और न इसे चम्पू ही कह सकते हैं । इसका सम्पूर्ण गद्य भी पद्य है, फिर भी यति और विराम को कठिनाइयाँ आती हैं । अतः यह समग्र रूप से विधिवत् पद्य नहीं रह जाता । तो भी इसे पद्य-बन्धन ही कहा जायगा । यह दीर्घ-समास-युक्त लयबद्ध गेय-शैली भारत में मुस्लिम शासन के समय विकसित हुई जान पड़ती है ।'^८

१. '..... वीरभानु-समा-भण्डलाखण्ड-वंश-स्फुर-सौर-कलोलिनी-वल्गु-प्रौढ-राका-सुधा-सूति-बिम्ब-प्रलम्ब.....।'
२. 'रामबन्ध-वधेल-मुरन्दर, कामकोटि-भनोहर-विग्रह.....।'
३. 'पृथुतर-भुजतट-जितकरिकुम्भ द्रुतवर-कविकुल-नवनिवि-कुम्भ ।
द्विजकुल-सरसिज-विकसन-दिम्भ-द्युमणि-किरणमर-मधुर-विजुम्भ ॥'
४. 'वीरारण-प्रभव हीरानिराम-रद घोरारविन्द-सरणे... ..।' (यहाँ 'वीरारण' शब्द वीरभानु के अर्थ में है ।)
५. '.....'वीरविह-भूमिपाल-चक्रवंश-दुग्धसिन्धुनाथ-पर्वशर्वरो कलत्र-बिम्ब
वीरभानुमेदिनोन्द्र-चक्रवाल-भोलिरत्न-गोत्र-पुण्डरीक.....।'
६. 'अतिसुन्दर-गुणमन्दिरनिन्दुमुखी-मदनम् ।
मदनारि-जटाविधु-चारुगुणै गुणि-वातक-चक्र मवोन-धनम् ।
धनसार-नटोरज-लिप्त-तनुं तनुमव्य-निबद्ध-लसप्रत्नरम् ॥'
७. 'जय जय चण्डिकानाथ-लालाट-रङ्गस्यली-घण्ड-विर्भाविरच्छात-
कीलच्छट.....।'
८. वही, अंपेजी भूमिका : पृष्ठ ८ ।

जैसा पीछे लिखा जा चुका है, गोविन्द भट्ट आरमटी वृत्ति से युक्त, ओज गुण से पूर्ण, दीर्घ-समास-युक्त शैली स्वीकार कर वीर या रौद्र रस से भरी हुई कविता के क्षेत्र में अधिक सफल हुआ है। उसकी यह शैली रामचन्द्र-प्रबन्ध में क्रमबद्ध रूप से विकसित हुई है। इस शैली में चारणों द्वारा प्रयुक्त लय-बद्धता के भी दर्शन होते हैं और शास्त्रसिद्ध पाण्डित्य के भी। इस रचना-शैली पर हिन्दी के वीरगाथा-युग का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। प्रस्तुत काव्य के दीर्घ प्रबन्धों में रस-निष्पत्ति, ध्वनि या व्यञ्जकता का कवि ने ध्यान नहीं रखा। इसके साथ ही यह मानना होगा कि इस कवि का पाण्डित्य और उसकी पद-योजना को लय में बाँधने की शक्ति सचमुच प्रबल है। इस क्षेत्र में उसे अपने काल का अजेय कवि मानना ही होगा। डा० चौधुरी ने उचित ही लिखा है कि अकबरी सभा के सत्कालीन श्रेष्ठ संस्कृत कवि को लेखनी से निःसृत इस प्रबन्ध में स्वभावतः अप्रतिम कला और सौन्दर्य है।^१ प्रबन्ध के श्लोकों में कुछ भाव-व्यञ्जनाएँ इस प्रकार हैं—

रामचन्द्र की दृष्टि कामधेनु है और वह शीघ्र ही अभिलाषाएँ पूर्ण कर देती है; मुक्ताहारों से सजी हुई रमणियाँ, मदमाते हाथी, काम्बोज देश के सवेग घोड़े, महल या भूमि— कौन सी ऐसी वस्तु है, जो नहीं मिल जाती ?^२

अरी गौरी मुन। बोल रम्भा, क्या कह रही है ? आ, सोने की नदी में क्रीड़ा कर ब्रह्मानन्द लें। अरी भोली, यह सोने की नदी कैसी है, किपर बह रही है ? अच्छा तो तू नहीं जानती ? राजा वीरभानु के वंश के उन्नायक (रामचन्द्र) के प्रताप की ज्वाला की उष्णता से गल कर स्वर्णचल धारा के रूप में बह निकला है।^३

१. राम० प्र० : अंग्रेजी भूमिका : पृष्ठ ८

२. वही, श्लोक ७ (तथा पद्यवेणी, श्लोक १०५) :

‘मुक्तालङ्कारवत्यः कुवलयनयनाः कुम्भिनः कुम्भकूट-

भ्रम्यद्दान-प्रवाहाः पवनजवजिती दिव्य-काम्बोज-वाहाः।

प्रासादाश्चन्द्रशाला विलिखितवियतो भूयसी भूतघात्री

सूते कि किन्न सद्यः फलमिलवितं रामदृक्-कामधेनुः ॥’

३. वही, श्लोक २६ : (पद्यवेणी० ६५) :

‘हे गौरि ब्रूहि रम्भे कनकमयनदीमेहि लीलावगाह-

ब्रह्मानन्दाय मुग्धे कनकमयनदी कुश केयं प्रयाति।

वीर-श्रीवीरभानु-क्षितितिलक-कुलस्तम्भ-चण्डप्रताप-

ज्वाला-कल्लोलताप-द्रुत-कनकगिरि-स्पन्द-धाराप्रवाहः ॥’

हे रामचन्द्र ! साधुजनों को उच्चता का सर्जन करने वाले, प्रगट का पालन करने वाले, शत्रु-सेना को बनायास ही मस्मसात् कर देने वाले, लाल, सँवले और श्वेत रङ्गों से युक्त तुम्हारे कटात्र एक साथ ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र को लीला करते हैं ।^१

रामचन्द्र के सम्बन्ध में इस कवि के दो और मूक्तक पद्यवेणी में प्राप्त हैं । रामचन्द्र ने मित्रुकों को जो हाथी दान में दिये हैं, उनकी मद-धारा से सागर बन गये हैं—

'राम त्वद्दत्त-मत्तेम-कुम्भ-निःसरदम्बुभिः ।
दिशु मिश्रु-गृह-द्वारि वारां निविहदञ्चति ॥'^२

'बघेल-केसरी (रामचन्द्र) के हाथों में तलवार नहीं, अपितु उनके प्रताप-रूपे सूर्य से विकसित हाथ-रूप कमल पर यह भीरों को लहराती पंक्ति है । यह अमहनुति का सुन्दर उदाहरण है—

'मृषैव निगदन्ममो जलद-कज्जल-उद्योतिषं
महासि-लतिकं करे तत्र बघेल-पञ्चवानन ।
प्रतान-रपन-स्फुरत्-कर-सरोज-कोद्योत्यित-
द्विरेफ-लहरीसि मे मनसि बुद्धिहृत्कृम्भते ॥'^३

अन्यत्र अन्य तरेशों के वर्गन भी ओत्रपूर्ण है । अकबर के धनुष को टङ्कार से ही दूर गिरते हुए शत्रुओं के कङ्काल लङ्कानति विमोषण को भयार्त कर देते हैं :—

'वीर त्वं कार्मुकञ्चेदकबर कलयस्युष-टङ्कार-धोरं
दूरे सद्यः कलङ्का इव धरणिभूतो यान्ति कङ्काल-सेपाः ।

१. राम० प्र०; श्लोक ८ : (पद्यवेणी १०६) :

'साधूनुन्वैः सृजन्तः प्रणतमनुदिनं सम्भ्रमात् पालयन्तः
कुर्वन्तो भस्मसाच्च प्रतिनृपति-चमूमण्डलं लीलयैव ।

योग-श्यामावदाताः सुमचरित शरच्चन्द्र-वीरस्त्य-शंल

श्रीराम त्वत् कटाशाः कमलज-बलिजिञ्छम्भु-लीलां भजन्ते ॥'

उपर्युक्त श्लोकों के अतिरिक्त श्लोक ३-'तुङ्ग ब्रह्माण्ड.....' पद्यरचना (श्लोक १४), सूक्तिमुन्दर (६३) और सुभाषित-रत्न-भाण्डागार (१३८।८९) तथा श्लोक ६—'मायद्वैतण्ड.....' पद्यवेणी (१०४) और सुभा० २० भाण्डा० (४२०।५३) में उद्धृत हैं ।

२. पद्यवेणी० श्लोक ९६ ।

३. वही, श्लोक १३९ ।

दास्त्रापन्नश्च किं कारणमिति मनसा भ्रान्ति पद्मायितेन

स्थक्ताहृद्धारमद्वाद् विमुञ्जति गृहिणीं किञ्च लङ्काधिनाथः ॥^१

गोविन्दमठ अपने काल का अवश्य ही अजेय कवि था, यह उसकी स्वामि-
मान-पूर्ण उक्ति से स्पष्ट है—

‘अनाराध्य कालीमतास्वाद्य गौरी-

मृते मन्त्र-तन्त्राद् किना शम्भुचौर्यात् ।

प्रवन्धं प्रगल्भं प्रकृतुं प्रयत्नतुं

विरिञ्चि-प्रपञ्चे मदन्धः कविः कः ॥^२

उपर्युक्त प्रशस्तियों और स्तुतियों में अकबर की कालिदास की छेखनी की प्रौढ़ता प्रकट है । इनके अतिरिक्त सुभाषित-सङ्ग्रहों में सङ्ग्रहीत अनेक कला-त्मक मुक्तक इस कवि के नाम से प्राप्त हैं । इस कवि की समस्त रचनाओं में दीर्घ-समास-युक्त अलङ्कृत शैली का प्रयोग प्राप्त है । यह कहने में हानि नहीं है कि अकबर की सभा का कालिदास कहला कर भी यह कवि पांडित्य-प्रदर्शन में ही अपनी श्रेष्ठता समझता रहा तथा कालिदास की प्रसादगुण-युक्त त्वरित रस-परिपाक कराने वाली शैली का इसने प्रायः अवलम्बन नहीं किया ।

देखिये, वसन्त की विरहिणी के एक वर्णन में कवि अनुप्रासों में ही उलझा रह गया और वह पाठक के मन में विरहिणी के प्रति सहानुभूति नहीं उत्पन्न कर सका—

पिकाली वाचाली भवतु बहुधाञ्जलीक-कथने

मृणाली व्यालीव व्यथयतुतरामङ्गमनिशम् ॥^३

यत्र-तत्र रसात्मकता भी है—

क्षणं समाधाय मधुव्रतं या

विस्मारयत्यम्बुजिनो-वियोगम् ॥^४

कवि की कुछ उपमायें बहुत अच्छी बन पड़ी हैं—

‘मदन-विजय-यात्रा-मङ्गलं द्योतयन्ती

विशति जलधि-मध्ये ताम्रपात्रीव मानुः ।

इयमपि पुरुहूत-प्रेयसी मूर्च्छि संस्रं

कलशमिव सुषार्शुं साधुमुल्लालसोति ॥^५

१. पद्यामृत०, श्लोक ९७ तथा सूक्ति० श्लोक १५८ ।

२. पद्यवेणी, श्लोक ७८६ ।

३. पद्यवेणी, ६११ (तथा सुभाषित-सार-समुच्चय ३०९) ।

४. वही, ७३२ ।

५. पद्यवेणी, ५८० : सु० स० स० २०५ ।

इस कवि का वास्तविक मूल्याङ्कन आरनटी वृत्ति के प्रयोग और ओज गुण के क्षेत्र में किया जा सकता है, यद्यपि वहाँ भी यह शब्दालङ्कारों का प्रयोग अनिवार्य मानता है। इन उक्तियों में प्रशस्त्यात्मक कल्पनाएँ अच्छी बन पड़ी हैं।

(ग) प्रशस्तियों की परम्परा

‘प्रशस्ति’ शब्द का उल्लेख स्ट्रट ने किया है,^१ जिसकी व्याख्या नमिसाधु ने इस प्रकार की है—

‘तत्र यस्यानोरवर-कुल-वर्णनं यशोर्व्यं क्रियते सा प्रशस्तिः।’^२

अर्थात् प्रशस्ति में राजाओं के कुल आदि का वर्णन उनके यशोगान के रूप में किया जाता है। यह लघु काव्यों के प्रकरण में है। अतः ‘प्रशस्ति’ से यहाँ वह लघु काव्य अभिप्रेत है, जिसमें राजा का यशोवर्णन हो। ‘प्रशस्ति’ प्रभेद के लिए यह व्याख्या ठीक है, किन्तु हम इसका व्यापक अर्थ भी ले सकते हैं और जहाँ भी राजा का यशोवर्णन काव्य के रूप में प्राप्त हो, उसे प्रशस्ति कह सकते हैं।

इस व्यापक अर्थ को ग्रहण करने पर हम देखते हैं कि संस्कृत काव्य में राजा के यशोवर्णन की प्रवृत्ति परम्परात्मक है और वह काव्य के लगभग सभी प्रभेदों में दृष्टिगोचर होती है। महाकाव्य के क्षेत्र में प्रशस्तिमूलक ग्रन्थों की चर्चा हो चुकी है।^३ दूर्य काव्यों में भी मालविकाग्निमित्र जैसे अनेक रूपक उदाहरणार्थ मिल जायेंगे। कथा के क्षेत्र में राजतरङ्गिणी जैसे इतिवृत्तात्मक काव्य और हर्षचरित जैसे आख्यायिका-ग्रन्थ भी इसी प्रवृत्ति के सूचक हैं। मौसला-वंशावली चम्पू और वीरभद्र चम्पू जैसे ग्रन्थ चम्पू काव्य की कोटि में भी राज-यशोवर्णन से पूरित मिलते हैं।

अनिबद्ध कोटि में भी प्रशस्तियाँ सभी रूपों में प्राप्त हैं। सुभाषित-सङ्ग्रहों में शुद्ध मुक्तक सङ्कलित मिलते हैं और ऐसे प्रत्येक सङ्ग्रह में ‘राज-तरङ्ग’ होता है। इसमें अनेक कवियों की रचनाएँ सङ्गृहीत होती हैं, जो व्यापक रचि का चोतक हैं। राजवंशों के वर्णन-परक काव्यों को हेमचन्द्र ने ‘संहिता’ नाम दिया है।^४ इस कोटि में हम गुहवंश, चोल-वंशावली-चरित,

१. काव्यालङ्कार : काव्यमाला २ : बम्बई : १९२८ : अध्याय १६।३६ ।

२. वही, नमिसाधु की व्याख्या ।

३. पीछे, अध्याय ३ (ख) ।

४. काव्यानुशासन : काव्यमाला ७० : १९०१ : पृ० ३४१ ।

यथेलंबावर्णनम् आदि काव्यों को ले सकते हैं। शास्त्रीय लक्षण-ग्रन्थों में ये रामवर्म-यशोभूषण और नञ्जराजयशोभूषण जैसी रचनाओं में भी यही प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है।

रदट ने जिस प्रशस्ति-प्रमेद की खर्चा की है, वह वास्तव में लघुकाव्य है। यह भी दो रूपों में विभाजित किया जा सकता है। पहला रूप है वे गद्य-पद्यमयी राजस्तुतियाँ, जिन्हें विश्वनाथ ने 'विरुद' संज्ञा दी है,^१ और जो शिलालेखों के रूप में गिरनार, प्रयाग, मन्दसौर, ऐहोल आदि की प्रशस्तियों के नाम से ज्ञात हैं। दूसरी ये प्रशस्तियाँ हैं, जो प्रायः पद्यात्मक लघुकाव्यों के रूप में हैं, जैसे वस्तुपाल-तेजःपाल-प्रशस्ति। श्री दुर्गाप्रसाद द्विवेदी ने ऐसी प्रशस्तियों को 'विरुदावली' नाम दिया है। विरुदावली में ग्रन्थ का नाम वर्ण्य (राजा, आश्रयदाता) के नाम पर रखा जाता है; इसमें प्रचुर स्तुति रहती है और शब्दों और वाक्यों का भरपूर आडम्बर रहता है—

'वर्ण्य-नामाङ्क-विरुद-वर्णन-प्रचुरोञ्जला ।

वाक्याडम्बर-संयुक्ता कविता विरुदावली ॥'^२

प्रस्तुत काव्य रामचन्द्र-यशः-प्रबन्ध इसी विरुदावली कोटि में आता है, जैसा कि पीछे प्रदर्शित किया जा चुका है। उपर्युक्त प्रवृत्तियों को देखते हुए इस विरुदावली कोटि में रसात्मक अभिप्रञ्जना की कम आशा की जा सकती है। वस्तुपाल-तेजःपाल-प्रशस्ति में वर्णनात्मकता और इतिहास प्रचुर मात्रा में है और रामचन्द्र-यशः-प्रबन्ध में वाक्याडम्बर। शिलालेखों की प्रशस्तियाँ भी वाक्याडम्बरों से पूर्ण पाई जाती हैं, किन्तु उनमें प्राप्त इतिवृत्त कुछ गतिशील, प्रवाहपूर्ण रहता है और उसमें इसी कारण रोचकता रहती है। रामचन्द्र-यशः-प्रबन्ध शब्द-पाण्डित्य-पूर्ण, गतिहीन शब्दों का ऐसा आडम्बर है, जिसमें रोचकता का नितान्त अभाव है। तथापि संस्कृत के पण्डितों की रुचि और उनकी व्यवस्था को देखते हुए ऐसे काव्यों को अनादृत नहीं किया जा सकता। अतः पाण्डित्यपूर्ण विरुदावली-ग्रन्थों के बीच रामचन्द्र-यशः-प्रबन्ध को गणनीय मानना पड़ेगा।



१. साहित्यदर्पण : १९३१ : पृ० ३७७ : श्लोक ३३७ ।

२. वही, पृष्ठ १७८ : श्री द्विवेदी की टिप्पणी ।

(२) कथाकाव्य : दशकुमार-पूर्वकथासारः

(क) पाण्डुलिपि का विवरण

बंगाल की रामल एशियाटिक सोसाइटी के पुस्तकालय में 'दशकुमार-पूर्व-कथासारः' नाम से एक ग्रन्थ सुरक्षित है।^१ इस ग्रन्थ के आरम्भ में भैरव की वन्दना के पश्चात् निम्नलिखित श्लोक है—

'बधेल-धुवराज-श्रीवीरभद्र-गुणाश्विना ।

स्फुटो दशकुमाराणा कथासारो विरच्यते ॥ २ ॥'

प्रथम परिच्छेद के अन्त में पुष्पिका इस प्रकार है—

'इति श्री महाराजशिराज-श्रीरामचन्द्रदेवात्मज-धुवराज-श्री वीरभद्रदेवेन कृते दशकुमार-पूर्वकथासारे प्रथमः परिच्छेदः ।'

रामचन्द्र बधेल के पुत्र इस धुवराज वीरभद्रदेव द्वारा रचित 'कन्दर्पचूड़ा-मणि' ग्रन्थ को चर्चा पढ़ले हो चुके हैं।^२ इसी वीरभद्र के जन्मोत्सव पर हुनायू ने वीरभानु बधेल के पास उपहार भेजे थे।^३

दशकुमार-पूर्वकथासार को उपर्युक्त पाण्डुलिपि का उल्लेख हरप्रसाद शास्त्री ने किया है। यह पाण्डुलिपि केवल प्रथम परिच्छेद की है।^४ ग्रन्थ का शेष भाग लुप्त हो चुका है। 'पूर्वकथासार' शब्द से अनुमान होता है कि कवि ने कथासार को दो भागों में रखा, जो क्रमशः दशकुमारखरितम् की पूर्वपीठिका

१. क्र० जी०, ६३६८ : ग्रन्थ को इस पाण्डुलिपि की प्रतिलिपि मेरे पास सुरक्षित है। यह प्रतिलिपि एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता के अविस्टेट लाइब्रेरियन (सहायक पुस्तकालयाध्यक्ष) श्री गिरिजानाथ मट्टाचार्य ने २७-२-६३ को पूरा की थी। यह केवल प्रथम परिच्छेद है, जो २३ छोटे पृष्ठों में है। यही प्रतिलिपि हमारे द्वारा ग्रन्थ के मूल्यांकन का आधार है। मूल लिपिक का नाम या ग्रन्थ का रचना-काल या लिपिकाल कहीं नहीं है। मूललिपि में व्याकरण की दृष्टि से यत्र तत्र त्रुटियाँ हैं, जो प्रतिलिपि में ज्यों की त्यों हैं।

२. देखिये पीछे अध्याय २ (ग)।

३. देखिये पीछे अध्याय ३ (ग)।

४. ए डेस्क० की० : कलकत्ता: १९३४ : पाण्डुलिपि क्रमांक ५३८४।

घोर उत्तरपीठिका के सार होंगे। पूर्वपीठिका के प्रथम उच्छ्वास में राजवाहन आदि दस कुमारों की उत्पत्ति की कथा है।^१ प्रस्तुत पाण्डुलिपि में इसी प्रथम उच्छ्वास का सार-वर्णन है।

(ख) फवि-परिचय

दशकुमार-पूर्वकथा सार का प्रणेता वीरभद्रदेव बघेलखण्ड का राजकुमार था। हीरानन्द शास्त्री ने वीरभानुदय काव्य की पाण्डुलिपि पर अङ्कित पहली मुहर का अङ्क ९६५ (हिजरी, सन् १५५८ ई०) पढ़ा, जिसके कारण वीरभद्र की जन्मतिथि उन्होंने १५३५ ई० के निकट स्वीकार की।^२ हम शास्त्री जी के इस मत पर पीछे विचार कर चुके हैं।^३ एकत्रा बान्धोगढ़ में रामचन्द्र की जन्मतिथि सं० १५९२ (१५३५ ई०) घोर वीरभद्र की जन्मतिथि सं० १६१० (१५५४ ई०) दी हुई है।^४ वीरभद्र के जन्मोत्सव पर उपहार भेजते समय हुमायूँ दिल्लीश्वर था।^५ वह १५५५ ई० में दुवारा दिल्ली का अधिकारी हुआ था।^६ अतः ये उपहार जन्म के कुछ मास पीछे आए होंगे।

गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, बनारस में सुरक्षित 'कथासरित्सागर' की एक पाण्डुलिपि पर 'वीरभद्र बन्दह् सुलतान सलीम ९७७' मुहर अङ्कित है। सलीम का जन्म ९७७ हिजरी (१५६९ ई०) में ही हुआ था।^७ इसी वर्ष रामचन्द्र ने कालिंजर दुर्ग का अधिकार त्यागा और वीरभद्र के हाथों किले की चाभी

१. देखिये दशकुमारचरितम् (दण्डिन्) : प्रकाशित प्रति : हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला ९९ : चौखम्बा संस्कृत सरोज : वाराणसी—१ : १९५७ : (पूर्वपीठिका) ।

२. वीर० क्रि० ए० : पृष्ठ १-५ ।

३. देखिये पीछे अध्याय ३ (क) ।

४. परिशिष्ट १ (क) : राजा रामचन्द्रदेव का जन्म संवत् १५९२ के साल। सं० १६०८ के साल राज्याभिषेक। बेटा २, जेठे राजा वीरभद्र.....। राजा वीरभद्र का जन्म १६१० के साल का। सं०.....राजा विक्रमादित्य का जन्म १६३९ के साल। सं० १६४६ के साल राज्याभिषेक।

५. वीर० १२।२० ।

६. वही, क्रि० ए० पृष्ठ १-५ ।

७. वही ।

अकबर के समीप भेज दो। तब से वीरभद्र अकबर के दरबार में हाजिरी के लिए रहने लगा।^१ इस समय वह १५ वर्ष का होगा, सम्भवतः जाले ही उसे सलीम की सेवा में नियुक्त कर दिया गया।

अकबर की सभा में गोविन्द भट्ट (अकबरी कालिदास), वीरबल और पद्मानभ मिश्र आदि हिन्दी और संस्कृत के अनेक कवि थे। इनके सम्पर्क में वीरभद्र का कवित्व जागृत हुआ होगा। वीरभद्र के गुणों का पद्मानभ मिश्र ने अनेक ग्रन्थों में अभिनन्दन किया है। वीरभानूदय और कथासरित्सागर की पाण्डुलिपियों पर प्रायः उपर्युक्त मुहरें वीरभद्र की संस्कृत-निष्ठा प्रमाणित करती हैं। २३ वर्ष की आयु में उन्होंने यौवनोद्भित विषय कामशास्त्र पर 'कन्दर्प-पूडामणि' नामक ग्रन्थ की रचना की। इसी समय रचित अपने 'वीरभद्रचम्पू' ग्रन्थ में पद्मानभ मिश्र ने वीरभद्र को महान विजेता घोषित किया है। वीरभद्र ने रत्नपुर आदि स्थानों पर अधिकार किया था।^२ 'कन्दर्प पूडामणि' ग्रन्थ के परभाव ही वीरभद्र ने 'बराकुमारपूर्वकथासार' लिखा होगा। अतः इस ग्रन्थ का रचनाकाल १५८० ई० के निकट मान सकते हैं।

रामचन्द्र स्वयं अकबरी दरबार में हाजिर नहीं हो रहे थे। १५८३-८४ ई० में इधर अकबर का ध्यान गया और उसने रामचन्द्र का स्वाभिमान तोड़ने के लिए कौश को हुजूम दिया। वीरभद्र ने अकबर को कठिनार्थ से इस बात पर राजी किया कि वीरबल और खर्देन खां कोका रामचन्द्र को बुलाने जायें। रामचन्द्र फतेहपुर सीकरी में अकबर से मिले और वीरभद्र की समय-सूचकता से बयेलखण्ड बघ गया। जब रामचन्द्र लौटे तब वे वीरभद्र की वही छोड़ आए। कुछ समय पीछे वीरभद्र को भी लौटने की अनुमति मिली।^३

बोकानेर के राजा कल्याण सिंह के पुत्र रामसिंह को पुनी वीरभद्र को ब्याही थी और उसीकी छोटी बहन १५८७ ई० में सलीम को ब्याही गई।^४ वीरभद्र के पुत्र विक्रमादित्य ने पहली बार रीवा नगर को राजधानी का पद दिया।^५

१. आई० : पृष्ठ ४०६-७।

२. देखिये आगे अध्याय ५ (क)।

३. ईलिमट : हिस्ट्री आफ इण्डिया : भाग ५ (बरापुरी) : पृष्ठ ५३८।

४. आई० : पृष्ठ ३५७-५८

५. परिशिष्ट १ (क) : एकत्र बाल्योपहृ : "रीवा का किला—विक्रमाजीउ से किले आरं"।

१५९२ ई० में रामचन्द्र को मृत्यु हुई। अकबर ने वीरभद्र का राजा को पदवी देकर बान्धवगढ़ भेजा। मार्ग में सुवासन से गिरने से वीरभद्र को घातक चोट लगी। उनका रक्त विगड़ गया और असमय पर नहाने घौने से रोग बढ़ता गया। १००१ हिजरी (१५९३ ई०) में वीरभद्र को मृत्यु हो गई।^१

श्री रामचन्द्रे अग्निहोत्री ने मुझे वीरभद्र के एक पाट को नकल दतलाई थी, जो मथुरा में वीरभद्र के द्वारा सं० १६५३ का दान-पत्र था।^२ यदि यह ठीक है तो वीरभद्र १५९६ ई० में जीवित थे। उनको मृत्यु से उत्पन्न अश्व-वस्था में ही १५९६ ई० में अकबर ने बान्धवगढ़ पर आक्रमण किया।^३ अतः सम्भव है, इसी वर्ष मथुरा से लौटने समय वे सुवासन से गिर कर मरे हों। इससे पीछे मृत्यु-तिथि नहीं लाई जा सकती।

वीरभद्र की मृत्यु मुन कर उनका राओरिज रानी (रायसिंह की पुत्री) सती होना चाहती थी। अकबर ने उसे रोका और रायसिंह से मिल कर वीरभद्र के निषण पर शोक व्यक्त किया।^४ इन घटनाओं से प्रतीत होता है कि वीरभद्र अपने समय का महत्त्वपूर्ण व्यक्ति था।

जमावन्दियों में वीरभद्र के पुत्र विक्रमादित्य का राज्याभिषेक सं० १६४६ (११९० ई०) में बतलाया गया है, अर्थात् इस प्रकार वीरभद्र की मृत्यु उससे पूर्व होती है, किन्तु मुस्लिम लेख पूर्वोक्त तिथियों को ही मूवना देते हैं। प्रतीत होता है कि लिपिक की भूल से १६४९ सं० (१५९३) को यहाँ १६४६ लिख दिया गया है।

(ग) कथातन्त्र—दशकुमारचरित की पूर्वपीठिका के प्रथम उच्छ्वास में दश कुमारों के जन्म की कथा है। मगध का राजा राजहंस मालवेश से परास्त होकर विन्ध्य के बनों में विसर्जित के दिन काटता है। उसके मित्र भिक्षु-लेश्वर के दो पुत्र तथा विदेश गये हुए उसके तीन मग्नियों के तीन पुत्र उसके पास लाए जाते हैं। राजकुमार राजवाहन भी यहाँ विन्ध्याटवी में उत्पन्न होता है

१. समसाम-उद्दोला : मासिर-उल-उमरा (अनु० ब्रजरत्नदास) : पृ० ३३०-३४, ३५४।

२. 'फागून वदि २, भीमे संवत् १६५३ का मथुरिया चौबे कमले चौबे की संतान का लिखि दोन।' श्री अग्निहोत्री ने यह प्रतिलिपि १९५७ ई० में लिखाई थी।

३. आईन० पृष्ठ ४०६-७।

४. समसाम-उद्दोला : मासिर-उल-उमरा (ब्रजरत्नदास) : पृष्ठ ३३०-३४ ३५४।

और राजा के पास रहनेवाले चार मन्त्रियों के भी एक-एक पुत्र होते हैं। इस प्रकार ये दस कुमार मिन की भाँति रहते हुए युवक होते हैं।^१

पूर्वपीठिका और कषामार की कथाओं में मौलिक अन्तर न होते हुए कुछ भिन्नता मिलती है। पूर्वपीठिका में प्राप्त राजहंस के एक मन्त्री सितवर्मा और उसके पुत्र सत्यवर्मा का नाम दशकुमार-पूर्वकषामार में मतिशर्मा और सत्यशर्मा है, मन्त्रि सत्यवर्मा का सत्यशर्मा का पुत्र दोनों स्थानों पर सोमदत्त ही है। पूर्वपीठिका में पहले राजहंस मालवेश मानमार पर आक्रमण कर उस परास्त करता है, यह अंश कषामार में नहीं है।

पूर्वपीठिका में मिमिदेश प्रहारवर्मा राजहंस की रानी दग्मुती के सोमन्तो-रसव में सम्मिलित होकर वहाँ कुछ समय तक रहता है। मानमार का आक्रमण होने पर वह मुद्र भी करता है, बन्दी बनाया जाता है और छोड़ दिया जाता है। वह प्रस्थान करता है तब उसके दो जुड़वाँ बच्चे और उनकी पालिकाएँ, एक बूढ़ा और उसकी कन्या, पीछे छूट जाती हैं। स्याध्र से वस्तु बूढ़ा पत्थर पर गिरती है और उसके हाथ का बालक छूट कर कालि गाम के शव में धुग जाता है। स्याध्र गाम को पसीटता है। शबर उसे मार कर बालक को ले जाने हैं। बूढ़ा लौटकर अपनी कन्या और दूगरे शिशु को नहीं पाती। यह एक तावम को समाधार दत्तया कर चली जाती है। तावस एक चण्डिका मन्दिर में पहुँचता है, जहाँ पहला बालक शबरों द्वारा बलि चढ़ाने के लिए लाया जाता है। तावस उसे अपना पुत्र कह कर प्राप्त कर लेता है और लाकर राजहंस को देता है, द्रमका नाम अपहारवर्मा रखा जाता है।

कषामार में एक मुनि द्रम बालक को गोबर में लिपटा हुआ पाता है और प्रणिधान से जानता है कि यह प्रहारवर्मा का पुत्र है। प्रहारवर्मा जब पुष्पपुर के सोमन्तो-रसव में सम्मिलित होने आता है, तब मार्ग में राजहंस की पराजय का वृत्तान्त पाकर लौट जाता है। मानमार के संकेत से पुलिन्द प्रहार वर्मा को छूटते हैं और यह बच्चा अकेले पीछे छूट जाता है।

पूर्वपीठिका में प्रहारवर्मा के दूगरे शिशु को एक शबर पाता है और अपने पत्नी को देता है। राजहंस स्वयं उस शबरी की भोज में इस मुलक्षण बालक को देख कर प्रश्न करता है और समाचार जान कर बालक को अपने अधिकार में लेकर उसका नाम अपहारवर्मा रखा है। कषामार में प्रहारवर्मा

१. दश कुमारवर्णितम् : शौतान्वा : वाराणसी : १९५७ : पूर्वपीठिका : प्रथम उच्छ्वास ।

को लौटने पर मात होता है कि उसके राज्य पर उसके सम्बन्धी अधिकार कर चुके हैं। सब वह अपने भानजे सुहृद् नरेश के समीप जाते समय पुनः पुत्रियों द्वारा लूटा जाता है। दूसरा बालक भिक्षुओं के हाथ पड़ता है और भिक्षुव्रति उसे लाकर राजहंस को देता है।

पूर्व पीठिका के अनुसार राजहंस के मन्त्री पद्मोद्भव का पुत्र रत्नोद्भव रत्नों का व्यापार करते करते कालयवन द्वीप में पहुँच कर वहाँ के कालगुप्त सेठ की कन्या सुव्रता को ब्याह कर समुद्र-मार्ग से लौटता है। उसका पोत टूट कर डूब जाना है। गर्भवती सुव्रता को उसकी घाय लकड़ों के सहारे किनारे लगायी है। पुष्पपुर को ओर जाते हुए दोनों विन्ध्यवाटको में पहुँचती है। सुव्रता के पुत्र उत्पन्न होता है और वह मूर्च्छित हो जाती है। घाय बालक को लिए हुए मार्ग का पता लगाने के लिए कुछ दूर जाती है और संयोगवश धामदेव के शिष्य सोमदेव शर्मा से उसकी भेंट होती है। इसी समय हाथों को देख कर घाय बालक को छोड़ कर भागती है। हाथी बालक को उछाल देता है जिसे ऊपर बन्दर पकड़ लेता है। फिर बन्दर उसे सघन पत्तों पर गिरा देता है। सोमदेव शर्मा उसे राजा राजहंस के पास लाते हैं। इसका पुण्योद्भव नाम पड़ता है। कथासार में ठीक यही कथा है किन्तु द्वीप का नाम यवन द्वीप और कालगुप्त की कन्या का नाम माहिषमर्त्री है तथा पद्मोद्भव को लाने वाला कोई 'मुनि' है।

पूर्वपीठिका में कहा गया है कि धर्मपाल मन्त्री का बिलासो पुत्र कामपाल मणिमद्र यज्ञ की कन्या तारावली से विवाह करता है। तारावली पुत्र को जन्म देती है और मणिमद्र को आज्ञा से राजवाहन की भावी सेवा के लिए अपना पुत्र रानी वसुमती के समीप दे जाती है। रानी इसे राजा के पास लाती है। बालक का नाम धर्मपाल रखा जाता है। कथासार के अनुसार मणिमद्र यज्ञ की कन्या तारावली लोपामुद्रा की उपासना कर लौटते समय कैलाश में प्रेतों के स्थान पर एक शिशु पाती है और लाकर पिता को बतलाती है। मणिमद्र उसे बालक सहित कुबेर के पास ले जाते हैं। कुबेर ध्यान द्वारा जानते हैं कि बालक कामपाल का पुत्र है और यज्ञ-कन्या कान्तिमती से उत्पन्न हुआ है। कुबेर के आदेश से तारावली बालक को रानी वसुमती के पास लाकर सौंप जाती है।

पूर्वपीठिका और कथासार दोनों में राजहंस के पास रहनेवाले सुमित्र का पुत्र मित्रगुप्त, सुमति का पुत्र प्रमति, सुमन्त्र का पुत्र मन्त्रगुप्त और सुधृत का पुत्र विधृत ही हैं।

कोष के मत के अनुसार दण्डी के मूल ग्रन्थ में परिवर्तन हुआ है। दण्डी के अनुसार अर्धपाल और प्रमति काण्ठिमती और तारावली से कामपाल के पुत्र हैं तथा सोमदत्त, मिश्रगुप्त और मन्त्रगुप्त वास्तव में कामपाल की शेष तीन पत्नियों के पुत्र हैं। पूर्वपीठिका और उत्तरपीठिका में अर्धपाल, प्रमति और विश्वरुत के वर्णनों में विरोध है। पूर्वपीठिका और उत्तरपीठिका नामों से तत्काल प्रतीत होता है कि ये दण्डी की कृति के भाग नहीं हैं। इस परिणाम की पुष्टि प्रचुर साक्ष्य से होती है।^१

इस मत को देखते हुए प्रतीत होता है कि ऊपर प्रदर्शित पूर्वपीठिका और प्रस्तुत दशकुमार-पूर्वकथासार में प्राप्त कथा का अन्तर क्रमिक परिवर्तनों के कारण है। वीरभद्रदेव को दशकुमारचरित की जो प्रति उपलब्ध रही होगी, उसी पर यह कथा-सार आधारित होगा, किन्तु इसे प्रमाणित करने के लिए पाठ-भेद के अन्य संस्करण उपलब्ध नहीं हैं।

(घ) काव्यकला : प्रस्तुत कथासार में कथा की मौलिकता नहीं ढूँढ़ी जा सकती। माया के क्षेत्र में भी हमारे कवि वीरभद्रदेव को दण्डी का आधार प्राप्त था। यह एक स्वतन्त्र काव्य-रचना नहीं है। तथापि वीरभद्रदेव ने अपनी माया का पर्याप्त प्रयोग किया है और इसी क्षेत्र में हम उनकी रचना-शक्ति के दर्शन कर सकते हैं।

यह कहा जा सकता है कि अपनी शब्द-योजना और वाक्य-रचना में कवि ने दण्डी की शैली से ही समन्वय किया है। इस भाषा में वैद्यों की रीति, पद-लालित्य और अभिव्यक्ति की स्पष्टता है। लम्बे वाक्यों और दीर्घ समासों का तथा गूढता और जटिलता का परिहार वैसे ही अधिक हुआ है, क्योंकि यह रचना 'सार' है। साथ ही दशकुमार-चरित की भाँति ही यहाँ भी शब्दा-डम्बर, अत्युक्ति और कर्ष-कट्ट ध्वनियों से बचने की प्रवृत्ति लक्षित होती है। शब्द-योजना में सौन्दर्य लाते हुए रस की अभिव्यक्ति की गई है।

मङ्गलाचरण में उत्प्रेक्षा और अनुशास का सुरम्य समन्वय है तथा काव्य-शक्ति का उसमें अच्छा निदर्शन है—

'ताण्डवाडम्बरे यस्य सस्ता स्रगिव मस्तकात् ।

भाति भागीरथो भूमौ भूत्यं तं भैरवं भजे ॥ १ ॥'

शैली के निदर्शनार्थ दो गद्यांश यहाँ प्रस्तुत हैं—

'यत्किञ्च मगधाघोश-महामात्य-मतिशर्मसूनुः सत्यशर्मा तीर्थानि पर्यटन्मुं

१. ए हिस्ट्रो आरु संस्कृत लिटरेचर : आक्सफोर्ड : १९२८ : पृष्ठ २९७-९९ ।

देशं प्रविवेक्ष । प्रविश्य च महान्तमनेहसमिहातिवाह्य कस्यचिदप्रहारस्य समान-
कुलशीलां बालीन्नाम कन्यामुपार्यस्त । तस्यां चानपर्यायां तस्वसारं गौरीं नाम
कन्यामुदबहत् । सा च पञ्चेपु-सञ्चार-चतुरे वयसि वर्त्तमाना तस्य प्राणादपि
प्रियतमा समभवत् । सोऽपि तस्याः । एवं विषयोपभोगपरयोस्तयोः कियताचित्
कालेन सकलजननयना (नन्दन)-नन्दनस्समजनि । अहमेतस्य घात्रिकाप्सुं बालमा-
दाय सह कात्या विकट-उट-दुःसंचारामामति गम्भीरायां सरिति विजन-प्रदेशे स्नातु-
मभ्ययासिपम् । असूया-कलुषाशया च कालो दुरवगाहे तत्प्रवाहे सवालां मां
पातयित्वा निजोद्भवसितमपासरत् । प्रवाहपतित्वा चाहमुन्मज्जननिमज्जनाकुलित-
चेता बालेनावलम्ब्यमाना विधि-विलसितेनानेक-शास्त्रमशोकानोकहमवालम्बिपि ।'

‘.....सती राजवाहन-पुरःसरा दश कुमारः कुमार-काय-व्यूह-भ्रमाधा-
यिनो वसुमत्या भूयसा प्रयासेन सम्प्रपिता विविध-विद्याविनोद-मोदमान-मानसा
मदन-सर्वस्वमनेक-विलासोपदेश-पेशलमङ्गनापाङ्ग-विश्रामधाम वयः समाग-
दन् ।’

संस्कृत के अन्य कथासार

संस्कृत के प्राचीन एवं मध्ययुगीन काव्यों में ये अनेक ऐसे रहे हैं, जिन्होंने
जनमानस को आन्दोलित-उद्वेलित किया है । कितने ही कवि अपनी मौलिक
काव्य-रचनाओं के साथ साथ उक्त प्रभावकारी काव्यों के कथासार अपनी
शब्दावली में प्रस्तुत करने का लोभ संवरण नहीं कर सके हैं । ईसा की कुछ
शतियों के पश्चात् हमें यह प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होने लगती है । यह पद्य और
गद्य दोनों क्षेत्रों में उपलब्ध है ।

वाल्मीकि-रामायण का प्रभाव अद्भुत रहा है । इस उपजीव्य ग्रन्थ की
कथा का आधार लेकर जहाँ अनेक मौलिक काव्यों की सृष्टि हुई, वहाँ इसकी
कथामात्र को भी प्रस्तुत किया गया है । धीमेन्द्र की रामायण-मञ्जरी, अण्णय
दीक्षित का रामायण-सार-संग्रह, रघुनाथ का रामायण-सार-संग्रह और कृष्ण-
राज उदयर तृतीय की रामायण-कथा-पुष्प-मञ्जरी उदाहरण रूप में प्रस्तुत
किये जा सकते हैं ।

पुराणों में प्राप्त कथाओं के सार भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं, जैसे
महाभारत से धीमेन्द्र की भारत-मञ्जरी या कृष्णाराम का नैषधचरितसार,

१. पूर्वश्लोक से तुलना के लिए देखिये-दशकुमारचरितम् : बीसम्बा
संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी १ : १९५७ : प्रथमोच्छ्वासः
पृष्ठ ३९-३९ ।

हरिवंश पुराण से गोविन्द दीक्षित का हरिवंश-सार-चरित, अथवा श्रीमद्-भागवत से कृष्णराज उदयर तृतीय का कृष्ण-कथा-पुष्प-मञ्जरी आदि ।

परवर्ती काव्यों में कथा-काव्य अधिक प्रभावकारी रहे हैं । बृहत्कथा के लघु संस्करण के रूप में क्षेमेन्द्र की बृहत्कथा-मञ्जरी और सोमदेव कथा-सरित्-सागर विख्यात हैं । इस कड़ी में हम कृष्णदेवराय का ग्रन्थ सकल-कथा-सार-संग्रह पाते हैं ।

गद्य-काव्यों में कादम्बरी और दशकुमारचरित से विद्वज्जगत् सुपरिचित है । अभिनव ने कादम्बरी-कथासार नाम से सर्गबन्ध रचना की । सुमतीन्द्र ने अभिनव कादम्बरी नामक ग्रन्थ लिखा है । इसी प्रकार अप्पय दीक्षित का दशकुमार-चरित्र-संग्रह ग्रन्थ लिखा गया और वीरभद्रदेव ने दशकुमार-पूर्वकथा-सार की सर्जना की ।^१

इस प्रकार हम देखते हैं कि वीरभद्रदेव का दशकुमार-पूर्व-कथासार (जिसका दुर्भाग्य से प्रथम परिच्छेद ही प्राप्त है) कथासार लिखने की परम्परा को ही अक्षर करता है । मौलिक न होने पर भी वह संस्कृत-साहित्य की इस धारा की एक सुरम्य तरङ्ग है ।



१. विशेष विवरणों और उदाहरणों के लिए देखिये, हि० कला० सं० लिट्० लघुकाव्य ।

(३) संहिता (वंशावली-काव्य) : बघेलवंश-वर्णनम्

(क) पाण्डुलिपि श्रीर कवि का परिचय--संस्कृत पाण्डुलिपियों की सूची के अन्तर्गत हरप्रसाद शास्त्री ने सोमदेव द्वारा रचित 'कथासरित्सागर' को एक पाण्डुलिपि की सूचना प्रस्तुत की है, जिसका लिपिक रूपनि मिथ है। यह पाण्डुलिपि रायल एशियाटिक सोसायटी में सुरक्षित है। इसके पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दोनों भागों के पृष्ठक्रम पूषक्-पूषक् है। पहले भाग में ४२२ पत्रों में ९ वें लम्बक-प्रलङ्कारवती तक की कथा है। पृष्ठ ४२२ पर निम्नलिखित श्लोक है :-

‘वैशाखमासे सितकामतिथ्यां
श्रीभावासिहास्य-नृवाणयैव ।

व्यलेखि सदरूपणिमिश्रकेण
पूर्वार्द्धमेतत्तु बृहत्कथायाः ॥’

दूसरे भाग में ४३४ पत्रा हैं तथा ग्रन्थ के अन्त में निम्नलिखित उल्लेख है--

‘समाप्तोऽयं कथासरित्सागरः ।
शुभमस्तु । श्रीरस्तु । संवत् १८६९ ॥’

इसके पश्चात् ७ पृष्ठ और हैं, जिनमें लेखक ने अपने आश्रयदाता भाव-सिंह की वंशावली और उनके समासदों के नाम १०० श्लोकों में दिये हैं। अन्त में पुनः निम्नलिखित पुष्पिका है—

‘समाप्तद्वयं ग्रन्थो बृहत्कथास्यः ।’

कथासरित्सागर के अतिरिक्त प्राप्त इन १०० श्लोकों को १९३४ ई० में शास्त्री जो ने सूची में ही प्रकाशित कर दिया है।^६

तत्कालीन रीवा-नरेश महाराज गुलाबसिंह के प्रधान मन्त्री दीवान बहादुर पं० जानकी प्रसाद चतुर्वेदी से इस वंशावली-काव्य की हिन्दी-अनुवाद

सहित प्रकाशित कराना चाहा । रोवा के श्री नन्दकिशोर पोष्टाचार्य ने हिन्दी-अनुवाद कर दिया । यह सानुवाद प्रति पंडित ब्रजेंद्रनाथ चतुर्वेदी के समोप ठया बीछे प्रो० (भूतपूर्व) अखतर हुसेन निजामी के अधिकार में बघेनख्खड हिस्ती रेकार्डस कमीशन में रही आई । प्रो० (अब रिस्तिवल) विन्दासणि मालवीय ने अनुवाद में संशोधन कर अंग्रेजी सारास भी तैयार किया । अनेक स्यानीय विद्वानों ने प्रकाशन-योग्य प्रति तैयार करने में सहयोग दिया । १९५७ ई० में विन्ध्य संस्कृत-विश्व-परिषद् ने रोवा से इसे प्रकाशित कर दिया । इस प्रकाशित प्रति में मन्त्री, विन्ध्य-संस्कृत-विश्व-परिषद् के अतिरिक्त नन्दकिशोर पोष्टाचार्य एवं श्री अखतर हुसेन निजामी को महत्त्व-पूर्ण भूमिकाएँ हैं । हिन्दी अनुवाद सहित मूल श्लोक हैं, जिनमें लिपि की त्रुटियाँ संशोधित रूप में छापी गई हैं और मूल शब्द (जो मूची में हैं), जिनमें परिवर्तन किया गया है, पाद-टिप्पणों में दे दिये गए हैं । अन्त में नामानुक्रमणी और अंग्रेजी सारानुवाद है । इस बंशवली का नाम इस प्रकाशित रूप में रूपनिसम्मर्णा कृत 'बघेलवंशवर्गनम्' कर दिया गया है ।^१ अतः अब 'बघेल-वंशवर्गनम्' नाम से ज्ञात इन १०० श्लोकों पर यहाँ हम विचार करने जा रहे हैं ।

अन्तिम श्लोक में मङ्गल-कामना है । उससे पूर्व निम्नलिखित श्लोक है :-

'पाण्डवाण्डुपिचन्द्रेण्डे विक्रमाकांतु मूभृतः ।

भाद्रे मासि दिते पक्षे पूणिमायामलोलिखत् ॥ ९९ ॥'

अर्थात् संवत् १७३५ की भाद्र पूणिमा (१६७८ ई०) को यह ग्रन्थ लिखा गया । जैसा ऊपर पुष्पिका में संकेत है, कलकत्ता में प्राप्त पाण्डुलिपि का लिपिकाल संवत् १८६६ (१८१२ ई०) है ।

कवि इन श्लोकों सहित सम्पूर्ण ग्रन्थ को कहीं बृहत्कथा और कहीं कपासरित्-सागर कहता है -

नरवाहनदत्त-सङ्गता विविधारवर्दे-रसा बृहत्कथा ।

रचिता मनु सोमशर्मणा कुचर्ता सं नृप-भाववर्मणः ॥ ९३ ॥

ऐसा प्रतीत होता है कि गुणादय को पेशाची भाषा में लिखित बृहत्कथा पर आधारित होने से म्यारहवीं शती के उत्तरार्द्ध में सोमभट्ट द्वारा संस्कृत में

१. इस प्रकाशित ग्रन्थ में अन्तिम पुष्पिका का परिवर्तित रूप इस प्रकार है — 'समाप्तश्चायं ग्रन्थो बघेलवंशवर्गनाख्यः ।'

लिखित कथासरित्सागर को सत्कालीन पण्डित बृहत्कथा भी कहते थे। दूसरी बात यह भी प्रतीत होती है कि इस वंशवर्णन के प्रणेता ने इन १०० श्लोकों को अपनी ओर से कथा-सरित्सागर के अङ्गभूत ही बना देना चाहा है।

रूपणि ने कथासरित्सागर की इस प्रतिलिपि की कहानी की ओर भी संकेत किया है—

‘कान्याख्यान-कला-विदग्ध-धिपणः श्रीभावासिहो नृपः ।

काश्मीराद् भगवन्मुखोद्गतमिदं प्राप्योत्सत्सद्रसम् ॥

संशोष्याखिल-पण्डितैः कृतचमत्कारं ततो रूपणि-

द्वाराऽलोलिसदद्भुतार्थ-गहनं सर्वार्थसारप्रदम् ॥ ८८ ॥’

अर्थात् बघेल-नरेश भावासिह (१६७५-९४ ई०) काव्य, आख्यान और कला के प्रेमी थे। उन्होंने भगवान् के मुख से उद्गत^१ इस सरस कथा (कथासरित्सागर) को काश्मीर से प्राप्त कर (अपनी सभा के) समस्त पण्डितों से संशोधित कराकर रूपणि से (शुद्ध रूप में) लिखवाया।

नागरी-प्रचारिणी-सभा काशी की ओर से रोवा में प्राचीन ग्रन्थों की खोज करने वाले श्री रघुनाथ शास्त्री को ‘ताराभक्ति-सुधारणव’ नाम की एक संस्कृत-पाण्डुलिपि प्राप्त हुई थी, जो १९५६ ई० में काशी भेजी गई। इस ग्रन्थ की पुष्पिका इस प्रकार थी—

‘संवत् १७४६ समये कार्तिक-वृष्णपक्ष-त्रयोदश्यां दिने लिखायितं सिद्धि-श्रीमहाराजाधिराज-श्रीभावासिहदेवेन । लिखितमिदं पुरतः रूपणि-मिथेण बान्भवप्रदेशे अमरपट्टने ।’

इन पंक्तियों को देखने से ज्ञात होता है कि सम्भवतः रूपणि मिथ अमर-पाटन कस्बे (जिला सतना) का निवासी था और संवत् १७४६ (१६८९ ई०) में भी वह संस्कृत ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ महाराज भावासिह के लिए किया

१. तुलना के लिए देखिये कथासरित्सागर के अन्तिम उल्लेख—

‘इति नरबाहनदत्तः स्वकथामाख्याय भुनिजनं निखिलम् ।’

‘.....इत्येषा शशिशेखरेण तुहिनश्माभूत्सुताऽम्पर्यनात् ।

सोत्साहेन बृहत्कथा निगदिता कैलासपृष्ठे पुरा ॥’

‘...एतां भद्रवदनोद्गतां पठति यो यो वा शृजोत्पादरात् ।’

यहाँ यह दृष्टन्य है कि कथासरित्सागर का प्रणेता भी इसे बृहत्कथा ही कहता है, अतः रूपणि की भूल नहीं मानी जा सकती।

करता था। यह सहज ही समझा जा सकता है कि हरणि को संस्कृत का अच्छा ज्ञान रहा होगा।

बघेलवंशवर्णनम् के श्लोकों में से एक इन प्रकार है —

‘सभासदानां विराणां श्लोकानां च समूहकः।

भावासिंहस्य तोषायालेखि रूपणि-शर्मणा ॥ ९८ ॥’

अर्थात् सभासदों, विद्वान् ब्राह्मणों और भावसिंह को सन्तुष्टि के लिए रूपणि शर्मा द्वारा ये श्लोक-समूह लिखे गये। अथवा भावसिंह के सन्तोष के लिए सभासद पाण्डितों द्वारा रचित श्लोक-समूह रूपणि द्वारा लिपिबद्ध किये गये। यह दूसरा अर्थ इस बात पर कि हरणि ही इन सौ श्लोकों का रचयिता है, सन्देह उत्पन्न कर देता है। इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि यह विशिष्ट श्लोक तथा इसके पीछे के दो और श्लोक^१ एवं काश्मीर से ग्रन्थ-प्राप्ति का सूचक उक्त श्लोक अवश्य ही हरणि द्वारा लिखे गये।

इस पाण्डुलिपि को चर्चा करने वाले महामहोपाध्याय हरदत्त शास्त्री^२ डा० हरदत्त शर्मा^३ और श्री निजामो^४ ने इन समस्त श्लोकों का हरणि शर्मा (या मिश्र) द्वारा रचित ही माना है।

हम यह देख चुके हैं कि हरणि में शत्रु-रचना को शक्ति थी और उसे संस्कृत का अच्छा ज्ञान था। यदि इन श्लोकों का रचयिता हरणि ही है, इसका स्पष्ट प्रमाण नहीं है। इन श्लोकों के अन्तर्गत भावसिंह को सभा के नी

१. श्लोक ९९—‘पाण्डवा०’ तथा १०० :

मङ्गलं लेखकानां च पाठकानां च मङ्गलम्।

मङ्गलं सर्वलोकानां भूमौ भूपति-मङ्गलम् ॥

२. ए० डेस० कै० : पृष्ठ ३२२ :

‘लिपिक (रूपणि) की रचना पाण्डित्यपूर्ण है और वह काव्य-सौन्दर्य से रहित नहीं है। प्रतीत होता है कि वह भाव (सिंह) देव की सभा का एक विद्वान् रहा होगा।’

३. ‘बाघेल रूलर्स०’ : ‘रूपणि मिश्र एक विद्वान् पुरुष था। प्रतिलिपियों में उसने ९९ (१००) श्लोक जोड़ दिये, जिसमें उससे भावसिंह की वंशावली दो तथा उसके सभासदों का उल्लेख किया।’

४. ‘नाइन जेम्स०’ : ‘हरणि शर्मा ने स्वरचित श्लोक जोड़ दिये।’

तथा निजामो : ‘जीनियालाजिकल सोसैज आफ दि बघेल डायनेस्टी आफ रोवा’ नवम भारतीय इतिहास परिपद् : अन्नामलइनगर : दिसम्बर, १९४५ : विवरण : पृ० १५०-५३।

रत्नों के उल्लेख हुए हैं जिनमें रूपणि का नाम नहीं है। इससे प्रकट होता है कि बंदा-वर्णन के साथ ही रत्नों के उल्लेख भी रूपणि ही कर रहा है। अतः हमें उपर्युक्त श्लोक का पहला अर्थ स्वीकार होगा और 'अलेखि' शब्द को 'अरवि' के समान मानना होगा। वास्तव में यही तर्क-सम्मत है कि संशोधित कथा-सरित्सागर की प्रतिलिपि को पूरी करते-करते अपने आश्रयदाता भावसिंह एवं समा के विद्वानों की प्रशम्नता के लिए रूपणि ने यह प्रशस्त्यात्मक बंशावली लिख दी।

ग्रन्थ के आरम्भ में दो श्लोकों में दर्शन-परक (ब्रह्म और प्रकृति की) वन्दनाएँ हैं। आगामी दो श्लोकों में बघेलवंश का गुणगान है। पाँचवें श्लोक में कर्णदेव से बंशावली है। ३७ वें श्लोक तक रामचन्द्र तक १९ राजाओं का वर्णन है। ३७ से ५८ वें श्लोक तक रामचन्द्र और उनकी राजधानी रामनगर तथा दुर्ग बान्धवगढ़ (४०-४९) का काव्यात्मक वर्णन है। ५९ से ६४ वें श्लोक तक सोप राजाओं का उल्लेख है। ६५ से ७५ वें श्लोक तक भावसिंह की प्रशस्ति है। इस प्रकार कुल २४ राजाओं का वर्णन है। आगे भावसिंह की राजधानी रोवा और समासदों (श्लोक ७९ ८७) का वर्णन देवस्तुति, फलस्तुति आदि है।

(ख) ऐतिहासिक सामग्री का तुलनात्मक अध्ययन-बघेलखण्ड के इतिहास के सम्बन्ध में बघेलवंशवर्णनम् ग्रन्थ में जो सामग्री उपलब्ध है, उसे हम तीन भागों में बाँट सकते हैं। पहला भाग है, कर्णदेव से बोलारदेव तक राजाओं की सूची, जिस पर मतभेद है। दूसरा भाग है, सोप राजाओं की सूची। तीसरा भाग है, विभिन्न स्थलों पर प्राप्त अन्य सूचनाएँ।

कर्णदेव से बोलारदेव तक पहला मतभेद संस्कृत के स्थानीय दो ग्रन्थों-वीरभानुदय और बघेलवंशवर्णनम् में ही है; दूसरा मतभेद बघेलवंशवर्णनम् और स्थानीय हिन्दी लेखों के बीच है। हिन्दी लेखों में एक वर्ग है स्थानीय जमावन्दियों का, जैसे एकत्रा बान्धवगढ़। ये लेख बहुत कुछ प्रामाणिक हैं। दूसरा वर्ग है १९ वीं शती की कविताओं का, जो प्रायः चारणों द्वारा लिखित है। इनमें प्रशस्तिमूलक कल्पनाएँ हैं। तीसरा वर्ग है राजघरानों में प्राप्त बंशावलियों का, जिनमें परम्परा के साथ स्मृति का योग है। यहाँ यह बतलाना समीचीन होगा कि बोलारदेव तथा उसके पूर्ववर्ती नामों में ही मतभेद है। अतः उनमें से कुछ की ऐतिहासिकता पर भी संशय है। यहाँ पर हमारे विचार के मुख्य आधार संस्कृत के उपर्युक्त दो काव्य तथा जमावन्दियाँ हैं। वंश-सूची के जिस प्रारम्भिक भाग पर मतभेद है, उसका तुलनात्मक स्वरूप निम्न-लिखित है—

वीरभानुदयकाव्यम् सर्ग १६-१९	बधेलवंशवर्णनम् श्लोक ५-१६	जमावन्दिर्पा (परि० १)
(व्याघ्रपाद मुनि का वंश या भारद्वाज व्याघ्रपाद् गोत्र)	(गुर्जरेश्वर का सेवक बधेलवंश)	१—व्याघ्रदेव
		२—कणदेव
१—भीम (नरेन्द्र)	१—कणदेव (गुजरात)	३—सोहागदेव
२—राणिङ्गदेव (गहोरा)	२—सुहागदेव	४—सारङ्गदेव
३—बालनदेव	३—सारङ्ग	५—धीसलदेव (अन्यत्र
४—बल्लारदेव	४—धीसलदेव (कालिंजर)	विलास या विशाल- देव) भाई कालि- जर गहोरा
	५—भीममल्ल	६—भीममल (या
	६—रानिकदेव	भीमल)
	७—बलन	७—रानिकदेव (अन्यत्र
	८—दलक	अनौकदेव)
	९—मलकेश	८—बलनदेव
	१०—वरियार	९—दलकेश्वर (या
	११—बोलारदेव	दलकेन्द्र)
		१०—मलकेश्वर
		११—वरियारदेव
		१२—बोलारदेव

हिन्दी के सभी लेख व्याघ्रदेव के साथ यह वंशावली देते हैं, और उनमें कहीं मतभेद नहीं है। वीरभानुदय काव्य में यह व्याघ्रदेव व्याघ्रपाद मुनि अथवा व्याघ्रपाद् गोत्र के रूप में विद्यमान है।^१ बधेलवंशवर्णनम् में व्याघ्रदेव की कहीं चर्चा नहीं है। इसके अनुसार बधेल छोग गुर्जरेश्वरों (सम्भवतः धौलुष्यनरेशों) के सेवक थे तथा कणदेव गुजरात में ही था।^२ जमावन्दिर्पा कणदेव की गुजरात में स्थिति की पुष्टि करती है, किन्तु उनमें से कुछ उसका सम्बन्ध बाणघण्टसे जोड़ती है। कही यह कणदेव व्याघ्रदेव का पुत्र और

१. वीर० : सर्ग ११५, १९, २१, २८ ।

२. श्लोक ४ : 'प्रतिक्षणानन्दित-गुर्जरेश्वरः ।'

तथा ५ : 'स कणदेवः प्रबभूव गुर्जरे ।'

कहीं भाई हैं^१ । सम्भव है, कर्णदेव हो गुजरात से आने वाला प्रथम व्यक्ति हो और इस कारण इस काव्य में वही वंश-प्रवर्तक रूप में रखा गया हो ।

वधेलवंशवर्णनम् में बोललदेव को कालिंजर के भर-वंशियों का सेवक बतलाया गया है । तथा भीममल्ल उसका पुत्र है ।^२ जमावन्दियों में ये दोनों भाई-भाई हैं और कालिंजर के भर राजा के चाकर (सेवक) होते हैं । कहीं भर राजा का नाम भी बोललदेव है । इन भाइयों को गहोरा की जागीर और ठाकुर का पद मिलता है और भीममल्ल (या भीममल या भीमल) गहोरा के लोधी शासक के मन्त्री तिवारी को फोड़कर गहोरा पर अधिकार कर लेते हैं ।^३ बोरमानूद्य में इसी भीम (नरेन्द्र) से वंशारम्भ होता है तथा उनके पुत्र रागिङ्गदेव के साथ गहोरा शासन का पहला वार उल्लेख होता है ।^४ वधेलवंशवर्णनम् तथा जमावन्दियों में भीम के पुत्र का रानिकदेव एवं चारणों के लेखों में अनोकदेव नाम मिश्रता

१. परिशिष्ट १ (क)—एकत्रा० : “वधेलन के औलादि लिखा जब ते गुजरात ते आए । पुरखा ठाकुर कहामें लागि । पुरिखा ३—जैसिहदेव १ वीरभजदेव २ व्याघ्रदेव ३ । गुजरात ते आए पुरिखा तीन भे हैं—कर्णदेव ४ सोहागुदेव ५ सारंगदेव ६ ।” परिशिष्ट १ (ख)—वंशावली बांधीप (ति) । ‘गुजराति मा भे पुरिखा तीन—१ जैसिहदेव २ वीरभदेव ३ व्याघ्रदेव भाई करनदेव । करनदेव के वंसावली गुजराति मा तीन ।’ परिशिष्ट १ (ग) ‘……३ व्याघ्रदेव भाई करनदेव के बांधी । व्याघ्रदेव के वंसावली ४ पुत्र करनदेव ५ सोहागदेव ।’

२. श्लोक १२ : ‘भरान्वये बोललदेव एषितः……कलिञ्जरे……।’
तथा १३ : ‘तत्सूनुरासीत्……स तु भीममल्लः ।’

२. परि० १ (क) : ‘कालिंजर हिया दुइ भाई भर राजा के चाकर भे । बोललदेव जेठे भीममल लहुरे गहोराहि आएँ ।……भीममलदेव गहोरा के लोधिनि कहें मारि के गहोरा छेड़ाइ लोन्हेनि ।’

परि १ (ख) : ‘कालिंजर आइ दुइ भाई भर राजा बोलल देव के चाकर भे । गहोरा जागीरि पाइनि । ठाकुर के खिताब पाइनि । लोधिनि का मारिनि । गहोरा अमल मा ।’

परि १ (ग) : ‘……तिवारी मिलाइ के आधा राज देइ काहों हींसा । लोधिनि का मारिनि ।’

३. सर्ग १।६-१०

है।^१ बघेलवंशवर्णनम् के दलक और मलकेश का उल्लेख जमाबन्दिपों एवं अन्य लेखों में दलकेश्वरदेव एवं मलकेश्वरदेव नाम से हुआ है। वीरभानूदय में इनका तथा मलकेश के पुत्र बरियार का नाम नहीं है। साथ ही बरियार^२ के पुत्र के रूप में बघेलवंशवर्णन एवं जमाबन्दिपों में आया हुआ बोलारदेव^३ वीरभानूदय में सीधे बालन (या बलन) का पुत्र है।^४ इसके पश्चात् कोई मतभेद नहीं है।

बघेलवंशवर्णनम् में बोलारदेव से आगे के नाम इस प्रकार हैं—१२—सिंहदेव, १३-वीरम, १४-नरहरि, १५ भयद (तथा भैरव), १६-शालिवाहन, १७-वीरसिंह, १८-वीरभानु, १९-रामचन्द्र, २०-वीरमद्र, २१-विक्रमादित्य, २२-अमरसिंह, २३-अनूरसिंह एवं २४-भावसिंह (कवि का आश्रयदाता)।

बोलारदेव के पुत्र सिंहदेव से लेकर वीरसिंह तक नाम-सूची छोड़ कर इस काव्य में कोई ऐतिहासिक सूचना नहीं मिलती। केवल प्रशस्त्यारम्भक उद्गार प्रत्येक राजा के लिए प्राप्त है। वीरभानु को सुकुमारदेवो का पुत्र बतलाया गया है,^५ जिसका समर्थन वीरभानूदय से होता है।^६ वीरभानु के पुत्र रामचन्द्र के सम्बन्ध में नवीन सूचनाएँ हैं। रामचन्द्र के देश (राज्य) में बान्धव नामक दुर्गरत्न है।^७ दुर्ग के पार्श्व में रामचन्द्र की राजधानी रामनगर अवस्थित है।^८ उसके राज्य में ही प्रयाग है, जहाँ त्रिवेणी की शोभा है।^९ इसके आगे केवल भावसिंह के सम्बन्ध में कुछ नयी जानकारी दी गई है।

१. परिशिष्ट १ (क), (ख) तथा (ग)।

२. बघेल० श्लोक १८: 'बरियारनामा.....।'

तथा १९: 'बोलारदेवोऽभवदस्य सूनुर्बघेल-वंशाश्रिमणिर्महीशः।'

३. वीर० १९: 'पुत्रश्च.....बल्लारदेवो बलिदान-शौण्डः।'

४. बंशारम्भ-सम्बन्धो विस्तृत ऐतिहासिक चर्चा के लिए देखिये—
पीछे अध्याय २ (क)।

५. श्लोक ३६: 'अमूदयं श्रीसुकुमारदेव्या.....।'

६. सर्ग १।८८-९७: 'अयाश्रय देवो सुकुमारदेवो...सूते स्म पुत्रं.....
श्री वीरभानु.....।'

७. श्लोक ४०: 'देशे यस्य प्रसूतमहसो बान्धवो दुर्गरत्नम्।'

तथा ४१-४९।

८. श्लोक ५०: 'पार्श्वे तस्य शिविप 'नगरं.....।'

तथा ५१: 'विभाति रामनगरं.....।' एवं ५२-५४।

९. श्लोक ५५: 'तस्य श्रीरामनुपतैर्विषये शीर्ष-सेवितः। प्रयागोऽस्ति.....॥'

भावासिंह अनूपसिंह की रानी कमला से उत्पन्न हुए ।^१ ये बान्धवेश कहलाते थे ।^२ दिल्लीश्वर (औरंगजेब) इनका मित्र था ।^३ यवन सम्राटों से पीड़ित ब्राह्मणों का वे पालन करते थे ।^४ बान्धवगढ़ उनका दुर्ग था । वे यज्ञ करते थे । उनकी राजधानी रेवा (रेवापुरी) थी । उनकी राज्य-सीमा पर ये गाँव थे—केदा, कोटर, हंसजात और टमकु ।^५

श्री निजामी के अनुसार रामचन्द्र की राजधानी 'रामनगर' का तादात्म्य बान्धवगढ़ से ५ मील पूर्व स्थित रामपुर कस्बे के साथ हो सकता है ।^६ वास्तव में यह रामपुर (नैकिन-जिला सीधौ) बान्धवगढ़ (जिला शहडोल) से लगभग ६० मील दूर है और बान्धवगढ़ के निकट कोई अन्य रामपुर नहीं है । अतः यह रामनगर वर्तमान रामनगर कस्बा (तह० अमरपाटन, जिला सतना) हो सकता है, जो बान्धवगढ़ से लगभग ३५ मील उत्तर-पश्चिम है । यहाँ एक पुराना किला, बड़ी बरती और बाजार है । भावासिंह के छोटे भाई जुभारसिंह इसी रामनगर के इलाकेदार थे ।^७

प्रयाग पर रामचन्द्र का अधिकार होने का प्रमाण जमावन्दियों में भी मिलता है ।^८ साथ ही बीरभद्रचम्पू में भी यह अधिकार उल्लिखित है ।^९

१. श्लोक ६५ : 'सद्राजो कमलाभिधा ... प्रासोष्ट' श्री भावासिंहः ।'

२. श्लोक ६६ : 'बान्धवगिरिः श्रीभावासिंहः प्रभुः ।'

तथा ७८ : 'श्रीबान्धवेशमव्यादसौ विन्ध्य-भूमिघर-वासिनी ।'

३. श्लोक ७३ : 'यं ...दिल्लीशो मनुते हितं ... ।'

४. श्लोक ७५ : 'सम्राजो ययना द्विजातिदमनाः ... ।'

५. श्लोक ७६ : 'दुर्गो यस्य चकास्ति बान्धवगिरिः प्राग्याज्य-धारा-हृते-
स्तुष्टो यस्य हुताशनोऽस्ति विदिता रेवापुरी मुन्दरी ।
केदा-कोटर-हंसजात-टमकु-ग्रामाः परिच्छेदनाः
सीम्नो यस्य भुवः सदाऽवति सतः श्रीभावासिंहः प्रभुः ।'

६. 'नाइन जेम्स०'

७. परि० १ (क) एरुना । देखिये आगे अध्याय ५ (क) ।

८. परि० १ (ग) : 'प्राग (प्रयाग) के किला के धूनि भै तब कालि-
जर छौंकि गा ।' अर्थात् रामचन्द्र ने १५६९ ई० में प्रयाग में किले
की नींव डलवाई । किन्तु अकबर ने १५८४ ई० में प्रयाग का किला
बनवाया और उसका नाम 'इलाहाबाद' रखा । अतः इसके पूर्व ही
कभी प्रयाग रामचन्द्र के हाथ से चला गया होगा । (देखिये—
अकबर : निकामुद्दीन अहमद : ईलियट एण्ड डौसन : भाग २ :
१६५२ : पृष्ठ १२१ ।

९. देखिये आगे अध्याय ५ (क)

कवि के आश्रयदाता भावसिंह के पिता अनूपसिंह का जन्म सं० १६८२ (१६२५ ई०) में हुआ था। उनके जेठे पुत्र मानसिंह की पिता से पूर्व मृत्यु हो जाने से भावसिंह को राज्य मिला।^१ अनूपसिंह का राज्य १६५० ई० में आरम्भ हुआ। औरछा (जिला दतिया) के पहारसिंह बुन्देल के आक्रमण से १६५१ ई० से ५ वर्ष तक अनूपसिंह रोवा के बाहर रहे। १६५६ ई० में वे शाहजहाँ के दरबार में हाज़िर हुए। उन्हें तीन हजारों मनसब देकर पुनः रोवा की गद्दी पर प्रतिष्ठित किया गया और बान्धवगढ़ पर भी उनकी सत्ता मान ली गई।^२

इस समय छत्रसाल बुन्देला का उदय हो रहा था। १६७२ ई० में उन्होंने रोवा (जमुनीमान) बघेल वंश के बान्धव महर (जिला सटना) के बघेल शासक को पटना-राज्य का अधीनस्थ बना लिया और पश्चिमी बघेलखण्ड की बहुत सी सीमा बुन्देलखण्ड में सम्मिलित कर ली। दिल्ली के संकेत पर भावसिंह के राज्यकाल (१६७५-१४) में मुगल सेनाओं ने छत्रसाल की बाढ़ को पीछे धकेला।^३ सम्भवतः इसी वर्ष में रूपणि ने दिल्लीशहर को भावसिंह का मित्र बनलाया होगा।

भावसिंह का जन्म आश्रय कृष्ण १४, संवत् १७०३ (१६५० ई०) में हुआ था। उनके बहुत साहिदेई मिर्जा रावा जयसिंह कछवाह के पुत्र राजा रामसिंह की तथा एक लक्ष्मी राणा भोमसिंह के पुत्र सुजमल को (सन् १६८७ में) ब्याही गई थी। भावसिंह का पहला विवाह १४ वर्ष की आयु में जित्तीड़ के रामा राजसिंह की कन्या अजय कंवैरि के साथ हुआ था। इसके अतिरिक्त १८ विवाह और हुए थे। इनके अनेक पुत्रों में से कोई जोखिब नहीं रहे, इसने इन्होंने अपने छोटे भाई के पुत्र अनिरुद्ध सिंह (जन्म सं० १७३३-१६७६ ई०) को गोद लिया और यह व्यवस्था भविष्य में अनिरुद्ध सिंह की हत्या का कारण बनी। भावसिंह की मृत्यु चैत्र शुक्ल ११ सं० १७५१ (१६९४ ई०) को हुई तथा अनिरुद्ध सिंह उसी वर्ष पौष शुक्ल १२ (सन् १६९५) को मारे गए।^४

रूपणि ने भावसिंह की राज्य-भोग के दिन चार गाँवों का उल्लेख किया है, उनमें कोटर का उल्लेख वीरमानन्द काव्य में प्राप्त है। यह गाँव मधुना-

१. परि० १ (क)—एकपा :

२. आईन० पृष्ठ ४०७।

३. मगवानदास मुष्ट (डा०) : महाराजा छत्रसाल बुन्देला : आगरा : १९५८ : पृष्ठ ४३, ५६-५९।

४. परि० १ (क) : एकपा।

तट पर था।^१ इससे प्रतीत होता है कि भावसिंह के राज्य की उत्तरी सीमा यमुना-तट तक विस्तृत थी।

अजमेर ने १५९७ ई० में वाण्यवगढ़ का घेराव कराया था और १६०२ ई० में बीरमद के अवैध पुत्र दुर्बोधन को वाण्यवगढ़ की सत्ता सौंप दी थी।^२ किन्तु जहाँगीर ने सं० १६६१ (१६०५ ई०) में वादशाह होते ही अपने 'बन्दह' बीरमद के वैध पुत्र विक्रमादित्य को राजा बनाकर १८ परगनों की सत्ता उन्हें सौंपी। विक्रमादित्य दिल्ली से लौटे किन्तु उन्होंने वाण्यवगढ़ को राजधानी न बनाकर रोवा को बनाया।^३ तब से रोवा ही बघेलों की राजधानी रही, यद्यपि उन्हें 'बान्धवेश' कहलाना आज तक प्रिय है। रूपणि ने इसी रोवा-राजधानी को 'रेवा-पुरी' लिखा है।

रूपणि ने भावसिंह के ९ समासदों के उल्लेख किये हैं। इनमें से ६ विद्वान् थे। बालकृष्ण सूरि शास्त्रों के ज्ञान में अजेय थे, साय ही धर्मवान्, उदार, सुशील, गम्भीर और विचारशील थे।^४ किशोर समस्त विद्याओं के व्यसनी और पण्डितों को मुग्ध करने में चतुर थे।^५ गोवर्द्धन वाजपेयी साहित्य और न्याय के मर्मज्ञ थे।^६ पार्श्वनाथ गौड़ वंश के लालमणि विद्वान्, सज्जन और

१. बीर० ४११ : 'मय प्रयातो बीरीश्व' कोटरं क्रमतोऽगमत् ।

कालिन्द्यां विष्णुशर्मादि-प्रतिमाभिरलङ्कृतम् ॥'

तथा ४१४, ५३, ५८ : सम्भवतः यह एरब (सार्स) से १४ मील पूर्व है।

२. आईन० पृष्ठ ४०६-७ ।

३. परि० १ (क) : एकत्रा--'तकसोम परिगने माफिक फरमान जहाँगीर साह का राजा विक्रमाजीत को जागीर का "तबक सं० १६६१ के साल। फरमान सरकार महाल परगने १८।.....रीमा का किला सलेमशाह बनवावा। "..... विक्रमाजीत ते किले आएँ।' अर्थात् १५४४ ई० में जब बीरशाह सूर ने कालिंजर पर आक्रमण किया, तब उसके पुत्र सलोमशाह ने रोवा पर अधिकार कर किला बनवाया था। विक्रमादित्य बघेल से इस किले में रहना प्रारम्भ हुआ।

४. बघेलवंशवर्णनम् : श्लोक ७९ :

'सूरिस्तस्य विराजते नरपतेः श्री बालकृष्णाभिषः ।'

५. वही श्लोक ८० : 'तस्यास्ति विद्वाननघः किशोरः ।'

६. श्लोक ८१ : 'चकास्ति गोवर्द्धन-वाजपेयो ।'

भधुरभाषी थे तथा सामवेद कौयुमी शाखा पर उन्हें विशेष अधिकार था ।^१ औपगवि शास्त्रार्थ में कुशल, कवि-प्रतिभा में भारवि के समान, यज्ञकर्त्ता, वेदज्ञ एवं राजा को विशेष प्रिय थे ।^२ कमलनयन दक्षिणात्य वेदों में वारङ्गत, सवजन, कुलीन, परोपकारी एवं शिल्पशास्त्र के मर्मज्ञ थे ।^३ रूपणि ने सेठ गोपीनाथ, अंगरक्षक कोटू और प्रजापालक, राजरक्षक एवं गम्भीर बुद्धि वाले जगन्मणि नाम के मन्त्री का भी वर्णन किया है ।^४

श्री निजामी के कथनानुसार रीवा ऐतिहासिक अभिलेख कमीशन द्वारा उपर्युक्त व्यक्तियों के वर्तमान वंशधरों के सम्बन्ध में जातकारी प्राप्त की गई थी, किन्तु उपर्युक्त विद्वानों की कोई कृतियाँ उपलब्ध नहीं हुईं ।^५

१. श्लोक ८२ : '.....पाश्चात्य-गोडाप्रणीः ।
प्राज्ञः सामसु कौयुमाहय-विटपच्छान्दोग्य-वेत्ता हरेः ।
भक्तो कालमणिश्चकास्ति.....॥'

२. श्लोक ८३ :
'श्रीमानौपगविः समस्त-निगमैः काव्यैक-विद्याटवी-
प्रज्या-पञ्चमुखः कविबिजयते राजः छविर्वल्लभः ॥'

औपगवि का नाम कल्याणदास अग्निहोत्री था । ये राजा भावसिंह के गुरु और अग्निहोत्र-यज्ञ के कर्त्ता थे । इनके वंशज रञ्जुक-राम ने सं० १८८५ (१८२८ ई०) में संस्कृत में 'अग्निहोत्रि-कुल-वंशावली' लिखी है, जिसकी पाण्डुलिपि रीवा में उन्हीं के वंशज श्री रामप्यारे अग्निहोत्री के समीप है । इसमें 'औपगवि' का विवरण इस प्रकार है--

'वेनदासस्य पुत्री द्वी ज्येष्ठो औपगवि-नामकः ।
तथा—'श्री भावसिंहो रणभेदिनीजयः कल्याण-औपगवैर्वभूव शिष्यः ॥
.....चकदही-रंगवाह्यश्च वंभीरीनामपत्तनम् ।
कन्दोहा-नामक-ग्रामा प्राप्ता औपगवि-शम्भुं ॥'

उल्लेखनीय है कि कल्याणदास के वंशज अग्निहोत्री सतना जिले के चकदही, रंगवा, बन्हीरी और कंदोहा आदि ग्रामों में अब भी हैं । विशेष विवरण के लिये देखिए बघेल० संपादकीय टिप्पणी ।

३. श्लोक ८४ : 'कमलनयन-नामा शोभते दक्षिणात्यः ।'
४. श्लोक ८५, ८६ और ८७ : 'जगन्मणिरयं मस्यास्ति मन्त्रिब्रजे ।'
५. 'नाइन जेम्स० ।'

(ग) भावसिंह—प्रस्तुत रचना में भावसिंह के सभी पूर्वजों की प्रशस्ति में रूपणि मिश्र ने कुछ न कुछ लिखा है। वे सभी धीरे धीरे यशस्वी थे। किन्तु इस वर्णन से उनके वास्तविक व्यक्तित्व की जानकारी नहीं मिलती। केवल रूपणि के आश्रयदाता भावसिंह के चरित्र पर यथार्थ प्रकाश पड़ता है।

भावसिंह विद्या और विद्वानों के प्रेमी थे, अन्वया रूपणि प्रधानमन्त्री जगन्मणि से पहले विद्वानों की प्रशंसा लिखने का साहस न करता। कथासरित्सागर तथा ताराभक्तिमुधारणव की उपर्युक्त प्रतिलिपियाँ भावसिंह को साहित्य-सङ्ग्रही वृत्ति को प्रकाश में लाती हैं। भावसिंह श्रीराम के अन्वय भक्त थे।^१ वे गम्भीर, दानशील, प्रतिभाशाली, प्रजापालक, सुरूप, ओजस्वी एवं धैर्यवान् थे।^२ वे गो-ब्राह्मण-प्रतिपालक तथा यज्ञकर्ता थे।^३ उन्हें कवि ने काव्य, आश्रयान और कला के मर्मज्ञ लिखा है।^४ पोछे जिन वैवाहिक सम्बन्धों की चर्चा की गई है, उनसे भावसिंह के समय में बघेलवंश को उच्च प्रतिष्ठा घोषित होती है। रीवा के किले में कई देवमन्दिरों का निर्माण तथा विख्यात महामृत्युञ्जय की मूर्ति की प्रतिष्ठापना भावसिंह के द्वारा कराई गई बतलाई जाती है।

(घ) काव्य का ऐतिहासिक महत्त्व—बघेलवंशवर्णनम् का प्रथम ऐतिहासिक महत्त्व यह है कि इसमें संस्कृत पद्यों में बघेल-वंश की क्रमबद्ध सूची प्रस्तुत की गई है। यह काव्य १६७८ ई० में लिखा गया। अतः यह सूची परवर्ती हिन्दी लेखों^५ के लिए अपने आप में एक और प्रमाण बन जाती है और

१. बघेल० श्लोक ६५ : 'श्रीमिथिलाधिराज-उतमा-प्राणेश-भक्तप्रणोः ।'

२. श्लोक ६६ :

'गाम्भीर्येण महोदधीनधरयन् दानेन वैरोचनि

मत्या देवगुरुं प्रजाश्वनगुणेन्धवाकुमुर्वीपतिम् ।

कान्त्या मन्मथमोजसा दिनकरं घृत्या महोमण्डलं

जीव्यादेप चिराय बान्धवगिरेः श्रीभावसिंहः प्रभुः ॥'

तथा श्लोक ७३ :

'यं पत्न्यो मदनं वदन्ति रिपवो दावानलं साधवो

मान्वातारमुदीरयन्ति विविधा कल्पद्रुमच्छाधिनः ।'

३. श्लोक ७५-७६ : '.....प्राज्याख्य धाराहर्त—

स्तुष्टो यस्य हुताशनोऽस्ति.....।'

४. श्लोक ८८ : 'काव्याख्यान-कला-विदग्धधिपणः....।'

५. उदाहरण के लिए देखिए—रघुराजसिंह कृत आनन्दाम्बुनिधि

(१८५४ ई०) पृ० ६१ ।

यह सिद्ध करती है कि कम से कम ३०० वर्ष पूर्व बघेलों के पूर्वजों की सूची इस रूप में थी; साथ ही यह वीरभानूदय आदि पूर्ववर्ती लेखों से जो मतभेद उपस्थित करती है, उसके कारण वह इतिहासकारों को मतभेद के आधारों के परिपोष के लिए विवश करती है, इस प्रकार बघेलों के पूर्वजों के सम्बन्ध में जो विवाद या सन्देह है, उन पर स्वयं ऐतिहासिक प्रकाश डालते हुए यह काव्य अपने आप में एक आधार बन जाता है। इस काव्य के अभाव में सम्भवतः वर्तमान विद्वान् पूर्ववर्ती हिन्दी लेखों को अप्रामाणिक मान बैठते और डा० होरानन्द शास्त्री की भाँति वीरभानूदय काव्य की सूची को अन्तिम मान लेते। विषयान्तर के मय से ऐतिहासिक तथ्यों एवं सम्भावनाओं के विस्तार को प्रथम न देकर हम मतभेदों के निवारण का भार यहाँ पर भावी इतिहास-प्रेमी लेखकों को सौंपते हैं और आशा करते हैं कि वे इस काव्य को सूचनाओं को उचित महत्त्व देंगे।

इस काव्य का दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य है महाराज भावसिंह की सभा और उनके श्यवित्तत्व की एक शौकी प्रस्तुत करना। कवि के द्वारा बखित सभासदों के बंशधर आज भी वर्तमान हैं। अतः स्वभाविक है कि कमसे कम वे ३०० वर्षों पूर्व रोवा राजधानी की एक झलक इस काव्य के माध्यम से पाने में सचि रहें। इतिहास के अन्वेषक तो इस दृष्टिकोण से सचि लेंगे। तथापि यह कहना होगा कि इस काव्य का मूल्य अधिकतः प्रशस्त्यात्मक है और वीरभानूदय जैसे ऐतिहासिक काव्य के गौरव का बहुत थोड़ा अंश ही इसे मिल सकेगा।

(ख) काव्यात्मक सौन्दर्य—प्रशस्त्यात्मक एवं ऐतिहासिक आधार होने पर भी बघेलवंशधर्मानम् में काव्य-सौन्दर्य प्रचुर मात्रा में है। काव्य के मूल लक्ष्य के अनुसार इसमें स्वभावतः वीर एवं रौद्र रसों का परिपोष हुआ है। ऐसे स्थलों पर आरभटो वृत्ति, अज गुण और गोडी वृत्ति के दर्शन

वीरध्वज व्याघ्रदेव करन सोहागुदेव
संगरामसिंह औ विलासदेव जानिये ।

भीमल अनिक देव बलदेव दलकेन्द्र
मलकेस बरियार बुल्लार भानिये ॥

सिंहदेव भैरोदेव नरहरि भेददेव
त्पों शालिवाहन विरसिंहदेव गानिये ।

वीरमान रामसिंह वीरभद्र विक्रम जू
अमर अनूप भावसिंह को बखानिये ॥'

होते हैं। अलङ्कारों के क्षेत्र में अनुप्रास कवि को प्रिय प्रतीत होता है। कुछ उदाहरण लीजिये—

‘सुवीर-पट्टादिक-वीरभूषणः प्रतिक्षण-सत्रियराज-भोषणः ।

विषय-लक्ष्मिबलारि-दारणः क्षमामु बभ्राम ययः-परायणः ॥ १० ॥’

‘तस्यासीत्तनयः सुभाषितनयः श्रोनिज्जितेन्द्रात्मजः

शोणीपालमणिः प्रतापतरणिर्दनिपु चिन्तामणिः ।

नानासस्त्रबलः कलामु कुशलः प्रीदारि-कालानलः

कीर्त्यालङ्कृत-सप्तवादि-बलयः धीवीरसिंहो नृपः ॥ ३१ ॥’

रूपि ने अन्य अलङ्कारों के प्रयोग भी सुन्दर किये हैं। रामचन्द्र के राज्य (प्रयाग) में बहने वाली गङ्गा का गौरव सुनिये, जिसमें उपमा का रम्य प्रयोग है—

‘हिमाद्रेः पार्व्वंतीनाथ-करुणेश्व निरन्तरम् ।

आविर्भूता पुनात्येषा मुवनानां परम्पराम् ॥ ५८ ॥’

रोद्र रस के साथ भ्रान्तिमान् का एक उदाहरण निम्नलिखित है। वीर भानु के द्वारा काटे हुए शत्रुओं के हाथियों के रक्त से घरती आप्लावित हो रही है और रुद्रों को आवास नहीं ढूँढे मिलता, क्योंकि बैलास रक्त से लाल हो गया है—

‘यत्त्वद्गापाठ-विद्ध-प्रतिभट-परम-प्रीढ-कुम्भीन्द्र-कुम्भ-

व्यावल्गद्-रक्तधाराः क्षितितलमखिलं चारु सिञ्चन्त्य एताः ।

बैलासं गैरिकाभा-रुचिरमभिनवं व्यादिशन्त्यः समन्तात्

रुद्रानावासभूमेरपरिचय-भ्रमैर्ब्याकुलान् सन्दिशन्ति ॥ ३३ ॥

अत्युचित का एक प्रयोग देखिये। स्वर्णदान में रुचि रखने वाला भावसिंह केवल मृगया के लिए बाहर निकला है, किन्तु स्वर्ण छिन जाने के भय से इन्द्र, शेष और सुमेरु की चिन्ता हो गई—

‘यस्मिन् वाञ्छति हेमदेऽपि मृगयामक्षीहिणोभिः समं

पाकारिर्नगरीं निजां कलयति द्वार्दत्त-लोहारंगलाम् ।

शेषोऽप्यानमितोन्नमत्-फणसतो घत्ते मणि कच्छपो

दुःखाद् भारमुरीकरोति नितरां मेरुः समुत्कम्पते ॥ ७४ ॥’

रूपि ने बान्धवपङ्क का १० श्लोकों में काव्यात्मक चित्राङ्कन किया है। इस स्थल पर प्रकृतिचित्रण भी सुन्दर रूप में है। इस ऊँचे पर्वत के ऊँचे वृक्षों के बीच चमकने वाले तारागण पुष्पों की भाँति एवं आकाश की नीलिमा पत्तों की भाँति प्रतीत होती है। पर्वत इतना ऊँचा है कि मध्याकाश तक पहुँच कर

भी चन्द्रमा नहीं दिखता, केवल कुन्द के फूल गिलने में ही उसका उदय माना जाता है—

‘पुष्पोमन्त्रि तरौ तरौ स्फटिकता-शोभाञ्जुपस्तारकाः
श्रोमन्त्रि च तारका-विरहिता नीला नभोऽग्रा बहो ।

क्रिञ्चोच्चतरमनः परं कुमुदिनी-शागप्रियश्चन्द्रमा

श्वीमनो मन्मगतोऽपि कुन्द-विकसित्याऽजीयते प्रत्ययम् ॥ ४६ ॥’

दुर्ग के भवनों में बर्षा ऋतु का दृश्य उपस्थित रहता है, क्योंकि रमणियाँ विजली के ममान, इन्द्रनील मणि की प्रसृत कान्ति का प्रवाह मेघ के सदृश, हाथियों की चिन्ताङ्घ्रि धन-गर्जन की भाँति प्रतीत होती है तथा ज्योत्स्ना से चिनलने वाली चन्द्रकान्त मणिओं से बूँदें टपकती रहती हैं—

‘सौदामिन्यो हसितवदना यत्र कानिन्य एव

स्फूर्तिश्रेणी धन-जत्रमुचामिन्द्रनीलाच्चिरोधः ।

शज्जो मत्त-द्विरद-पदली-धीत्कृतिविन्दु-संघ-

श्चन्द्र-ज्योत्स्ना-प्रसर-विसरञ्चन्द्रकान्त-प्रवाहः ॥ ४८ ॥’

वीरमद्वचम् , रामचन्द्रयशः-प्रबन्ध एवं वीरभानूदयकाव्य का इस कवि को परिचय प्राप्त था, क्योंकि उनकी छाया इस काव्य में यत्र-तत्र झलकती है। वीरमद्वचम् की अनुकृति में रामचन्द्र की राजधानी को यहाँ भी अयोध्या (अ + योध्या) कहा गया है—

‘अयोध्या नगरी यन्म्य पुरन्दरानरपि ।

मशोयाञ्जुवराः सर्वे प्रतिपन्न-विभीषणाः ॥ ३८ ॥

पयनात्मज-बल-कलिता मृशोवराधिता यस्य ।

अद्भुत-वचिचउ-शोभा सेना लङ्कां भयं तनुते ॥ ३९ ॥’

रामचन्द्र-यशः-प्रबन्ध में जैसे दीर्घाकार प्रबन्ध हैं, उसी प्रकार एक स्थान पर रमणि ने भी प्रयोग किया है—

‘... अतिविकसित-काच-कैलास-कुन्देन्दु-शङ्खावशाती

द्वितीयो कदाचिद्वयूः प्रार्थयेदितमसौ संशमानोऽर्ध-

नारोश्चरोऽनुद् घूर्त्त माति मे ॥ ७१ ॥’

वीरभानूदन की शैली को छाया प्रशस्त्यात्मक श्लोकों में देखा जा सकती है, किन्तु प्रवाद गुण और अल्प-प्रमातात्मकता न होने से रसनिश्चिन्ति में उसकी तुलना में नहीं आती।

रानचरितमानस आदि हिन्दी के तत्कालीन काव्यों में हिन्दी के छन्दों में बने संस्कृत भाषा का प्रयोग मिलता है, उसी शैली की अनुकृति में प्रस्तुत

काव्य में दो छप्पय छन्दों के प्रयोग हैं । इनमें कोमल-कान्त-पदावली है और प्रयोग कलात्मक है । एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है—

‘नव-नीरद-रुचि-हरण सरणि-तनया-तट-वैतन,
मुरली-रव-माधुयं-गोप-रमणी-हृत-चेतन ;
घृत-गोबर्द्धन-शील जम्भरिपु-मान-विनाशन ;
चिर-निग्रह-गत-तात-हेतु-कंसामुर-नाशन ;
मगधाधिराज-सेना-दलन मधुमूदन करुणापतन ।

श्री भार्गवसिंह-भूपालमव दन्दशुक-कालिय-दमन ॥ ७७ ॥’

रूपणि मिश्र ने एक छन्द में प्राकृत भाषा और एकाक्षर—शब्दों के प्रयोग किये हैं—

‘वरुना सलपा-सहिअं वगहा कंधेन तिवकचा गहिअम् ।

गिरि-जल-कंधल-निबासो सो देव तुम्हाणं जय ॥ ९७ ॥’

(ब्रह्मा, रद्र और नारामण, अपनी परिनियों—सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती के सहित वृषभ (नन्दी), गण्ड और हंस के कन्यों पर सवार होने वाले, त्रिशूल, कमण्डलु और चक्र धारण करने वाले पर्वत (कैलाश) जल (क्षीर-सागर) और कमल पर निवास करने वाले त्रिमूर्ति के रूप में परिणत वह देव तुम्हारी जय करे ।)

मङ्गलाचरण को देखने से प्रतीत होता है कि रूपणि का दर्शन सम्बन्धी ज्ञान भी अच्छा था ।^१

संस्कृत के स्वच्छन्द मिश्रण मिलते हैं । देखिये—रामचरितमानस,
उत्तरकाण्ड : वेदस्तुति —

‘अव्यक्त मूलमनादि तह त्वच चारि निगमागम भने ।

पट कंध शाखा पंचविश अनेक पर्ण सुमन घने ॥

फल युगल विधि कटु मधुरवेली अकेल जेहि आश्रित रहे ।

पल्लवत फूलत भवल नित संसार विटप नमामहे ॥’

तथा—रघुराजसिंह : रामश्वशुर : बम्बई १९८० पृ०-९५७-५८ :

‘नमोज्ज्युताय राघवाय रावणाप्तधारिणे ।

विदेहकन्यकाप्रियाय राजधर्मधारिणे ॥’

१. अथेल० एलोक २ : साङ्ख्य मत :

‘स्वात्मानं प्रकटो करोति विधिना तत्त्वस्य वेत्तुः पुरो
यत्राविष्कुरुते निजान्न विद्यमान् दोषान् यतः पङ्क्तिता ।
ब्रह्माण्डं समवायि-कारणतया व्याप्नोति या सर्वतः ,
सां मूलप्रकृतिं प्रपञ्चमयतो मुक्त्यै सदोपात्महे ॥’

४. पत्र-काव्य : रामपरत्वम्

(क) कवि-परिचय—

‘रामपरत्वम्’ ग्रन्थ का परिचय देने से पूर्व हम ग्रन्थकार विश्वनाथसिंह के सम्बन्ध में कुछ अधिक जानकारी प्रस्तुत करना चाहते हैं। विश्वनाथसिंह की साहित्यिक कृतियों के सम्बन्ध में पीछे कहा जा चुका है।^१ उनके जीवन के सम्बन्ध में कुछ बातें निम्नलिखित हैं—

पीछे भावसिंह के प्रकरण में उनके दत्तक पुत्र अनिरुद्धसिंह का उल्लेख किया गया है।^२ अनिरुद्धसिंह के पुत्र अवधूत सिंह (१६९५-१७५९), उनके पुत्र अजीत सिंह (१७५५-१८०८), उनके पुत्र जयसिंह (१७६४-१८३४) और उनके पुत्र विश्वनाथसिंह थे। इनका जन्म वैशाख शुक्ल १४, सं० १८४६ (१७८९ ई०) में हुआ था। युवराज की अवस्था ही में १८१३ ई० में बिना जयसिंहदेव ने उन्हें राज्यकार्य सौंप दिया था। १८१४ ई० में अंग्रेजों के साथ हुई सन्धि पर जयसिंह के माय-साय विश्वनाथसिंह के भी हस्ताक्षर हुए थे। इस सन्धिपत्र में विश्वनाथसिंह को रीवा जामन से सम्बद्ध बतलाया गया है।^३ युवराज के रूप में विश्वनाथसिंह ने २० वर्षों तक राज्य-कार्य किया। अत्यन्त सकल्य शासक थे। भौंदूलाल पाण्डे उनके दीवान थे। उनकी ५ महारानियाँ, १ पुत्र यशुराजसिंह और तीन कन्याएँ थीं। इनकी एक कन्या विष्णु-होशर विदुषी थीं।^४

विश्वनाथ सिंह का राजारम्भ १८३४ ई० में हुआ और मृत्यु कातिक कृष्णा सप्तमी, सं० १९११ (१८५४ ई०) को हुई। जीवन के अन्त के लगभग ३५ वर्षों तक वे संसुत और हिन्दी में निरन्तर सर्जना करते रहे। इनकी सभा दार्शनिकों, कवियों और राजनीतिज्ञों से भरी रहती थी। ये स्वयं

१. अध्याय २ (ग)।

२. अध्याय ४ (३-स)।

३. ऐचिसन—श्री० मू० : रीवा अंडर दि क्राउन : ट्रोटीज ऐण्ड सनदस विम ब्रिटिश गवर्नमेंट : ब्रिटेन ५ : दिल्ली : १९३३; धनुष्य सन्धि : पारा ७ : पृ० २५७ तथा आगे।

४. संसुत वर्ण० : जानकी प्रसाद चतुर्वेदी की टिप्पणी।

कितने ही काव्यकारों एवं विचारकों के प्रेरणा-स्रोत थे। ये अपने काल में उत्तर भारत में अत्यन्त विख्यात विद्वानों में से एक थे। विन्नकूट, काशी, मिथिला, अयोध्या, मुन्दावन, प्रयाग और काञ्ची जैसे विद्याकेन्द्रों के विद्वान् इनसे मिलने और शास्त्रार्थ करने आया करते थे। स्वयं भी अनेक स्थानों की यात्रा इन्होंने विद्वानों से वार्ता करने के लिए ही की थी।^१

पाण्डुलिपि

सरस्वती कोप-भाण्डार, किला रोवा में 'रामपरत्वम्' नाम से १३ पत्रा का एक सम्पूर्ण ग्रन्थ सुरक्षित है। इस ग्रन्थ का रचनाकाल अथापठ शुक्ल ११ सं० १८१७ (१८४० ई०) दिया हुआ है। यह विश्वनाथसिंह द्वारा रचित है।

भाण्डार के रजिस्टर में विश्वनाथ सिंह की संसृत रचनाओं में 'भुक्ति-मुक्ति-सदानन्द-सन्दोह' नामक एक ग्रन्थ का उल्लेख है। यह दूसरी पाण्डुलिपि के रूप में (बस्ता १३६ स्टाक १६) सुरक्षित है। इसमें १५ पत्रा है और ग्रन्थ सम्पूर्ण है। इसका लिपिकाल 'बुंवार वदि १ संवत् १९१०' (सन् १८५३) दिया हुआ है, किन्तु आगे फिर 'मिति पौष वदि १४ का लिखा थी तिवारी हरीराम' लिखा है। सम्भवतः किसी लिपिक की बुंवार (आश्विन) में पूरी की गई प्रति की दूसरी प्रतिलिपि हरीराम तिवारी ने पौष (१८५४ ई०) में पूरी की। इस ग्रंथ में सब कुछ वही है, जो उपर्युक्त रामपरत्वम् में है। अर्थात् 'रामपरत्वम्' की ही ये दो अलग-अलग प्रतियाँ हैं। इसका नाम 'भुक्ति-मुक्ति-सदानन्द-सन्दोह' पड़ने का कारण यह प्रतीत होता है कि सम्भवतः इस नाम से अनन्ताचार्य स्वामी ने कोई ग्रंथ लिखा था, जिसका यह प्रतिवाद है। ग्रन्थ का ५ वाँ श्लोक इस प्रकार है—

'भुक्ति-मुक्ति-सदानन्द-सन्दोह-प्रतिवादिकाः ।

श्रीविश्वनाथ-विहिता मतयः सन्तु सन्तताः ॥'

स्वामी अनन्ताचार्य ने १५ दिन पूर्व ही विश्वनाथसिंह को कोई पत्र (विवेचनात्मक पत्र) भेजा था, जिसका उत्तर विश्वनाथसिंह ने भेजा। स्वामी जी का पत्र १ वर्ष पूर्व विश्वनाथसिंह द्वारा भेजे हुए अन्य पत्र का उत्तर था।

१. रघुराजसिंह : रामरसिकावली (भक्तमाला) : प्रकाशित बम्बई : विश्वनाथसिंह का विवरण तथा युगलदास-कृत विश्वनाथसिंह-चरित्र (रचनाकाल सं० १९११) : सरस्वती कोप भाण्डार, रोवा। साथ ही देखिये सं० वा० दे० : पृष्ठ १३०-२२५।

सम्भवतः स्वामी अनन्ताचार्य चित्रकूट में इन दिनों स्थायी रूप से निवास कर रहे थे ।^१

स्वामी जी के सम्बन्ध में हमें अधिक ज्ञात नहीं है, किन्तु उनके साथ हुए विश्वनाथ सिंह के एक सास्त्रार्थ का, जो प्रस्तुत ग्रन्थ से सम्बद्ध विषय पर ही हुआ प्रतीत होता है, विश्वनाथसिंह के रासकलममुगलदास 'युगलेश' ने उल्लेख किया है ।^२

रामपरत्वम् ग्रन्थ में प्रारम्भ में १६ श्लोक हैं, जिनमें से प्रारम्भ के ८ श्लोक आचार्य जी की प्रशस्ति के रूप में हैं । इन्हो ८ श्लोकों पर काव्यात्मक

१. रामपरत्वम्-श्लोक-९-१६ :

'श्रीमतां पत्रमायातं चित्रोदन्तेन सम्मतम् ।

*** परामृष्टा दृष्टुषेदं परमाद्भुतम् ॥

अनीनयद्वलं चारस्त्वदीयं तन्मदन्तिकम् ।

यद्वलेति महाचार्यैः स्वपत्रे मां प्रति स्फुटम् ॥

आपाठ-कृष्णकादस्यां चित्रकूट-सटे विभो ।

निश्चितस्तद्युतोदन्तः..... ॥'

'ओदासीभ्येन गमने ज्ञायते नैव कारणम् ।

इति स्वदीय दलतः शङ्का विशात-पूर्विका ॥

आगम्यत इति प्रोक्तं कुतो हेतोश्च नाऽङ्गत्तम् ।

आगम्यते कदा वेति पत्रो तां गतवापिकीम् ॥

स्वयैव प्रेषितां राजन् नूनं विस्मृतवानसि ।

एमागमे प्राथमिकं नव गच्छति भवानिति ॥

पुष्टत्वाद् नवता प्रीत्या मापणादेरमायतः ।

अवस्थितैः स्वलादीनामप्रदर्शन-कारणात् ॥

मदीयाशीर्यणः श्रुत्वा वैष्णवान्नानुमोदनात् ।

उद्दिश्य सदनस्वीयमनाकारण-कारणात् ॥'

'अत्र प्रत्युत्तरं किञ्चिद् विशान् विशापयामि वः ॥'

२. विश्वनाथ-प्रकाश (या विश्वनाथसिंह-चरित्र) : स० को० भा० रोषा :

'आचारिन में श्रेष्ठ जो प्रथित अनन्ताचारि ।

सास्त्रार्थ करि जीति लिय तिनको गभामंशारि ॥

यै शरारि जो लिख्यो सिंह सण्टन कीन्हों धंस ।

ग्रन्थ विदित सो विदुष सब जानत कह जुगलेश ॥'

दृष्टि से यहाँ पर विचार किया जायगा। अन्तिम ८ श्लोक (जो पीछे टिप्पणी में दिये जा चुके हैं) दोनों ओर के पत्र-व्यवहार की एवं वार्ता की चर्चा करते हैं। १६ वें श्लोक के पश्चात् विश्वनाथसिंह दार्शनिक भूमिका पर उतर कर राम के सर्वश्रेष्ठत्व का प्रतिपादन करते हैं। यह विवेचन गद्य में है, किन्तु ५ भाग और उद्धरण यथास्थान गद्य एवं पद्य दोनों में है। विवेचन भाष्य-शैली में है। वास्तव में यह दार्शनिक विवेचन ही, जो पत्र के रूप में लिखा गया, 'रामपरत्वम्' ग्रन्थ के रूप में बन गया तथा प्रारम्भिक श्लोकों को भूमिका-मात्र मानना चाहिए। यहाँ इतना और कहना आवश्यक प्रतीत होता है कि युगलेश ने शास्त्रार्थ में समा के बीच विश्वनाथसिंह की अनन्ताचार्य के ऊपर विजय का गौरवपूर्ण उल्लेख किया है, किन्तु विश्वनाथसिंह और स्वामी जो दोनों के ही पत्र अत्यन्त शिष्टतापूर्ण और परस्पर प्रशंसात्मक हैं। विश्वनाथसिंह की भाषा में स्वामी जी की प्रकाण्ड विद्वत्ता के प्रति भावपूर्ण प्रणति है, उसमें विजय-गर्व की गन्ध कहीं नहीं है।

(ए) ग्रन्थ में प्राप्त काव्य-सौन्दर्य

प्रशस्ति के रूप में प्रारम्भ में प्राप्त ८ श्लोकों में से प्रथम ३ काव्यात्मक विशेषण हैं। इनमें एक ओर स्वामी जी की अनाथ महिमा का दिग्दर्शन है, दूसरी ओर विश्वनाथसिंह की पाण्डित्यपूर्ण प्रौढ पदपोजना है। अनुप्रासों का गुम्फन दीर्घ समासों के साथ हुआ है। पहला उदाहरण कुलक का है—

‘स्वस्ति श्रोत्राङ्गवेदाऽप्रथिम-सरसिजोत्लासना-भास्करेषु,
 प्रस्कूर्जर्जर्हर्शनाली-गहनतर-वनी-वार-पञ्चाननेषु ।
 नन्द-वन्दार-भूमीपति-मुकुट-मिलन्मुग्ध-माणिक्यमाला-
 (भा)बादित्यांसु-जाल-व्यतिकर-विकसन्मञ्जु-पादाम्बुजेषु ॥ १ ॥
 भ्राजद्-वैकुण्ठ-कुण्ठीकरण-करगणोद्भासि-साकेत-केतु-
 श्रीराजद्-रामचन्द्रानुलपद-युगलाम्भोज-पुष्पवधेषु ।
 श्रीमन्नारायणेन्द्रुप-विमल-लसच्चन्द्रिका-पान-लीला-
 (‘‘‘) चेतश्चकोरेष्वनुपम-कविता-सार-आयोधरेषु ॥ २ ॥
 दृष्यद्-वादि-द्विपेन्द्रोदित-करट-तटी-कूट-कुहाक-कोटि-
 स्फूर्जर्जर्द्... (?)...वचन-नक्षत्रेणि...कण्ठीरवेषु ।
 माहारम्याम्भोधि-पर्णोदित-विद्यद-यशश्चन्द्र-विद्योत्तराजी-
 विभ्राजल्लब्ध-वर्णप्रकर-कुवलयोत्लास-लोकम्पूषेषु ॥ ३ ॥

१. ग्रन्थ के अन्त में—‘तस्मान्निखिल-प्रभूणां प्रभुः श्रीरामचन्द्र एवास्तीति सिद्धान्तः ।’

येषां व्याख्यायते व्याख्या प्रतिवादि-भयङ्करा ।

तेषु श्रीमदनन्तार्य-पादान्मोजेषु मञ्जुषु ॥ ४ ॥

भुक्ति-भुक्ति-सदानन्द-सन्दोह-प्रतिवादिकाः ।

श्रीविश्वनाथ-विहिता नतयः सन्तु सन्तताः ॥ ५ ॥

इसके पश्चात् प्रसादात्मक शैली में तीन श्लोकों में स्वामी जी की अत्यन्त भावपूर्ण प्रशंति है । इन श्लोकों में भक्ति का तोत्र प्रवाह है । इनमें प्राप्त भावोद्रेक इन्हें स्तुतिगीत बनाने में पूर्णतः संक्षम है । इनमें प्राप्त कवि के उत्तरङ्ग हृदय का उद्वेलन रसिक प्राणी का अभिप्रेक कर सकता है—

योष्माकोणानुरुम्पातः सम्पातः सर्वपाप्मनाम् ।

कस्याणानि प्रमाणानि संस्फुरन्ति निरन्तरम् ॥ ६ ॥

तमांसि श्वंसन्ते परिणमति भूपानुपशमः,

सकृत् संवादेशि प्रथत इह चामुत्र च क्षुभम् ।

अथ प्रयासङ्गः कमपि महिमानं वितरति

प्रयन्नानां वाचः फलमपरिमेयं प्रसुवते ॥ ७ ॥

व्यतिकरित-दिग्गन्ताः शोभमानैर्यशोभिः

सुकृत-विलसिताना स्यानमूर्जस्वलानाम् ।

अतुलित-महिमानः केतनं मङ्गलानां

कथमपि भुवनेर्जस्मिस्त्वादृशाः सम्भवन्ति ॥ ८ ॥

दर्शन

विश्वनाथसिंह श्री राम के अनन्य उपासक थे । अनेक ग्रन्थों के माध्यम से उन्होंने श्रीराम के परात्पर रूप की प्रतिष्ठापना की है । वही बात राम-परत्वम् में भी है । आप सखी-उपासना मानते थे । आपके मत के अनुसार श्रीराम नित्य रासबिहारी हैं । रासमण्डल में प्रवेश ही भक्ति है । सखी रूप की प्राप्ति से ही रासमण्डल में प्रवेश सम्भव है । श्रीराम ही श्रीकृष्ण रूप से वृन्दावन में, नारायण रूप से वैकुण्ठ में एवं राम रूप से ही चित्रकूट, मिपिला और साकेत में शाश्वत विहार करते हैं ।

श्रीकृष्ण के नखों की किरण से पूर्ण ब्रह्म का उद्भव होता है । श्रीकृष्ण के अंशांश ही महाविष्णु आदि अनेक देव हैं । श्रीकृष्ण से ऊपर केवल श्रीरामचन्द्र की सत्ता है । कृष्ण श्रीराम के शृङ्गार रूप हैं । इस प्रकार समस्त प्रभुओं के प्रभु श्रीरामचन्द्र ही हैं ।^१

१. रामपरत्वम् : स० को० भा० :

^१श्रीकृष्णस्य नखेन्दु-किरण-श्रेणी पूर्णब्रह्मणः एकं मुख्यं कारणमि-

पत्र के रूप में प्राप्त यह गीति-शैली संस्कृत-साहित्य में एक दुर्लभ प्रयोग है। १९ वीं शती के मध्य भाग में प्राप्त होने से इस प्रयोग का मूल्य और बढ़ जाता है। यह निदर्शन इस बात का यथेष्ट प्रमाण है कि कम से कम १९ वीं शती में संस्कृत का परस्पर भावाभिव्यक्ति के रूप में उपयोग किया जाता था ; साथ ही इस समय संस्कृत न केवल सप्रमाण एवं सशक्त भाषा थी, अपितु यह विनासशील थी। जो लोग बारहवीं शती को संस्कृत सञ्जन की अन्तिम शती मान बैठे हैं, उनके चक्षुःमौलन के लिए अकेले राम-परस्वम् पर्याप्त है।

(४)

त्यनेन पूर्णब्रह्मणः श्रेष्ठत्वं श्रीकृष्णस्य । श्रीकृष्णांशांशा एव महावि-
ष्णु-प्रमुखास्तथा च सर्वप्रभोः श्रीकृष्णस्यापि प्रभुः श्रीरामचन्द्र
इति । सुदर्शनसंहितायामपि-

‘कृष्णः शृङ्गाररूपश्च वृन्दावन-विभूषणः ।

एते चांशकलाः पुंसो रामस्तु भगवान् स्वयम् ॥’

विश्वनाथसिंह के दर्शन-ग्रन्थों और मतों की विस्तृत चर्चा के लिए देखिये—सं० वा० दे० पृष्ठ १८१-२१२। अपने मत की सविस्तार चर्चा विश्वनाथसिंह ने ब्रह्मसूत्र के राधावल्लभोप-मत-प्रकाशक-भाष्य (सं० को० भा०, शीवा) में की है।

५. स्तुति-काव्य

(क) कवि रघुराजसिंह का परिचय

वधेलखण्ड में ६ स्तुति-काव्य प्राप्त हैं और एहो रघुराजसिंह द्वारा रचित हैं तथा संस्कृत कृतियों के रूप में रघुराजसिंह द्वारा संस्कृत में रचित केवल यही ६ ग्रंथ उपलब्ध हैं।^१ ये हैं—१. सुधर्मविलास, २. जगदीशरातक, ३. रामसुतक, ४. नर्मदाष्टक, ५. लोकनाथाष्टक एवं ६. रघुराज-भङ्गल-चन्द्रावली।

रघुराजसिंह ने रस-सिद्धान्तों पर संस्कृत में राजरञ्जन ग्रन्थ लिखा अवश्य है,^२ किन्तु यह ग्रन्थ लुप्त है। इसके प्राप्त होने पर रघुराजसिंह को काव्य-प्रतिभा पर यथार्थ प्रकाश पड़ेगा। आज हम विवरणपूर्वक इतना ही कह सकते हैं कि स्तुति के अतिरिक्त काव्यशास्त्र के क्षेत्र में भी रघुराजसिंह ने प्रवेश किया था।

रघुराजसिंह ने पितामह जयसिंहदेव और पिता विरचनायसिंह को गौरव-मयी काव्य-सर्जन-परम्परा को एक ओर अक्षुण्ण रखा, दूसरी ओर उसमें नई धारामों को जन्म दिया।

१८२३ ई० रातो सुभद्राकुँवरि के गर्भ से रघुराजसिंह का जन्म हुआ था। पिता विरचनायसिंह इन्हें 'भागवतप्रसाद' कहा करते थे।^३ इन्हें लक्ष्मणबाग रोवा में ब्रह्मसिद्ध से माए हुए स्वामी मुकुन्दाचार्य ने नारायण मन्त्र दिया था। कलकत्ता के नवकृष्ण चौधुरी ने अंग्रेजी की शिक्षा दी। उन्होंने जगदीशपुरी, काशी और मयुरा में (तीन बार) अपनी तौल भर स्वर्णदान किया था। उन्होंने विरचनायसिंह के विरुद्ध विद्रोह भी किया था किन्तु पिता की

१. रघुराजसिंह के साहित्यिक परिचय के लिए देखिये पीछे—अध्याय २ (ग)।

२. रामस्वयंवर : बम्बई : १९८० वि० : पृष्ठ ४ :

'रस्यो राजरंजन बहुरि, सब रस मतन प्रकाश।'

तथा पृष्ठ ९७२ : 'रुचिर राजरंजन मुरवानी।'

३. देखिये जगदीशरातक, श्लोक ७८ :

'त्वद्वैरित्री मत्पितरो प्रचक्रुर्मन्नाम यद् भागवतप्रसादम्।'

बुद्धिमत्ता से सङ्घर्ष बच गया। इनके प्रसिद्ध दीवान का नाम दोनबण्णु पाँडे था।^१

१८४२ ई० में रघुराजसिंह को मुखराजपद मिला। १८५४ ई० में वे पूर्णाधिकारी हुए और कुछ वर्षों तक तीर्थयात्राएँ कीं। सोहागपुर और अमरकंटक के क्षेत्र कभी मराठों द्वारा छीने जा चुके थे। १८५७ ई० में जब अंग्रेजों सत्ता के प्रति देश में क्रान्ति की लहर उठी तब रघुराजसिंह ने २,००० सैनिक अंग्रेजों की सहायता के लिए दिये। इन्होंने मैहर और विजयराघोगढ़ को भी जीता। क्रान्ति समाप्त होने पर अंग्रेजों ने सोहागपुर और अमरकंटक रघुराजसिंह को पुरस्कार-स्वरूप दे दिये।^२ १८६२ ई० में इन्हें अंग्रेजों से गोद लेने की सनद मिली।^३

रघुराजसिंह हिन्दी और संस्कृत के बिद्वान् थे तथा अंग्रेजी भी जानते थे। आप फारसी में भी शूदाल थे। विश्वनाथसिंह के रामरहस्यत्रय की प्रकाशनी टीका लिखने वाले रामानुजदास ने इन्हें विद्यागुरु के रूप में रामायण और भागवत पढ़ाई थी। रामानुजदास आगे चल कर अयोध्या के रत्नसिंहासन मठ के महन्त हुए थे।^४ अपने रामस्वप्नचर ग्रन्थ के अन्त में रघुराजसिंह ने अपनी संस्कृत-रचनाओं का सहायको क रूप में पं० गोकुलप्रसाद, सुदर्शनदास शास्त्री, रामचन्द्र शास्त्री और काशी के पं० विश्वनाथ के नामों का उल्लेख किया है।^५

१. युगलदास वृत्त विश्वनाथसिंह-चरित्र : स० को० भा० । तथा 'संस्कृत बर्षसं०' जानकी प्रसाद चतुर्वेदी की टिप्पणी ।
२. ग्लोरी आफ बान्धो : रोवा : १९४८ : पृष्ठ ९ ।
३. ऐचिसन : रोवा थंडर दि क्राउन : ट्रीटीज एण्ड सनद्स विथ ब्रिटिश गवर्नमेंट : जिल्द ५ : दिल्ली १९३३ : पंचम सर्चि—१८६२ रघुराजसिंह को 'नाइट ग्रैंड कमाण्डर आफ दि मोस्ट एग्जाल्टेड आर्डर आफ द स्टार आफ इण्डिया' की उपाधि प्राप्त थी ।
४. युगलदास : 'विश्वनाथसिंह चरित्र' तथा रामरहस्यत्रयम् : टीका-रत्न—श्लोक २ ।

‘श्रीरामानुजनामासावष्टश्लोकी यथामति ।

श्रीविश्वनाथराजेन्द्राज्ञप्ती ध्याकुस्ते मुदा ॥’

५. प्रकाशित पृष्ठ : ९७० :

विद्यागुरु रामानुजदासा । जन्म अवधपुर सदा निवासा ॥
 श्री भागवत और रामायण । वेद वेदांत प्रान्त पारायण ॥
 बालकाल से मोहि पढ़ाओ । तिनसम द्वितिय न दूग तर आयो ॥

रघुराजसिंह ने भागवत की जो ब्रजभाषा-टीका लिखी है, उसका संशोधन विश्वनाथसिंह करते थे ।^१ इससे प्रकट होता है कि पिता ने ही रघुराजसिंह को काव्य-सर्जन की ओर प्रवृत्त या प्रेरित किया । संवत् १८९८ (१८४१ ई०) में विश्वनाथसिंह ने रघुराजसिंह के शिक्षण के लिए रोवा से १ मील पर लक्ष्मणबाग आश्रम की प्रतिष्ठापना कर वहाँ उन्हें दीक्षित कराया । इनके अतिरिक्त लक्ष्मण-किला अयोध्या के महन्त युगलानन्दसरण का भी रघुराजसिंह पर प्रभाव पड़ा ।

रघुराजसिंह के अनेक विवाहों में से एक उदयपुर के महाराणा स्वरूपसिंह की बहन सौभाग्यकुँवरि के साथ हुआ था । इनके अनेक पुत्रों में से अन्तिम बेंकटरमण सिंह थे, जो महाराज की मृत्यु (१८८० ई०) के समय केवल ४ वर्ष के थे । रघुराजसिंह विशालकाय थे । इनकी भारी तलवारें और बन्दूकें धुबेला छद्मग्रहाछप (जिला छत्तपुर) में सुरक्षित हैं । रघुराजसिंह श्रीकृष्ण के उपासक थे । बेंकटरमण सिंह ने उनके अनेक हिन्दी और संस्कृत ग्रंथ प्रकाशित कराए थे ।^२ हिन्दी के भक्ति और शृङ्गार के कवि के रूप में रामचन्द्र दास ने उनकी गणना की है ।^३ युगलेश ने विश्वनाथसिंह-चरित्र में ठीक ही लिखा है—

‘यस प्रताप मंदिर कर्मो विश्वनाथ मेहराज ।
तापर कलशा ताहि की धर्मो भूप रघुराज ॥’

(ख) स्तुति-काव्यों का विवरण :

१. सुधर्माविलास :

इस ग्रन्थ की प्रकाशित प्रतियाँ सरस्वती कोष-भाण्डार रोवा में प्राप्त हैं ।

काव्यकुञ्ज गोकुल परसादा । अति उदण्ड व्याकरण विवादा ॥

शास्त्री सुमति सुदर्शन दासा । उत्तम न्याय वेदान्त विलासा ॥

काशीवासी विप्रवर विश्वनाथ जिहि नाम ।

काव्य व्याकरण न्याय महें लोकवेद मति घाम ॥

रामचन्द्र शास्त्री मतिमाना । सब नैयामिक माँह प्रचाना ॥

१. देखिये एकादश स्कन्ध की टीका : स० को० भा०, रोवा : बस्ता
८०।१२ : पुष्पिका ।

२. सं० वा० दे० : पृष्ठ २२६-२७ ।

३. हिन्दी साहित्य का इतिहास-काशी नागरी प्रचारिणी सभा : २०१८
वि० पृष्ठ ५५४ ।

एक प्रति रामवन (सतना) में भी है ।^१ ये सभी लियो-मुद्रण को प्रतिपां है । अन्त में 'मार्ग सुदि ८ का संवत् १९२४ के सहर राज रोवा' छपा है । इससे प्रतीत होता है कि इसका प्रकाशन रोवा से १८६७ ई० में किया गया होगा । यह भी सम्भव है कि यह इस वर्ष की पाण्डुलिपि हो, जो पीछे प्रकाश में आई हो । ग्रन्थ की रचना स्पष्टतः बान्धवगढ़ में रघुराजसिंह द्वारा अगहन शुक्ल ४, संवत् १९१३ (१८५६ ई०) में की गई—

'गुण-ब्रह्म-तण्डेन्दु-वर्षस्य राधेऽवलशान्धवधो चतुर्थ्या' कृतोऽयम् ।
सुधर्माविलासः स्थितो बान्धवाद्रो महाभूभुवा विष्वनाथात्मजेन ॥'

इस ८८ पृष्ठों में प्रकाशित ग्रन्थ में १७ उल्लास और ८५० श्लोक हैं । प्रथम उल्लास में ९७ श्लोकों में भगवान् कृष्ण को वैकुण्ठ के अन्तर्गत अवस्थित द्वारका नगरी और सुधर्मा नामक सभा का विवरण है ।^२ द्वारका में समस्त यदुवंशो, अप्सरायें, गन्धर्व, सूत, बन्दीजन आदि भी निवास करते हैं ।

द्वितीय उल्लास में ९१ श्लोकों में भूमि से वैकुण्ठ पहुँचाने के लिए मार्ग-

१. रामवन में प्राप्त सुधर्माविलास को इस प्रति में अन्त में इस प्रकार उल्लेख है—

'संवत् १९२२ के कातिक वदि ३० गुरी (गुरुवार) का लिया लाला व्याकरण श्री गोविन्दगढ़ बँटे ।' अर्थात् व्याकरण लाला ने गोविन्दगढ़ में १८६५ ई० में यह पाण्डुलिपि तैयार की । गोविन्दगढ़ रोवा से सीधे रोह पर १२ मील पूर्व एक कस्बा है । इसे रघुराजसिंह ने राज्य के दूसरे वर्ष १८५५ ई० में बसाया था । उनके द्वारा बनवाए हुए राजभवन और विष्वनाथ-सागर नामक विद्याल तालाव दर्शनीय हैं । रामवन के सुधर्माविलास तथा लोकनायाटक आदि कई ग्रन्थ श्री राममिश्र चतुर्वेदी वर्तमान प्राचार्य, ठाकुर रणमत्त-सिंह महाविद्यालय रोवा (म० प्र०) द्वारा प्राप्त हुए हैं ।

बड़ौदा में भी सुधर्माविलास की एक प्रति उपलब्ध है (देखिये—
राधवन नैन्वियार : ऐन अल्फावेटिकल लिस्ट आफ मैन्युस्क्रिप्ट्स इन द थोरियोन्टल इंस्टीट्यूट आफ बड़ौदा : भाग २ : १९५० : पृष्ठ १०५२ : ग्रन्थ क्रमाङ्क ८५३ । १३०४०) ।

२. 'द्वारका सा सुधर्मा च वैकुण्ठे तिष्ठते सदा ।'

तथा—सुधर्माया विराजन्तं यदुभिः परिवारितम् ।

हेमसिंहासनासीनं बलभद्र-समन्वितम् ॥'

निर्देश है ।^१ एकाग्र-चिन्तन आदि साधनाओं द्वारा शक्ति प्राप्त कर साधक उत्क्रमण कर सकता है । मार्ग में मेघमण्डल, रविमण्डल, अल्प-भूमण्डल, विपुल भानुमण्डल, चन्द्रमण्डल, भुवर्लोक, स्वर्ग, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक, सत्य-लोक, ध्रुवलोक, लोकालोक, महान्धकार, पञ्चभूत-मण्डल, शीवर्णो धरणी, समुद्र, मुधा-सरोवर तक पहुँचने पर दिव्य रूप की प्राप्ति होगी । फिर वैकुण्ठ के अन्तर्गत भूमा नारायण का वैकुण्ठ, रमा-वैकुण्ठ श्रीमन्नारायण का वैकुण्ठ और विरजा नदी से हो कर कृष्ण के वैकुण्ठ तक पहुँचा जा सकता है । मार्ग में पढ़ने वाले उपयुक्त स्थानों के लक्षण-रूप भी बतलाए गए हैं ।

तृतीय उल्लास में वैकुण्ठ के प्रथम आवरण और भवनों के वर्णन ८५ श्लोकों में है । ये भक्त सालोचय-मुक्ता, साष्ट्य-मुक्ता, सामीप्य-मुक्ता, शरणागत, केंद्र्यकारी आदि कोटियों के हैं ।

चतुर्थ उल्लास में साकेत और गोलोक पर १०१ श्लोक हैं । पाँचवें उल्लास में २७ श्लोकों में वैकुण्ठ का चतुर्व्यूह और छठे उल्लास में ४६ श्लोकों में विशेष सभा वर्णित है । यहाँ तक लगभग आधा ग्रन्थ विवरणात्मक स्वरूप में है और वह सम्प्रदाय विशेष की धारणाओं का पद्यरुद्ध निदर्शन-भाव है ।

सातवें उल्लास में भक्त द्वारा भगवान् की प्रशंसा ४९ श्लोकों में वर्णित है । आठवें में दशावतार-स्तुति के रूप में १२ पद हैं । इन पर गीत-गोविन्द की छाया है यहाँ से कवि की भावधारा नया मोड़ लेती है और आगे भी कवि गीत-गोविन्द की ही अनुकृति में स्तुति-गीत प्रस्तुत करता है । नौवें उल्लास में रामावतार (रामायण) परक ११ पद हैं । दशम उल्लास श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध पर आधारित १०८ पदों में कृष्ण-स्तुति है । ग्यारहवें उल्लास में कृष्ण और राम दोनों पर २८ श्लोक हैं । भगवान् के दयालुत्व आदि गुणों का गान बारहवें उल्लास में ८५ श्लोकों में है । १३ वें उल्लास में बलभद्र-स्तुति ८५ श्लोकों में प्रस्तुत की गई है । चौदहवें उल्लास में २३ श्लोकों में प्रद्युम्न और पन्द्रहवें उल्लास में १७ श्लोकों में अनिद्वन्द्व की स्तुतियाँ हैं । गुरु मुकुन्दा-धर्म की वन्दना सोलहवें उल्लास में ९ श्लोकों में है । अष्टिम सत्रहवें उल्लास में साधक के वैकुण्ठ से निदर्शन (लोटने) का वर्णन है ।

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, यह सम्पूर्ण ग्रन्थ सम्प्रदाय के पोषण और प्रचार को दृष्टि में रख कर लिखा गया है । यह मूलतः दर्शन-ग्रन्थ है । गीत-गोविन्द की अनुकृति में जो स्तुतियाँ और पद लिखे गए हैं, उनमें मौलिकता

१. 'यदिच्छेद् गमनं तस्यां यदीच्छेद् हरिदर्शनम् ।

तदंतादृश-भागेण कर्तव्या भावना सदा ॥'

का अभाव है। अनुकृति के कारण स्वभाविक भावोद्बेक नहीं उदित होता। तथापि इन स्तुतियों और पदों को काव्यात्मक स्वरूप देने का प्रयत्न है, जिसके कारण ग्रन्थ काव्य की परिधि में प्रविष्ट हो जाता है।

२—जगदीशशतकम्

लिप्यो-मुद्रण के रूप में ही प्राप्त दूसरा ग्रन्थ जगदीशशतकम् है, जिसके अन्त में इस प्रकार की पंक्तियाँ हैं—

‘रामेन्दुलण्ड-विद्युभिम्मितेऽरे र्त्तमे ।

दानावमायां शतकं जगदीशस्य निमित्तम् ॥ ११० ॥

‘इति सिद्धिथी-बान्धवेदा-महाराजाधिराज-श्रीमहाराजा-श्रीराजावहादुर-श्रीकृष्णचन्द्र-कृपापात्राधिकारि-श्रीरघुराजसिंहजुरेश्व-विरचितं जगदीशशतकं समाप्तम् ॥’

अर्थात् यह ग्रन्थ पीप अमावास्या, दानिवार, संवत् १९१४ (१८५७ ई०) को पूर्ण हुआ। रघुराजसिंह के ग्रन्थों में केवल इसी पर टीका हुई है। इसके टीकाकार रङ्गाचार्य बाधूल थे।^१ इस ग्रन्थ का प्रथम लिप्यो मुद्रण संवत् १९२२

१. टीका के अन्त का श्लोक—

‘श्रीबान्धवेदा-रघुराज-विनिमित्तस्य;

नीलाद्रिनाथ-शतकस्य महार्थपूर्तः ।

बाधूल-सरकुलभवो विरचय्य रङ्गाचार्यो

जगत्पति-श्रदेऽर्जयति स्म टीकाम् ॥’

टीका के आरम्भ के मङ्गलाचरण के चार श्लोक रङ्गाचार्य का सुन्दर कवि रूप प्रकट करते हैं। उदाहरणार्थ—

‘नय-जलधर-गार्थ नीरजस्पधिनेत्रं,

स्मित-विकसितवक्त्रं सिन्धुकन्या-कलत्रम् ।

शमित-नमदमित्त्रं शेषशय्यातपत्रं,

परमतम-पवित्रं पातु मां पार्यमित्त्रम् ॥

अस्याः श्रीरघुराजसिंह-नृपतिः प्रज्ञावदप्रेसरो

भाषा संस्कृत-भण्ड-काव्य-रचना-चातुर्य्य-धुम्यः कविः ।

श्रीमन्नीलगिरिप्रभुहि विषयो निस्तीम-भूमाशयो,

गन्भीरो विवरीतुमीदृशकृति को वा कृती शक्नुयात् ।

अपने ग्रन्थ आनन्दाम्बुनिधि के अन्त में रघुराज सिंह ने लिखा है कि रङ्गाचार्य दक्षिण के पादवगिरि के वासी अनन्ताचार्य के पीत्र और नृसिंहाचार्य के पुत्र थे। ये न्याय, वेदान्त, व्याकरण आदि

(१८६५ ई०) में^१ और द्वितीय मुद्रण सं० १९३१ (१८७४ ई०) में रोवा में ही हुआ। टीका के साथ ग्रन्थ ४९ पृष्ठों का है। शतक में १९८ श्लोक हैं। फलस्तुति मिलाकर कुल ११० श्लोक हैं।^२

अनुश्रुति यह है कि रघुराजसिंह संवत् १९१३ (१८५६ ई०) में रोवा से जयन्नाथ स्वामी (पुरी-उड़ीसा) के दर्शनार्थ गये थे, किन्तु वहाँ पट बन्द हो गए। तब इन्होंने जगदीश की स्तुति में एक शतक हिन्दी और दूसरा संस्कृत में रचा। तत्पश्चात् पट खुल गये।

उक्त पट बन्द होने की अनुश्रुति में जो कुछ सत्य हो, किन्तु रङ्गाचार्य के लेख के अनुसार रघुराजसिंह जगदीश-दर्शन के लिए जाते समय बहुत ही भाव-विमोह से और मार्ग ही में उन्होंने विद्वेष-प्रेरित होकर ये श्लोक लिखे^३।

शास्त्रों के मर्मज्ञ थे तथा धन्दावदार परकाळ यति के शिष्य थे। ये रोवा जाकर आनन्दाम्बुनिधि की रचना (सं० १९०७-११-सन् १८-५०-५४) में सहामक हुए थे। इस प्रकार कम से कम १८५० से १८६० ई० तक ये रोवा में अवश्य रहे। टीका की तिथि का निर्देश नहीं किया गया। युगल्लयाम के अनुसार इन्होंने रङ्गाचार्य ने सं० १९११ (१८५४ ई०) में रघुराज सिंह का लिख्य किया।

१. मूलमान, पृ० १८ : सं० को० भा० वस्ता २२।१४१ : बनारस लाइट छापाखाने में गोपीनाथ पाठक ने मुद्रित की।
२. देखिये टीका के अन्त में बधेली हिन्दी में उल्लेख :

‘इति स्वस्ति श्री सामराज (साम्राज्य) श्री महाराजा श्री
बृष्णचन्द्र कृपापात्राधिकार (रि)—श्रीमन्मूर्ति-श्रीराजसिंहजू
देव बहादुर-जो० सो० देस० आई० कृत जगदीश (श) स (श)
ठरु-सतिलक। विद्यालय छापाखाना में छपा। मुकाम रोवा। लिखा
कृपानाथ प्रधान। सोचा वंश गोपाल कवि। छारा बदनू कारीगर।
दुनी अनाह सुदि १२ सनो का संवत् १९३१। सनापन्त ॥ शुभमस्तु ॥’

३. टीकारम्भे—‘अथ स्रष्टु श्रीमन्महाराजाधिराज श्रीरघुराजसिंह नामा
.....श्रीमन्नीलाचलधिराज-सन्दिदृशया प्रसिपजो मध्येपथं तद्दर्शन-
विलम्बमसहमानः कदा कदा द्रवमानोति तद्दर्शनोत्सुक्यातिरेकाविष्टमना-
स्तमेवानवरत्नमनुसन्धधानो..... कवापि तनेव तीष्ठ्यमानस्तदनु-
ग्यानवनिद-प्रेम-परोवाहृत्पा.....श्रीमन्महाराजसिंहकाह्यां स्तुतिमरी
रवत्।’

हिन्दी के शतक की भी रचना-सिधि यही है। वह पुरी पहुँचते-पहुँचते हिन्दी भाषा-प्रेमियों के निमित्त लिखा गया।^१

धार्मिक गीतियों के क्षेत्र में जगदीशशतक का स्थान जैसा रहेगा। इसमें देवता-परक-भक्ति का उद्रेक तीव्र है। इसमें भक्त के अन्तःकरण की ऐसी तड़प है, जो भक्ति रस को एक स्वतन्त्र रस बना देती है, जो पाठक को भाव-विह्वल बनाए बिना नहीं छोड़ती। तुलना के लिए कह सकते हैं कि मीरा के 'मेरे तो गिरिधर गोपाल' में जो पीटा है, उसी पीटा की झुंझक रघुराजसिंह के इन श्लोकों में प्राप्त है। इनमें से अनेक प्रारम्भिक श्लोक दर्शन-सिद्धान्तों से पूरित भी हैं, जिनकी यद्यपि एवं विवेचनात्मक टीका विद्वान् रङ्गाचार्य ने की है। भावपूर्ण शब्द-योजना पर जैसा अधिकार रघुराजसिंह ने प्रदर्शित किया है, रङ्गाचार्य की भाष्यात्मक शक्ति उससे अंशमान घटकर नहीं है। यह सहज ही कहा जा सकता है कि लेखनी में उनकी बहुश्रुत अभिव्यञ्जना-शक्ति स्वैग

१. हिन्दी ग्रन्थ का नाम जगन्नाथशतक है। यह भाषाज्ञ दुबल २ संवत् १९१४ (१८५७ ई०) को रामराज श्रीकृष्णदास बम्बई द्वारा प्रकाशित किया गया। ७१ पृष्ठों की प्रकाशित प्रति रामवन में प्राप्त है। इगुका दूगग संस्करण भी रामवन में है, जो भारतभ्राता प्रेस, रोवा से पीप, १९५८ वि० (१९०२ ई०) में दिनेश कवि द्वारा संशोधित रूप में छाया। इसकी भूमिका रोवा राज्य के तत्कालीन सेनापति ताल बत्सेवासिंह ने लिखी है—'संवत् १९१४ में जगदीश के दर्शनार्थ महाराजसिंह अपनी कई हजार प्रजा के सहित पुरी के लिए पधारें। यात्रा प्रारम्भ करने के दिन से ही श्रीमान् विद्वपालक के दर्शन-अभिलाषा में निमग्न हो संस्कृतललित छन्दों में जगन्नाथ जी की स्तुति आरम्भ किये और वहाँ पहुँचते-पहुँचते जगदीशशतक नामक ग्रन्थ समाप्त हुआ। पुरी पहुँच जाने पर श्रीमान् ने भाषा-प्रेमियों के विस-विनोदार्थ पत्रः श्री जगन्नाथ जी की वन्दना ललित भाषा छन्दों में किया और इसका नाम जगन्नाथ-शतक रखा।'

इससे स्पष्ट है कि संस्कृत ग्रन्थ की रचना पहले हुई। यहाँ यात्रा का संवत् १९१४ बतलाया गया है, किन्तु जगदीश-शतक में रचना का संवत् पीप १९१३ वि० है। अतः महाराज की यात्रा पीप १९-१३ वि० के पूर्व प्रारम्भ हुई और कई मास तक ये पुरी में रहे। हिन्दी का ग्रन्थ इसी वर्ष (१९१४ वि०) बम्बई से प्रकाशित हो गया।

प्रवाहित हुई है। जगदीशसतक बघेलसम्ब के उत्कृष्टतम संस्कृतकाव्यों में से एक तथा रघुराजसिंह की सर्वोत्तम कृति है। यह एक ही कृति इस कवि की संस्कृत के क्षेत्र में अधिकार प्रदान कर देती है।

३. रघुराजनङ्गलचन्द्रावली

रोदा के मरस्वती-कोप-माण्डार में १७५ पत्रा की यह पाण्डुलिपि सुरक्षित और सम्पूर्ण है। अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है—

‘इति श्रीमानार्द्ध-वासर-विरचितायां विलसत्कृष्ण-रक्षावल्यां श्रीरघुराज-मङ्गल-चन्द्रावल्यां परो वागी-विलासस्तम्भुनः ॥’^१

अर्थात् ग्रन्थ का नाम रघुराजनङ्गलचन्द्रावली है। इसका लक्ष्य है स्तुति द्वारा कृष्ण में रक्षा और मङ्गल की याचना। यह ग्रन्थ मासाह १५ दिनों के प्रयत्न में पूर्ण हुआ। इस बात से रघुराजसिंह की काव्य-निष्ठा और श्लोक-रचना की शक्ति प्रकट होती है। ग्रन्थ के दो भाग किये गये हैं, जिनमें से ४८ अध्याय तक ‘पूर्ववाणीविलास’ और बागे ‘परवाणीविलास’ है। कुल ८६ अध्याय हैं। ये ११५ वें पत्रा तक श्लोकबद्ध रूप में समाप्त होते हैं। १५६-५७ पत्रा फलस्तुति के हैं तथा १५८ से १७५ वे पत्रा तक व्याख्या प्रस्तुत की गई है। प्रारम्भ के २४ पत्रा तक श्लोक-संख्या ७३ है। तत्पश्चात् श्लोक-गणना नहीं की गई है। रचनाकाल का निर्देश कहीं नहीं है और न पाण्डुलिपि का लिपिकान्त ही है।

ग्रन्थ के अध्याय-विभाजन का आधार श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के अध्याय है। तदनुसार श्लोक कृष्णचरित्र पर आधारित है। इन श्लोकों में कृष्ण-कथा का सङ्केत मात्र होता है, कथावर्णन लक्ष्य नहीं है। प्रत्येक अध्याय में भागवत के उसी अध्याय में वर्णित कृष्ण-चरित्र पर आधारित कृष्ण के स्वध्वन का ध्यान किया गया है और उस भगवत्स्वरूप से कवि ने अपने लिए रक्षा या आशीष वादी है। अतः अध्यायों की समाप्ति पर कथा के अनुसार पुष्पिकाएँ रखी गई हैं और उनका नाम आशीष ही है। अन्तिम उदाहरण इस प्रकार है—‘इति श्रीभागवतोत्तरार्द्ध-दशमस्कन्धे द्विजकुमारहरणा-निधान-नवाशीतिनाध्याय-प्रतिपादनानाष्टमूज-श्रीमन्नारायण-प्रतिपन्ना-सिः ॥’

ये अध्याय अत्यन्त संक्षिप्त हैं। प्रत्येक श्लोक में ‘रघुराज (अथवा राजा

रघुराज) की रक्षा करें', इस आशय की शब्दावली है। उदाहरण के लिए आरम्भ के श्लोक इस प्रकार हैं—

'रक्षतु सा राधा जगदनुराधा राघारमण-सुराधा ।
दूरीकृत-बाधा दुरितदुःखाद्या नृप-रघुराजमगाथा ॥ ५ ॥
वृन्दावन-चारो रासविहारो रक्षतु जगदवतारो ।
राधापतिभाजं नृपरघुराजं प्रज-कीतूहल-कारी ॥ ६ ॥
धेन्यागमित-रोहिणीतनयो बलदेवो बलशाली ।
पातु राञ्ज-रघुराजमुदारं शरणागत-जनपाली ॥ ७ ॥

ग्रन्थ के अन्त में गद्य में ब्रजराज-यदुराज शब्द की व्याख्या की गई है। अतः समग्र रूप में यह ग्रन्थ भी साम्प्रदायिक लक्ष्य रख कर लिखा गया है।

४. शम्भुशतकम्

सरस्वती-कोप-भाण्डार, रोवा तथा रघुराज-स्मारक रामवन (सतना) में शम्भुशतक की लिखी-मुद्रित प्रतियाँ सुरक्षित हैं। यह मुद्रण 'वनारस लाइट छापाखाने' में १९२३ ई० में हुआ। ग्रन्थ की रचना मङ्गलवार, आश्विन कृष्ण द्वादशी संवत् १९१८ (१८६९ ई०) को गोविन्दगढ़ में पूर्ण हुई।

रघुराजसिंह इस वर्ष चरण-रोग से अत्यन्त पीड़ित थे। इसी विकलता के बीच रोग-निवारण के लिए ध्यापने मृतमुञ्जय राज्जुर की स्तुति में यह शतक रचा।^९

५. नर्मदाष्टकम्

इस ग्रन्थ की भी मुद्रित प्रतियाँ रोवा और रामवन दोनों स्थानों में सुरक्षित हैं। यह ग्रन्थ सोमवार, पौष शुक्ल द्वितीया, संवत् १९१३ (१८५७ ई०)

१. अन्तिम उल्लेख :

'सिद्धि-ब्रह्म-निधीन्द्रव्य इये कृष्णे कुजे तिथौ ।
द्वादश्यां शम्भुशतकं गोविन्दनगरे कृतम् ॥'

२. शम्भुशतकम् :

दुःखार्णवे शोक-तरङ्ग-सङ्कुले, पीडा-ग्रहेऽहं पतितः स्व-कर्मणा ।
नाऽप्यो गतिर्मेऽद्य वृत्ते भवन्तं, कृपा-कटाक्षेण नयस्व पारम् ॥ ३६ ॥
वक्रेण नक्रेण यथा हरिर्गजं, प्रस्तं हि चक्रेण तमुज्जहार ।
सथैव मां पादरजा ग्रहीतं, त्वमुद्धरस्वाशु शशाङ्क-शेखर ॥ ३८ ॥

को निमित्त हुआ ।^१ ग्रन्थ में कुल ११ श्लोक हैं, जिनमें से प्रारम्भ के ९ श्लोक वन्दना के हैं । नर्मदा मीरल कम्पा है, उसके तटों पर स्थित वृक्षों, वन्य जातियों, और पत्तारों के उल्लेख दिये गये हैं ।

६. लोकनायाष्टकम्

रामयन में 'रघुराजसिंह कृत लोकनायाष्टकम्' नाम से एक पाण्डुलिपि प्राप्त है । लिपिकाल का निर्देश नहीं है । यह रचना रघुराजसिंह द्वारा शुक-वार, ज्येष्ठ कृष्ण पञ्चमी, संवत् (१८५६ ई०) को पूर्ण की गई ।^२ रघुराजसिंह के उपलब्ध संस्कृत ग्रन्थों में यह पहली रचना है । इसमें प्रारम्भ के ८ श्लोकों में भगवान् शिव की वन्दना है ।

ग्रन्थों की रचना-तिथियों पर ध्यान देने से प्रतीत होता है कि संवत् १९१३ का वर्ष रघुराजसिंह को संस्कृत-सर्जना की ओर प्रवृत्त करने वाला विशेष वर्ष था । इस वर्ष उन्होंने ज्येष्ठ में लोकनायाष्टक, मार्गशीर्ष में सुधर्मात्रिलास, पौष कृष्ण में जगदीशशतक और पौष शुक्ल में नर्मदाष्टक की रचना की । नर्मदाष्टक का पौष शुक्ल त्रितीया का रचनाकाल यह द्योतित करता है कि इस तिथि को महाराज ने अमरकण्ठक में नर्मदा स्नान किया, जैसा युगधेश ने भी लिखा है । जगदीशशतक की समाप्ति इसके ठीक दो दिन पूर्व बतलाई गई है । अतः प्रतीत होता है कि पौष मास के प्रारम्भिक दिनों में रीवा में जब जगदीश-यात्रा की संधारी हो रही थी, तभी भाव-भग्न होकर रघुराजसिंह ने जगदीशशतक की रचना प्रारम्भ की । अतः इन शतक का कुछ अंश रीवा में ही लिखा गया और अमरकण्ठक पहुँचते पहुँचते ग्रन्थ पूर्ण हो गया ।

१. 'रेवाष्टकमिदं दिव्यं रघुराज-विनिर्मितम् ।

अस्य प्रवृत्तान्मासा नर्मदा मे प्रसीदतु ॥ १० ॥

मिते संवत्सरे पौषे गुण-ब्रह्म-निधोग्दुभिः ।

तिते सीमे त्रितीयाया निमित्तं नर्मदाष्टकम् ॥ ११ ॥

२. 'लोकनायाष्टकमिदं रघुराज-विनिर्मितम् ।

पञ्चां श्रुण्वतीं शरवश्लोकनायः प्रसीदतु ॥ ९ ॥

अग्नि-ब्रह्माङ्ग-शुभाशु-मितेऽग्ने तपसीष्टदम् ।

लोकनायाष्टकं वाण-तिथौ कृण्वे कृतं कवी ॥ १० ॥

इति सिद्धिप्रो-वाग्धेश-महाराजाधिराज-श्रीमहाराजावहादुर-
श्रीकृष्णधन्-कृपावाचाधिकारि-श्रीरघुराजसिंहजुदेव-विरचितं लोकनाया-
ष्टकं समाप्तम् ॥ क्षममस्तु ॥

धमरकण्ठक से माने की यात्रा में संस्कृत जगदीशशतक नहीं लिखा गया (शेष यात्रा में हिन्दी का जगन्नाथशतक लिखा गया होगा) ।^१

ग—प्रस्तुत काव्यों में प्राप्त दर्शन

उपर्युक्त स्तुति-काव्यों में जो दर्शन उपलब्ध है, उसे हम दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—१ : परम्परात्मक २ : साम्प्रदायिक । परम्परात्मक दर्शन वह है, जो वेदान्त के अन्तर्गत भक्ति के रूप में विकास को प्राप्त हुआ और जिसकी एक निश्चित सोमा को समस्त उपासना-परक सम्प्रदाय स्वीकार करते हैं । अन्तर यह पड़ता है कि अन्य देवों को अस्वीकृत न करते हुए विशिष्ट सम्प्रदाय अपने इष्टदेव को परात्पर ब्रह्म रूप में प्रतिष्ठापित करता है और शेष देवों को उस इष्टदेव के अधीनस्थ रूप में प्रस्तुत करता है । विष्णु और उनके नारायण, राम, कृष्ण, आदि अवतारी रूप तथा विष्णु के अतिरिक्त शिव, शक्ति (काली, दुर्गा, चण्डी आदि रूप), गणपति तथा सूर्य की उपासनाएँ ब्रह्म रूप में होती रही हैं । इनकी स्तुतियों में कितने ही शतक, अष्टक आदि ग्रन्थ भी लिखे जाते रहे हैं ।

रघुराजसिंह के सुधर्मा-विलास को छोड़कर शेष पाँचों ग्रन्थों को हम इन्हीं परम्परात्मक प्रतिष्ठाओं से युक्त पाते हैं । इनमें से रघुराज-मङ्गल-चन्द्रायली को इसलिए पृथक् किया जा सकता है कि उसके लेखन में भागवत का आधार है और उसमें कोई अपनी दार्शनिक शक्ति कवि ने प्रदर्शित नहीं की । शेष ४ ग्रन्थों में से तीन ग्रन्थ शम्भुशतकम्, लोकनाथाष्टकम् और नर्मदाष्टकम् शिव-ग्रहण परक हैं । इनमें स्तुति और स्तोत्र के लक्षण मिश्रित हैं । अर्थात् कवि भगवान् के गुणों और विभूतियों की चर्चा करते हुए निवेदन करने लगता है ।

भगवान् शङ्कर अपने दासों को मृत्यु के मुख से मुक्त कर सकते हैं ।^२ देव, असुर और मानव तथा गन्धर्व, विद्याधर, किन्नर आदि सभी उनकी

१. रामरसिकावली में जुड़े हुए युगलेश कवि द्वारा रचित अंश में इस सम्बन्ध में निम्नलिखित सूचना प्राप्त है—

‘तर्हें मज्जन करि ई बहु दाना । रेवा अष्टक रच्यो सुजाना ॥’
‘शतक संस्कृत यक जगदीशा । विरच्यो मैं निज अलिख दीशा ॥’
भाषा-शतक कवित में दूजो । विरचन लग्यो सोऊमग पूजो ॥’

२. शम्भुशतकः श्लोक ३७ :

‘मृत्योर्मुखांमोचयसे स्व-दासांस्तस्माद्धि मृत्युञ्जय-नामधेयः ।’

बन्धना करते हैं और किसी फल की प्राप्ति के लिए उन्हीं की आराधना करते हैं ।^१ वेद और पुराण, उपनिषद् और संहिताएं उनकी प्राप्ति के मार्ग बतलाती हैं, वे ब्रह्मा और इन्द्रादि देवों द्वारा बन्ध है ।^२ नर्मदा शिव की ही प्रिमा है ।^३

रघुराजसिंह अपने को 'श्रीकृष्णचन्द्र-रूपावाप्राधिकारी' लिखते थे । वे वास्तव में भगवद्रूप श्रीकृष्ण के उपासक थे । श्रीकृष्ण को ही उन्होंने परास्पर ब्रह्म रूप में स्वीकार किया है । रघुराजसिंह के जगदीशशतक में उनकी यह कल्पना साकार हुई है । प्रस्थान-त्रयी (उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता) में ब्रह्म के जिस सच्चिदानन्द, विष्णु, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सृष्टिकारण-रूप की उद्गाहना की गई है, उसी में करुणा-वरुणालय, जगद्धितैपी, अवतारी स्वरूप को संयुक्त कर जगदीशशतक में प्रस्तुत किया गया है । इस भावना की हम इस रूप में परम्परात्मक मानते हैं कि समस्त वैष्णव सम्प्रदायों में परमात्मा का यही 'चिदभिद्विग्रह' प्राप्त है । केवल इष्ट का अन्तर है । नाम-मात्र के लिए परमात्मा का नाम कहीं कृष्ण या राम है, तो अन्यत्र नारायण आदि है, किन्तु विभूतिषी बही है । जगदीशशतक के टीकाकार ने अधिक विशद एवं विस्तृत रूप में दर्शन को स्पष्ट किया है ।

श्रीकृष्ण के प्रकाश से सम्पूर्ण विश्व भासित है । सूर्य, चन्द्र, तारागणों में भी उन्हीं का प्रकाश है । उनके भ्रू-विकास-मात्र से प्रलय, उत्पत्ति और पालन

१. शम्भुशतक : श्लोक : ३९ :

'देवामुराणां च तथा नरानां गन्धर्व-विद्यापर किन्तरागाम् ।
त्वया न सेवा-फटमीश लोपितं प्रसीद मय्यागु निवाशुतोप ॥'

२. लोकनायाष्टकम् : श्लोक १ ।

'देव वेदैः पुराणेषुपनिषद्वली-संहितामिस्तुगम्यं
गम्यं सिद्धैर्मुनीशरति-रतिसहितैर्यस्य पादारविन्दम् ।
विन्दं ब्रह्मेन्द्र-बन्धं विरति-निरतिदं ब्रह्म-विज्ञान-वेदं
वेदं बन्धे विशालं कलि-कलुष-हूरं कामदं वामदेवम् ॥'

३. नर्मदाष्टकम् : श्लोक २ :

'गिरीश-रूप-शोभिते गिरीश-भाव-भाविते
सुरसि सिद्ध-बन्दिनेसुरेन्द्र-हर्ष-सम्पदे ॥'
तथा 'शिवस्वरूप-दायिके सरिद्गणस्य नायिके
मुवाञ्छितार्य-दायिके ह्यनायिके मुकायिके ।

सुमानसस्य कायिकस्य वाचिकस्य पाप्मनः

प्रहारिके त्रितापहे नमामि देवि नम्मदे ॥ ९ ॥'

होते हैं। देवगण उनके चरण-रज की प्राप्ति के लिए सयत्न रहते हैं।^१ सिद्ध, मुनि, सुर, असुर, गन्धर्व, यक्ष, नाग, तिव और ब्रह्मा कल्याण के कामार्थ निरन्तर उनका ध्यान करते हैं।^२ श्रीकृष्ण ही सृष्टि के पूर्व थे; वे अनादि, अलिप्त, अनन्त एवं विभु हैं।^३ श्रीकृष्ण से ही जगत् की उत्पत्ति होती है, उन्हीं की आत्मा जगत् में स्थिति-काल में व्याप्त रहती है और उन्हीं में जगत् का लय होता है।^४

श्रीकृष्ण भगवान् के विश्वरूप की कल्पना भी ऋग्वेद और श्रीमद्भागवत के अनुसार प्रस्तुत की गई है—

‘यः पातालपदो मही-कटितटः स्वर्लोक-शीर्षोऽस्ति यो
मार्तण्डेशन दिक्श्रुतिः श्रुतिमुखी गीर्वाणवाहुः कधीः ।
माया-क्रीडनको जगद्वपुरजो हीनो ह्यदिव्यगुण-
स्तन्नीलाचलवासिनं यदुपति वन्दे जगद्वन्दितम् ॥ ७ ॥’^५

आगे चल कर भक्ति-सिद्धान्तों और साकार-रूप-कल्पनाओं पर आधारित

१. जगदीशसतकम् : श्लोक १ :

‘यद् भासा सुविभाति विश्वमखिलं साकन्दु-सारागणं
यत्किञ्चिद्-भृकुटी-कटाक्षकलया नाशोद्भूतो पालनम् ।
यत्पादाम्बुज-धूलि-धारणविधौ कुर्वन्ति यत्नं सुरा-
स्तन्नीलाचलवासिनं यदुपति वन्दे जगद्वन्दितम् ॥’

२. श्लोक २ :

‘वं सिद्धा मुनयः सुरासुरगणा गन्धर्व-यक्षोरणा-
स्तेषानाः सचतुर्मुखाः प्रतिदिनं ध्यायन्ति सां प्राप्तये ।’

३. श्लोक ३ :

‘यः पूर्वं जगतामनादिरमलोऽनन्तः परो मध्यगः
स्रष्टा शोषयिता कटाक्षकलया हन्ता नियन्ता विभुः ।’

४. श्लोक ४ :

‘.....यस्माज्जगज्जायते
मस्याभा-परिपूरितं जगदिदं यस्मिन् च तल्लोयते ।’

५. पुरुषसूक्त (ऋग्वेद) : १०।१०।१३ : ‘यसोः सूर्यो अजायत ।

तया १०।१०।१४ :

‘नाम्या आसोदन्तरिक्षं शीर्ष्णो धीः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिदिशः श्रोत्रात्तया लोकां अकल्पयन् ॥’

एवं श्रीमद्भागवतः २।२

अनेक प्रसङ्गों के उल्लेख किये गये हैं। गङ्गा के जन्म एवं पावनत्व की कथा का सङ्केत देखिये—

‘यत्पाद-पद्भुज-जलं चतुराननोऽसी
 शुद्धये कमण्डलुमुखे सुतरा दधार ।
 अद्यापि मूर्धनि शिको बहतीष्टरूपं
 वन्दे प्रभुं पतितपावन-नामधेयम् ॥ १० ॥’

श्रीराम और श्रीकृष्ण में अभेद मान लिया गया है और रामावतार की लीलाओं का भी पाँच श्लोको में स्मरण किया गया है।^१ एक उदाहरण प्रस्तुत है—

‘विज्ञान-मञ्जित-विरतीष्ट-सुधर्म-हीना
 नीचा महावनचरो शबरी हि तस्यै ।
 भुक्त्वा तदपित-फलं प्रददौ गतिं यो
 वन्दे प्रभुं पतितपावन-नामधेयम् ॥ २८ ॥’

श्री कृष्ण के ही दश रूपों को दशावतार मान कर परम्परात्मक रूप में सुधर्माविलास में वन्दना की गई है—

‘मीनं कूर्मं वराहं भरहरिमतुलं वामनं विश्वनाथं
 रामं रामं च कृष्णं खलमतिदरणं बुद्धरूपं विचित्रम् ।
 म्लेच्छ-व्यूहन्दुणन्तं कृतयुगकरणं कल्किनं वाजिवाहं
 वन्देऽहं वासुदेवं दशविधवपुषं देवकीनन्दनम् ॥’^२

रघुराजसिंह के भक्ति-दर्शन के परम्परात्मक स्वरूप पर सम्पूर्ण रूप से श्रीमद्भागवत और उससे निःसृत वैष्णव-सम्प्रदायों की परिकल्पनाओं का प्रभाव है, यह सहज ही कहा जा सकता है। यही बात उनके साम्प्रदायिक दर्शन के सम्बन्ध में बहो जा सकता है, किन्तु इसके साथ सम्बद्ध सम्प्रदायों का विस्तृत परिकल्पनाओं को अधिक महत्व देना पड़ेगा। यह साम्प्रदायिक दर्शन ब्रह्माण्ड और श्रीकृष्ण की साकार विभूतियों का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करता है, जो रघुराजसिंह के सुधर्माविलास ग्रन्थ के विवरणों के रूप में उल्लेख है। उत्क्रमण का मार्ग-वर्णन, श्रीकृष्ण की सुधर्मा समा और श्रीकृष्ण, बलराम, द्रष्टृन् और अनिरुद्ध का चतुर्भुजात्मक स्वरूप ये सम्प्रदायों की उद्भावनायें हैं। इन उद्भावनाओं पर विपुल साहित्य का निर्माण हुआ है।

१. श्लोक २६—३०

२. उल्लास ८, पद १० : तुलना के लिए देखिये—अपदेव : गीत-गोविन्द : सर्ग १ अष्टपदी १।१२। ‘वेदानुद्धरते—’ ।

सगुण उपासना में पाञ्चरात्र या^१ भागवत मत का विशेष समर्थन हुआ है। सुधर्माविलास की रचना भी इसी कड़ी को आगे बढ़ाती है। इस मत के अनुसार ब्रह्म (यहाँ पर श्रीकृष्ण) में अप्राकृत गुण भी हैं। यह पद्मगुण-रूप और सगुण-रूप है, अतः उसकी भगवान् गंजा है।

भगवान् (श्रीकृष्ण) जगत् के वर्णन के लिए स्वतः व्यूह, विभक्त, अर्चावतार और अन्तर्यामी चार रूपों को सृष्टि करते हैं। व्यूह चार है— वामुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध।^२ पद्मगुण-युक्त भगवान् ही वामुदेव हैं, यही रघुराजसिंह के सुधर्माविलास के श्रीकृष्ण हैं। दोष तीन व्यूहों में दो दो गुण ही विद्यमान रहते हैं। भगवान् का यह विश्वव्यापी व्यूह रूप विभव-रूप में भी परिणत होता है, जिसे अवतार (मुख्य दशावतार तथा दोष गौण मिल कर चौबीस अवतार) कहते हैं। अर्चावतार भगवान् की घालग्राम आदि शिला-मूर्तियाँ हैं, जिनके सहारे साधक अर्चना कर सके। अन्तर्यामी रूप नित्य प्राणियों के हृदय में निवास करने वाला भगवद्रूप है। इस पाञ्चरात्र मत का शङ्कराचार्य ने खण्डन किया था किन्तु रामानुज ने इसे पुनः प्रामाणिक ठहराया और समस्त परवर्ती वैष्णव सम्प्रदायों ने इसे स्वीकार किया।^३

यह कहना कठिन है कि सुधर्मा-विलास में श्रीकृष्ण को जिस विभूति और ब्रह्माण्ड की जिस रचना की परिकल्पना प्रस्तुत की गई है, उसके आधार मूल ग्रन्थ कौन-कौन हैं। ऐसे अनेक ग्रन्थ हैं, जिनमें इष्टदेव का ब्रह्मत्व स्थापित किया गया है, किन्तु दोष परिकल्पनाएँ मूलतः उमान हैं। निपाद-विभूति-महानारायणोपनिषद् में विभूति-वर्णन के मुख्य सत्त्व निम्नलिखित रूप में प्राप्त होते हैं—

‘ब्रह्म पाद-चतुष्टयात्मक है—१. अविद्यापाद, २. सुविद्यापाद, ३. आनन्दपाद और ४. तुरीयपाद। इनमें से प्रथम पाद नीचे और तीन पाद ऊपर हैं।’^४ ऊपर की

१. पाञ्चरात्र-परमसंहिता : गायकवाड़ ओ० सिरौजः बड़ौदा: ३।७
‘निराकारे तु देवेशे नार्चनं सम्भवेन्नृणाम् ।

न च ध्यानं न च स्तोत्रं तस्मात्साकारमर्चयेत् ॥’

२. पाण्डे-कपिलदेव (डा०) : मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद :
श्रीसम्वा : वाराणसी : १९६३ : पृष्ठ ३७३ : व्यूहरूप ।

३. हिन्दी साहित्य-कोश (भाग १) : बनारस : २०१५ वि० :
पृष्ठ ८०५ ।

४. तुलना के लिए देखिये पुरुषसूक्त : ऋग्वेद १०।९०।१-५ ।

त्रिपाद्-विभूति अक्षण्ड अमित्र तेजोराशि से प्रज्वलित है। मध्यम पाद में तेज-प्रवाहाकार नित्य वैकुण्ठ है। उसके मध्य महाविष्णु का परम पद है। सूर्यमण्डल के अन्तर्गत जैसे सूर्य है, उसी प्रकार दिव्य सुदर्शन-तेज के अन्तर्गत सुदर्शन आदिनारायण है। वही तुरीय ब्रह्म है।^१

साकार के दो भेद हैं १—सोपाधिक या अविद्योपाधि। यह सावयव होने से अनित्य है। २—निरुपाधिक, जिसके तीन प्रभेद हैं—ब्रह्माविद्यासाकार, आनन्दसाकार और उभयात्मक-साकार। उन तीनों की दो दो विधाएँ हैं—नित्य साकार और मुक्त साकार। नित्य साकार आद्यन्त-शून्य शाश्वत है। उपासना से मुक्ति को प्राप्त होने वाले मुक्त-साकार कहलाते हैं। अक्षण्ड ज्ञान से आविर्भूत यह साकार भी शाश्वत है। ...तुरीय परमेश्वर से अनन्तसोर्पा सगुण-निर्गुण रूप स्थूल विराट्स्वरूप होता है। यह अविद्या के समस्त अण्ड में व्याप्त है। इसके एक एक रोम-कूप में अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड हैं। प्रत्येक अण्ड में एक नारायण हैं। नारायण से हिरण्यगर्भ, अण्ड विराट्, स्रष्टा, प्रजापति, एकादश रुद्र, अखिल लोक, आदित्य-इन्द्रादि सर्व देव उत्पन्न होते हैं।^२

'भवत की उत्क्रान्ति के समय वैकुण्ठ-पार्षद् आते हैं। प्राकृत-देह-त्याग के पश्चात् साधक को महाविष्णु का साहचर्य-विग्रह प्राप्त होता है। वह आनन्दमय नदी में स्नान कर अनेक पुण्य लोकों का अतिक्रमण करता है। फिर क्रमशः सत्यलोक (ब्रह्मा का लोक), शैवलोक, महर्षिमण्डल, सूर्य-सोम-मण्डल, ध्रुवमण्डल, शिशुमार-चक्र को पार करता है। तब वैकुण्ठ में विरजा नदी में स्नान कर ब्रह्ममय वैकुण्ठ में प्रवेश करता है। यहाँ ब्रह्मानन्दाचल में ज्योतिर्मय स्थानों में पञ्चकणिका में शुद्ध-शेष-भोगासन पर स्थित आदिनारायण की अराधना कर उनको अनुज्ञा से पञ्चवैकुण्ठी को पार कर अण्डविराट् कैवल्य के समीप परमानन्द को प्राप्त होता है।'^३ इसी प्रकार विस्तृत विवरण और भी है।

(घ) रचना-शैली

रघुराजसिंह की रचना-शैली प्रसाद-गुण-पूर्ण है। उसमें क्लिष्ट, दीर्घ एवं कठिन समास-युक्त अथवा अनेकार्थक पदावली का बहुत कम प्रयोग हुआ है। भक्ति-रस के अनुकूल सात्वती वृत्ति और वैदर्भी रीति प्रयोग में

१. त्रिपाद्-विभूति-महानारायणोपनिषद् : अध्याय १।

२. वही, अध्याय २।

३. वही, अध्याय ५।

लाई गई है। त्वरित रस-परिपाक रघुराजसिंह की विशेषता है। पांडित्य-प्रदर्शन की उल्लसित प्रायः नगण्य है, यद्यपि उनकी बहुश्रुतता के सर्वत्र दर्शन होते हैं।

पहले कहा जा चुका है कि रघुराजसिंह के स्तुति-गीतों में गीत-गोविन्द की शैली का अनुकरण है। इस अनुकृति को सुधर्माविलास की स्तुतियों और पदों में, विशेषतः ८ वें से १० वें उल्लास तक देखा जा सकता है। शैली की अनुकृति होने पर भी विषयान्तर के साथ रघुराजसिंह की अपनी पद-योजना द्रष्टव्य है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

‘निशिचरकुल-कृत-महिमण्डल-बहुभारम् विलुलित-सकल-सुधर्माचारम् ।
 दोनमुनीनवलोक्य दयाकर-वेशम् प्रकटन-याचित-कोसल-देशम् ।
 जनक-सत्यता-रक्षण-विपिन-विहरणम् कृत-रण-खर-द्रूपण-संहरणम् ।
 कृतकपिसहय-रचित-सागर-वरसेतुम् कन्दित-सकल-निशाचर-केतुम् ।
 श्रीरघुनाथन्नोमि जय यदुनाथ हरे ॥८१७॥’
 मदुकुल-जलधि-विवर्धन-भुखद-शशाङ्कम् वृन्दावन-विहरण-मकरन्दम् ।
 पदुकुल-कण्ठक-कन्दन-कठिन-कुठारम् अवतारित-जगतीतल-भारम् ।
 पाण्डव-रथ-सारथिमतिशोभिष-वेशम् रणरजरञ्जित-कुञ्चित-केशम् ।
 पोडश-दश-शत-रमणी-विरचित-रासम् द्वारवती-कमनीय-विलासम् ।
 श्रीगोविन्दन्नोमि जय यदुनाथ हरे ॥८१८॥’^१

तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर यह प्रतीत होता कि वृत्त में कोई अन्तर नहीं है, किन्तु जहाँ गीतगोविन्द में प्रत्येक अवतार के लिए केवल दो पंक्तियाँ हैं, सोसरा पंक्ति ध्रुव (टेक) के साथ रहती है, वहाँ उपर्युक्त पदों में प्रत्येक अवतार के लिए ८-८ पंक्तियाँ हैं और नौवीं पंक्ति ध्रुव के साथ है।

गीतगोविन्द के १८ पंक्तियों से युक्त दूसरे पद^१ की अनुकृति में ठीक १८ पंक्तियों से युक्त सुधर्माविलास के एक पद की कुछ पंक्तियाँ देखिये—

‘मृदु मुरली-रवकारित गोपीमोहन ए । रसिक-शिरोमणि-कान्त जय गोपीश हरे ॥
 विविध-विलास-विद्यालिक वनमालिक ए । मदन-भद-मघन-रूप जय गोपीश हरे ॥

१. तुलना के लिए देखिए—गीतगोविन्द-सर्ग १।१ :

‘प्रलय पयोधि-जले घृतवानसि वेदम् । विहित बहिरचरित्रमखेदम् ।
 केशवघृतमीनशरीर जय जगदीश हरे ॥’

२. ‘श्रित-कमला-कुचमण्डल धृतकुण्डल ए ।

कलित-ललित-वनमाल जय जय देव हरे ॥.....’

“गोपीमण्डल-मण्डित रस-पण्डित ए । रचित-रुचिर-रस-रास जय गोपीश हरे ॥
गोत्र-नृत्य-सुविभारद धारद सुख ए । विहित धन्य-रघुराज जय गोपीश हरे ॥
...१०।५८-६५॥”

रघुराजमङ्गल-चन्द्रावली में गीतगोविन्द के २८ मात्रा वाले छन्द^१ की अनुकृति में सम्पूर्ण ग्रन्थ एक ही छन्द में लिखा गया है । इसे लय-तालात्मक अनुकरण कहा जा सकता है, किन्तु विषय और शब्दों के ध्यान में कवि ने स्वतन्त्र प्रतिभा का प्रयोग किया है । ये श्लोक रसात्मक होते हुए भी काव्य-सौन्दर्य से हीन नहीं हैं । इनमें भावात्मकता भी शलकती है—

‘प्रावृत् परमसुन्दरो धारदपि रेमे मत्र विहारी ।
पातु राज-रघुराजमुदारं व्रज-जनिता-रति-कारो ॥
नन्दमूनु - वर - वेणुगीत-रव-भोहित-दार-वर्तसाः ।
पातु राज-रघुराजमुदारं विलसद्-रत्नवर्तसाः ॥
व्यायतनमना यं रघुराजं मृग्यः पपुरनुरागम् ।
पातु राज-रघुराजमुदारं हरि-पद-पङ्कज-रागम् ॥’^२

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि जयदेव की मधुर-कोमल-शान्त-पदावली के समस्त रघुराजसिंह की पद-योजना का मूल्य बहुत कम रह जाता है । बाह्यलाद की सृष्टि में, रसिक हृदयों को नृत्य-विभोर करने में सशम जयदेव अपने क्षेत्र में अप्रतिम ही रहे हैं । तथापि जयदेव की इस परम्परा को उन्नीसवीं शती के उत्तर भाग तक ला कर लय-बद्ध गीतात्मक काव्य की सृष्टि करने वाले रघुराजसिंह का महत्त्व इतिहास की दृष्टि से बदस्य है, जब कि उनके साथ सद्यःकालि का भी योग हुआ ही है । उनका यह महत्त्व शिव-ताण्डव-स्तोत्र धमना लहरो-काव्यों की परम्परा को अग्रसर करते हुए नर्मदा-एक की सर्जना में भी है । यहाँ वे अथिक् मौलिक हैं और शब्दालङ्कारों के सुन्दर प्रयोग करते हैं—

‘वलदा लक्ष्म-लक्षिते सकच्छ-कच्छान्विते
मुपदा-पक्षि-सच्छटे ह्यरदा-रक्षण-धमे ।
मुददा-ददा-मदा-वाञ्छितेन-पदा-पदाः
विकक्षण-क्षण-क्षणं समाप्ति देवि नमते ॥ ५ ॥
महात्मनां सदात्मनां सु-धर्म-कर्मवर्तिनां
तपस्विना मशस्विनां मनस्विनां मनः प्रिये ।

१. सर्ग १।३ : ‘ललित-लवङ्ग-लला-परिशीलन-कोमल-मलय-समीरे ।...’
२. रास-दर्शन से ।

मनोहरे सरिद्वरे सुसङ्घरे निभां हरे

शराशरे जषाङ्गरे नमामि देवि नमदि ॥ ६ ॥^१

बलदेव उपाध्याय ने लिखा है 'संस्कृत का भवत कवि कभी भगवान् की दिव्य विभूतियों से चकित हो उठता है, तो कभी भगवान् के भी विशाल हृदय, असोम अनुकम्पा और दीन जनों पर अकारण स्नेह की गाथा गाता हुआ आत्मविस्मृत हो जाता है।—संस्कृत का मुक्तक-साहित्य हृदय के भावों का वर्णन करने में अपनी तुलना नहीं रखता। वह उस लघु चित्र के समान होता है, जिसके छोटे से दायरे में चित्र के पूरे अङ्ग-प्रत्यङ्ग खींचे जाते हैं तथा जो देखते ही अद्भुत चमत्कार पैदा करता है।'^२

सामान्यतया मुक्तकों के रूप में प्राप्त समस्त स्तोत्र-साहित्य को गीतिकाव्य मान लिया जाता है, किन्तु यह ठीक नहीं है। 'गीतिकाव्य कवि के भावलोक अथवा अन्तःप्रदेश में उद्देलित होते हुए मनोवेगों के तीव्रतम होने के उपरान्त, उसकी घनोभूत अनुभूति के फलस्वरूप बाहर निकली हुई अभिव्यञ्जना है।'^३

संस्कृत के श्लोकों में लयबद्धता और सङ्गीत का सामान्य तत्व समस्त पद्यसाहित्य में अभिव्याप्त रहता ही है। अतः गीत मूलतः गीति का आधार नहीं बन सकता। गीति वही है, जिसका कछेवर आत्मनिष्ठापरक उत्तरङ्ग भावधारा से ओत-प्रोत हो। जो वाल्मीकि के सदृश करुण के उद्रेक से व्यथित हो जाय; जो मीरा की भाँति भगवान् के समक्ष आत्मसमर्पण कर चुका हो, जो सूरदास के समान कृष्ण के प्रणय में लुटी हुई, विवश गोपियों की वेदना का साक्षात्कार कर सके, जो भर्तृहरि की भाँति संसार के अहङ्कार और विस्वासघात की चोट खा कर उसे सर्वथा असार मान चुका हो, वह गीतिकाव्य की रचना कर सकता है। भक्ति के क्षेत्र में आर्त, जिज्ञासु, अर्थापी और ज्ञानी में से आर्त के उद्गार ही हृदयद्रावक होंगे। जो विभिन्न योनियों में संसरण के त्रास से कम्पित होगा अथवा जीवन के किसी मर्मन्तिक कष्ट से आहत होगा, वही अस्वर्णशरण की अन्तःकरण की सच्चाई के साथ

१. तुलना के लिये देखिये शिवताण्डव स्तोत्र-

'जटा-कटाह-सम्भ्रम भ्रमन्तिलम्ब-निर्जरी - ।'

२. संस्कृत-आलोचना : वाराणसी : १९५७ : पृष्ठ ६५ ।

३. शकुन्तला द्वये (डा०) : काव्यरूपों के मूलस्रोत और उनका विकास : हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय : वाराणसी : १९५८ : पृष्ठ २९९ ।

पुकारेगा । यही उद्गार, यही स्वर काव्यवद्ध होकर गीति बनते हैं । ये गीत्यात्मक स्वर हमें शम्भुशतक और जगदीशशतक में मिलते हैं ।

शम्भुशतक का कवि रोगार्त होकर मरण-भय से कम्पित है और वह मृत्युञ्जय शिव को प्राण-रक्षा के लिए पुकारता है—

‘जानान्महं नाथ न योगस्यार्थविधानं मननं तपश्च ।
विधाय मूर्ध्नाञ्जलिमद्भिन्न-सन्निधौ मा पाहि मां पाहि वदन्ममामि ॥३५॥
मृत्योर्नुज्ञान्मोक्षयसे स्वदासांस्तस्माद्धि मृत्युञ्जय-नामधेयः ।
न मोक्ष्यसे मां यदि दुःखसङ्घात् सार्थं कथं स्यात्तव दिव्य नाम ॥३७॥’

जगदीशशतक का कवि जीवन के पापों की स्मृति से पीड़ित है; वह मुमुक्षु है, किन्तु अपनी अछहादता का अनुभव करता है और समझता है कि भगवान् की कृपा ही उसका उद्धार कर सकती है—

‘यथास्वरं वै गतिरस्ति पक्षिणां यथा पशूनां पृथिवी गतिरथ ।
अस्नाद्दसां पापनिविष्टचेतसां गतिस्त्वमेवासि तथा न चान्यः ॥ ६६ ॥
प्रारब्धदोषाद्दमूदमूत्तच्छोचामि किञ्चिन्नहि तस्य दुःखम् ।
शोचामि यत्त्वच्छरणगतं मां प्रबाधते पाप-पराभवोऽयम् ॥ ७१ ॥
एव याम्यहं कन्वितरां स्मराणि नान्योऽस्ति लोके प्रभु-दोदनायः ।
शृते भवन्तं जगदेकनाथमुपायहीनः शरणागतोऽहम् ॥ ७६ ॥
शोचामि नाऽहं नरक-प्रयाणं शोचामि नाऽहं पतितोऽभवं यत् ।
शोचाम्यहं त्वच्छरणागतस्य नेयं दशा नाथ तवानुरूपा ॥ ८० ॥

‘भक्तिरसामृत-सिन्धु’ एवं ‘उज्ज्वल-नीलमणि’ आदि ग्रन्थों में छनगोस्वामी तथा अन्य गोड़ीय वैष्णवों ने भक्ति-रस को सर्वश्रेष्ठ आदि रस माना है ।^१ उपयुक्त श्लोकों में वह भक्ति रस पूर्णतः प्रबहमान है । यहाँ श्रीकृष्ण-विषयक रति स्थायी भाव है । श्रीकृष्ण (जगदीश-रूप में ब्रह्म) आलम्बन है । जगदीश-पुरी की प्रसङ्ग-प्राप्त तीर्थ-यात्रा उद्दीप्त है । श्रीकृष्ण की लीला का कीर्तन, अपने अपराधों की स्वीकृति और उद्धार के लिए निवेदन ही अनुभाव है तथा अगति की चिन्ता, विडकं आदि सञ्चारी भाव है ।

उपयुक्त स्तुति-काव्यों में अनेक स्थल केवल दर्शनात्मक हैं, जिन्हें काव्य नहीं कहा जा सकता । वे दर्शन-परक सूचनाएँ हैं । जहाँ स्तुतियों का रूप कथात्मक हो जाता है, वहाँ अन्य रस भी प्रवेश करते हैं । जैसे निम्नलिखित श्लोक में शृङ्गार-रस है—

१. बलदेवउपाध्याय : संस्कृत शालोचना : पृष्ठ २११-१२ ।

'मग्निरोदय देव्यो यदुवीरं सुस्मर-सिन्न-शरोराः ।

पान्तु राज रघुराजमुदारं विश्लयनीव्यो घोराः ॥'^१

चन्द्रालङ्कारों के क्षेत्र में अनुप्रास, यमक तथा इलेप के धनेक सुन्दर प्रयोग रघुराजसिंह ने किये हैं—

'सकल-कारण-कारण-कारणः पतित-तारण-तारण-तारणः ।

निलिल-भावन-भावन-भावनः पतितपावन माधव पाहि माम् ॥

विपुल-जीवन-जीवन-जीवनो जन-विलोपन-लोपन-लोपनः ।

विशद-कामद-कामद-कामदः पतित-पावन माधव पाहि माम् ॥

सकल-गोकुल गोकुल गोकुलः सकल-गोकुल-गोकुल-गोकुलः ।

सकल-गोकुल-गोकुल-गोकुलः पतित-पावन माधव पाहि माम् ॥'^२

शोकृष्ण की शोभा का वर्णन करते समय रघुराजसिंह की रचनाओं में पद-लालित्य आकर्षक हो उठा है—

'स्मितमुखं सरसोदह-लोचनं शचिर-नासिकया परिराजितम् ।

अतिविद्याल-सुमाल-विशोभिषु तमवलोकिनुमुत्सहते मनः ॥

उरसि हार-विहार-मनोहरं तुलसिका-वनमालिकयाऽश्वितम् ।

कलित-क्रौस्तुभ-कण्ठ-दरोपमं तमवलोकिनुमुत्सहते मनः ॥'^३

(६) स्फुट रचनाएँ :

ऐसे चार कवियों का पता चलता है, जो बघेल राजाओं के सम्पर्क में आए और जिन्होंने संस्कृत पद्यों में इन राजाओं की प्रशंस्तियाँ लिखीं । ये कवि हैं—१ : रामचन्द्र भट्ट २ : मानुकर ३ : गोविन्द भट्ट या अकबरी कालिदास तथा ४ : पद्मनाभ मिश्र । इनमें से प्रथम तीन की चर्चा पीछे हो चुकी है ।^४ चौथे पद्मनाभ मिश्र पर अगले अध्याय में प्रकाश डाला जायगा ।

जैसा पीछे लिखा जा चुका है, उपर्युक्त प्रथम तीन कवियों के कुछ मुक्तक, जो उनके किसी ग्रन्थ रूप में प्राप्त नहीं हैं, सुभाषित-सङ्ग्रहों में सङ्कलित हैं । गोविन्द भट्ट के इन मुक्तकों के काव्य-सौन्दर्य की चर्चा की जा चुकी है । रामचन्द्र भट्ट (या रामचन्द्र कवि) के केवल २ श्लोक प्राप्त हैं, जिसमें रामचन्द्र (बघेल) की प्रशंति है ।^५ इन श्लोकों के आधार पर इतना

१. रघुराज-मङ्गल चन्द्रावली : पूर्ववाणीविलास : रासवर्णन ।

२. जगदीशचतकम् : श्लोक ४५-४६, ४९ ।

३. जगदीशचतकम् : श्लोक ५२-५३ ।

४. अध्याय २ (ग) ।

५. पद्यरचना १०१९ एवं सूक्ति० १५२ ।

ही कहा जा सकता है कि प्रशस्ति में वीर रस है। रामचन्द्र भट्ट की रचना प्रसाद गुण से युक्त है। वह बालङ्कारिक शब्दावली का प्रयोग करता था।

डा० चौधरी के शब्दों में भानुकर उच्च कोटि का कवि था। वह महान् बालङ्कारिक था, अतः उसकी रचनाएँ बलङ्कारो से समृद्ध हैं। उसने अनेक दिपयो ५२ लेखनी चलाई हैं। सुमापित-सङ्ग्रहों में प्राप्त उसकी मनोहर रचनाएँ त्वरित प्रभाव करती हैं।^१

वीरभानु (बघेल) के प्रति उद्दिष्ट भानुकर के तीन मुक्तक प्राप्त हैं। इनमें प्राप्त पदावली रामचन्द्र भट्ट की अपेक्षा अधिक सशक्त एवं प्राञ्जल है। प्रशस्ति होने से वह स्वभावतः ओज से पूर्ण है।

वीरभानु का प्रताप लङ्का में भी छा गया है। पुनः लङ्का में आग लग गई है, यह सोचकर नारिमाँ व्याकुल हो उठी है और पतियों से भयवश लिपट गई हैं। उन नारियों की वाणी में कम्प है, वे हाथ फटकार रही हैं, मीठी के हार टूट रहे हैं, आँसू बह रहे हैं, बेगी छूट गई है—

‘लङ्का-वामनि वीरभानुनृपतेः प्रेक्ष्य प्रतापीदयं

प्रत्यागारमघोर-नीरजदृशो भूयो हुताश-भ्रमात् ।

धुन्यद्-वाणि विवृत-वाणि विगलन्-मुक्तामणि प्रस्त्रलद्-

वाप्य-श्रेणि विलील-वेणि दयितं कण्डस्यले विभ्रति ॥’^२

वीरभानु ने रण-यात्रा की है। भेरी बज रही है, घोड़ों और हाथियों का कोलाहल दिशाओं में गूँज उठा है, ब्रह्माण्ड फटने लगा है। प्रताप-रुपी अग्नि को दिनगारियाँ लेकर ब्रह्मा ने चन्द्रमा, तारागण और आकाशगङ्गा का निर्माण कर दिया है—

‘भेरी-भाट्टृतिमिस्तुरङ्ग-निनदैः कुम्भीन्द्र-कोलाहलैः

प्रस्थाने तत्र वीरभानु दलितं ब्रह्माण्ड-भाण्डोदरम् ।

आषाय ज्वलति प्रताप-दहनैरङ्गैः पुनर्वेषा

तारानायक-तारका-पुरसरिद्-व्याजादिवाभोजितम् ॥’^३

वक्षोभण वीरभानु की प्रशस्ति में बतलाते हैं कि दिल्लीपति, गज नरेश

१. भुस्लिम पैन्नेज० भाग १ : प्राञ्चवाणी : कलकत्ता : १९५४ :

पृष्ठ २० : विशेष चर्चा के लिये देखिये, पृष्ठ २-३२ :

२. पद्यवेणी० श्लोक ६८ : सूक्ति० श्लोक १०२ : पद्य० १३।२३ : रसिक० १३।२३ ।

३. पद्यवेणी० श्लोक ११४ : सूक्ति०, श्लोक १५० : पद्य० १८।१६ : रसिक० १९।१।७६ ।

(उत्कल), गौड़राज तथा गुजरेश्वर—ये सभी आपको मथन करते हैं । यह सुनकर बीर-धी के कपोलों पर पुलक प्रकट होता है—

‘दिल्लीशो द्वारदेसो नमति गजपतिस्तत्परस्तादुपास्ते
 गौडेन्द्रो नम्रमूर्धा तदनु नरपतिगुंजरोर्वीश्वरोऽपि ।
 श्रुत्वं वन्दि-वृन्दादवनत-वदनो गौरवं तत्र कुर्वन्
 वोर श्रीवीरभानो रचयसि पुलकं बीरलदभी-कपोले ॥’^१

③

१. सारसङ्ग्रह (शम्भूदास पण्डित) : रा० ए० सो० : पाण्डुलिपि :
 ३१ ए । साथ ही देखिये-चौधुरी : ‘मुस्लिम पैट्रनेज०’ : पृष्ठ ८ ।

चम्पू

(क) वीरभद्रदेव-चम्पू :

१- कवि-परिचय

वीरभद्र-चम्पू या वीरभद्रदेव-चम्पू अथवा वीरभद्रदेव-चरित का उल्लेख संस्कृत-साहित्य की सूचियों में उपलब्ध है ।^१ यह ग्रन्थ कलकत्ता से प्रकाशित किया जा चुका है ।^२ प्रत्येक उच्छ्वास के अन्त में पुष्पिकाओं में ग्रन्थकार का नाम पचनाम मिश्र मिलता है—

‘स्वस्ति-श्रीमद्-बघेलकुलावतंस-महाराजाधिराज-श्रीरामचन्द्रदेवात्मज-श्री-यशोदा-नन्दन-सुवराज-श्रीवीरभद्रदेव-चरिते-मिश्र-श्रीबलभद्रात्मज-विजयश्री-गर्भ-सम्भव-सकल शास्त्रारविन्द प्रद्योतन-भट्टाचार्य-श्रीपचनाम-विरचिते प्रथम उच्छ्वासः समाप्तः ।’

स्पष्ट है कि इस चम्पू-ग्रन्थ वीरभद्रदेव-चरित का प्रणेता पचनाम मिश्र और चरितनायक सुवराज वीरभद्रदेव था, जो रामचन्द्र बघेल का पुत्र था ।

पचनाम मिश्र के ग्रन्थों के प्रकाशन की ओर सर्वप्रथम महामहोपाध्याय (वर्तमान पद्मविभूषण) पं० गोपीनाथ कविराज का ध्यान आकर्षित हुआ । पं० गङ्गानाथ झा और गोपीनाथ कविराज के सम्पादन के साथ १९२० ई० में पचनाम मिश्र का ग्रन्थ ‘किरणवली भास्कर’ प्रकाश में आया । इस ग्रन्थ में गोपीनाथ जी ने ग्रन्थकार का संक्षिप्त किन्तु शोधपूर्ण परिचय प्रस्तुत किया है, जो मूलतः पचनाम की ही कृतियों के अन्तःसाक्ष्य पर आधारित है^३ । १९२४ ई० में गोपीनाथ कविराज और दुष्ण्डराज शास्त्री के सम्पादकत्व में भूमिकाओं के सहित वैशेषिक-दर्शन के प्रयासपाद-भाष्य पर सूत्रित और व्योमवती टीकाओं के साथ-साथ पचनाम मिश्र की ‘शैतु’ व्याख्या भी क्रमशः

१. हि० अला० सं० लिट्० पृष्ठ १०११ तथा १०७४ में उद्धृत वीरभद्र-देव चम्पू : पीटर्सन० भाग १।१०१ : १८८२-८३ (बाघेल कूलर्स०) ।

२. सम्पादक डा० जे० बी० चौधुरी: प्राच्यवानो संस्कृत सिरोज : कलकत्ता क्र० १२:१९५२

३. सरस्वती भवन टेक्स्ट: क्र० १ : गवर्नमेंट संस्कृत लाइब्रेरी : बनारस । १७ प० ख०

प्रकाशित की गई।^१ १९२९ ई० में नारायण दास्रो सिस्ते की भूमिका के साथ चन्द्रालोक की पचनाम-कृत शरदागम अथवा चन्द्रालोक-प्रकाश टीका प्रकाशित की गई।^२

किरणावली-भास्कर के अन्त में निम्नलिखित पुष्पिका प्राप्त होती है—

‘इति श्री-जगद्गुरु-मिश्र-श्रीबलभद्रात्मज-विजयश्री-गर्भसम्भव-विश्वनाथानुज-संकल-शास्त्रारविन्द-प्रद्योतन-भट्टाचार्य-मिश्र-श्रीपचनाम-कृतः किरणावली-भास्करः सम्पूर्णः।’

इस पुष्पिका से स्पष्ट है कि किरणावली-भास्कर और शरभद्रदेव-चम्पू दोनों का प्रणेता पचनाम एक ही व्यक्ति है। वह अपने पिता बलभद्र मिश्र को ‘जगद्गुरु’ कहता है, माता का नाम विजय-श्री बतलाता है और गौरव के साथ अपने को विश्वनाथ का अनुज कहता है।

केशव मिश्र द्वारा प्रणीत तर्कभाषा पर ‘तर्कभाषा-प्रकाश’ नाम की टीका लिखने वाले गोवर्द्धन मिश्र ने इस कृति के आरम्भ में निम्नलिखित श्लोक दिये हैं—

‘विजयश्री तनूजन्मा गोवर्द्धन इति श्रुतः।

तर्कानुभाषां तनुते विविच्य गुरुनिर्मिताम् ॥

श्री विश्वनाथानुज-पचनामानुजो शरीयान् बलभद्रजन्मा।

तनोति तर्कनिधिमत्य सर्वाणि श्रोपचनाभाद्विदुषो विनोदम् ॥’^३

इस उल्लेख को उपर्युक्त उल्लेख के साथ तुलनात्मक रूप से देखने पर स्पष्ट होगा कि पचनाम के छोटे भाई का ही नाम गोवर्द्धन मिश्र था। गोवर्द्धन को पचनाम ने ही न्यायशास्त्र की शिक्षा दी थी। इसी गोवर्द्धन मिश्र ने अन्नम्भट्ट के तर्कसङ्ग्रह पर न्यायबोधिनी टीका भी लिखी है।^४ गोपीनाथ कविराज के अनुसार गोवर्द्धन मिश्र ने श्री अपने पिता बलभद्र को ‘जगद्गुरु’ लिखा है।^५

१. चौखम्बा संस्कृत सिरीज : भाग १ : ग्रंथ क्रमाङ्क ३१६ : अन्य भाग पीछे १९२८ ई० तक प्रकाशित हुए।

२. काशी संस्कृत सिरीज : क्रमाङ्क ७५।

३. गोस्वामिन्-सुरेन्द्रलाल : तर्कभाषा (केशवमिश्र कृत) : मेडिकल हाल प्रेस : बनारस : १९०१ : सटीक तर्कभाषाया विज्ञापनम् : पृ० १।

४. सम्भवतः इसी न्यायबोधिनी टीका के लिए डा० कीथ ने लिखा है कि १५८५ ई० के पूर्व अन्नम्भट्ट के तर्कसङ्ग्रह पर टीका लिखी जा चुकी थी (ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर : आक्सफोर्ड : १९२८ पृ० ४८३)।

५. कि० भा० : अंग्रेजी भूमिका : पृष्ठ ४।

पद्मनाभ के पिता बलभद्र वैदेषिक और वेदांग के विशेष मर्मज्ञ थे। उन्होंने १२ वीं शती में लिखित शिवादित्य के ग्रन्थ सप्त-पदार्थों, वरदराज के ग्रन्थ तार्किकरक्षा और १४ वीं शती में लिखित केशव-मिश्र-कृत तर्कभाषा पर टोकाएँ लिखीं। वर्द्धमान के किरणावली-प्रकाश ग्रन्थ पर बलभद्रमिश्र ने 'युक्ति-कल्पद्रुम' नामक अत्यन्त पाण्डित्यपूर्ण टोका लिखी।^१

पद्मनाभ मिश्र ने अपने ग्रन्थ 'किरणावली-भास्कर' में आरम्भ में निम्न-लिखित श्लोक लिखे हैं—

‘उपदिष्टा गुरुचरणैरक्षुष्टा वर्द्धमानेन ।
किरणावल्यामर्थास्तन्यन्ते पद्मनाभेन ॥ १ ॥
विलसद्-वर्द्धमानार्णव तिरोहित-दिवाकरा ।
सकलार्थ-प्रकाशाय न क्षमा किरणावलो ॥ २ ॥
बलभद्र-मुखाभोज-वचनादुदयाचलात् ।
उदितो भास्करस्तस्मादादरेण निषेभ्यताम् ॥ ३ ॥’

अन्त में यह श्लोक है—

‘मस्त्वं-दुस्तर-तराणव-कर्णधारो
वेदान्त-वर्म-तिरताध्यग-सार्थवाहः ।
श्रोत्रघ्ननाम-रचितेन दिवाकरेण
तुष्टोऽमुनास्तु स कृती बलभद्रमिश्रः ॥’

इन उद्धरणों से प्रतीत होगा कि बलभद्रमिश्र की प्रतिभा गहन-गम्भीर थी और वे तत्कालीन 'जगद्गुरु' ही थे। उनके सुयोग्य पुत्रों ने उन्हें ही अपना सर्वथा गुरु बनाया और उनकी तुष्टि के लिए स्वयं ग्रन्थ-रचनाएँ कीं। पद्मनाभ ने अन्य स्थलों पर भी पिता को गुरु लिखा है।^२ हम यह भी देख चुके हैं कि बलभद्रमिश्र ने तर्कभाषा पर भी टोका लिखी थी। अतः गोवर्द्धन का उपर्युक्त 'तर्कानुभाषां तनुते विविच्य गुरुनिमिताम्' उल्लेख अपने पिता बलभद्र मिश्र को ही गुरु चोदित करता है।

सुरेन्द्रलाल गोस्वामी ने लिखा है कि 'रामकृष्ण गोवाल माण्डारकर द्वारा सङ्कलित १८८२-८३ ई० की रिपोर्ट पृष्ठ २१३ पर 'गुरुनिमितां तर्कानुभाषां विविच्य तनुते' इस उल्लेख के आधार पर गोवर्द्धन मिश्र केशव मिश्र का शिष्य है,

१. कि० भा० : अंग्रेजी भूमिका : पृष्ठ ४-५ ।

२. राजान्तमुक्ताहार में पद्मनाभ ने अन्तिम कारिका में पिता के गुरु को 'गुरु का गुरु' लिखा है—'प्रगल्भोऽस्तु गुरोर्गुरुः।' देखिये कि० भा० : अंग्रेजी भूमिका : पृष्ठ ६-टि० ।

यह सिद्ध होता है। यह गोवर्द्धन मिश्र विजय-श्री और बलभद्र मिश्र का पुत्र और विश्वनाथ तथा पद्मनाभ का अनुज है। इससे केशव का पद्मनाभ आदि का समकालीन तथा चौदहवीं शती के अन्त में होना अनुमित होता है।^१

सम्भवतः इसी आधार पर आचार्य विश्वेश्वर ने भी भ्रमवश लिखा है कि गोवर्द्धन के गुरु केशव मिश्र से और विश्वनाथ एवं पद्मनाभ केशव मिश्र के अप्रज से तथा बलभद्र मिश्र केशव मिश्र के पिता से।^२ पद्मनाभ मिश्र के वीरभद्रदेव चम्पू की रचना-तिथि असन्दिग्ध रूप से १५७७ ई० ज्ञात है। अतः बलभद्र मिश्र की अधिक से अधिक १६ वीं शती के पूर्वार्द्ध तक ले जाया जा सकता है। केशव मिश्र की तर्कभाषा पर टीका लिखने वाला बलभद्र मिश्र केशव मिश्र का पिता नहीं हो सकता, वंशज हो तो हो। डा० कीच ने केशव मिश्र का काल १३ वीं-१४ वीं शती माना है।^३

गोवर्द्धन और पद्मनाभ के अप्रज और बलभद्र मिश्र के ज्येष्ठ पुत्र विश्वनाथ अवश्य ही विद्वान् रहे होंगे, क्योंकि उनके दोनों अनुजों ने उनका उत्तम गौरव के साथ किया है। खेद है कि उनकी कृतियाँ अभी तक अदृश्य ही हैं।

पद्मनाभ पर पिता के गुरु प्रगल्भ भट्टाचार्य का भी प्रभाव था। उसने उनके मंतों का अपने ग्रंथों में उद्धरण दिया है। प्रशस्तपाद-भाष्य पर लिखित अपनी 'सेतु' टीका में जहाँ इस प्रकरण पर लिखा है कि 'तमस् द्रव्य है या गुण है अथवा केवल आलोकामात्र है', उसने प्रगल्भ भट्टाचार्य का मत उद्धृत किया है—

'अस्मत्-पितृचरणाराध्या : श्री प्रगल्भ-भट्टाचार्यास्तु
आलोकामात्रस्य तमस्त्वे.....'।^४

किरणावली-भास्कर में भी द्रव्य-निरूपण के अन्त में निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं—'प्रोङ्ग-प्रकाशक तेजो-रूपामात्रस्तम इति प्रगल्भ भट्टाचार्याः।'^५

पद्मनाभ मिश्र ने प्रगल्भभाचार्य की प्रसन्नता के लिये ही ८१ कारिकाओं से युक्त वैशेषिक-ग्रन्थ रादान्तमुक्ताहार का प्रणयन किया। इसमें प्रगल्भ के

१. तर्कभाषा : मेडिकल हाल प्रेस : बनारस : १९०२ : 'सटीक तर्क-भाषाया विज्ञापनम् : पृष्ठ १ तथा पृष्ठ ३ : 'केशवमिश्रस्य चतुर्दशशता-ब्दि-शेषभाग पूर्वत्वं पद्मनाभादि-समानकालिकत्वं च शक्यमवगन्तुम् !'

२. (हिन्दी) तर्कभाषा : चौखम्बा : बनारस : २०१० वि० : भूमिका . पृ० ५६-५८ ।

३. 'ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्.' : आक्सफोर्ड : १९२८ : पृष्ठ ४८६ ।

४. कि० भा० : घंगरेजी भूमिका : पृष्ठ ६ ।

५. वही, मूल, पृष्ठ ४० ।

सिद्धान्तों का प्रवर्तन करते हुए पद्मनाभ ने उनकी प्रसन्नता के लिए अपनी मौलिक प्रतिभा का भी प्रयोग किया। अन्तिम कारिका से यह सूचना मिलती है—

‘यद्यदथ द्विनिक्षिप्तं नव्यं सिद्धान्त-वर्तिना ।

पद्मनाभेन तैः प्रीतः प्रगल्भोऽस्तु गुरोर्गुरुः ॥’^१

गोपीनाथ कविराज ने लिखा है कि पद्मनाभ अवश्य ही पूर्व भारत का था। यह स्पष्टतः ज्ञात नहीं होता कि वह मैथिल था अथवा बङ्गीय। उसने अपने को ‘मिश्र’ और ‘मट्टाचार्य’ लिखा है और परम्परा उसे मैथिल मानती है।^२ किन्तु विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी ने न्यायकन्दलीकार धोषराचार्य को मट्टाचार्य होने के कारण बङ्गदेशीय माना है।^३

उपर्युक्त बीरभद्रदेव-चम्पू और किरणावली-भास्कर की पुष्पिकाओं के अनुसार पद्मनाभ ने अपने को ‘सकल-शास्त्रारविन्द-प्रद्योतन’ और ‘मट्टा-चार्य’ लिखा है। ये दोनों पद्मनाभ की उपाधियाँ प्रतीत होती हैं। चन्द्रालोक की शरदागम टीका के अन्त में पुष्पिका इस प्रकार है—

‘इति श्री-महाराजाधिराज-श्री-रामचन्द्रदेवात्मज-युवराज-बीरभद्रदेवादिष्ट-मिश्र-श्रीबलमद्रात्मज-सकल-शास्त्रारविन्द-प्रद्योतन-मट्टाचार्य-विरचिते चन्द्रालोक-प्रकाशे शरदागमे दशमो मयूखः समाप्तः ।’

सम्भवतः इसी पुष्पिका के आधार पर आफ्रे ने अपनी ग्रन्थ-सूची में

१. कि० मा० : अंग० भूमिका : पृष्ठ ६, टि० ।

‘प्रगल्भ भो मिश्र ये । वे लाठी वंश के नरपति मिश्र के पुत्र ये । उनका अन्य नाम शुभङ्कर था और वे प्रजाचक्षु थे । देखिये-खण्डन-खण्डलाय : चौखम्बा : ग्रन्थ क्र० ४४५ : बनारस : १९३६ : प्रगल्भ मिश्र कृत खण्डन-दर्पण टीका के आरम्भिक श्लोक २-४ :

‘लाठीवंशे ...श्रीमन्नरपतिमहामिश्रवर्यो बभूव ।
तस्यात्मजः...श्रीमच्छुभङ्कर इति प्रथमः कवीनाम् ॥
तेनाधुण्य-विचार-मन्यमयितेऽद्भुत्य विद्यार्णवात्
प्रज्ञानैश्रतया निरुढविलसत्-मत्खण्डनार्थामृतम् ।
श्रीमच्छङ्कर-वर्द्धमान-चरितोपायान् विलायापि च
श्रीहर्षस्य कृतेर्मया कृतिमुदे श्रोदर्पणो रञ्जते ॥’

२. कि० मा० अं० भूमिका : पृष्ठ ३ ।

३. वैशेषिक-दर्शनम् : जयकृष्णदास गुप्त : बनारस : १९१९ : विज्ञा-
पनम् : पृ० १६ पादटिप्पणी : ‘...मट्टाचार्यत्वाच्च बङ्गदेशीयः ।’

पद्मनाभ मिश्र का अन्य नाम 'प्रद्योतन-भट्टाचार्य' माना ।^१ कविराज जी ने १९२० ई० में ही आफ्रे० की इस भूल की ओर सचेत कर बतलाया कि पद्मनाभ ने अपनी बट्टमुखी विद्वत्ता के अभिज्ञानस्वरूप सम्बद्ध राजसभा से 'सकल-शास्त्रारविन्द-प्रद्योतन (या प्रद्योत) भट्टाचार्य (या भट्ट)' की गौरवमयी उपाधि प्राप्त की । यह उपाधि किरणावली-भास्कर, कणादरहस्यम्, बद्धमानेन्दु, शरदागम आदि पद्मनाभ की अनेक कृतियों में प्राप्त है । 'प्रद्योतन' स्पष्टतः 'सकल-शास्त्रारविन्द' शब्द के साथ ग्रहण करने से उपाधि का सूचक है, व्यक्तिनाम नहीं । शरदागम में भूल नाम न होने से यह भूल हुई प्रतीत होती है ।^२

किन्तु भूल चलती रही । हरदत्त शर्मा ने लिखा कि "(कन्दर्प-चूड़ामणि', १५७७ ई० के प्रणेता) वीरभद्रदेव ने शरदागम के रचयिता किसी 'प्रद्योतन-भट्टाचार्य' को आश्रम दिया । क्या वीर (या वीरभद्र) चम्पू के कर्ता एक अन्य कवि 'प्रद्योतन-पद्मनाभ मिश्र' और 'प्रद्योतन-भट्टाचार्य' एक ही व्यक्ति हैं ? दोनों ही बलभद्र के पुत्र हैं । आफ्रे० के विवरणों से विदित होता है कि गोबर्द्धन मिश्र और विश्वनाथ पद्मनाभ के भाई थे ।...में यह विश्वास करना चाहता हूँ कि प्रद्योतन पद्मनाभ और प्रद्योतन भट्टाचार्य एक ही व्यक्ति हैं ।^३

अधिक आश्चर्य की बात यह है कि पद्मनाभ की सेतु टीका की भूमिका में गोपीनाथ कविराज के साथ सह-सम्पादक रूप में पं० दुण्डिराज शास्त्री ने पद्मनाभ का अन्य नाम 'प्रद्योतन-भट्टाचार्य' माना ।^४ इसी प्रकार १९३८ ई० में प्रकाशित चन्द्रालोक की राकागम टीका की भूमिका में अनन्तराम शास्त्री बेंगल ने शरदागम को प्रद्योतन-भट्टाचार्य-कृत लिखा ।^५ इसी के साथ की भूमिका में बटुकनाथ शर्मा ने भी शरदागम के रचयिता को प्रद्योतन-भट्ट

१. कि० भा० : अंग० भूमिका पृष्ठ ५-टि० : आफ्रे० जिल्द १ : पृष्ठ ५९४ ।

२. वही, पृष्ठ ५ तथा शरदागम टीका : आरम्भ में—

क्रियते तस्य निदेशाच्चन्द्रालोक-प्रकाशोऽयम् ।

शरदागम इति विदितो भट्टाचार्येण यत्नेन ॥'

३. वावेल क्लर्क० ।

४. चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला-६१ : बनारस : १९३० : पृष्ठ १ :

प्रद्योतन-भट्टाचार्यापराभिधान-श्रीपद्मनाभमिश्र-निमित्तः सेतुः'.....।'

तथा पृ० ५ ।

५. चौखम्बा : ग्रन्थ संख्या ८३ : पृष्ठ २ : प्राचीनतमंका प्रद्योतनभट्टाचा-

र्येण निमिता शरदागमनाम्नो'..... ।

लिखा ।^१ चन्द्रालोक की पौर्णमासी टीका की भूमिका में नन्दकिशोर शर्मा ने भी शरदागम व्याख्या को प्रद्योतनमट्टाचार्य' द्वारा रचित बतलाया है, यद्यपि यह पद्मनाभ मिश्र का ही दूसरा नाम लिखा है ।^२ हीरानन्द शास्त्री ने भी पद्मनाभ मिश्र का दूसरा नाम प्रद्योत । या-तन) मट्ट (या मट्टाचार्य) लिखा है ।^३ नारायण शास्त्री खिल्टे ने ऐसा ही लिखा है ।^४

वैशेषिक-दर्शन पर प्रशस्तपाद-भाष्य की अपनी 'सेतु' टीका के आरम्भ में पद्मनाभ मिश्र ने निम्नलिखित श्लोक लिखा है—

'बल-बसोक्त-दुर्दम-मूपति-

निज-भुजाजित-लोक-समुन्नतिः ।

अगतिकारि-जनस्य परा गति-

जयति वीरवरः पृथिवीपतिः ॥ ३ ॥'^५

सेतुकार ने 'सेतु' के तीन भाग किये हैं । अन्तिम तृतीय भाग के अन्त में ये श्लोक है—

भाष्याम्भोनिधि सेती-वीरवरीये यशो-हेती ।

चरमे सक्षणभागे रचितः श्रीपद्मनाभेन ॥ १ ॥

अमुनाऽनुशोक्ता वदमन्य-वदान्याद् विशिष्टेन ।

प्रत्युपकार-धिमाऽयं रचितो ग्रन्थस्ततोऽस्माभिः ॥ २ ॥

१. वही, दूसरी भूमिका-पृ० ११ :

अयं चन्द्रालोकस्य टीकारूपो ग्रन्थः प्रद्योतन-मट्टेन
विरचितः । बलभद्रमिश्र-तनयः प्रद्योतनमट्टो..... ।'

२. चौखम्बा : सं० १९९३ क्रि० : पृष्ठ ३ : चन्द्रालोकस्य सर्वतः प्राचीन-
शरदागमव्याख्या व्याख्या प्रद्योतनमट्टाचार्येण विरचिता ।' तथा
पृष्ठ ६-७ ।

३. वीर० क्रि० ए० : पृष्ठ ३ : पद्मनाभ मिश्र, जिसका दूसरा नाम प्रद्योत
(या प्रद्योतन) मट्ट या मट्टाचार्य था, उसकी (वीरभद्र की) समा का
एक कवि था और उसने कई ग्रन्थ रचे ।

४. चन्द्रालोकः शरदागमटीका : १९२९ : ग्रन्थ का शीर्षक : श्रीमद्पद्म-
नाभमिशापरामिधान प्रद्योतनमट्टाचार्य-विरचितमा— ।' तथा अंग्रेजी
और संस्कृत भूमिका में लनेकत्र ।

५. चौखम्बा संस्कृत सीरीज ग्रन्थ क्र० ३१६ : बनारस : १९२४ ।
पृष्ठ २ ।

यथानिष्ठानीतं मुनिमत्तमिदं शातशरणै-

स्तथा धातुर्नात्र प्रभवति विशेषं गुहरणि ।

धनुच्छिष्टं यच्चेदिह हि पर-विद्वद्भर-धिया

तदास्वाशास्वाद्यं भवत कृतिनस्तर्ककृतिनः ॥ ३ ॥

इति श्रीमदखिल-भूषक-शक्यार्कवल सुस्थान-प्रताप-तपन-वर्द्धमान-श्रीभातिशय-यशोराजिजीव-महाराजाधिराज-श्रीवीरवरोये मिश्र-श्रीजगद्गुरु-बलमद्रात्मज-विज-यश्री-गर्भसम्भव-विश्वनाथानुज-सकलशास्त्रारविन्द-प्रद्योतन-भट्टाचार्य-मिश्र-श्री-पद्मनाभकृती-वैशेषिकमेतौ तृतीयः परोवाहः सम्पूर्णः ॥^१

सेतु में प्राप्त इस उक्ति के आधार पर गोपीनाथ कविराज ने लिखा है कि पद्मनाभ ने अपने आश्रयदाता के औदार्य गुण का कृतज्ञता के साथ स्मरण किया है। वीरभद्र (बघेल) की कृपा के प्रत्युपकार के रूप में उसने टीका लिखी और इसे वीरवरोय नाम दिया। उसने 'अन्यवदान्याद् विशिष्टेन' वीरभद्र के सन्दर्भ में लिखा है। 'वीरवर' नाम नहीं, एक सम्मानित उपाधि है।—इस सन्दर्भ में यह ध्यान देने योग्य बात है कि कन्दर्पचूडामणि में वीरभद्र के विशेषण के रूप में वीर शब्द प्रयुक्त हुआ है—भूषक-चक्रवर्ती वीरः श्रीवीरभद्रोऽसौ ।^२

नारायण शास्त्री लिखते^३ तथा नन्दकिशोर शर्मा^४ ने भी लिखा है कि 'सेतु' टीका में पद्मनाभ ने वीरभद्र की विशेष स्तुति की है।

सुरेन्द्रनाथ गोस्वामी ने लिखा है कि बूंदीनगर में वीरसिंह (१३४९-१४१९) राजा था। छन्दः पति के लिए वीरसिंह की पद्मनाभ ने वीरवर लिखा होगा।^५ श्री गोस्वामी के इस तर्क को नहीं माना जा सकता, क्योंकि पद्मनाभ उक्त वीरसिंह से कम से कम ढाई सौ वर्ष पीछे हुआ।

१. वही, ग्रन्थ क्रमांक ३७५। १९२८ ई०। पृष्ठ ४२३।

२. कि० भा० अंगरेजी भूमिका : पृष्ठ ३-४ (टि० सहित) : तथा कन्दर्प-चूडामणि (रामचन्द्र शास्त्री) : संस्कृत-पुस्तकालय : लाहौर : १९२६ : अ० ५।३।१।

३. चन्द्रालोक : शरदागम टीका : बनारस : १९२९ : संस्कृत-प्रस्तावना : पृष्ठ ५ : 'प्रशस्तपाद-भाष्य-टीकायां 'सेतु' नामिकायामनेन वीरभद्रदेवः सविशेषं स्तुतः ।'

४. चन्द्रालोक : पौर्णमासी टीका १ : चौखम्बा : बनारस : १९४५ : भूमिका : पृष्ठ ६-७।

५. तर्कमापा : बनारस : १९०१ : सटीक-तर्कभाषाया विज्ञापनम् : पृष्ठ ३-४।

जैसा उपर्युक्त श्लोकों और पुष्पिकाओं से प्रतीत होगा, यहाँ पर पद्मनाभ द्वारा उल्लिखित व्यक्ति न तो वीर है और न वीरमद्र । यह व्यक्ति वीरवर है, जो वीरवल का संस्कृत रूप है । उपर्युक्त पुष्पिका में प्राप्त शब्द सुरत्राण है, जो मुलतान का संस्कृत रूप बनाया गया था ।^१ उक्त पुष्पिका के आरम्भ में अक्षिण मूचरु-शरु शब्द अगले पद अर्कवल सुरत्राण का विशेषण है, जो अकबर मुलतान के स्थान पर है । अतः यह वीरवर वीरवल के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता । मुस्लिम लेखों में भी हमें यत्र-तत्र वीरवल का नाम वीरवर प्राप्त है ।^२ इस प्रकार यह बात असन्दिग्ध है कि 'सेतु' टीका वीरवल की 'बदान्यता' के प्रत्युपकार में ही लिखी गई । वीरवल ने ही पद्मनाभ को आश्रय देकर 'अनूण' किया ।

प्रशस्तपाद भाष्य पर लिखित 'सेतु' टीका में व्यञ्जना का पदार्थान्तरत्व सङ्गिष्ठ करते हुए पद्मनाभ ने अपने अलङ्कार-ग्रन्थों के नाम दिये हैं, जिनमें शरदागम भी है—

'व्यञ्जनायां साधन-रूपण-प्रकार-विस्तारदत्त मत्कृतालङ्कार-भास्कर-काव्य-प्रकाशप्रकाश तत्सङ्गिष्ठनेकावली-विवरण-शरदागम-भनोरमादौ सचमत्कारं द्रष्टव्य इति'^३ ।

श्री खिस्ते ने इस शरदागम टीका का रचनाकाल १५८३ ई० बतलाते हुए लिखा है कि 'अनेक विद्वानों ने इस तिथि का उल्लेख किया है', किन्तु श्री खिस्ते ने अपनी जानकारी के स्रोत का उल्लेख नहीं किया ।^४ सम्भवतः कुछ पाण्डु-लिपियों में यह रचनाकाल होगा । आफ्रे ने अपनी सूची में शरदागम का रचनाकाल १५८३ ई० लिखा है ।^५ अतः इस तिथि पर विश्वास किया

१. राम० प्र० पृ० ३ : 'सुरित्राण-साहालिक'.....

तथा वीर० सर्ग १०।१३ : 'सुरत्राण-मुहम्मदादिः ।'

२. आईन० पृष्ठ ४०६ तथा अल-बदाओनी : शी : भाग २ : पृष्ठ ३५७-५८ : इन लेखों में वीरवल का नाम 'विरहमदास' (ब्रह्मदास) भी मिलता है । (वही भाग १ : पृष्ठ १४ टि० : वीरवर गदाई विरहमदास) ।

३. प्रशस्तपाद-भाष्य : सूक्ति-सेतु-श्रोमवती टीका : शौकण्या : ग्रन्थ क्र० ३१६ : १९२४ : सेतु-टीका-पृ० ८२ :

४. चन्द्रालोक : शरदागम : अंग्रेजी भूमिका : पृष्ठ ७ तथा संस्कृत भूमिका पृष्ठ ३ ।

५. आफ्रे० भाग ३ : पृष्ठ ३९ ।

जा सकता है। बटुकनाथ शर्मा ने इस रचना-तिथि को १६२६ वि० (१५९९ ई०) लिखा है, किन्तु कोई आधार नहीं बतलाया। यह तिथि विष्वसनीय नहीं है।^१

'सेतु' टीका में शरदागम का उल्लेख होने से 'सेतु' का रचनाकाल १५८३ ई० के पीछे आता है। योरबल की मृत्यु काबुल के युद्ध में ९९५ हिजरी १५८७ ई० में हुई।^२ अतः सेतु का रचनाकाल १५८३ और १५८७ ई० के बीच है। सम्भवतः सेतु ही पद्यनाम की अन्तिम रचना है।

गोपीनाथ कविराज ने लिखा है कि यह विद्वान् (पद्यनाम) विधिवश पूर्वीय क्षेत्रों से चल कर बुन्देलखण्ड के पार्वत्य प्रदेशों में पहुँचा और वघेल राजाओं की राजसभा के समासद रूप में बस गया।^३ श्री खिस्ते का कथन है कि वघेलखण्ड के अलंकार रीवा के महाराज वीरभद्रदेव ने उसे आश्रय दिया, जिनकी सभा का वह प्रधान पण्डित हुआ।^४ बटुकनाथ शर्मा के अनुसार पद्मनाम बुन्देलवंशीय महाराज वीरभद्रदेव का सभा पण्डित था।^५

इस सम्बन्ध में इतना ही कहना है कि वघेलों द्वारा शासित प्रदेश बुन्देलखण्ड के उत्तर-पूर्व, यमुना-गङ्गा से नर्मदा तक बघेलखण्ड नाम की पृथक्-सत्ता रखता था। साथ ही पद्मनाम का आश्रयदाता बघेलखण्ड का मुवराज और तत्कालीन महाराज रामचन्द्र का पुत्र था, स्वयं महाराज नहीं, जैसा कि शरदागम और वीरभद्रचम्पू में पीछे निर्दिष्ट पुष्पिकाओं से स्पष्ट है। इस समय वघेलों की राजधानी रीवा नहीं, गहोरा थी और वे बान्धवगढ़ में निवास कर रहे थे, जैसा कि स्वयं पद्यनाम ने वीरभद्रचम्पू में लिखा है।^६

१. चन्द्रालोक : राकागम टीका : १९३८ : संस्कृत भूमिका : पृष्ठ ११ : बटुकनाथ शर्मा ने यहीं पर कन्दर्प चूड़ामणि की रचना-तिथि १६२० वि० (१५९३ ई०) बतलाई है, जब कि उसी ग्रन्थ में तिथि १६३३ वि० (१५७७ ई०) दी हुई है (अ० ७-२-४९)।
२. ईलियट-भाग ५ : बहायुनी : मुन्तखब-उत्तवारोह : पृष्ठ ५२९-३०।
३. कि० भा० अंग० भूमिका : पृष्ठ ३।
४. चन्द्रालोक : शरदागम : अंग० भूमिका पृष्ठ ७ तथा संस्कृत-भूमिका पृष्ठ ५।
५. वही, राकागम टीका : १९३८ : संस्कृत-भूमिका : पृष्ठ ११ : 'शरदागमः'।
६. उच्छ्वास १।१३ : 'अस्ति...नगरी गहोरा। ...साऽस्य...राजधानी।' तथा '...तस्य विषये दुर्गरत्नं बान्धवः। ...साम्प्रतं तमधिपतिष्ठति।'।

गोपीनाथ कविराज ने लिखा है कि अपनी बहुश्रुतता की प्रतिपत्ति के रूप में पद्मनाभ ने आश्रय देने वाली राज्य-सभा से 'सकलशास्त्रारविन्द-प्रद्योतन-भट्टाचार्य' की उपाधि प्राप्त की होगी। यह उपाधि किरणावली-भास्कर, कणाद-रहस्यम्, बर्द्धमानेन्दु और शरदागम आदि (वीरभद्रचम्पू और वैशेषिक सेतु) में प्राप्त है।^१

इस सम्बन्ध में यह ध्यान देने की बात है कि पद्मनाभ ने अकबर-कालिदास गोविन्दमठ की भाँति अकबर का स्तुति-गान नहीं किया। पद्मनाभ यथार्थ रूप में शान्त जीवन का पक्षपाती, विद्या का उपासक और साहित्य का साधक प्रतीत होता है, पद का आराधक नहीं। इसीलिए वह युवराज वीरभद्र जैसे विद्या-प्रेमी और कवि-गोष्ठियों के आयोजक^२ तथा वीरवल जैसे कवि की ओर आकृष्ट हुआ, इन्हीं की सहायता से ऋणमुक्त होकर उसने कृतज्ञता-पूर्वक इनके यशोगान किये।

ऊपर जिन ६ ग्रन्थों में 'सकल-शास्त्रारविन्द-प्रद्योतन-भट्टाचार्य' की उपाधि प्राप्त है, उनमें से दो वीरभद्रचम्पू और शरदागम वीरभद्रदेव के प्रीत्यर्थ एवं तीसरा वैशेषिक-सेतु वीरवल की प्रसन्नता के निमित्त लिखा गया है, किन्तु शेष तीन में से कणाद-रहस्य और उसकी मूल कारिकाएँ (राद्धान्त-मुक्ताहार) पद्मनाभ के पिता बलभद्र के गुरु प्रगल्भाचार्य को सन्तुष्ट करने के लिए एवं किरणावली-भास्कर तथा बर्द्धमानेन्दु स्वयं पिता के प्रसादार्य लिखे गये। इनके अतिरिक्त अन्य अनुपलब्ध ग्रन्थ हैं, जिनमें भी उक्त उपाधि का उल्लेख हो सकता है और जो पूर्ववर्ती भी हो सकते हैं। अतः अधिक सम्भव यही प्रतीत होता है कि उक्त उपाधि पद्मनाभ ने स्वतः ग्रहण की और वह उसको स्वाभिमानोचित है, किसी दरवार या राज-सभा द्वारा प्रदत्त नहीं।

वीरवल और वीरभद्र में परस्पर दीर्घकालीन सम्बन्ध था।^३ अतः परवर्ती

१. कि० भा० : अंग० भूमिका : पृष्ठ ५।

२. शरदागम का मञ्जुलाचरण : वीरभद्र के सन्दर्भ में पद्मनाभ की उक्ति : श्लोक ६ : '.....कवि गोष्ठी-दैवतारामः।'

३. अक० भाग २ : पृष्ठ २८१-८३ : वीरवल की मध्यस्थता से अकबर ने आसफ खाँ को १५६२-६३ ई० में फरानि जारी किया कि रामचन्द्र बघेल (बान्धवगढ़) पर से घेरा हटा लिया जाय। आईन० पृष्ठ ४०६-७ : (वीरभद्र ने १५८३-८४ ई० में अकबर को इस पर राजी कर लिया कि रामचन्द्र को बुलाने के लिए वीरवल और जईन कोका भेजे जायें।) तथा अल-बदाओनी : अनु० लो : भाग २ :

जीवन में पद्मनाभ इन दोनों का समीचीन रहा होगा। किन्तु बीरभद्रधम्मू में बधेलखण्ड के अनेक स्थलों, दानियों, रामचन्द्र और उनके परिवार एवं राज्य-क्षेत्र आदि का जिस प्रकार उल्लेख है, उससे प्रतीत होता है कि पद्मनाभ सम्भवतः बीरभद्र के साथ अवश्य ही बधेलसभा (बान्धवगढ़) में कुछ वर्षों तक रहा होगा और बीरभद्र द्वारा रत्नपुर आदि क्षेत्रों पर धड़ाई के समय भी उनके साथ रहा होगा। बीरभद्र की सेना के सत्रोव वर्णन में 'मया दृष्टाः' शब्द से यह सूचित होता है।^१

पद्मनाभ के ग्रंथ :

सकल शास्त्रों के मर्मज्ञ पद्मनाभ के उपलब्ध एवं उल्लिखित ग्रन्थ न्याय, वैशेषिक, वेदान्त, साहित्यशास्त्र और काव्य (धम्मू) के क्षेत्रों को व्याप्त करते हैं। इनको संख्या १५ है, जिनमें से एक सन्दिग्ध है।^२

न्याय-ग्रंथ १ विन्तामणि-परीक्षा—१२०० ई० के निकट गङ्गेश ने तत्त्व-विन्तामणि नामक महत्वपूर्ण न्याय ग्रंथ की रचना की,^३ जिस पर पद्मनाभ ने टीका लिखी है।

वैशेषिक-ग्रन्थ २. न्याय-कन्दलो-टोका (सन्दिग्ध)—वैशेषिक सूत्रों पर लगभग ५वीं शती में प्रशस्तपाद न मौलिक भाष्य रचा, जिसका नाम 'पदार्थ-धर्म-सङ्ग्रह' रखा गया। श्रीधराचार्य ने १९१ ई० (शकाब्द ११३) में इस

पृष्ठ ३४५ : (बीरभद्र, जो भाठ के राजा रामचन्द्र की नौकरी में पहले रह चुका था, उसे बुलाने को भेजा गया।)

१. देखिये आगे बीरभद्रधम्मू का विवरण। सेना के वर्णन के लिए देखिये सं० भा० दे० पृष्ठ ६२-१००। इस युद्ध का समय और पद्मनाभ का बधेलखण्ड में आगमन १५७७ ई० से कुछ वर्षों पूर्व होगा।
२. देखिये आफो० : जिल्द १-३२२ ए : हरदत्तशर्मा ने इसे अपने छेद 'बाधेल खलसो' में उद्धृत किया है। साथ ही देखिये—कि० मा० अंग० भूमिका : पृष्ठ ५-१० : दुषिंदराज शास्त्री की भूमिका : प्रशस्तपाद भाष्य सूक्ति-सेतु-व्योमवती : चौखम्बा-१९३० : पृ० ६ : नारायण शास्त्री खिस्ते : शरदागम : १९२९ : संस्कृत प्रस्तावना : पृष्ठ ५ : नन्दकिशोर शर्मा : पीरमासी : चौखम्बा : ग्रंथ संख्या ५७ : १९४५ ई० भूमिका : पृ० ७।
३. कीष : 'ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्० : आक्सफोर्ड : १९२८ : पृष्ठ ४८४।

भाष्य पर 'न्याय-कन्दली' नाम की टीका लिखी।^१ गोपीनाथ कविराज के अनुसार 'कहा जाता है कि पद्मनाभ ने इस न्यायकन्दली पर टीका लिखी है, किन्तु कोई पाण्डुलिपि उपलब्ध न होने से यह सन्दिग्ध है। किरणावली की भूमिका (पृष्ठ ४) में विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी ने इस ग्रंथ का उल्लेख किया है।^२

श्री द्विवेदी का विज्ञापन देखने पर यह उल्लेख नहीं मिला।^३ दुण्डिराज शास्त्री ने लिखा है कि पद्मनाभ की 'सेतु' टीका पर इस न्याय-कन्दली का प्रभाव है।^४

३. बर्द्धमानेन्दु—प्रसस्तपाद-भाष्य पर उदयन द्वारा लिखी हुई 'किरणावली' नामक टीका को बहुत मान्यता प्राप्त हुई। किरणावली के द्रव्य-प्रकरण पर गङ्गेश के पुत्र बर्द्धमान ने किरणावली-प्रकाश नाम की टीका लिखी।^५ बर्द्धमान की इस टीका पर पद्मनाभ के पिता बलमद्र मिश्र ने 'युक्ति' या 'युक्ति-कल्पद्रुम' अथवा 'युक्ति-कामधेनु' नाम से महत्त्वपूर्ण टीका लिखी। पद्मनाभ ने पिता की इस युक्ति नामक कृति का सार-भाग ग्रहण कर 'बर्द्धमानेन्दु' नामक ग्रन्थ लिखा।^६

४. तरव-प्रकाशिका टीका—इस ग्रन्थ का विवरण प्राप्त नहीं है। आर्क्रे के आधार पर केवल हरदत्त शर्मा ने इसकी सूचना प्रस्तुत की है।^७ अन्यत्र इस ग्रन्थ की चर्चा नहीं है।

१. किरणावली : वि० प्र० द्विवेदी : बनारस : १९१९ : विज्ञापनम् : पृ० १५-१७ : 'अधिक-दशोत्तर-नवसप्त-शकाब्दे ।'

२. कि० भा० अंग० भूमिका : पृ० ७ ।

३. किरणावली : विज्ञापनम् ।

४. प्रसस्तपादभाष्य : 'युक्ति-सेतु-व्योमवती' : चौखम्बा-बनारस : १९३० : पृ० ५ ।

५. कि० भा० : भूमिका : पृ० २ : बर्द्धमान का मङ्गलाचरण : 'यस्तर्कतन्त्र-सप्तपत्र-सहस्ररश्मिर्गङ्गेश्वरः सुकवि-कैरव-काननेन्दुः । तस्यात्मजोऽतिगहनां किरणावलीं तां प्राकाशयत् कृतिमुदे ब्रुव-बर्द्धमानः ॥'

६. कि० भा० : अंग० भूमिका : : पृ० ६-७ :

बर्द्धमानेन्दु के आरम्भ में यह श्लोक है—

'बलमद्र-कृताम्भोधेदघृत्यातिप्रयत्नतः ।

बर्द्धमानेन्दुरघुना पद्मनाभेन तन्वते ॥'

७. बायेल हलर्स० । आर्क्रे० विल्ड १-३२२ ए । हरदत्तशर्मा ने बर्द्धमानेन्दु की बर्द्धमान के न्यायनिबन्ध प्रकाश की टीका बतलाया है ।

५. किरणावली-भास्कर—पद्मनाभ ने उपर्युक्त 'किरणावली-प्रकाश' पर बर्द्धमानेन्दु टोका लिखते समय उसे अपर्याप्त पाया। उसने स्वयं पूरक रूप में किरणावली पर अपनी टोका 'किरणावली-भास्कर' नाम से लिखी। इस ग्रंथ का वास्तव में स्वतन्त्र मूल्य है। पद्मनाभ के मन में बर्द्धमान के प्रति प्रतिद्वन्द्विता का उदय होने से साहित्य-जगत् को लाभ हुआ। किरणावली-भास्कर की दो पाण्डुलिपियाँ कविराज जी को गवर्नमेंट संस्कृत लाइब्रेरी बनारस में उपलब्ध हुई थी।^१

६. सेतु या वैशेषिक सेतु—पद्मनाभ ने प्रसस्तपाद भाष्य पर बीरवल की उदारता के प्रत्युपकार के निमित्त १५८३ ई० से १५८७ ई० के बीच 'सेतु' टोका लिखी। यह टोका द्रव्य-प्रकरणान्त है। इस ग्रन्थ का आधार पिता के तर्कों पर और लक्ष्य या भाषा को सरल करना। शौचम्बा-संस्कृत-ग्रन्थमाला बनारस से ग्रन्थ क्रमांक ३१६, ३४२, ३५४, ३७४ और ३७५ के क्रम से १६२४ ई० से १६२८ ई० तक यह ग्रन्थ पाँच भागों में प्रकाशित हो चुका है। क्रमाङ्क ३७५ में सेतु टोका समाप्त हो जाती है।^२

७. रादान्त-मुक्ताहार और उसकी स्वहृत टोका कणाद-रहस्य—रादान्त-मुक्ताहार^३ पद्मनाभ का स्वतन्त्र ग्रन्थ है। इसमें ८१ कारिकाएँ हैं। अपने पिता बलभद्र मिश्र के गुरु प्रसन्न मिश्र भट्टाचार्य की प्रसन्नता के लिए पद्मनाभ

१. मूमिका। साय ही देखिये-'किरणावली': बनारस : १९१९ : वि० प्र० द्विवेदी का विज्ञापन : पृष्ठ ६ : टिप्पणी—'ग्रन्थोऽयं श्लोक-त्रिस-हस्रात्मकः।'

२. भाग १ (ग्रन्थ क्र० ३१६) : आरम्भ के श्लोक—

'स्मृतिरथमुपनीय श्रीमतस्तात-वचना-

दुचितमुपचितार्थं वाक्यमरथादरेण ।

जयति विरचितोऽग्रे पद्मनाभेन यत्ना-

दुदयन-कृति-पार-प्राप्तये सेतुरुच्यै ॥ १ ॥

उदयन-कृत्-चन्द्रिकया वृद्धो भाष्याम्बुधिधरितः ।

वालानामपि सुगमस्तत्र मया रच्यते सेतुः ॥ २ ॥

३. हरदत्त शर्मा ने अपने लेख (वाथेल रूलर्स०) में आफ्रे की सूची के आधार पर इन कृतियों के नाम 'रदान्त-मुक्ताहार' और 'कणाद-रहस्य' दिये हैं, जो असुद्ध हैं (देखिये-आफ्रे० जिन्द १-३२२ ए।)

ने यह ग्रन्थ लिखा और पीछे स्वयं इन कारिकाओं की 'कणाद-रहस्य' नाम से टीका लिखी ।^१

वेदान्त-ग्रन्थ—

८. खण्डन-खण्ड-खाद्य-टीका—१२ वीं शती के उत्तरार्द्ध में नैपथीय-चरित के प्रणेता श्रीहर्ष ने खण्डन-खण्ड-खाद्य नाम का वेदान्त-ग्रन्थ लिखा, जिस पर यह टीका है ।^२

धर्मशास्त्र—

९. प्रायश्चित्त-प्रकाश^३

काव्यशास्त्र—

१०. बलङ्कार-मास्कर^४

१. पीटर्सन ने रायल एशियाटिक सोसाइटी से संबद्ध १८८४-८६ के जर्नल (पृ० २६१) में कणाद-रहस्य टीका के आरम्भ में निम्न-लिखित श्लोक बतलाया है—

'आरचय्य प्रयत्नाद्यैरिहैकाशीति-कारिकाः ।

आचार्य-मघनाभेन व्याख्या सम्प्रति तन्यते ॥'

अन्त में पुष्पिका इस प्रकार है—

• 'इति श्रीमन्-मिश्र-श्रीजगद्गुरु-बलभद्रात्मज-विश्वनाथानुज-विजय-श्रीगर्भसम्भव-सकलशास्त्रारविन्द-द्रव्योत्तम-भट्टाचार्य-मिश्र-श्रीमत्पद्म-नामकृती स्ववृत्त-राजान्त-मुक्ताहार-व्याख्याने कणाद्-रहस्यं समाप्तम् ।'

देखिये—तर्कभाषा : सुरेन्द्रलाल गोस्वामिन् : मेडिकल हाल प्रेस : बनारस । १९०१ : विज्ञापनम् पृ० २ ।

२. कि० भा० : अंग० भूमिका : पृष्ठ ७ ।

३. चन्द्रालोक-योगभासीटीका : चौखम्बा : बनारस : १९४५ : भूमिका पृष्ठ ७ । अन्यत्र इस ग्रन्थ की चर्चा नहीं है ।

४. प्रयत्तपादभाष्य-सूक्ति-सेतु व्योमवती : ग्रन्थ क्र० ३१६ : चौखम्बा : १९२४ : पृष्ठ ८२ : सेतु टीका में पद्मनाभ की उक्ति-‘भट्टा-सङ्कारमास्कर-काव्यप्रकाशप्रकाश-तत्खण्डनैकावली-विवरण-शरदागम-मतोरमादी । साय ही देखिये, इस उक्ति पर दुग्डराज शास्त्री का मत (वही, नं० ३६६ : चौखम्बा : १९३०) : भूमिका पृ० ६ : शास्त्री जी ने ‘शरदागम-मतोरमा’ को एक ही ग्रन्थ मान कर इन्हें साहित्य-ग्रन्थ-बतुष्टय लिखा है । किन्तु शरदागम ग्रन्थ

११. एकावली-विवरण ।

१२. मनोरमा ।

१३. शरदागम या चन्द्रालोक-प्रकाश--यह टीका १९२९ ई० में सम्पादक और भूमिका-लेखक नारायणशास्त्री खिस्ते के अनुसार प्रथम बार प्रकाशित हुई । श्री खिस्ते के अतिरिक्त अनन्तराम शास्त्री बेताल^१ और नन्दकिशोर शर्मा^२ ने भी इसे प्राचीनतम टीका माना है । अण्पय दीक्षित ने अपने कुवलयानन्द ग्रन्थ की समाप्ति पर निम्नलिखित श्लोक लिखा है—

‘चन्द्रालोको विजयतां शरदागम-सम्भवः ।

हृद्यः कुवलयानन्दो यत्प्रसादाद्भूदयम् ॥ १७२ ॥^३

इस आधार पर शरदागम टीका का महत्त्व और भी बढ़ जाता है । श्री खिस्ते और आफे० ने १५८३ ई० रचनाकाल दिया है ।^४

शरदागम के मङ्गलाचरण में निम्नलिखित श्लोक आध्यात्मिका के परिचय के रूप में प्राप्त है—

‘अस्य स्थितिती नगरी भवतोऽयोध्या भवत्यखिला ।

इति रघुवंशादधिको जयति वधेलाऽभिषो वंशः ॥ ३ ॥

देवपतेरिव शक्तिर्यस्य जये भूभृतां प्रथिता ।

श्रीवीरभद्रदेवस्तत्र धराऽऽसृण्वन्मौ जातः ॥ ४ ॥

दशरथतो रघुपतिरिव तस्मादिह वीरभानु-भूपालः ।

आवृट्-धर्म-सेतुजंगति समुद्रे समुद्भूतः ॥ ५ ॥

सत्तनयो नयनिर्मल-कीर्तिः स्वनिम्नगा-मूलम् ।

जयति तदोयस्तनयः कवि-गोष्ठो-दैवतारामः ॥ ६ ॥

क्रियते तस्य निदेशाच्चन्द्रालोक-प्रकाशोऽयम् ।

शरदागम इति विदितो भट्टाचार्येण यत्नेन ॥ ७ ॥

के साथ वास्तव में मनोरमा शब्द कही प्रयुक्त न होने से हमने मनोरमा को पृथक् साहित्य-ग्रन्थ माना है ।

१. चन्द्रालोक : राकागम टीका : चौखम्बा : बनारस : १९३८ : पृष्ठ २ (भूमिका) ।

२. चन्द्रालोक : पौर्णमासी टीका : चौखम्बा : बनारस : १९४५ : भूमिका : पृ० ३, ६ ।

३. पणशीकर—ल० वा० : निर्णयसागर : बम्बई : चतुर्थ आवृत्ति : १९१७ : पृष्ठ १८८ : अन्तिम श्लोक ।

४. आफे० : भाग ३ : पृष्ठ ३९ ।

प्रथम मयूख के अन्त में पुष्पिका इस प्रकार है—

‘इति श्रीमहाराजाधिराज-श्रीरामचन्द्रदेवार्जुन-युवराज-श्रीवीरभद्रदेवादिष्ट-
मिथ-श्रीवलमशारमज सकलशास्त्रारविन्दप्रद्योतन-भट्टाचार्यविरचिते चन्द्रालोक-
प्रकाशे धारदागमे प्रथमो मयूखः ॥ १ ॥’

द्वितीय और दशम मयूखों में भी समान पुष्पिकाएँ हैं। शेष मयूखों में पुष्पिकाएँ नहीं हैं।

उपर्युक्त श्लोकों के साथ पुष्पिकाओं को देखने से यह स्पष्ट होगा कि किसी लिपिक को मूल से ही श्लोक क्रमाङ्क ४ में ‘वीरसिंह’ के स्थान पर ‘वीरभद्र’ शब्द रख दिया गया है। अन्यथा जो ग्रन्थकार पुष्पिका में वीरभद्र को रामचन्द्र का पुत्र बतला रहा है और उसी वीरभद्र के आदेश से यह टीका-ग्रन्थ लिख रहा है, वह उसी के पूर्वज और उसके पितामह वीरमानु के पिता के स्थान पर उसी वीरभद्र का नाम कैसे लिखेगा ?

पद्मनाभ ने इस टीका के प्रत्येक मयूख के अन्त में ऐसे श्लोक दिये हैं, जिनमें वीरभद्र के आदेश पर इस रचना का सङ्केत है। साथ ही द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ के आरम्भ में इस आध्यदाता के प्रति श्रुमांसा प्रकट की गई है। उदाहरण-स्वरूप द्वितीय अध्याय के आरम्भ और अन्त में ये श्लोक हैं—

‘श्री वीरभद्रदेवे दिशतु जयं सङ्गर-प्रकरे ।

मीनावतार-शाली कालीयोत्सादनाच्चतुरः ॥’

‘श्रीवीरभद्रदेवादेशाद्भुदित-प्रयत्नेन ।

प्रथमाग्रिमो मयूखश्चन्द्रालोके कृतः धार्यः ॥’

मङ्गलाचरण में भैरव और श्रीराम की वन्दना है तथा दशावतार-रूप में अन्य मयूखों में क्रमशः मीन, कूर्म, बराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, हलधर, बुद्ध और कल्की की वन्दना की गई है।

१४. काव्यप्रकाश-प्रकाश—निर्णयसिन्धु (१६११ ई०) के कर्ता कमलाकर भट्ट ने काव्य-प्रकाश पर अपनी टीका में काव्यप्रकाश के पूर्ववर्ती टीकाकारों के नाम दिये हैं, जिनमें पद्मनाभ-कृत-टीका भी है।^१

१५. वीरभद्रचम्पू।^२

१. काव्यप्रकाशः वा० रा० शलक्रीकर : निर्णयसागर : बम्बई :

१९१७ : प्रस्तावना : पृ० ३०-३१ ।

२. देखिये अगले पृष्ठ । कृष्णमाचारियर (हि० षला० सं० लिट्० : पृष्ठ ३०४) ने पद्मनाभ भट्ट-कृत ‘गोपालचरित’, (आफ्ने० भाग ३।३६) की भी सूचना दी है। यदि यह पद्मनाभमिथ की रचना हो तो कृतियों की कुल संख्या १६ होगी ।

१२ ध०

२. घोरभद्रदेवधम्पू का विवरण

सरस्वती-कोप भाण्डार रोवा में सं० १९९१ (१९३४ई०) में लिखित इस धम्पू को एक प्रतिलिपि है, जिसमें लिपिक ने निम्नलिखित वाक्य जोड़े हैं—

‘वि० सं० १९९१ श्रावण शुक्ला १३ बुधवासरे श्रीमेदनाटान्तर्गतोदयपुर-मगरे यावदार्यकुल-कमल-दिवाकर-श्रीमन्-महाराजाधिराज-महाराणा-श्रीभूपाल-सिंह-श्रीविजयराज्ये श्रीसरस्वती-भाण्डार-कार्यालये अधिवाडिया-व्यारण-करिणी-दानस्याध्यसतायां पत्नीबाल-जातीय नन्दकिशोर-धर्मणा लिखितमिदं पुस्तकम् ।’

अर्थात् महाराणा-उदयपुर के पुस्तकालय में प्राप्त पाण्डुलिपि की प्रतिलिपि सं० १९९१ में रोवा लाई गई। हीरानन्द शास्त्री ने इस बात का उल्लेख कर लिखा है श्री रोवा महाराज ने उदयपुर में प्राप्त मूल ग्रन्थ को प्रतिलिपि सरस्वती-कोप-भाण्डार में रखवाई।

शास्त्री जी ने एक अन्य (लाहौर की) पाण्डुलिपि की भी खर्चा की है^१, जिसका विवरण डा० पीटर्सन ने संस्कृत-पाण्डुलिपियों के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया था। इसका नाम ‘वीरधम्पू’ बतलाया गया है। पुष्पिकाएँ रोवा की प्रति के ही समान हैं, यद्यपि लिपिक-कृत-पाठभेद है,^२ जिनमें ‘श्री वीरभद्रदेव-चरिते’ शब्द प्रत्येक उच्छ्वास के अन्त में प्राप्त प्रत्येक पुष्पिका में है। अन्त में ये शब्द है—

‘समाप्तो वीरधंपूलामा ग्रन्थः ॥’

संवत् १९४८ समये आषाढ़-शुद्ध- तृतीयायां सोमे लाहूरपुरे जगन्नाथमठेन-
लिखितं पुस्तकमिदम् ॥’

अर्थात् यह लिपि १९९१ ई० की लाहौर की है।^३ यह संयोग की बात है कि इसी वर्ष वीरभानुदय काव्य की पाण्डुलिपि काशी में लिखी गई, जो प्रकाश

१. वीर० क्रि० ए० । पृष्ठ ३-४ : सम्भवतः शास्त्री जी की भूमिका के लिए ‘धम्पू’ के उल्लेखों की आवश्यकता पड़ी।

२. जैसे मङ्गलाचरण (श्लोक १) : भैरव-वन्दना : प्रथम पंक्ति-लाहौर की प्रति-‘नियत-रुधिर-पानारक्त...’ उदयपुर की प्रति-‘नियत-रुधिर-पानारक्त...’

तीसरी पंक्ति-लाहौर की प्रति— स्यापिनिष्कीटिमल्ली...’

उदयपुर की प्रति-‘स्यापिनिष्कीटिमल्ली—’

यहाँ ‘स्यापिनीः कीटिमल्ली—’ उचित प्रतीत होता है। सरदागम के प्रथम श्लोक में भी भैरव की ही वन्दना है ‘पृथ्वी पृथ्वी न पदभ्यां—।’

३. वीर० क्रि० ए० : पृष्ठ ३-४ :

में आई ।^१ चम्पू की पाण्डुलिपि आषाढ़ और वीरमानन्दय की पाण्डुलिपि अगहन (मार्गशीर्ष) मास में सम्पूर्ण हुई । दोनों के लिपिकाल में केवल ५ मास का अन्तर है । सम्भव है, यह प्रतिलिपि भी वीरभद्र की प्रेरणा से की गई हो ।

वीरभद्रचम्पू के रचनाकाल के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं है । ग्रन्थकार की ही सूचना के अनुसार चैत्र शुक्ल प्रतिपदा, संवत् १६३४ (१५७७ ई०) को ग्रन्थ की सन्तुति हुई—

‘दुग्ग रामर्तु-समाह्वे वर्षे चैत्रे सिते प्रथमे ।

श्रीवीरभद्रचम्पूः पूर्वाग्निमुच्छ्वेतते विदुषाम् ॥’

वीरभद्र ने अपना ग्रन्थ ‘कन्दर्प-चूडामणि’ इस तिथि के ठीक एक मास पूर्व सम्पूर्ण किया था ।^२ प्रतीत होता है कि वीरभद्र और पद्मनाभ का साहित्याभ्यास साथ साथ चलता था । १९५२ ई० में कलकत्ता से वीरभद्रचम्पू का आशिक प्रकाशित कर दिया गया है ।^३

३. चम्पू का कथावत्त्व

वीरभद्रचम्पू में ७ उच्छ्वास है । कथावन्ध निम्नलिखित रूप में है—

प्रथम उच्छ्वास—उदयपुर की प्रति में ‘अथ श्री वीरभद्रचम्पूः लिख्यते’ से अन्यारम्भ होता है । मङ्गलाचरण में भैरव और शोराम की वन्दना है ।^४

रामचन्द्र (बघेल) के पुत्र वीरभद्र की रणवाहिनी के प्रत्यान से आकाश में धूल छा गई है । सङ्का में मन्दोदरो विनोयण से भयपूर्वक कहती है कि

१. अन्तिम पुष्पिका : ‘संवत् १६४८ समये अगहन-शुक्लपक्ष-द्वितीयायां श्रीमवासरे लिखितमिदम् विश्वेश्वरसन्निधे ॥’

२. कन्दर्पचूडामणि, ७।२।४९ :

‘हरलोचन-हरलोचन-रत-शशिनिविश्रुते समये ।

फाल्गुन-शुक्ल-प्रतिपदि पूर्णो ग्रन्थ. स्मर-स्मेरः ॥’

(फा० शु० १, सं० १६३३) ।

३. प्राच्यवाणी : भाग ९ : श्री पी. के. गोडे, पूना से प्राप्त प्रतिलिपि पर आधारित ।

४. वीरभद्रदेव-रचित कन्दर्पचूडामणि का आरम्भ भी भैरव-वन्दना से होता है—

‘अरुणाग्नि दक्षकोशाद् भक्त्यनुरक्तेषु सानुरागेव ।

कल्याणाय जनत्या दृष्टिः श्रीभैरवस्यास्तु ॥१-१-१॥

दशकुमार-पूर्वकथासार में भी देखिए [पीछे अध्याय ४-२ (घ)]—

‘ताण्डवाहम्बरे’... ।

विन्ध्याचल किसी कारण अगस्त्य की आज्ञा की उपेक्षा कर आकाश में उठ रहा है। उसने पक्षियों एवं सूर्य और वायु की गति रुद्ध कर दी है; अथवा वर्षा-काल द्वारा प्रसारित पृथ्वी के किसी चक्रवर्ती नरेश की प्रतापान्ति की भीषण घुमराशि उठी है, जो दिशाओं के अन्तराल को निगलती जा रही है।

विभीषण मन्दोदरी को बतलाता है कि यह पूल है, जो वीरभद्र के असंख्य सैन्धव (सिन्धुदेशीय) घोड़ों के दौड़ने से उठी है। मन्दोदरी समझती है कि रामचन्द्र की सेना पुनः लंका पर चढ़ आएगी। विभीषण बतलाता है कि यह अन्य रामचन्द्र है। यह भानु का नहीं, वीरभानु का बंधुधर है। यह बघेल-वंश का है। इसकी राजधानी गहोरा है। इसके राज्य में बाणध्व दुर्ग है, जहाँ वह इन दिनों दानुओं के अस्त होने की प्रतीक्षा में रहता है।

विभीषण वीरभद्र की इस रण-यात्रा का उद्देश्य बतलाते हुए कहता है कि यह आक्रमण रेवा-ठट के उन राजाओं पर है, जिन्होंने दण्डस्वरूप देय हाथी अभी तक नहीं दिये हैं। वीरभद्र की माता यशोदा ने ब्राह्मणों को हाथी देने का संकल्प किया है, किन्तु हाथी कम पड़ रहे हैं।

इसके पश्चात् विभीषण की सभा में बृहस्पति जाते हैं और बतलाते हैं कि इन्द्र भी इस रणयात्रा से आसङ्गित थे। उन्हें नारद ने बतलाया है कि वीरभद्र की माता ने सूर्य-ग्रहण के समय गज-दान का संकल्प किया था। आश्विन-पूर्णिमा को अश्व-ग्रहण होने वाला है। अतः वीरभद्र दण्ड द्वारा हाथी लाने का उद्योग कर रहे हैं। नारद से यह सुन कर इन्द्र की चिन्ता समाप्त हो गई है। इसी प्रसङ्ग में इन्द्रपुरी का भी वर्णन है।

द्वितीय उच्छ्वास में रणवाहिनी बढ़ती है और शत्रु-देशों में आतङ्क छा जाता है। यहाँ कवि ने काश्मीर, काबिल (काबुल), प्रतिष्ठान, अङ्ग आदि लगभग २५ देशों (या राज्यों) को सूची-सी प्रस्तुत की है, जहाँ सेना के प्रयाण से खलबली मच गई है।

तृतीय उच्छ्वास में रणवाहिनी का ही वर्णन आगे चलता है। यही पर कामताधिनाथ (चित्रकूट के राजा) का दूत सन्धि-पत्र लेकर वीरभद्र के निकट पहुँचता है। इस प्रसङ्ग में शिविर आदि का वर्णन है। पत्र लाने वाला व्यक्ति कामाक्ष्या प्रसाद कवि है, क्योंकि यह बात प्रसिद्ध है कि वीरभद्र कवियों का आदर करता है।

चतुर्थ उच्छ्वास में विभीषण अपने दूत से बातें करता है। दूत को 'रघुपति-प्रसाद-प्रापक' कहा गया है। विभीषण ने इस दूत को रामनवमी के दिन राम के जन्मोत्सव में सम्मिलित होकर विभीषण द्वारा प्रेषित उपहार

देने की मेजा था। दूत को श्रीराम का प्रसाद (प्रसन्नता का सूचक उपहार) भी विभीषण तक लाना था। जन्मोत्सव में सम्मिलित होकर इन्द्र ने श्रीराम के कण्ठ में मन्दारमाला अर्पित की थी। श्रीराम ने विभीषण को प्रसाद-रूप में यही मन्दार-माला भेजी है, जिसे दूत लाया है। इस उच्छ्वास में वीरमद्र के पिता रामचन्द्र बघेल की प्रशस्ति भी है।

पाँचवें और छठे उच्छ्वास में भी विभीषण और दूत की यह वार्ता चलती रहती है। पाँचवें उच्छ्वास में दूत ने अनेक देवों और भुनियों की गणना की है, जो उत्सव में सम्मिलित हुए थे। केवल अगस्त्य और विभीषण सम्मिलित नहीं हो सके, क्योंकि (बान्धवगढ़ में रामचन्द्र के अघिष्ठित होने से) विन्ध्य पर्वत दुर्लभ्य हो गया था। यहाँ प्रसङ्गवश प्रयाग-तीर्थ, अलकानगरी (अरुण) और श्यामवट का वर्णन भी है।

छठे उच्छ्वास में 'रघुपति-प्रसाद-प्रापक' दूत ने बतलाया है कि उसने मार्ग में किस प्रकार वीरमद्र की सेना देखी। इस सेना का वर्णन ३१ श्लोकों में है और तत्कालीन क्षत्रियों की बीसों जातियों-उपजातियों तथा वीरमद्र के मित्र रूप अन्य सत्ताओं के उल्लेख है।

सातवें उच्छ्वास में वीरमद्र की सेना का आगमन सुनकर रत्नपुर में पलायन होता है। अर्थात् मूलतः इस आक्रमण का सम्बन्ध रत्नपुर (रतनपुर, जिला बिलासपुर) से है। शत्रुओं के आज्ञाधीन हो जाने से वीरमद्र सागर-बेला तक के नरेशों से अनेक कर लेकर बान्धवगढ़ लौट आते हैं। यह समाचार विभीषण को सर्वथा निरिचन्त कर देता है। यहीं कथा समाप्त होती है।

४. ऐतिहासिक चल्लेख

(अ) युद्ध का मूल कारण

वीरमद्रदेव चम्पू में लिखित मूल घटना का बीज लगभग २० वर्ष पूर्व लिखित ऐतिहासिक महाकाव्य वीरमानुदय में सुरक्षित है, जिससे प्रतीत होता है कि बघेल राजाओं का रत्नपुर के शासकों से परम्परागत द्वेष चल रहा था। वीरसिंहदेव ने रत्नपुर के शासक को परास्त कर उससे कर ग्रहण किया था।^१ सम्भवतः यह पराजित राजा दादुराय था, जिसकी कन्या रामपती वीरमानु

१. वीर २।६५ :

'यदा नूनो रत्नपुरस्य दर्शन्ति शासनं मूर्धनि वीरसिंहम् ।
भादस्रवांस्ति स तदा विजित्य करं च तस्माद् बहुधा मयात्तत् ॥'

को ध्याही गई । यह विवाह दण्ड रूप ही प्रतीत होता है, क्योंकि वीरमानु को राममती के बहने से ही दादुराय को (पुनः) दण्ड देने का निश्चय करना पड़ा ।^१ रत्नपुर को जीतकर भी दपेलों ने वहाँ के शासक को पदच्युत इसलिए नहीं किया होगा कि वह सम्बन्धी बन गया था । अतः इस चम्पू के अनुसार पुनः रत्नपुर के शासक ने, जो दादुराय का पुत्र या पौत्र हो सकता है, दपेलों के विरुद्ध सिर उठाया होगा, जिसके कारण रामचन्द्र के आदेश से मुवरात्र वीरभद्र ने उसका दमन किया और पुनः कर लेकर छोड़ दिया । यह रणयात्रा रेवा (नर्मदा) पर्यन्त थी ।^२ अतः नर्मदा के वे दृतीय प्रदेश, जिनका उल्लेख चम्पू में हुआ है^३, इस आक्रमण से सम्बद्ध हो सकते हैं ।

(आ) तत्कालीन प्रदेश^४

वीरभद्र की रणवाहिनी से जो प्रदेश आठङ्कित बतलाए गए हैं, वे केवल कवि की भौगोलिक जानकारी सूचित करते हैं । ये तत्कालीन प्रदेश हैं, जो निम्नलिखित हैं—

काश्मीर, काबिल (काबुल), राड़ा (लखनावटी-दंगाल में गङ्गा के पश्चिम क्षेत्र)^५, चम्पारणीय (चम्पारन-बिहार), तैरभुक्त (तिरहुत), बाण्टि (कर्नाटक), द्रविड़ (आन्ध्र), यङ्ग, अङ्ग (गंगा से पूर्व का क्षेत्र), प्रतिष्ठान (भूँसी-प्रयाग), मुद्गल (मुगलों द्वारा शासित प्रदेश), कामता (चित्रकूट), भिल्ल और किरात (गोडवाना) ।

इनके अतिरिक्त तत्कालीन दक्षेखण्ड के परिसर में स्थित निम्नलिखित क्षेत्रों (या राज्यों) के नाम हैं, जिनका ऐतिहासिक मूल्य है, किन्तु आवश्यक नहीं है कि वीरभद्र का इन सभी पर आक्रमण हुआ हो—

तथा सर्ग २।६६ :

‘जिता गदा रत्नपुरेण साकं, जितो बहारः सहजोरदेशः ।’

१. वही, ७।६८-७५ : ‘दादुराय-नुपे ... रत्नपुरे ... ।’
यहाँ रत्नपुर की समृद्धि का भी वर्णन है—‘सृष्टं रत्नपुरं नाम ।’
२. उच्छ्वास-१ : ‘सागरावधि रेवायां यात्राविधिः ।’
३. उच्छ्वास २ : आठङ्कित देश-गदा (जिला जबलपुर), काची-विजौरा, सिधरोली (सोधी जिला), रत्नपुर, भिल्ल, किरात (गोडवाना) आदि ।
४. वीरभद्रचम्पू : उच्छ्वास २ ।
५. तबकात नासिरी : पृष्ठ ६८० : ।

गढ़ा, ^६ सिवरीली, ^७ अमौरी, ^८ रोहतास दुर्ग, ^९ पचनती, ^{१०} विजयगिरि, ^{११} काशी-विजौरा, दडकोर, भरवार ^{१२} ।

(ई) क्षत्रिय-जातियों—

वीरभद्र की सेना में सम्मिलित क्षत्रिय जातियों का अोजस्वितापूर्ण वर्णन प्राप्त है । इनमें से प्रायः सभी के वंशज आज भी बघेलखण्ड में बसते हैं ।

(१) बघेल—(राजवंश) ।

(२) तोमर—इस समय म्वालिपर तोमर सत्ता का केन्द्र था ।

(३) चौहाग (न)—रोवा जिले की मऊगंज तहसील और सीधी जिले में सोन नदी के तट पर चौहान हैं । यह क्षेत्र चौहानखण्ड भी कहा जाता है ।

(४) भांडव—यदुवंशी—रोवा के वर्तमान महाराज मार्तण्डसिंह जू देव का विवाह कच्छ के यदुवंशियों के यहां हुआ है ।

(५) पंचार—पनार-परमार का अग्रवंश । सतना जिले के बरौवा परगने के रोहा गाँव में पनार क्षत्रिय हैं । यहाँ वीरभद्रदेव की छतरी है ।

(६) रैकवार—रोवा जिले में है ।

(७) दिक्षित—गोरैया (जिला सतना) के राजा दिक्षित वंश के हैं । इनके यहाँ बड़े नरेश विश्वनाथसिंह (१८०९-३४) का विवाह हुआ था ।

(८) बड़गुजर—कहा जाता है कि नवाब छतारी, बुलन्दशहर (उ० प्र०) बड़गुजर राजपूत जाति से परिवर्तित हैं ।

(९) महरवार—काशी-कन्नौज के गहड़वालों की शाखा ।

१. जिला जबलपुर । १५६४ ई० में बाबरु खाँ द्वारा यह क्षेत्र रानी दुर्गावती से छीनकर मुगल-शासित प्रदेश बना दिया गया था ।

२. वर्तमान म० प्र० के सीधी जिले की एक तहसील-सिंगरीली । यहाँ गौड़ों की सत्ता रही होगी । आज भी यहाँ गौड़ बहुत हैं ।

३. जिला मिर्जापुर । यहाँ चन्देल-जमींदार थे । बघेलों के साथ इनके विवाह सम्बन्ध थे ।

४. जिला मिर्जापुर का ऐतिहासिक किला ।

५. दतिया—म्वालिपर की सीमा पर पंचाया नामक स्थान ।

६. सम्भवतः जबलपुर जिले का विजयराधोगढ़ ।

७. जिला जबलपुर और छत्तीसगढ़ की पुरानी रिमाइंटें । ये स्थान उस समय बघेलखण्ड के प्रभाव क्षेत्र में रहे होंगे ।

८. वीरभद्र-खण्ड : जयपुरवाड ६।१५-४५ : उदाहरण के लिए देखिये— सं० बा० दे० पृष्ठ ६६-१०० ।

(१०) चन्देल—अजयगढ़, जिला पन्ना में चन्देल सत्ता थी।

(११) मुर्छक—सोलंकी जाति की एक शाखा। १८ वीं शती में मुर्छक जाति के शत्रिय रीवा में दीवान थे।

(१२) सोमवंशी—प्रतापगढ़ (अवध) के सोमवंशियों की कन्या रीवा के राजा अनिरुद्धसिंह (१६९५ ई०) की ब्याही थीं।

(१३) नागवंशी—छोटा नागपुर में नागवंशी शत्रियों के धर अजीतसिंह (१७५५-१८०९) बघेल का विवाह हुआ था। बोकानेर के नागवंशियों के यहाँ धीरभद्र का विवाह हुआ था।

(१४) हैहय—भावसिंह बघेल (१६७१-९४) का विवाह रतनपुर (जिला बिलासपुर) की हैहयवंशीय रानी मदनावती के साथ हुआ था। भोंसलों ने इन्हें समाप्त कर दिया।

(१५) पुलस्ति-वंशीय—गढ़ा-मंडला के गोंड़ ठाकुर अपने को पोलस्त्य वंश के (रावण-वंशी) लिखते हैं।

(१६) रतसेला—सुरगुजा के शत्रिय।

(१७) कछवाह—मूलस्थान श्वालियर के कच्छपघाट। जयपुर के राजा मानसिंह कछवाह थे। मैहर (जिला सतना) के राजा कछवाह वंश के हैं।

(१८) परिहार—नागौद उबेहरा (जिला सतना) के राजा परिहार हैं। इनके यहाँ विश्वनाथसिंह का विवाह हुआ था। धीरभानुदय काव्य के अनुसार धीरसिंहदेव ने नरो (जिला सतना) से परिहारों को हटाया था। बर्ही-छिवीरा (जिला सतना) में परिहार हैं।

(१९) तिसीदिया-उदयपुर। रघुराजसिंह का विवाह उदयपुर के महाराणा के यहाँ हुआ था। उनकी बहन भी उदयपुर में ब्याही गई थीं।

(२०) मुद्गल—इस्लाम धर्मावलम्बी जो बघेल सेना में थे।

(२१) प्रतिष्ठान-वासी—सम्भवतः कलचुरि (भूँसी प्रयाग)।

(२२) भरद्वाज—सोलंकीयों का गोत्र है। ये उन्हीं की शाखा के होंगे।

इनके अतिरिक्त (२३) सूर्यवंशी, (२४) खोचर, (२५) किकान, (२६) सकरवार, (२७) कुशिकवंशी (कौशिक) और (२८) श्वालकीवंशीय शत्रियों के भी उल्लेख है।^९

उपर्युक्त वर्णनों से पद्मनाभ का व्यापक जन-सम्पर्क और सूचना श्रोतित होती है। उस काल में राजपूतों की युद्ध-प्रिय जातियों पर भी यहाँ अच्छा प्रकाश पड़ता है। बघेल सत्ता की प्रचण्डता भी लक्षित होती है।

(इ) राज्य-सीमा

रामचन्द्र बघेल द्वारा शासित प्रदेश के सीमा-क्षेत्रों पर भी पचनाम ने अच्छा प्रकाश डाला है। चम्पू से विदित होता है कि इस समय (१५७७ ई० तक) भी रामचन्द्र की राजधानी गहोरा ही थी।^१ इस सूचना से दो प्रश्न हल होते हैं। पहला यह कि यद्यपि कालिंजर रामचन्द्र के हाथ से मुगलों के अधिकार में जा चुका था^२, गहोरा नगर राजधानी के रूप में बघेलों के अधिकार में सुरक्षित था, जब कि गहोरा (जिला बाँदा) कालिंजर दुर्ग के समीप है। दूसरा यह कि धान्यवगड़ यद्यपि एक सुदृढ़ दुर्ग, सैनिक केन्द्र और आवश्यकता पड़ने पर निवास स्थान का काम देता था, वह राजधानी नहीं था। अन्यत्र रूपणि ने इसी रामचन्द्र की राजधानी का नाम रामनगर बतलाया है, गहोरा नहीं।^३ अतः प्रतीत होता है कि १५७७ ई० के पश्चात् किन्तु रामचन्द्र की मृत्यु (१५९२ ई०) से पूर्व ही राजधानी गहोरा से बदलकर रामनगर में कर दी गई। चम्पू में रामचन्द्र के राज्य में प्रयाग और अरैल (अलर्क) नगरी बतलाये गए हैं।^४ वीरभानुदय काव्य में प्रयाग^५ और अरैल^६ तथा बघेलवंशवर्णनम् में भी प्रयाग^७ को रामचन्द्र की राज्य-सीमा में बतलाया गया है। प्रयाग पर यह बघेली सत्ता १५८४ ई० के पूर्व समाप्त हो गई, जब अकबर ने वहाँ अपना दुर्ग बनवाया।^८

१. वीरभद्रदेवचम्पू : उ० १।१३ :

‘अस्ति प्रशस्तिभिरलङ्कृत-दिविभागा
राजानुरषत-मनुजा नगरी गहोरा ।’

....साऽस्य पाण्डवापित-साण्डव-दावानल-प्रबल-प्रतापस्य राजधानी ।’

२. अक : भाग २ : पृष्ठ ४९८-४९९ :

‘कालिंजर पर अधिकार होने का समाचार ११ अगस्त, १५६६ ई० को पहुँचा ।’

३. बघेल० : पृष्ठ १४ : श्लोक ५०-५१ ।

‘पार्श्वे तस्य क्षितिप-नगरी....। विभाति रामनगरं—॥’

४. वीरभद्रदेवचम्पू : उ० १ तथा ५ । अलर्क का वर्णन सजीव है (देखिये प्राच्यवाणी : भाग ९ : १९५२ में चम्पू की भूमिका) ।

५. प्रकाशित-रीवा : १९३८ : सर्ग ९।३३ : ‘प्रयागे ते वासः...।’

६. वही , सर्ग १२।१९ : ‘निपेवितोऽलर्कपुरे सुतातः...।’ तथा अग्यत्र ।

७. बघेल० : श्लोक ५५ : ‘तस्य श्रीराम-नृपतेर्विपये शीर्षसेवितः । प्रयागोऽस्ति....।’

८. ई० छा० : अकबर : निजामुद्दीन अहमद : १९५२ : पृष्ठ १२१ :

इसी प्रसङ्ग में चम्पू का यह उल्लेख महत्वपूर्ण है कि गहोरा राजधानी होने पर भी रामचन्द्र इन दिनों 'किसी कारण' बान्धवगढ़ में ही रहा करते थे, क्योंकि नोतिज राजा चन्द्र के अस्त होने की प्रतीक्षा करते हुए दुर्ग का आश्रय लिया करते हैं, जैसे कृष्ण मानो जरासन्ध के भय से ही मथुरा राजधानी छोड़कर द्वारका में रहते थे, यद्यपि वे पहले चाणूर, कुवलयापीड और कंस आदि को मार चुके थे।^१ यह उपमा सर्वथा रामचन्द्र के पूर्व जीवन की ओर सङ्केत करती है, जो इब्राहीम मूर जैसे चन्द्रों की जीतने के पश्चात् १५६३ ई० में अकबर के सेनापति आसफ़ खाँ से लड़ कर हार चुके थे। एक अन्य उल्लेख भी चम्पू में है, जिससे रामचन्द्र का राज्य चम्पूना टट तक होने का सङ्केत मिलता है।^२ वीरभद्रदेव को यहाँ भी मघोदा देवी का पुत्र बतलाया गया है,^३ जिससे वीरभानूदय काव्य में प्राप्त इस सूचना की पुष्टि होती है।^४

(३) वंशगत सूचना

वीरसिंहदेव से निर्गत वंश और वीरभद्र के समकालीन परिवार की महत्त्व

‘२९ वें वर्ष (१५८४ ई० में) शाहंशाह ने गंगा-यमुना के सङ्गम पर एक किला बनाने और शहर बसाने का हुक्म दिया, जिसे ‘इलाहाबाद’ नाम दिया गया।

१. उच्छ्वास १ : “...तस्य विषये दुर्गरत्नं बान्धवः । कस्मान्बिन्नि-
मितात् साम्प्रतं तमघितिष्ठति । पन्था हि नोतिविशं प्रभूणां यत्
प्रतिपदास्तमय-समय-प्रक्षीयता दुर्गमेवाश्रयन्ते । तथा हि,
‘चाणूरं चूर्णयित्वा दलित-कुवलयापीड-मूर्द्धां निहत्य
द्राक् कंसं घातयित्वा यदुभिरिह परैः कारिचदग्यान् द्विपश्च ।
सम्प्रस्तौ मागधेशादिव विपुलबलात् सङ्गरोद्दाम-कीर्ति-
स्त्यक्त्वा स्थां राजधानीं सुतनु-सुमधुरां द्वारकामाप कृष्णः ॥’

२. देखिये पीछे अ० ४ (३-घ) ।

३. वीरभद्रचम्पू, उच्छ्वास १ :
‘श्रीवीरभद्रदेवस्याम्बया मघोदया कतिचित् करटिनः समुत्सुष्टाः ।’

४. वीर० सर्ग १२।२ :

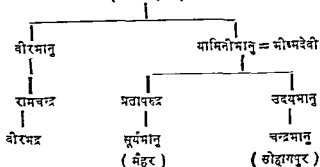
‘श्रीरामचन्द्रस्य तदात्मजस्य वभूव भार्या सुभगा यशोदा ।’

तथा १२।६ : ‘तस्यामभूतस्य सुतः स्थितस्य....।’

और १२।१२ : ‘चक्रैभिर्धा तस्य यथाविधानं श्रीवीरभद्रेति....।’

पूर्ण ऐतिहासिक सूचना भी वीरभद्रदेव चम्पू में प्राप्त होती है। इसके आधार पर बंशवृक्ष निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है—

(वीरसिंहदेव)



इनमें से प्रतापचन्द्र, उदयमानु, सूर्यमानु तथा चन्द्रमानु वीरभद्र के साथ युद्ध में उपस्थित थे। तुलाराम मन्त्री भी युद्ध में था। यामिनीमानु के लिए 'आसीत्' शब्द का प्रयोग होने से ज्ञात होता है कि १५७७ ई० के पूर्व ही उसकी मृत्यु हो चुकी थी। वीरभद्र और उदयमानु में मैत्री थी।^१ चम्पू में वीरभद्र के मामा रत्नसेन और उसके माई हेम का भी उल्लेख है।^२

चम्पू में प्राप्त वीरभद्र के इस कर्तृत्व से यह बात भी अपने आप सिद्ध हो जाती है कि वीरभद्र मुगल दरबार की हाजिरी में निरन्तर नहीं रहे। वे १५६९ ई० में सलीम के जन्मकाल से ही उसकी सेवा में बटलाए गए हैं।^३ अतः १५६९

१. पद्य नच्छ्वास :

'आसीत् विलास्य श्रीमतो वीरभद्रदेवस्य पितुर्महाराजाधिराध-
श्रीरामचन्द्रदेवस्य पितुर्वीरमानुदेवस्य सोदरो यामिनीमानुदेवः।...
तस्माद् मीधमदेव्यां च महाराजकुमारावेतो शोभनक्रियाया इव
वर्मायौ प्रतापचन्द्रोदयमानुदेवावाविर्भूतौ । ... मैत्री च श्रीवीरभद्रोदय-
मानुदेवयोर्नर-नारामययोरिव दृष्टा क्रिया-फल-व्ययवभादिनी । कुमारी
च प्रतापचन्द्रोदयमानु-उनुद्भवौ सूर्यमानु-चन्द्रमानु वीरो तत्र कटक
दृष्टौ ।'

२. वही, श्लोक १९ : 'आशाऽसी हेमनाम्ना सह.....आयातो.... रत्नसेनः ।'

इनके अतिरिक्त वीरभद्र की घाय का पुत्र कर्पूर सेवा में बटलाया गया है।

३. देखिये पीछे—अध्याय ४ (२) ।

और १५७७ ई० के बीच वे कभी बघेलखण्ड आये होंगे, परनाम उनके साथ होगा और उसने वीरभद्र की भारी विजय देख कर काम्य की प्रेरणा प्राप्त की। सिंगरौली-रतनपुर-विजय की यह घटना १५७५ ई० के निकट मानी जा सकती है।

५. प्रमुख चरित्र

वीरभद्रदेव चम्पू-ग्रन्थ स्वामात्रिक रूप से वीरभद्र की वीरता की प्रशस्ति के निमित्त केवल एक युद्ध की घटना का आधार लेकर लिखा गया है, अतः इसमें बहुमुखी चरित्र-चित्रण की अपेक्षा नहीं की जा सकती, फिर भी, रामचन्द्र और वीरभद्र के सम्बन्ध में कुछ ऐतिहासिक एवं प्रशस्त्यारमक चित्र खोचे गए हैं, जिनकी चर्चा हो सकती है।

(१) रामचन्द्र—पीछे कहा जा चुका है कि रामचन्द्र के अधीन एक विशाल सेना थी, जो इस समय वीरभद्र के अधिकार में दी गई थी। कवि बतलाता है कि इस सेना में बहुत से हाथी-घोड़े भी हैं।^१ रामचन्द्र का बघेलवंश कभी परशुराम से परामृत् होकर अधीनस्थ हो गया था। इसी वंश में शक्तिशाली कान्तिमान् और वैभवसम्पन्न राजा रामचन्द्र हुआ।^२ उसकी राजधानी अलंघ्य है। वह गुप्तचर भी रखता है।^३ उसने दानुओं का विनाश कर डाला है और दान में वह कल्पवृक्ष के समान है।^४ वह प्रजाप्रिय है।^५ वह नीतिज्ञ है और बान्धव दुर्ग का आश्रय लिये है।^६ वीरभद्र ने अन्यत्र स्वयं भी रामचन्द्र के इन गुणों का वर्णन किया है।^७

१. वीरभद्रदेवचम्पू : उच्छ्वास ६।१५-४५ :

तथा उ० १।६ : 'घाटी घावदत्तड्ढ्य-सन्धव-सुर-प्रातः ।'

२. उ० १।९ : 'वंशः प्राप्त-परामवो भगवतः क्षत्रद्रुहो भागवा-

दाज्ञायाम् विनुषोपमो विजयते राज्ञां बघेलाभिधः ।

शक्त्या स्कन्द इव श्रिया स्मर इव श्यात्या विवस्वानिव

स्फीत्या शक्र इवात्र राजति सदा श्रीरामचन्द्रो नृपः ॥'

३. उ० १।८ : अयोध्या नगरी यस्य प्रतिपन्ना निशा-चरैः ।'

४. उ० १ : प्रारम्भ—'अथ कदाचन प्रत्यधि-पायिव-सार्ध-कदर्शन-सार्धक-मनोरथस्य निरस्तगणनायिनात-कृतापीकरणात्पीकृत-कल्पतद्यशसो रामचन्द्रदेवस्य ।'

५. उ० १।१३ : 'अस्ति राजानुरक्त-मनुजा नगरी गहोरा ।'

६. उ० १ : '.....तस्य विषये दुर्गरत्नं बान्धवः ।

पथा हि नीतिविदां प्रमूणां..... ।'

७. कन्दर्पचूडामणि : अ० १।१।११ :

(२) वीरभद्रदेव—रामचन्द्र के सम्बन्ध में प्राप्त उपर्युक्त यशोवर्णन को वीरभद्रदेव से भी सम्बद्ध किया जा सकता है। वीरभद्रदेव का जो प्रमुख गुण यहाँ विनित हुआ है, वह है उद्यम सेनापतित्व एवं अयशोत्व। इस युद्ध में वह एक विद्याल सेना का सञ्चालन करता है; वह शत्रुओं को नष्ट करने के लिये कृतसङ्कल्प है और स्वयं अष्टौ घनुर्धर है।^१ वह धनेशों राजाओं को कर देने के लिये विवश कर देता है और पिता रामचन्द्र के निर्देश से अनुशासित है।^२ वीरभद्र मातृभक्त है और वह माता की इच्छा-पूर्ति के निमित्त ही युद्ध के लिये उद्यत होता है।^३ वह काम्य-रसिक था। उसके इसी गुण के कारण कामता (चित्रकूट) देश का स्वामी एक कवि को उसके समीप दूत के रूप में भेजता है।^४

‘कामादप्यभिरामो भीमादपि बाहुशालिनां मान्यः ।
कर्णादपि च यदाग्यो जयति सुतो रामचन्द्रोऽस्य ॥’
तुलना के लिये देसिये-वीर० सर्ग १०.

१. वीरभद्रदेवचम्पू : प्रथम उच्छ्वास : श्लोक १८ :

भूमो-चक्रभूतोऽयं दुग्धलहरी-मुग्धा गुणधेणयो
मूर्त्त हाटक-कूट-रोषित-मल-स्वच्छा धनुः-काययः ।
गङ्गा-सङ्गत-शेक-शैल-शिशिराकारा यशोराशयो
भास्वद्-भासुरकाञ्चनाचल-दधः प्रीडाः प्रतापप्रभाः ॥’

यहीं पर दीर्घ गद्यरसक प्रशस्ति भी द्रष्टव्य है।

तथा पष्ठ उच्छ्वास : श्लोक २०. ‘वीरभद्रमरि-निग्रहोद्यतम् ।

श्लोक ३२ : ‘इमां सेनामस्व प्रबल-नर-भूमुद्-बलभिदः ।’

श्लोक ३५ : ‘श्री वीरभद्रभूतोऽनूनस्य ग्याग्रहे पार्यात् ।’

२. वही, सप्तम उच्छ्वास : अन्तिम श्लोक :

‘पायोधि वेलावधि-भूमिपाल-समपितानेक-कर-प्रकारान् ।

आदाय भूमिपति-रामचन्द्र-निर्देशतः स्वै भवने चकास्ति ॥’

३. वही, प्रथम उच्छ्वास :

‘श्रीवीरभद्रदेवस्याम्बवा यशोदया कतिवित् करटिनः

समुरगुष्टाः । तानदण्डप्राप्तान् दातुमयमुद्योगः... ।

स हि निज-जनन्या... सङ्कल्पितान् दग्तावलान्...’

दण्डकृतान् कर्तुं साम्प्रतं सोद्योगः ।’

४. वही, तृतीय उच्छ्वासः कामाशाप्रसाद कवि । तुलना के लिये देसिये—दरदागम का आरम्भ श्लोक ६ ।

प्रतीत होता है कि वीरभद्र को अवश्य ही इस युद्ध में भारी यश मिला था, क्योंकि इसी काल में लिखित अपने ग्रन्थ में उसने स्वयं ही अपने शौर्य का प्रमाद वर्णित किया है।^१ साथ ही शरदागम में भी पद्यनाम में वीरभद्र को युद्धप्रियता का उल्लेख किया है।^२

(६) वीरभद्रदेवचम्पू में प्राप्त साहित्य

वीरभद्रदेवचम्पू में जो गद्य प्राप्त है, उसे हम दो रूपों में देख सकते हैं, पहला विवरणात्मक और दूसरा काव्यात्मक। विवरणात्मक गद्य के पुनः दो भेद हो सकते हैं—पहला 'अप कदाचन', आदि शब्दों से प्रारम्भ होने वाला, किसी पद्य की भूमिका या पूरक के रूप में तथा दूसरा कथाविस्तार के लिये वर्णन के रूप में। कथा-विस्तार के लिये जिस गद्य का प्रयोग है, वह प्राञ्जल पदावली से युक्त होकर भी सरल, सुबोध, प्रबाहूपूर्ण, अल्प-समास-युक्त, प्रायः अतलङ्कित एवं लघु वाक्यों वाला है; उदाहरणार्थ—

'विभोपणः—तन्वि । नास्त्र वयमुद्देश्यः । अपि तु
केनविन्निमित्ते सागरावधि देवायां यात्राविधिः ।'

'तेषु मध्ये केचित् गत्रा ब्राह्मणेभ्यो न दत्ताः ।
तानदण्डशप्तान् दातुमयमुद्योगः ।'

'मन्दोदरो—किमस्यानि वीर-भानोरन्वयः ?

विभोपणः—तन्वि ! वीरभानोर्नतुभानोः ।

मन्दोदरो—कान्त ! किं भास्वतश्चन्द्रमसश्च परम्परातः सन्त्यग्येऽपि
राजानः ?'

यहाँ यह भी ध्यान देने की बात है कि संवाद प्रस्तुत कर कवि ने चम्पू में अभिनेयता का समावेश किया है और इनमें दृश्यकाव्यत्व प्रस्तुत कर दिया है। यहाँ तक कि कवि ने अभिनयात्मक निर्देश भी दिये हैं, जैसे—उस्मितम्, प्रकाशम्, बृहस्पतिः प्रविशति, आसन उपविशति आदि।

१. कन्दर्पचूडामणि : अ० १।१।१३-१४ :

'राजोचित-गुणसीमा भोमावरजादिहाधिको यनुपि ।
तनयो दिनप-समुद्रो जयति तरां वीरभद्रोऽस्य ॥
विद्यायां सुरगुरुर्व सौन्दर्ये पञ्चवागतोऽप्यधिकः ।
दाने कल्पतरोरयमुपमेयस्तेन केनेह ॥'

२. चन्द्रालोक की शरदागम टीका : बनारस : १९२९ : द्वितीय मण्डल की टीका का आरम्भ—'श्रीवीरभद्रदेवे दिद्यतु अयं सङ्ग-प्रकरे ।'

पदों की मुनिता-रूप में जो गद्य प्रयुक्त है, वे या तो अति संक्षिप्त हैं अथवा काव्यात्मक और दोष-समाप्त-युक्त हैं। पहले शैली में कहीं कहीं केवल 'अथ च' 'अथि च' 'अपरं च' 'कि च' आदि पद प्रयुक्त होकर पदों की संख्या बढ़ाये गये जाते हैं। इन्हीं निमित्त कहीं-कहीं 'अथि' या 'अथिं' आदि सम्बोधन भी उपयोग में लाए गए हैं और संगमालम्बिता समाधि-रूप की गई है—

अथि वा केनापि मुनयश्च-वक्रवर्तिना प्रतापहृदय-पितृस्य कुशातोः

अनुद प्रमथ-अपारिता

नीला काकोलनामाः... क्षुमपतिः ॥ ५ ॥

विभीषणः—अथि ! नैवमपि तु,

द्वेषमाहृत्कर धूलयः ॥ ६ ॥

मन्त्रोः—(सार्धं) अथि ! अथि ! सत्वरं प्रेष्यन्मानुषहाराम्नी चरेथ

धाम् सन्वात्यति ॥ ७ ॥

तथा—विभीषणः—अथि !

अथि नूनः ॥ ९ ॥

अथि च—

स्वकान्ति वृषभ ॥ १० ॥

कि च—सहस्रवक्रं मूढनाथः ॥ ११ ॥

अपरं च—रामेयु त्रिवु यतः ॥ १२ ॥ (७० १)

दूसरी विश्वरामात्मक शैली में कथा-विस्तार का लक्ष्य होते हुए भी प्रौढ-प्राञ्जल-मनोरम का प्रयोग है—

मन्त्रोः—दुरात्मालान्नाधिक-अशाल-वप्राण-भार्तृण्ड-साधिताराति-

राजन्वावरोध-वधुदुर्बोधना-असाधोऽस्य का राजधानी ?

विभीषणः—... .. साऽस्य पाण्डवापितु-

सायधर-दायधर-प्रयल-प्रतापस्य राजधानी ।

तथा—अथ कदाचन अत्यधि-पापित-सार्ध-कथयन्-

सार्धक-मनोरथस्य निरस्त-वपनाधिमात-कुतर्था-

करगालो कुत-कल्पतल्पसाधो विरोधि वधु-भान-

मोशनन्द-सन्धोह-कुन्द वपुमहः शोनती रामचन्द्रदेवस्य

तनुवपनः शोशीरमददेवस्य यागानां

कृत्कोत्यता दृष्टोरानोष मन्त्रोः विभीषणस्य लक्ष्मिभित्तेरुद्धे

निविहाऽपि सातदुमाह—

अथि ! किमिदमाकस्मिकं दिहृत्कृत्वालयमाक्रम्य

मूलोकावुत्थितं व्योमान्तरालमायुगोति मृतम् ? (७० १)

इस प्रकार इस चम्पू में चारों प्रकार के गद्यों—युक्तक (समास-रहित) युक्त-गन्धि (पद्यों से संस्पृष्ट), चूर्णक (अल्पसमास-युक्त) तथा उत्कलिका-प्राय (दीर्घ-समासयुक्त) को उपलब्धि होती है। चम्पू में दूसरा रूप काव्यात्मक गद्य का है, जिसमें उत्कलिका-प्राय शैली ही है। यहाँ कवि का लक्ष्य काव्य-प्रदर्शन है, कथा-विस्तार नहीं। यह शैली अलङ्कृत, दीर्घसमास-युक्त, प्राञ्जल पदावली से पूर्ण और स्पष्टतः कादम्बरी की अनुकृति है। उदाहरणार्थ—

‘अस्ति किल मुमेशरिष सुवर्णाश्रयो हिमाचल इव
परतंजोभिरसन्तापितो मन्दर इवाहितानेक-वाहिनीनाथः
शोभयन् पूर्वाक्षल इव भास्वद्भूः पश्चिमाद्रि-
रिवापित-परतेजोऽस्तमयः कैलास इव सन्निहित-
चन्द्रचूडो मलय इव भोगिकुलालम्बनं विन्ध्य
इवानेककारणः कल्पतरुरिव सन्तुष्टाश्रितो नारायण इव
वनमाला-वेष्टितः तस्य विषये दुर्गरत्नं वाग्यवः ।’^१ (उ० १)

स्पष्टतः : इस शैली में रमणीकता एवं हृद्यता है। उपमा और श्लेष के योग से प्रौढ़ का आकर्षक प्रदर्शन किया गया है। इस चम्पू में अनेक स्थलों पर ऐसे वर्णन हैं।

इसी प्रकार श्लेष का प्रयोग देखिये—

‘अयोध्या नगरी नित्यं प्रतिपन्ना निशाचरैः ।

तथापि रामचन्द्रोऽयं दशाननभिदः पर ॥’ (उ० १।८)

निम्नलिखित श्लोकों में उत्प्रेषा और व्युक्ति का सङ्कर द्रष्टव्य है—

‘विन्ध्याद्रिस्थाविव सन्निरुद्ध-

स्वात्मानमभ्यर्थनया महर्षेः ।

सम्प्रत्यवज्ञाय कुतोऽपि हेतो-

भूयः समुत्तिष्ठति सम्भ्रमेण ॥

आक्रम्याशावकाशान्निखिल-स्रगती रंहसा सन्निरुद्ध्य

ज्योतिः प्रच्छाद्य भानोरति-विपुल-जगरक्रोड-विश्रान्त-मानोः ।

शायोराच्छिद्य यात्राः सकल-तनुभृतां चक्षुराकृष्य दूराद्

भूयोऽप्यावृत्त्य भूमौतलमखिलमसावम्बरं संवृणोति ॥’^२

१. तुलना के लिये देखिये : कादम्बरी-पूर्वभाग : विन्ध्याटवी-वर्णन—

‘अस्ति पूर्वापरजलनिधिवेला-वनलग्ना विन्ध्याटवी नाम ।’

२. उ० १।३-४ ।

उपमा और श्लेष का सुन्दर संयोग गहोरा राजधानी के वर्णन में देखिये ।
यहाँ कवि की भाषा ललित हो उठी है—

कादम्बिनीव दलिताखिल-लोकतापा
कात्यायनीव रिपुवर्ग-भयानभिज्ञा ।
या पूर्व-पर्वत-शिखेव करावदान-
मित्रोदय-प्रणयिनी सततं विभाति ॥^१

उपर्युक्त उद्धरणों एवं विवरणों से तथा वीरभद्रदेवचम्पू के प्रत्यक्ष दर्शन से प्रतीत होगा कि जिस पद्यनाम की प्रतिभा दर्शन के क्षेत्र में शुष्क-शीघ्र तकों के प्रभावी प्रयोग में अव्यर्थ रहो है, उसी कवि की कल्पना एवं शब्द-शक्ति ने काव्य के क्षेत्र में भी रससिद्धि प्रदर्शित की है । मध्य युग के कवियों की प्रथम पंक्ति से पद्यनाम को नीचे नहीं लाया जा सकता ।

वीरभद्रदेवचम्पू मूलतः वीर रस-प्रधान रचना है । यह वीर रस प्रमुख रूप से पद्यों में निष्पन्न हुआ है । इन पद्यों में अोज गुण, पद्या वृत्ति और गौडो रीति वीर रस के अनुकूल ही प्रयुक्त हुई है । ऐसे स्थलों पर शब्द-लङ्कारों के सुन्दर प्रयोग हुए हैं, किन्तु उपमा और उत्प्रेक्षा आदि अर्पालङ्कार भी उपलब्ध हैं । वीरभद्रदेव के सैन्य-नागर में सम्मिलित होने वाले अोजस्वी शत्रुओं के कुछ चित्र देखिये—

'अटत्-कटक-घोटकोद्भट-सुराप्र-टङ्क-भ्रुटत्-
प्रभूत-घरणो-रजो-निचय-रुद्ध-मास्वत्कराः ।
समापनुररिबज-द्विरदयूय-कुम्भस्वलो-
कपाट-पट्ट-पाटन-प्रहित-सायकाः शीचराः ॥
दंष्ट्रा-दघाघरोष्ठा मृकुटि-कुटिलता-भोम-लालाट-पट्टाः
कोदण्डाकृष्टि-सक्त्रोद्भट-करटि-करोद्दृष्ट-दोर्दण्ड-षण्डाः ।
आयाता वात-वेगायत-गति-वित्रितान् योगि-चित्त-प्रचारा-
नस्वानाहृद्य वश्य-प्रतिभट-कटका धौतयानाः किकानाः ॥
प्रत्यधि-प्रयण-प्रौढ़-प्रताप-परिशीलिताः ।
प्रभुं पुत्रनया प्राप्ताः परिहाराः प्रहारिणः ॥^२

वीरभद्र की रणवाहिनी द्वारा उड़ाई हुई घूलों से अस्त मन्दोदरी विभीषण को उपहार भेजने का परामर्श दे रही है, अन्यथा घूलों से ही समुद्र में सेतु बन

१. उ० १।१५ ।

२. वीरभद्रदेव-चम्पू : पद्य उच्छ्वास : श्लोक २१, २५, ४२ ।
१६ व०

जायगा और बीरभद्र के द्वारा रात्रुओं के मरतक रणदेवता को अर्पित कर दिये जायेंगे—

‘वावद्-घोटक-कोटि-टाप दलितैर्भूवङ्ग-धूलोभरे-
 र्यदध्ना सेतुमिहापरं जन्निघावावृत्य लङ्कापुरीम् ।
 स्फुग्जत्कामुङ्क-निस्सरस्पररतैरिष्ठत्वा शिरो विट्टिपां
 सङ्ग्रामाङ्ग-शेवताः प्रति बलोनामासु सङ्घास्यति ॥’^१

कीर्ति वर्णन के प्रसङ्ग में कवि ने कोमल-कान्त-पदावली का प्रयोग कर अत्युक्ति प्रदर्शित की है—

‘सहस्र-धवलमच्छं भाग्य-वालेन्दु-शोभा-
 दपि च विमल-कान्ति स्वर्णुनी-वारि-पूरः ।
 निज-वपुरमूतामं निग्विजतं मस्य कीर्त्या
 धवलयति नितान्तं भस्मना भूतनाथः ॥’^२

७. चम्पू-साहित्य की परम्परा

डा० ब्रजेश्वर वर्मा का कथन है कि ‘कव्य की इस विधा (चम्पू) का उल्लेख साहित्य-शास्त्र के प्राचीन आचार्यों, भामह, दण्डी, वामन आदि ने नहीं किया ।..... चम्पू नाम के प्रकृत काव्य की रचना दसवीं शती के पहले नहीं हुई ।.....यह काव्य-रूप अधिक लोकप्रिय नहीं हो सका और न काव्य-शास्त्र में इसकी अधिक मान्यता हुई ।’^३

आगे चल कर श्री वर्मा स्वयं लिखते हैं कि” ‘दण्डी (सातवीं शती) ने.....मिथ (गद्य-पद्य समन्वित काव्य) के नाटकादि और धम्म्य-मिथ चम्पू का उल्लेख किया है’^४ इस प्रकार श्री वर्मा स्वयं अपने कथन के विपरीत चले जाते हैं। हम इतना ही कहना चाहते हैं कि दण्डी द्वारा चम्पू-प्रभेद का उल्लेख ही यह प्रमाणित कर देता है कि अन्य लघुकाव्यों की भाँति चम्पू की रचनाएँ भी प्राचीन हैं, यद्यपि उस काल का बहुत कुछ साहित्य नष्ट हो जाने से उपलब्ध नहीं है। साहित्य शास्त्रों में नाटक और महाकाव्य जैसे महा-प्रबन्धों की ही विशेष चर्चा हुई है तथा उनके लक्षणों पर अत्यन्त सूक्ष्मता

१. वही : प्रथम उ० : श्लोक ७ ।

२. वही, प्र० उ० : श्लोक ११ ।

३. हिन्दी साहित्य-कोश (भाग १) : संवत् २०१५ : पृ० २८५ : ‘चम्पू’ ।

४. वही : पृ० ८४९ : “साहित्य-रूप” तथा काव्यादर्शः १।३१ ‘गद्य-पद्यमयी काव्य-चम्पूरित्यभिधीयते ।’

से दिवार हुआ है। लघुकाव्यों पर उत्तरी सूक्ष्मता से विचार न होना स्वामिक और अपेक्षित ही है। मनो लघु-प्रबन्धों को और कवियों और शास्त्रकारों ने कम ध्यान दिया है। वही बात चम्पू के साथ है।

यह होते हुए भी आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक के टीकाकार अग्निव गुप्त ने^१ तथा पीछे ह्येनचन्द्र^२ और विश्वनाथ ने^३ चम्पू-प्रभेद के उल्लेख किये हैं।

अन्य लघु-प्रबन्धों की भाँति चम्पू में भी छन्द की व्याख्या के अनुसार चतुर्वर्ग में से एक वर्ग को निश्चि की जाती है तथा वह एक रस का ही परिपोष करता है।^४ यह रस प्रायः शृङ्गार या वीर होता है।

इन प्रकार निम्न चम्पू-ग्रन्थों की परम्परा के सम्बन्ध में कुछ जानकारी है। त्रिविक्रम-वृत्त नलचम्पू की रचना दशवीं शती के आरम्भ में हुई। मोजराज ने ११ वीं शती में चम्पू-रामायण की रचना की। ह्येनचन्द्र ने १२ वीं शती के अपने ग्रन्थ काव्यानुशासन में ज्ञानवदता-चम्पू की उदाहरण के रूप में उल्लिखित किया है। इसके अतिरिक्त सोमदेव मूरि का यशस्तिलक, कर्णपुर का आनन्द-वृन्दावन, जीव गोस्वामी का गोपालचम्पू, अनन्द का चम्पू-भारत तथा उत्तर चम्पू-रामायण, मदालसा, नौठकण्ठ, देगराज-चरित और वीरभद्रदेव-चरित आदि चम्पूकाव्यों के उदाहरण हैं। इनके अतिरिक्त अनेक चम्पू-ग्रन्थों की रचनाएँ हुई हैं।

लौकिक पद्धति के प्रशान्ति-परक चम्पूकाव्यों में प्रायः किसी युद्ध को लक्ष्य बना कर वीर-रस-प्रधान रचना की जाती है। बीच बीच में शृङ्गार, हास्य, रौद्र, मयानक, अद्भुत आदि रसों के स्पर्श करने वाले कथोत्थ मुक्तकों का गुम्फन किया जाता है। पौराणिक कथाओं पर आधारित अनुत्थाय कोटि के चम्पू प्रायः शृङ्गार-प्रधान पाये जाते हैं और कथा के किसी विशिष्ट अङ्ग की पृथि को लक्षित कर काव्यात्मक उद्भावनाओं से युक्त सामग्री प्रस्तुत करते हैं।

प्रायः समस्त चम्पू-काव्यों की शैली पाण्डित्य-प्रदर्शन की शैली होती है। इनमें दोष-समाप्त-युक्त, श्लेष-प्रवण, अनेकार्थक और जटिल पदावली के प्रयोग पाए जाते हैं। कथा का प्रवाह मन्द पड़ जाता है और कवि चमत्कार-प्रदर्शन

१. उद्योत ३ कारिका ७ : लोचन-टीका : 'आदि-ग्रहणाच्चम्पूः ।'^१

२. काव्यानुशासन : काव्यमाला ७० : बंबई : १९०१ : पृ० ३४०
'गद्यपद्ययो साङ्गा सोच्छ्वासा चम्पूः । यथा-वासवदत्ता ।'

३. साहित्यदर्पण : निर्णयभाणर : बंबई : १९३१ : परि० ६।३३६ :
'गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते ।'

४. काव्यालङ्कार : काव्यमाला २ : बंबई : १९२८ अध्याय १६।६ ।

में उल्लिखित जाता है। यही बात वीरभद्रदेव-धम्पू में प्राप्त है। यह लौकिक पदति का प्रशस्ति-परक ग्रन्थ है।

धम्पू काव्यों के लिखने की जो प्रवृत्ति सामान्यतः परिलक्षित होती है, उसी का परिणाम वीरभद्रदेव-धम्पू का प्रणयन है। इसकी पदावली और पाण्डित्यपूर्ण धमरकृति तुलनात्मक दृष्टि से घट कर नहीं है। अपनी १५ (या १६) कृतियों में से केवल इसी में पद्यानाम ने काव्यकला का प्रयोग किया है। पद्यानाम की भाषा सशक्त और प्राञ्जल है, उसकी कल्पनाएँ और सूत्र आकर्षक हैं, उसकी पद्ययोजना और अलङ्कृति प्रभावोत्पादक है। अतः यह काव्य धम्पू-काव्यों के बीच महत्वपूर्ण है, साथ ही बघेलखण्ड के काव्यों में यह प्रथम श्रेणी में गिना जायगा।

(ख) विश्वनाथसिंह की कृतियाँ :

सङ्गीत रघुनन्दनम् और रामचन्द्राद्विकम्

१. पाण्डुलिपियों से सम्बद्ध जानकारी।

सङ्गीत-रघुनन्दनम्—

सरस्वती-कोप-भाण्डार, रोवा में इस ग्रन्थ की ३ प्रतियाँ उपलब्ध हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है—

(१) पत्रा ६१—सम्पूर्ण (बस्ता १५४ स्टाक १३।१) :

टीका के अन्त में—'पीप सुदी शुक्ले त्रिषि पीर्णमास्यां बुधवासरे समाप्तम्' है।

(२) पत्रा ६१—सम्पूर्ण (बस्ता १५४।१३।२)।

(३) पत्रा ५९—सम्पूर्ण (बस्ता १५४।१३।३)।

(४) पत्रा ४८—प्रारम्भ के दो पत्रा लुप्त (बस्ता १५४।१३।४)।

टीका के अन्त में 'माघ सुदि ७ संवत् १८९२ के साल' लिखा है।

(५) प्रारम्भ के २१ पत्रा, सङ्कट प्रति (बस्ता १५४।१४।१)।

(६) अन्तिम १४ पत्रा, सङ्कट प्रति (बस्ता ६।७३)।

प्रथम सर्ग के अंत में मूल में 'महाराजकुमार बाबू साहेब' शब्द हैं। इन सभी प्रतियों में मूल की पुष्पिकाओं में 'महाराजकुमार' और कहीं-कहीं 'बाबू साहेब' शब्द होने से यह निश्चित है कि ग्रन्थ का प्रणयन राजकुमार विश्वनाथसिंह ने किया। प्रारम्भ में प्राप्त यह श्लोक भी इस बात को प्रमाणित करता है—

'विन्धे रिपु-गज-सिंहो जयसिंहो राजसिंहोऽस्ति ।

; वनूते तस्य वनूजो ग्रन्थं सङ्गीत-रघुनन्दनाख्यम् ॥'

इस प्रकार ग्रन्थ का रचनाकाल सं० १८९१ (१८३४ ई०) से पूर्व होना चाहिये ।

समस्त पाण्डुलिपियाँ टीका-सहित हैं । प्रथम प्रति में टीका के अन्त की पुष्टिका इस प्रकार है—

‘इति सिद्धि-श्रीमन्महाराजाविराज-श्रीमहाराजा-बहादुर-सौतारामचन्द्रकृपा-
पात्राधिकारि-श्रीविश्वनाथविह्वेक-कृपायां व्यङ्ग्यार्थचन्द्रिका-नाम्नि टीकायां
पोड्याः सर्गः :

राम-प्रेम-चमत्कार-प्रमोदाय महात्मनानु ।

विन्ध्येश-विश्वनाथेन कृता व्यङ्ग्यार्थचन्द्रिका ।’

यह पुष्टिका स्पष्ट करती है कि ग्रन्थ की टीका स्वयं विश्वनाथमिह ने महाराज होने (१८६१ वि०-१८३४ ई०) के पश्चात् लिखी और उसका नाम व्यङ्ग्यार्थ-चन्द्रिका’ रखा ।

भाष्यार को उपर्युक्त शीर्षी प्रति में लिखिकाल ‘माघ सुदि ७ सं० १८९२’ प्राप्त है । प्रथम प्रति में संवत् नहीं है, केवल पौष-पूणिमा का निर्देश है, किन्तु माघ में ‘समाप्तम्’ शब्द है । यह टीका की समाप्ति की तिथि (पौष १८९२ वि० १८३५ ई०) प्रतीत होती है । अतः यह मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिये कि १८३५ ई० में टीका लिखी गई ।

आने ने अपनी सूची में सङ्गीतरघुनन्दन की एक प्रति की जानकारी दी है और लिखा है कि “विश्वनाथ किन्हीं सौदारामचन्द्र बहादुर के अधिकारी थे ।” (यह श्रान्ति शः सौदारामचन्द्र-कृपापात्राधिकारी’ शब्दों के भक्तिपूर्वक उल्लेख में अनिष्ट है ।)

हृदयनाथ शान्धी ने बंगाल की रायल एशियाटिक सोसायटी में सङ्गीतरघुनन्दन की एक प्रति का होना सूचित किया है, जिसका लिपिकाल १९३७ वि० (१८८० ई०) है । आपने इसे त्रिपादात्म-वृत्त माना,^२ जिसका आधार सङ्गीतरघुनन्दन का मुग त्रिपादात्म को वन्दना में लिखित यह श्लोक है—

‘अथति सच्चिदानन्द-धन-वरद-वर-सर्वगुण-

शालि-शृङ्गार-रस-माल-मूर्तिः ।

सर्व-जन-वरसलः प्रविगलित-मत्सरः

प्रेम-भाषोवि-मूढार्थ-पूतिः ॥

१. आने० भाग १ पृ० ५८५ ।

२. ए डेन के० : जिल्द ७ : क्र० ५२५६ ।

उर्वमत्-सर्वमत्-सर्ववन्दितवरण-

सर्वशरणागतोद्घृत-विहारी ।

गुरुरूप-रघुवरः श्री प्रियादास इह

विश्वनाथान्तर-गीतकारो ॥'

अन्तिम पंक्ति के आधार पर हरदत्तशर्मा ने भी पहले लिखा कि विश्वनाथ सिंह के आशय में किन्हीं प्रियादास ने यह ग्रन्थ लिखा, यद्यपि पुष्पिका देखने से यह विश्वनाथसिंह की ही रचना प्रतीत होती है।^१ कृष्णमाचारियर को भी हरदत्त शर्मा के इस लेख के आधार पर भ्रान्ति हुई।^२ पीछे अन्य लेख में हरदत्तशर्मा ने सङ्गीतरघुनन्दन की प्रथम और चौदश सर्गों की पुष्पिकाओं के सल्लेख किये (जिनकी चर्चा हरप्रसाद शास्त्री ने की थी) और चर्चा प्रस्तुत कर लिखा कि 'विश्वनाथसिंह निम्न स्तर के कवि नहीं प्रतीत होते, अतः (उपर्युक्त श्लोक के आधार पर) यह आवश्यक और संकल्पमत नहीं होगा कि सङ्गीतरघुनन्दन का कर्ता विश्वनाथसिंह को न मान कर प्रियादास को माना जाय।'^३ श्री चिन्ताहरण चक्रवर्ती और श्री पी० के० गोडे ने रामचन्द्राह्निक के साथ साथ इस ग्रन्थ की चर्चा कर दोनों के प्रणेता विश्वनाथसिंह को ही माना है। श्री गोडे ने यह भी लिखा है कि 'लोडर' (इलाहाबाद) में १५ मई, १९४० ई० को प्रकाशित समाचार के अनुसार श्री चिन्ताहरण चक्रवर्ती ने ६ मई, १९४० ई० की एक सभा में रायल एशियाटिक सोसायटी, बंगाल से प्राप्त उन्नीसवीं शती की पाण्डुलिपियों में से ४ ग्रन्थ प्रदर्शित किये थे, जो सभी महा-राज विश्वनाथसिंह के संस्कृत ग्रन्थ थे —

१. रामचन्द्राह्निकम् (२ प्रतियां),
२. राभमन्त्रार्थ निर्णयः (बंगला लिपि—सं० १९०७),
३. राधावल्लभीय-मत-प्रकाशक-ब्रह्मसूत्र-भाष्य (लिपि० सं० १९००) तथा ।

४. सङ्गीतरघुनन्दनम् (१९३७ वि०)।^४

श्री राघवन नैम्बियार ने "सङ्गीत-रघुनन्दनम् सव्याख्यम्" नाम से

१. 'वाघेल कूलसं ०' ।

२. हि० बला० सं० लिट्-पु० ८५० परि० १००० ।

३. 'दि वैष्णव फिलासफर प्रियादास ऐण्ड हिज ववर्स' : इ० हि० : भाग १९ : १९४० : पृ० ३१८-१९ ।

४. 'संस्कृत ववर्स०' : पृ० ४४५-५६ तथा पी० के गोडे : 'संस्कृत ऐण्ड हिन्दी ववर्स०' ।

बड़ोदा में एक प्रति होने का उल्लेख किया है। यह विश्वनाथसिंह द्वारा रचित है और व्याख्या का नाम 'व्यङ्ग्यार्थ-चन्द्रिका' है^१। कृष्णमाचारियर ने सङ्गीत-रधुनन्दन की ३ पाण्डुलिपियों की सूचना दी है।^२ इस प्रकार इस ग्रन्थ की लोकप्रियता सूचित होती है।

रामचन्द्राह्निकम्—

सरस्वती-कोप-भाण्डार रोवा में इस ग्रन्थ की एक सम्पूर्ण पाण्डुलिपि सुरक्षित है। इसमें ५१ पन्ना हैं।^३ रामवन (जिला सतना) में भी ५० पन्ना की एक सम्पूर्ण प्रति है।^४

आफ़े ने रामचन्द्राह्निक की दो प्रतियों की जानकारी दी है।^५ हरप्रसाद शास्त्री ने संस्कृत-ग्रन्थों की सूची में इस ग्रन्थ की २ प्रतियों के उल्लेख किये हैं।^६ कृष्णमाचारियर ने इस ग्रन्थ का अनेकशः उल्लेख किया है।^७ विन्ताहरण चक्रवर्ती^८ और पी. के. गोटे^९ ने इस काव्य की चर्चा की है। अतः यह भी लोकप्रिय रचना मानी जा सकती है। समस्त प्रतियाँ टीका-सहित हैं।

१. ऐन अल्फावेटिकल लिस्ट आफ् मैन्युस्क्रिप्ट्स इन दि ओरिएण्टल इंस्टीट्यूट आफ् बड़ोदा: भाग २ : १९५० : पृ० १०५०; ग्रन्थ क्र० ८२५।१३०८१।
२. हि० बला० सं० लिट्० पृ० ८५१—१. कैटेलाग आफ् संस्कृत मैन्यु-स्क्रिप्ट्स इन अडियार लाइब्रेरी: भाग २।४५ : १२. कैटे० अवध० भाग ५।१८। पृ० ३४४ : कैटे० अलवर०९८०।
देखिये परिच्छेद २९८, ८८०, १००१।
३. बस्ता १३६।५१।१।
४. तुलसी-संग्रहालय, ग्रन्थ क्र० २८०९।
५. मित्रा० भाग १।७३। इस प्रति की प्राप्ति बनारस के बाबू हरिश्चन्द्र के यहाँ से हुई थी। इसका नाम रामचन्द्रचम्पू है। अन्तिम पुष्पिका-रामचन्द्राह्निक-टीकायामष्टमो यामः।' अर्थात् इसमें अध्यायों के नाम याम हैं, जिनकी संख्या ८ है। इस पुष्पिका में लिपिक की भूल से 'विश्वनाथसिंह-जूबेव' के स्थान पर 'विश्वनाथसिंह भूदेव' लिखा है। तथा कैटे० अलवर० क्र० ९६२ : 'रामचन्द्राह्निकम्'।
६. ए० डेल्० के० : क्र० ५२५५ और ५२५६।
७. हि० बला० सं० लिट्० परि० ५४१, ९६२, १०००, १०६४।
८. 'संस्कृत वचसं०'।
९. 'संस्कृत ऐंड हिन्दी वचसं०'।

ग्रन्थ का मूल और उसकी टीका दोनों ही 'महाराज-विश्वनाथसिंह-कृत' हैं। प्रथम याम के अन्त में पुष्पिका इस प्रकार है—

मूल—'इति सिद्धिथो महाराजाधिराजा-धोरामचन्द्राह्निक-
पिकादि-थो विश्वनाथसिंहजुदेव-विरचिते धोरामचन्द्राह्निके प्रथमो
यामः ।'

टीका—'इति थो.....विश्वनाथसिंहजुदेव-विरचितायां.....
रामचन्द्राह्निक-टीकायां..... ।'

अर्थात् टीका का कोई नाम नहीं रखा गया है ।'

रोका की प्रति में अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है—

'इति थोमहाराजा०....रामचन्द्राह्निके टीकायां अष्टमोऽध्यायः ।'

प्रकार प्रतीत होता है कि किसी लिपिक ने 'याम' में अष्ट किया है और किसी ने 'अध्याय' में। आह्निक में वास्तव में धोराम की दिनचर्या यामों (प्रहरों) में विभाजित की गई है। अतः 'याम' शब्द ही उपयुक्त है।

ग्रन्थ का रचनाकाल कहीं सूचित नहीं है। प्रतीत होता है कि सङ्गीत-रघुनन्दन की टीका (१८३५ ई०) पूरी करने के पश्चात् धोराम में शृङ्गारी रूप के चित्रण की अधिक लालसा से महाराज ने इस रामचन्द्राह्निक ग्रन्थ का निर्माण किया और स्वयं टीका लिखी। अतः इन दोनों की सृष्टि १८३५ से १८५४ ई० के बीच की गई।

टीका के आरम्भ में निम्नलिखित श्लोक है—

'शिष्याणां रघुनन्दने परतर-स्नेहस्य संसिद्धये

सिद्धिथो-जयसिंहदेव-सनय-थो विश्वनाथास्पतः ।

वर्ण्यः संसृति-मीढभिर्गुरुवैर्षम्यो गरीयानसो,

प्रभ्यवतीक्रियतेऽधुना प्रकटितः धोरामचन्द्राह्निकः ॥'^२

इस श्लोक में भी विश्वनाथ के मुख से गुरुचरण (प्रियादास) ही रामचन्द्राह्निक को स्पष्ट कर रहे हैं, 'जैसे कि सङ्गीत-रघुनन्दन में पीछे निर्दिष्ट श्लोक में विश्वनाथ के अन्तःकरण में प्रविष्ट गुरु प्रियादास ने शीत लिखे हैं। यह कवि का विनम्र शिष्टाचार है कि वह अपने कृतित्व का श्रेय गुरुचरणों को देना चाहता है। प्रियादास ने भी अपनी कृतियों का श्रेय अपने गुरु को दिया है।'^३

१. रामवन की प्रति : पृष्ठ १३ ।

२. वही , पृ० ७.

३. सुसिद्धान्तोत्तम, भक्तिप्रभा आदि सभी ग्रन्थों में ।

२. कथातत्त्व : (अ) सङ्गीतरघुनन्दनम्

सङ्गीत-रघुनन्दन को गीतगोविन्द की शैली की पूर्णतः अनुकृति कहा जा सकता है। यह भी १६ सर्गों में विभाजित है। कथा का तत्त्व अवश्य ही रामकथा पर आधारित, अतः मौलिक है। इसमें श्रीराम को रास-रसिक^१ और सीता को रासेश्वरी^२ रूप में चित्रित किया गया है। कथानक का स्थल जयोध्या का राजमचन-और सरयूतट, विषय रासक्रीड़ा और काल श्रीराम का राज्य-काल है। इसमें श्रीराम का निरान्त व्यक्तिगत आनन्दमय जीवन चित्रित है, जिसमें पात्र केवल राम और सीता हैं तथा सखियाँ सहायिकाओं के रूप में हैं। कथानक पर श्रीमद्भागवत के रासवर्णन की भी छाया है। सर्ग छोटे छोटे हैं।

प्रथम सर्ग में वन्दना और मङ्गलाचरण है, जिसमें दशवतार और अन्य अवतारों की भी वन्दनाएँ गीतगोविन्द को भाँति हैं।

द्वितीय सर्ग में ३ गीतों में गृह-रास-वर्णन है। इसमें सीता का स्वाधीन-पतिका भाव चित्रित है। कोई सखी रास-नृत्य का वर्णन करती है।^३

तृतीय सर्ग में गद्य के प्रयोग से वसन्त ऋतु को चित्रित कर वसन्त रास के अन्तर्गत नृत्य प्रस्तुत किया गया है। श्रीराम भी नृत्य करते हैं।^४

चतुर्थ सर्ग में सीता अन्तर्धान होकर राम के विरह में गीत गाती है। राम की प्रेरणा से कामा और वसन्तिका सखियाँ रत्नाद्रि-कुञ्ज में सीता को ढूँढ़ कर राम का गुणगान सुनाती हैं।

पञ्चम सर्ग में कामा के उबड़ गीत से प्रभावित जानकी की व्यथा को देखकर सखियों की परस्पर वार्ता का वर्णन है।

षष्ठ सर्ग में कमला सखी चारुशोला से सीता की विरह-व्यथा को स्पष्ट करती हुई उसे राम को बुलाने की भोजती है। राम सीता के पास आ जाते हैं।

१. सर्ग १।७ : टीका-‘श्रीराम-रास-रसिक-विनोदाय विधीयते।’

२. वही, १।२ : ‘श्वेषामपि कामदो रघुपतिस्तस्यापि या कामदा,
सा सीता नयतां मदोय भगिति रासेश्वरी चारुताम् ॥’

३. सर्ग २।३ : गायति काचन नृत्यति काचन रमयति काचन रामम् ।
काचि च नटयति काचि च रटयति काचि च घटयति कामम् ॥
रमणोमण्डलमिह कुण्डलितं नृत्यति गति-सङ्गीतम् ।
गायति सरति सीतया साकं श्रीरामो रस-गीतम् ॥’

४. सर्ग ३ : ‘ताव ताव-सत्यद्-तत्पद्-पद्-निनदापूरित-श्रावम् ।
श्रीणा-नाद सुसङ्गत-सिञ्चितमधिक-व्यञ्जित-भावम् ॥’

सप्तम सर्ग में राम सीता को मनाते हैं । उनके दो गीत यहाँ प्रस्तुत किये गये हैं । सीता आँसों खोसती है । सीता और राम का समागम होता है ।^१

अष्टम सर्ग में सीता-राम का मिलन देखकर सखियों गीत गाती हैं । राम सीता का गूँझार करते हैं ।

नवम सर्ग में एक मदन में जाकर सीता और राम परस्पर भूला झुलावे हैं ।^२ सखी गीत गाती हैं ।

दशम सर्ग में सीता और सखियों को लेकर राम सरयू तट पर विहार करने जाते हैं । यहाँ सखी राम की सर्वाङ्ग शोभा का वर्णन करती हैं ।

एकादश सर्ग में मन्थी पति के माप क्रीड़ा करती हुई सीता का वर्णन करती हैं । यहीं पर रासक्रीड़ा होती है । राम गीत गाते हैं तथा सीता और राम नृत्य करते हैं । यह वाक्य का सर्वोत्कृष्ट अंग है ।^३ यहाँ भागवत की छाया है ।

द्वादश सर्ग में भागवत की रास-क्रीड़ा का अनुसरण आगे बढ़ता है । सखियों के गर्व को दूर करने के लिये राम अन्तर्हित हो जाते हैं । सखियों का विरह-वर्णन प्रभावी है ।^४

त्रयोदश सर्ग में राम प्रकट होते हैं । सखियों की संयोग-वैष्टाभों का कवि वर्णन करता है । राम सीता से सरयू का वर्णन करते हैं ।

चतुर्दश सर्ग में जलक्रीड़ा का वर्णन है । सरयूतट पर विहार होता है । सीता और राम सिंहासन पर बैठ कर परस्पर रसानुभव करते हैं ।

पञ्चदश सर्ग में सबके साथ राम राजभवन लौट आते हैं । प्रान्क्षण में

१. 'निमिराज-मुखा विविन्तयन्ती रमणं रास-परायणं हृदन्ने ।

समवाप्य सुमालिका-गुणान्पि सहज-स्नेह-समाकुलाऽऽलिलिङ्ग ॥'

२. 'परस्परान्दोलन-हर्ष-विह्वली परस्पर-प्रेम-रसानुसारिणी ।

परस्परालोकन-कौतुकान्विदावुभौ समालोष्य जगद काचन ॥'

३. 'प्रकाश्य परमानन्दं परमानन्द-विप्रहृः ।

रामो रमयते रामां रास-सङ्गीत-नर्तने : ॥'

४. 'नृत्यन्ती रासमध्ये निजगुण-गुह्यता-गर्वं सम्भार-भाजः

प्रेयांसं प्रीयमाणं स्ववशमुपगतं निर्भरं मग्यमानाः ।

रामा रामोऽवलोचयामिमतिमुपचितां हर्तुकामस्तदानीं

तासामन्तर्हितोऽभूत्प्रियतम विरह-व्याकुलास्ता द्विवेदः ॥'

तथा 'पुञ्छन्ति स्म श्रुता-तस्मू'..... ।'

रासलीला होती है। यहाँ काव्य समाप्त हो जाता है। अन्त में तीन पृष्ठों में समस्त सखियों की सूची दी गई है।

योद्धा सर्ग में साम्प्रदायिक उपासना प्रदर्शित की गई है। मीराजन^१ एवं भावपूर्ण पद्य और मद्यगीत के साथ कवि ग्रन्थ का उपसंहार करता है।

सर्वत्र विस्तृत टीका प्रस्तुत कर भाव स्पष्ट किये गए हैं।

इस काव्य में प्रयुक्त गद्य गीतात्मक और अत्यल्प है। अतः यह खण्ड-काव्य ही माना गया है। शैली की दृष्टि से यह मधुर शोचि-काव्य है। गीतों और नृत्यों से पूर्ण होने से यह नाट्य गीति माना जा सकता है।

रामचन्द्राह्निकम्—इस ग्रन्थ में श्री श्रीराम और सीता ही प्रमुख पात्र हैं तथापि इसमें श्रीराम का सामाजिक जीवन चित्रित है। इसमें श्रीराम का राजकुमार अवस्था में विवाहोत्तर जीवन अङ्कित हुआ है। वैभव और विलास के बीच, राज्य-भार से मुक्त श्रीराम एक दिव्य, आनन्दमय, निश्चिन्त तपण-जीवन बिता रहे हैं।

श्रीराम की दिनचर्या आठ यामों में विभाजित कर उनके आह्निक^१ का सविस्तर वर्णन प्रस्तुत किया गया है। तूर्यनाद आदि के द्वारा याम बोलने की सूचना दी जाती है।

प्रथम याम में अक्षय-भात्र में स्थित श्रीराम को प्रभात-काल में बन्दो-जन जगाते हैं। सखाओं से मिल कर श्रीराम स्नान करते हैं। उनका शृङ्गार होता है। सीता आकर श्रीराम का पूजन करती है। विहासन पर सीता और श्रीराम अधिष्ठित होते हैं। सखियाँ आरती चतार कर शीत-नृत्य प्रस्तुत करती हैं।

द्वितीय याम अधिक विवरणात्मक है। श्रीराम बाहर सभाभवन में जाते हैं और ऊमिला आदि के साथ सीता सारों की सेवा करने जाते हैं। सभा-भवन में भरत आदि श्रीराम का षोडशोपचार पूजन करते हैं। श्रीराम कौतुक देखते हैं, मजारोहण और अश्वारोहण करते हैं तथा लक्ष्मीनिधि आदि के साथ नगर मार्गों से निकलते हैं। राजा-वर्षण होता है। श्रीराम दशरथ के भवन में जाते हैं। पिता का वात्सल्य-लाभ कर वे मातृदर्शन करते हैं। वहाँ भोजन कर शीत-नृत्य देखते हैं। पुनः वे पिता के साथ भोजन करते हैं। यहाँ तक सखा साथ में रहते हैं। फिर श्रीराम हाथी पर चढ़ कर अपने भवन आते हैं और निद्रा लेते हैं। द्वितीय याम की क्लारिका होती है। श्रीराम को जगा-कर, बतलाया जाता है कि श्याम ने महिष को वन में मारा है।

१. विश्वनाथसिंह की टीका : 'अह्नः निर्वृत्तं कर्म आह्निकम्।'

तृतीय याम में श्रीराम मृगया के लिये जाते हैं। यहाँ मृगया की तैयारी, राजपथ से निकलने, पौरों की चर्चा, वन-प्रवेश, व्याघ्रायरोध, व्याघ्र, और अन्य जन्तुओं के वध तथा तालाब में मत्स्यवध आदि का विस्तृत वर्णन है।

कौशल्या की सेवा कर सीता लौटती है और श्रीराम को मृगयार्थ गए हुए पाकर बधीर हो जाती है। वे सखी को श्रीराम को बुलाने को भेजती है। श्रीराम मृगया से उत्साहित होकर जल में तैर रहे हैं। वे दूती की बात नहीं सुनते। सखा के समझाने से श्रीराम लौटना स्वीकार करते हैं। दूती लौटकर सीता को बतलाती है। सीता लौटते हुए श्रीराम को सीधे शिखर से देखती है। श्रीराम और सीता मिलते हैं और वार्ता करते हैं। इस समय सहजा सखी प्रणयकोप से श्रीराम पर व्यङ्ग्य कर मानवती होकर चली जाती है।

चतुर्थ याम में श्रीराम प्रमदवन में विहारार्थ जाते हैं। सखियाँ वसन्त का आगमन सूचित कर होली खेलने का प्रस्ताव रखती हैं, किन्तु सहजा की अनुपस्थिति में श्रीराम नहीं खेलेंगे, इस पर वे ताने कसती हैं। श्रीराम सहजा का पता लगाते हैं।

पञ्चम याम में श्रीराम होली खेलने की तैयारी का आदेश देकर सहजा के भवन को जाते हैं। उसे मना लाते हैं। खेल की सामग्री जुटती है और सखियाँ खेल आरम्भ कर देती हैं।

षष्ठ याम में होला-खेल का सविस्तर वर्णन है। बीच-बीच में नायिका-भेद, मान करना, मनाना आदि है। अर्द्धरात्रि की झल्लरिका सुनकर होला-खेल बन्द होता है। श्रीराम सिंहासन पर विराजते हैं। वाम भाग में सीता और दक्षिण भाग में सहजा सखी रहती हैं।^१

वास्तव में क्या यही समाप्त होती है। इसके पश्चात् सिंहासन पर सुशोभित श्रीराम का सखियों द्वारा पोद्धारोपचार पूजन और आरती होते हैं। श्रीराम दायनागार में प्रवेश कर पर्यङ्क पर जाते हैं। पहरेण चतुर्विध वाद्यध्वनि करते हैं। श्रीराम रमणी (सीता) से मृदु गीत सुनते हैं और वह उन्हें

१. रीषा की प्रति में मूल में भूल से यहाँ 'इति....सप्तमो यामः' लिखा है। उक्त प्रसङ्ग का अन्तिम उल्लेख इस प्रकार है—

रास-मण्डले कलयन्तामी रामो होला खेलाम् ।
 अर्द्धरात्रि-झल्लरिकां श्रुत्वा ज्ञात्वा शयितुं वेलाम् ॥
 वामेतरे सहजया सहितस्तथा सीतया वामे ।
 रंजे विश्वनाथ-नाथो भणि-सिंहासनेऽभिरामे ॥'

कोई कामकथा कहती हैं। टीका के अनुसार यहाँ विहार व्यञ्जित है। यहाँ सप्तम याम की समाप्ति सूचित है।^१

अगले पृष्ठों में अनुक्रमणिका में कवि ने ध्यान प्रस्तुत कर आह्लिक-विधि का पद्यात्मक सार प्रस्तुत किया है। यहाँ आह्लिक के विकल्प प्रस्तुत किये गए हैं; जैसे—श्रीराम कभी-कभी भवन में स्नान न कर सरयू में नहाने जाते हैं। वे कभी दशरथ के साथ, कभी माता के यहाँ और कभी अपने भवन में ही भोजन करते हैं। वे कभी मृगया को जाते हैं तो कभी करदू-तट, उपवन या भवन में ही सखाओं के साथ खेलते हैं, कभी शस्त्राम्यास, काव्यरचना, सङ्गीत-ध्वज आदि में सखाजनों के साथ समय बिताते हैं। वे कभी दर्शनार्थ आए हुए मुनि-जनों से मिलते हैं, कभी रणाङ्गण में शत्रुवध करते हैं। सायंकाल के पश्चात् सखियों और जानकी के साथ नित्य विहार करते हैं, सब सोने जाते हैं। उस समय चतुर सखियाँ कथा कहती हैं अथवा कुछ समय तक गीत बलते हैं। इस वर्णन के अन्त में श्रीराम की स्तुति है तथा अन्त में टीका में 'इति... अष्टमो यामः' लिखा है।

३. शैली और काव्य-सौन्दर्य (अ)सङ्गीत-रघुनन्दन का गद्यकाव्य :

सङ्गीत-रघुनन्दन में अपेक्षाकृत गद्यों का प्रयोग कम हुआ है। उनमें से कुछ गद्य निर्देशात्मक रूप में प्राप्त हैं, जो इस ग्रन्थ को गीति-नाट्य का रूप देते हैं। मूलतः यह ग्रन्थ पद्यात्मक है और ग्रंथकार का लक्ष्य गीति प्रस्तुत करना है। इस लक्ष्य के साथ कथा का आधार होने से पीछे हमने इसे गीत-गोविन्द की भाँति खण्डकाव्य माना है। अन्तर इतना ही है कि जहाँ गीत-गोविन्द में सर्वथा गद्यों का ही प्रयोग है, निर्देश भी पद्यात्मक है, वहीं सङ्गीत-रघुनन्दन में गद्य-बद्ध निर्देश है। इसके अतिरिक्त काव्य-सृष्टि के लक्ष्य के साथ भी गद्यों के प्रयोग हैं। इनमें मौलिकता के दर्शन होते हैं। हम कह सकते हैं कि कवि ने कादम्बरी से प्रेरणा ली होगी किन्तु यह बात समस्त परवर्ती गद्य-काव्यों के लिये कही जा सकती है। अतः सङ्गीत-रघुनन्दन में प्राप्त काव्यात्मक गद्यों को हम मौलिक ही मानेंगे। इनमें दोष समाप्तों किन्तु ललित

१. मूल—रमणो बहुरमणीय-रागतो सुश्रयन्मृदु स्वरं गायन्तो ।

विश्वनाथ-नार्य रघुनार्य कामपि कामनयां कथयन्तो ॥'

टीका—'अत्र कामकथा-कथन-रूप-वस्तुनि

तत्रापि विहाररूपं वस्तु व्यज्यते । इति सप्तमो यामः ॥' यह शब्द-चक्रवर्त्य संलक्ष्यक्रम-व्यङ्ग्य-ध्वनि का उदाहरण है ।

एवं कोमल-कान्त-पदावली के साथ उत्कलिका-प्राय शैली के गद्यों के दर्शन होते हैं। यहाँ दो उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

‘मालती-लवङ्ग-वस्त्रयः कुमुमिताः विशलय-सम्भारनताः कूजन्मपुमत्-कोकिला मुञ्जत् षडङ्घ्रिनिकराः शीतल-मन्द-सुगन्ध-समीरणोत्सासिताः पाद-पालङ्गनोत्सुका नितान्तकान्ताभिसरणोद्यता वनिता इव लता यत्र विलसन्ति तस्मिन् वनन्तागमे वनोपवन-वाटिकासु विहरति वलमित्त-वधु-वज्र-वलित-विलास-समुत्सासित-मानसे-मान-शोकापनोदन-चतुरे मनोमन्दन इव जनकनन्दिनी-सहिते श्रीरघुनन्दन आलपति युगल-प्रेम-परिपूर्णे विश्वनाथो वसन्तरागमिमम् ।’ (सर्ग १)

इसी प्रकार काव्य के अन्त में एक सुन्दर गद्य-रूपक प्राप्त है, जिसमें कवि गीत और भाव से विभोर हो उठा है। यहाँ कवि की सङ्गीत-मर्मज्ञता का परिचय भी मिलता है—

‘विश्वनाथ-मानस-सरो-निःसृत-छन्दः-कोकनदव्यङ्ग्य-मकरन्दमिश्रित-रागरस-सम्भृत-शालशैवालवलित-तान-तरङ्गोच्छलित-मूर्च्छनामीनसङ्कुलित-सप्तस्वरावर्त-कलित-श्रुतिमरालकुलाकुलित-लघुगुरु-व्युत्तादिभेद-पुलिनोग्ज्वालित—ज्ञानकर्मकूल-दलनोत्सलित-विविषयाद्य-गीतकुमुदिनीसहरित-लयसन्त्वरित-सञ्चलवणसायर-मिलितसोतारामचलित-सरिरूप स्वामहं गायामि ।’ (सर्ग १६)

(आ रामचन्द्राह्निक का गद्य-काव्य :

सङ्गीत-रघुनन्दन की उपर्युक्त मौलिकता रामचन्द्राह्निक में बहुत कम रह गई है। इसमें कथा-विस्तार की पृष्टि से भी गद्यों का प्रयोग हुआ है और जैसा ‘रामचन्द्र-चम्पू’ शब्द से ग्रन्थ का लक्ष्य स्पष्ट है, कवि गद्य-प्रयोग के लिये भी उतना ही उत्सुक है, जितना पद्य-प्रयोग के लिये। इस स्थिति में विश्वनाथसिंह ने राम की दिनचर्या बतलाते समय कादम्बरी के सम्बद्ध भंशों के अनुकरण किये हैं। अनेक स्थल ऐसे हैं, जिन पर कादम्बरी की छाया है किन्तु उससे भी अधिक स्थल ऐसे हैं जिनमें कादम्बरी की भाँति शब्द-प्रयोग भी है। कथा के आधारों पर भी वही छाया है। शूद्रक और तारापीड का राजवैभव एवं चन्द्रापीड का गौरव थोड़े बहुत हेरफेर के साथ दशरथ के वैभव और राम के गौरव के रूप में परिणत कर दिया गया है। कादम्बरी के शब्दशः अनुकरणों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

‘कृत-दन्तधावनश्च....सलीलं सलिलकुण्डमवततार ।

अथतीर्णश्च...समयमुपमदितशरीरः कुण्डसलिला—

रसमुत्थाय मूर्तिमान् शृङ्गार इव मूर्तिमन्तमनुरागमिव

पद्मरागपोठमलञ्चकार (राम० प्रथम याम)^१

'कृत-मधुरव्यायामः.....स्नानभूमिमगच्छत् ।

....वारिमध्यप्रविष्टः....रराज राजा ।

श्रीनीलललादुत्पाय च स्नानपोठममल स्फटिक-धवलं वरुण

इव राजहंसमाहरोह ।' (काद० पूर्व० शूद्रकवर्णनम्)^२

'ततः...सह्यः समागत्य काश्चिन्मरकत-कलश-हस्तास्तत्प्रभा-सन्तान-
श्यामायमान-शरीरा अनेक-ब्रह्माण्ड-समागताः कलिन्द-कन्यका इव कमलिनी-
दल-पुटैः काश्चिन्माणिव्य-कलश-हस्तास्तत्प्रभा-सन्तान-शोणयिमान-शरीराः सर-
स्वस्य इव दर-दलित-कोकनद-कोरकैः काश्चिद् हीरक-कलशहस्ताः कलशोत्क्षेपण-
धम स्वैदार्य-शरीरा विविधरूपधरा गङ्गा इव प्रभात-नुग्दरीकैः श्रीमन्महाराज-
कुमारं रघुनन्दनं स्नाययामासुः ।' (राम० प्रथम०)^३

'ततस्ताः काश्चिन्मरकत-कलश-प्रभा-श्यामायमाना नलिन्य इव मूर्तिमत्यः
पत्रपुटैः काश्चिद् रजतकलश-हस्ता रजस्य इव पूर्णवद्र-भण्डल-प्रतिनिर्गनेन ज्योत्स्ना-
प्रवाहेण काश्चित् कलशोत्क्षेप-धम-स्वैदार्यशरीरा जलदेवता इव स्फाटिकैः कलशै-
स्तीर्यजलेन...राजानममिपियिचुः ।' (का० पू० शूद्रक०)^४

'तत्र च राजानोऽहमहमिक्रया प्रणामलालसाः सरमसापनीतातपत्रातपाः
शून्यशिरस एकैकशश्च स्व-नाम-ग्रहण-पूर्वकं प्रविचलित-मुकुट-पद्मराग-किरणोद्-
गमच्छलेनान्तःकरणादधिकामनुरागमिवोद्गमयद्भिर्दूरावनतैः शिरोभिः
श्रीरघुनन्दनं प्रणेमुः ।' (राम० द्वितीय०)^५

'अहमहमिक्रया च प्रणामलालसाः सरमसापनीतातपत्र-शून्यशिरसः...राज-
पुत्रास्तं पर्यवारयन्त । एकैकशश्च प्रतिनामग्राह्मावेद्यमाना बलाहकेन विचलित-
मुकुट-पद्मराग-किरणोद्गमच्छलेनानु रागमिवोद्गमद्भिः.....दूरावनतैः शिरोभिः
प्रणेमुः ।' (का० पू० चन्द्रपीड०)^६

'...कृतप्रणाममेहोहीत्यभिदधानो दूरादेव प्रसारित-भुजयुगलः सिंहासनादीप-
दुल्लासित-मूर्तिरानन्द-जलापूर्यमाण-लोचनः समुद्गत-पुलकतया सीगन्निर्वैकी-
कुर्वन्निव पियन्निव पिता विनयावततात्मब्रमालिङ्ग ।' (राम० द्वितीय०)^७

१. स० को० भा० रोवा की प्रति ।

२. पण्डित-मुस्तकालय : काशी : १९५९ : पृ० ३०-३१ ।

३. रोवा की प्रति ।

४. पृ० ३१-३२ ।

५. रामवन की प्रति : पृ० १६ ।

६. पृ० १७२ ।

७. रामवन० : पृ० १८ ।

‘.....इतप्रणाममेहोहीत्यमिदंघानो दूरादेव प्रसारित-भुजयुधलः घयनतला-
दोपदुग्धसित-मृत्तिरानन्द-जल पृथ्ममाणलोचनः समुद्गत-गुलकतयासीध्वनि-
वैकीकुर्वन्निव पिबन्निव तं पिता विनयावनतमालिलिङ्ग ।’ (का० पू० चन्द्रापीड०)

ऊपर प्रदत्त प्रकार की छाया रामचन्द्राह्निक के गद्य-भाग में प्रायः सर्वत्र विद्यमान है। नवोनता इतनी है कि उपजीव्य ग्रन्थ कादम्बरी के रम-
णीक गद्यांशों का प्रयोग राम के अष्टयाम-वर्णन के रूप में कर दिया गया है।
कथा के आधार के अनुकूल कवि ने स्वकृत गद्य-साहित्य का योग भी बीच-
बीच में किया है, यद्यपि छंदों की छाया वहाँ भी प्राप्त है।^१ इस रूप में
निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है :—

‘ततो यामविराम-बोधिकां बृहत्-मस्तरिकां श्रुत्वा निज-निज-परिचर्या-
पशाघन-सामग्रो-सनाथ-पाणिना परिचारिका-वर्गेण सखीसमूहेन चानुगम्यमानया
जानक्योपशोभित-वामभाग आम्बन्तरीय-प्रथमकलाम्बन्तरं प्राप्य सखी-हस्त-
गृहीत षष्ठ-चामर व्यजनैर्भरत-लक्ष्मण-दात्रुष्णैः प्रिय-नघ-सखैश्च प्रणम्यमानो
रघुनन्दनस्सादरं तान् संहृत्य जानकीं विमृश्य बहिरुपसंसार ।’

‘तत इतस्ततः प्रधावतां जनानां सङ्घर्षविलोकन-कुपित-नुरङ्ग-हेपणापर्षण-
रपपरण-नेमीनां क्षय्यनायमान-किङ्किणीनां घणघणायमान-घण्टानां सरभस-
महामात्र-परावतिद-गजेन्द्र-बृंहितानां स्वर्णमय-ध्याप्रमुख-दण्डहस्तानां जयजीवा-
बलोक्येत्यमिदधानानां प्रतीहाराणां सरभसं प्रणमतां स्वनायमानाभरणानां च
निनाद ऐकीभूम ब्रह्माष्ट-माण्डोदरममिपूरयन्तःपृष्ठतो ध्वनिराविरासीत् ।’

(३) मङ्गीत-रघुनन्दन का पद्य-काव्य—

प्रस्तुत काव्य के अन्तिम सोलहवें सर्ग का अन्तिम श्लोक इस प्रकार है—

‘एषा माधुर्य-वारा धरणिउल-गता विश्वनाथ-प्रवारा
भास्वत्सन्तान-पारा परिदृष्ट-विद्यद-ध्यान-सन्धान-सारा ।
पापीषोऽञ्चशरा भव-त्रलधि-समुत्तारणे नोद्यशरा
शृङ्गारैः-प्रकारा जयति पर-गुण-ग्राहक-स्वान्तकारा ॥’

इसको स्वकृत टीका में विश्वनाथसिंह ने लिखा है कि—‘ईदृशोऽन्येषु
ग्रन्थेषु माधुर्यरसः नास्ति ।’ अर्थात् सं० १८९२ से पूर्व विश्वनाथसिंह ने जो
ग्रन्थ लिखे हैं, उनमें उन्हीं के मत से माधुर्यरस इस मात्रा में नहीं आ पाया है।
उनकी यह उक्ति उनके परवर्ती ग्रन्थों के लिये भी सत्य हुई है। अर्थात्
रामचन्द्राह्निक आदि ग्रन्थों में भी यद्यपि प्रचुर मात्रा में माधुर्य की सृष्टि की

१. रामधन की प्रति : पृ० १३ तथा पृ० १५ । तुलना के लिये देखिये—
कादम्बरी—पूर्वभाग में शत्रुघ्न और चन्द्रापीड के प्रसङ्ग ।

गई है, तथापि शृङ्गार-रस और माधुर्य-भक्ति से पूर्ण भावाङ्कन के क्षेत्र में सङ्गीत-रघुनन्दन विश्वनाथसिंह के ग्रन्थों में अद्वितीय रह गया है। गीत-गोविन्द की शैली में रचित रघुराजसिंह के स्तुति-काव्यों में यद्यपि माधुर्य-भाव और शृङ्गार-रस के आकर्षक उन्मेष उपलब्ध हैं, सङ्गीत-रघुनन्दन का स्तर उससे अधिक उच्च, तीव्र, गम्भीर एवं प्रभावी है। पद्यों में प्रयुक्त भाषा अलङ्कृत और समास-पुस्त होते हुए भी सरल, बोधगम्य, प्रवाहपूर्ण एवं ललित है। इसे हम शृङ्गार-रस के अनुकूल वैदर्भी रीति, कोमला वृत्ति एवं प्रसाद गुण से पूर्ण पाते हैं। जैसा पहले कहा जा चुका है, सम्पूर्ण काव्य में गीतगोविन्द की शैली और यत्र-तत्र पदावली की भी अनुकृति है। यह होते हुए भी अपनी कथा के अनुकूल कवि ने मौलिकता और नवीनता लाने का पर्याप्त प्रयास किया है और बहुत अंशों में वह सफल हुआ है। काव्य में प्राप्त गीतों के वृत्त और उनकी रचना शैली भी गीतगोविन्द का सर्वथा अनुसरण करती है। कवि का स्वतन्त्र भावातिरेक लगभग समस्त काव्य में प्राप्त होवे से यह ग्रन्थ सम्पूर्णतः सफल गीति-काव्य है।

प्रारम्भ में २४ अवतारों की वन्दना के पश्चात् दशावतार-वन्दना निम्न-लिखित रूप में तुलनात्मक दृष्टि से द्रष्टव्य है—

‘नृप-बोधद-वेद-सिति-मालनकारी,
 प्रलय-पयोधि-सलिल-सञ्चारी,
 श्रीरघुवर मीन-सुरूप, जय जगदीशपते ।
 जलधि-मयन-बहु-खिन्न-सुरामुर-नाता,
 जल-तल-यात-मन्द-नग-घाता,
 श्रीरघुवर कमठ-सुरूप, जग जगदीशपते ॥’^१

‘प्रलय-पयोधि-जले घृतवानसि वेदम्,
 विहित-ब्रह्म-चरित्रमखेदम्,
 केशवघृत-मीन-शरीर, जय जगदीश हरे ।
 सितिरति-विपुलतरे तव तिष्ठति पृष्ठे,
 धरणि-धरण-किण चक्र-गरिष्ठे,
 केशव-घृत-कच्छप-रूप, जय जगदीश हरे ॥’^२

१. सङ्गीत-सर्ग १ : सरस्वती-कोप-मण्डार रीवा की प्रति-१५४।१३।२ : पृ० ६।

२. गीतगोविन्द : निर्णयसागर : बम्बई : १९२९ : पृ० १०-११ : सर्ग १।१।२।

'मीनाद्याद्यते तनुर्दलयते दैर्यान् सतो रक्षते,
धर्मानाधरते स्मृती रक्षयतेऽधर्मं निराकुर्वते ।
भक्तान् भाषयते यशो जनयते बाणान् घनुविधत्ते
सावेत-प्रमदावने विहरते रामाय तुभ्यं नमः ॥'^१
'वेदानुद्धरते जगन्निबहते भूगोलमुद्विधत्ते,
दैर्यान् दारयते बलि छलयते क्षत्र-दायं कुर्वते ।
पोल्लस्यं जयते हलं कलयते काश्यपातन्वते,

ध्लेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः ॥'^२

'ललितालीगण-मण्डित रस-पण्डित हे ।

चपल-चटुल-मणिमाल जय जय राम हरे ॥

दितिनुर-मण्डल-मण्डन खल-खण्डन हे ।

समुद्दण्ड-कोदण्ड जय जय राम हरे ॥

हृत्-दूषण-क्षर-दूषण भवभूषण हे ।

दशमुख-गज भृगराज जय जय राम हरे ॥

विश्वनाथ जनरक्षण शुभलक्षण हे ।

सम-त्रिगमागम-गीत जय जय राम हरे ॥'^३

इसी प्रकार विश्वनाथसिंह ने अनेक पद प्रस्तुत कर गीतारमक लयबद्धता के साथ उल्लासमय गीति प्रदर्शित करने का प्रयास किया है। यद्यपि गीतगोविन्द के पदों के साथ तुलना करने से विश्वनाथसिंह के पदों में वह लालित्य, सुयोजित पद-योजना और श्रुति-भाष्य नहीं आ सका है, यह एक ही दृष्टि में कहा जा सकता है, तथापि जयदेव को अजेय मानने के पश्चात् विश्वनाथसिंह का १९वें शती के पूर्वार्द्ध का यह प्रयास निराशाजनक नहीं है। उदाहरण के लिये कुछ मधुरतर पद नीचे प्रस्तुत किये जाते हैं—

'सुखदसमीरे सरयु-सीरे विलसित-ललित-तिलयनम् ।

काञ्चन-शालं मणिमयजालं मन्वे मदनमुदयनम् ॥

चन्दन-चचित-कुसुम-समचित-मही-वरम-रमणीयम् ।

चन्द्र-मुष्मिन्वित-चन्द्रकान्त-चय-चलित-सलिल-कमनोयम् ॥'^४

१. सङ्गीत० सर्ग १ पृ० १२ ।

२. गीत० सर्ग १।१।१२ ।

३. सङ्गीत० सर्ग १ पृ० १२ । तुलना के लिये देखिये गीतगोविन्द : सर्ग १।२ : 'श्रित-कमला-कुच-मण्डल-धृतकुण्डल ए... ।'

४. सङ्गीत० : सर्ग २। १ : पण्डुलिपि १५४ । १३ । २ : पृ० १४ : देखिये गीत० सर्ग ५ । ११ : 'धीरसमीरे यमुनातीरेः... ।'

‘विहरति रघुपतिरिह श्वेतुराजे ।

क्रिशाभय-कुसुम-उमाकुल-तरुकुल-कोकिल-कोर - समाजे ॥

विलसित मञ्जु न वञ्जुल-गुञ्ज-निकुञ्ज-महोज्ज्वल-भासे ।

विकसित-सारस-सङ्कुल-खगकुल - उरसी - सरसोल्लासे ॥

तरल-तरङ्ग-तरुण-लज्जितातति-लीला - सुखद - समोरे ।

तद-परिरम्भण-वलित-लतावलि-वन - विकलीकृत - घोरे ॥

पवन - विसारि - पराग - पटल-पट - घटितानेक-विताने ।

मनसिज - मत्त - युवति - जन-सङ्गत-युवजन-मोदनिधाने ॥’^१

सङ्गीत-रघुनन्दन के ग्यारहवें सर्ग में सम्भोग-शृंगार का सम्पूर्ण चित्रण करते हुए कवि ने जानकी और रघुनन्दन का संयुक्त गान और नृत्य प्रदर्शित किया है। रास-नृत्य का यह सजीव वर्णन अनुप्रासों की छटा से युक्त एवं गीत-वाद्य के अनुकूल लयबद्ध है। नृत्य के साथ सहज विलासमयी चेष्टाएँ भी सुसंरित हो उठी हैं—

‘मिलितेतरैतर-स्वरगानं - धृतेउरैतर-कण्ठम् ।

नृत्यति नेत्रयते न विमुञ्चति जनकदुहिनुस्नकण्ठम् ॥

नीराजयति मुकुट-रुचि-राजिभिरासामानन-चन्द्रम् ।

कर-चञ्चनेन चालयति चेतः पदगतेन कं मन्दम् ॥

भ्रमद्-नृत्ति-दर-चञ्च-लोचनेन कुरुते गांठनिश्चितम् ।

कान्ता-कान्त-कटाक्षाकलने कलयति कामपि युवितम् ॥

काचिद् वाद्य-मिलम्भनि-नूपुर-मान-दान-कलगानैः ।

अतिप्रसन्नं कुरुते रमणं कोक-कला-रस-पानैः ॥

कानि मेघ-रमणीय-रागतो वर्षात्वं दर्शयते ।

नायक-नयन-नवीन-घनेन च सुखनीरं वर्षयते ॥

दाराः केदारा-कल-गानैः कुर्वन्त्यम्बरममलम् ।

विरचनाय इति वदति विकसितं नवनायक-हृत्कमलम् ।’^२

उपर्युक्त पद्यों में विशेषतः अनुप्रास-प्रवण कोमल पदावली तथा अन्य अलङ्कार भी हैं। अनुप्रासों का और एक सुरम्य उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है—

१. सङ्गीत० : सर्ग ३ । वसन्तरास० : देखिये गीत० सर्ग १।३
‘विहरति हरिरिह० ।’

२. पाण्डु० १५।१।३।२: पृ० ४६-४७ ।

'कीर-केकि-कोकिल-कोलाहल-श्रुतकुल-ललित-धिलासे ।

कुरवक - बकुल - केतकी - कैरव-कुन्द-कदम्ब-विकारी ।

विलसति विपुल-पुलक-विधुवदना-बल्लु-विनोद-विधिर्न ।

चकित-चकीर-चक्षुरिह चन्द्रं चुम्बति चाहचरिने ॥'^१

प्रत्यागम्य करते हुए सीता की स्तुति में रूपक का प्रयोग अनोरम है—

'राम-प्रेम-ययोधि-वर्द्धन-विधुः शृङ्गार-सारास्वदं,

संसारार्णव - दास - तारण - तरिर्माया-तमो-दीपिका ।

विद्युद्-भाः सुखदम्बु-वर्षणकरी कादम्बिनो काप्यसौ,

मधुत्वञ्ज-निवासिनी विजयतां श्री जानकी सर्वदा ॥'

कवि ने इस प्रसंग में भी यत्र-तत्र हिन्दी की शैली के छन्दों के प्रयोग किये हैं । एक दोहा देखिये—

'शिव हरि-चरित-सरोवर-अपहृय-कमल-रस-भुङ्ग ।

तारणं तव चरणं भजे, ध्यानाश्रित-गिरि-शृङ्ग ॥'^२

नृत्य-बोधक तालों और स्वर-सप्तको से युक्त पदावली श्री पद्यबद्ध की गई है । यह कवि की सज्जीतज्ञता का परिचय देती है । उदाहरणार्थ—

'रा-स-नि-नि-घ-घ-ग-म-घ-घ-नि-सा-सा ।

ग-ग-रि-स-स-नि-घ-म-नो-घ-प-मा-गा ॥'^३

व्यङ्ग्यार्थ-चन्द्रिका नाम से महाराज ने स्वयं सज्जीत-रघुनन्दन की टीका लिखी है । इस टीका में भावों के स्पष्टीकरण के साथ साथ नायिका-भेद, रस, अलङ्कार एवं ध्वनि आदि काव्याङ्ग भी प्रदर्शित किये गये हैं । टीका की शैली उच्च स्तर की है ।^४ एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है—

मूल- 'रमणं रास-रतं पश्यन्ती ।

पति-प्रेम दर्शयितुं सीता गाने सखी-गणं नमयन्ती ।'

तथा— 'मम तनु-विजित-मूढ-मग्मथ इह

मुग्धति निशित-शरैरस्नेहम् ।

'अति - मतिमन्दो दिवस-धीप-इव

हिम-किरणोऽपि दहति मम देहम् ।'

टीका-रमणमिति । रमणं श्रीरघुनन्दनं रासरत्नं, रासासक्त पश्यन्ती पश्युः प्रेम स्वस्मिन् दर्शयितुं गाने सखीगणं नमयन्ती नम्रं विदधती सती ।

१. सीता की द्वितीय प्रति: सर्ग २।३ : गृह-रास : पृ० १६ ।

२. वही, सर्ग १।६ : वन्दना : पृ० ५ ।

३. वही सर्ग ३।१ : वसन्त-रास : पृ० १७ ।

४. सीता की प्रति (१४४।१३।३) : सर्ग ३।३ : पृ० १८-१९ ।

ममेति । मम तन्वा शरीरेण विजितः स चाशो मूढो मूर्खो मग्मपः कामो मम देहं निशितस्तोक्षणैः शरैर्न स्नेहः प्रीतिर्यस्मिन् कर्मणि तद्यथा स्यादेवं मुन्यति पीडयति । हे प्रिये ! यः पूर्वं त्वया सहितस्य मम शरीर-शोभादिव्येन परास्तः स एव काम इदानीं त्वद्वियोगेन मम शरीर-शोभा-हान्या जिगीषतीति भावः । अत्र मूढ-पदेन दुःखिते प्रहारो वीराणामनुचित इति व्यज्यते । तेन च तस्य निर्बलत्वम् ।

अति मतिमन्दो हिमकिरणश्चन्द्रोऽपि दिवस-दीप इव सूर्य इव मम देहं, इह कामस्तु स्व-कान्ति-ह्लासकत्वेनापराधितं मां पीडयतु नाम, अयं तु निज-स्वभावं त्यक्त्वा निरपराधं पीडयतीत्यतोऽतिमतिमन्द इति भावः ।'

टीका के आरम्भ में पृथक् मङ्गलाचरण है और उसमें प्राप्त स्तुतिर्मां भी भावात्मक एवं काव्यमय है—

'वन्दे ततःकमलं यस्य मरन्दः पुनाति जगदखिलम् ।

उलं परागलेशश्चेतनतां शीघ्रमानयति ॥

राजेन्द्र-नन्दन विलोचन-चञ्चुरीक-

संसेष्यमान-वदनाम्बुरुहां सखीभिः ।

स्वोय-प्रभा-जित-रमा-हचिभिः परीतां

रासेश्वरी हृदि भजे निमिराजपुत्रीम् ॥'^१

(ई) रामचन्द्राह्निक का पद्य-काव्य :

रामचन्द्राह्निक के पद्य-गीतों में विवरणरामकृता अधिक है तथा इस ग्रन्थ की कथा की आत्मा मूलतः गीतगोविन्द से भिन्न है । इस आधार पर यद्यपि वृत्तों के प्रयोग और लयबद्धता में प्रचुर संख्या में गीतगोविन्द की शैली पर छन्दों

१. टीका (पृ०८) में यह उल्लेख भी है कि विश्वनाथसिंह को शिव ने स्वप्न में षडशरमन्त्र का उपदेश किया और पीछे प्रियादास ने वही मन्त्र दिया—'स्वप्ने स (शिवः) एव मन्त्रं मह्यमपि दत्तवान् पश्चान्मया श्रीहरिगुरु प्रियादासमुक्ताञ्छ्रुतः ।'

इसका उल्लेख संवत् १८९७ (१८४१ ई०) में लिखित अपने ग्रन्थ राधावल्लभीयमतप्रवर्तक ब्रह्मसूत्र-माण्य में भी मङ्गलाचरण (श्लोक६) में विश्वनाथसिंह ने किया है—

'योऽबोधयन्मां निरिजद्वंदेहः स्वप्ने पदार्थं निशि राममन्त्रम् ।'

ऐसा ही उल्लेख रामचन्द्राह्निक की टीका में भी है—

'मम आदिगुरवे स्वप्ने दत्तप्रथमोपदेशाय...'

(प्रथमपाम, श्लोक ५ की टीका) ।

की रचना की गई है, वे अन्तस्तत्त्व की दृष्टि से गीतगोविन्द से दृष्य हैं।
पदों के साथ साथ निर्देशात्मक गद्य भी गीतों के बीच बीच में समाविष्ट है।
नायक-नायिका-भेद की ओर भी कवि का ध्यान पर्याप्त रूप से गया है।
उदाहरणार्थ पद्य याम से होली-वर्णन का कुछ अंश देखिये—

‘ततः श्रीजानकी तद्वृत्तमवगत्य सखीमण्डलमण्डिता तत्राजगाम । तत्र
जानकीदर्शन-वदितोत्साहाः सख्यो जानकी च तत्प्रहारं तूणीकृत्य रघुनन्दनं
सहजासखीं चारणचूर्णेन समावृण्वन्ति स्म ।

‘गद्गद-निन्दो निगदति विधुरिति धीरस्य कुरङ्ग-स्पर्शनम् ।
निरवकाशतामुच्छति सप्र-यरणचूर्ण-परिपूर्णं गगनम् ॥
श्रुत्या रोहिष्यस्य तद्विश्वोदरमावृतमपि परस्य सुहृसितम् ।
विश्वनाथ-होलिका-चमत्कृति-चकितचधुरालीगण-लसितम् ॥

ततो रङ्गसंपन्न-मन्त्र-प्रसिष्यमाण-रङ्ग-सलिल-धारामिः प्रशा-तैश्शणचूर्ण-
पटलाग्न्यकारे सहजा-जानकी-सखीकारे द्वन्द्व-मुदं प्रावर्तत—

सहजा सा तु येन जानोते ते चिह्नेन रहस्यम् ।
चाभीकर-मन्त्रैरित-चन्दन-चर्चनया कुरुते तददृश्यम् ॥
करकम्पेन च शक्रधारया सततं सिञ्चति बाला-वारम् ।
विश्वनाथ यद् भवति सुखं ते शीतेच्छति तद् वारंवारम् ॥

‘‘‘सहजा मध्यात्त्वमारोप्य परिहसति’’’

यत्त्वं कमले रचयसि वचनम् ।
तेन विज्ञाने मत्तोर्जमिलयितं प्रियेण होला-खेलारचनम् ॥
मृगमद-चन्दन-पूर्ण-चूर्णमाकाशं कृत्वा तमः करिष्ये ।
विश्वनाथ-सहितो कृत्वा त्वां स्वान्ते मुदं भरिष्ये ॥’^१

रामचन्द्राह्निक में पदों का रूप अधिक व्यापक है। इसमें महाकाव्य-शैली
का काव्य भी प्राप्त होता है। निम्नलिखित श्लोक की रचना प्रौढ़ है—

‘विविध-चित्रावलिभिराजिते
गूढे प्रसुप्तं सुरवेधमालसम् ।
अहर्मुखे शोषकरा रघुदहं
विबोधयामासुरुदार-भाषितैः ॥’^२

ग्रन्थ के अन्त में पाण्डित्य-पूर्ण शैली का आश्रय लेकर कवि ने एकाक्षर
श्लोक में मञ्जुल प्रस्तुत किया है—

१. इस होली-वर्णन के अधिक विस्तार के लिये देखिये सं० बा० दे० पृ०

२१८-१९ ।

२. रामवन की प्रति : मूल-श्लोक १ पृ० ४ (प्रथम याम) ।

‘रेरेररररारार-रारारोरिररिरेरेरम् ।

राररेररिरेरी-राराराराराररः ॥’

शेष शेष में कवि ने हिन्दी काव्य-शैली के छन्दों के प्रयोग किये हैं । वीररस के प्रयोग के लिये प्रसिद्ध ‘अमृतध्वनि’ का एक उदाहरण यहाँ देखिये—

‘कर-करवाल - विराजितोपदचरण - रण-दश-
स्वर्णपुङ्ख - भूपित - शितपक्ष- क्षुभित-विपक्ष-
पक्ष - क्षुभित - विपक्ष-क्षितिभृदलक्ष्य-क्षितितल-
नन्दन-दिन-यमनन्दन - दितिजममन्द-द्युतिबल-
विद्याध्ययन-समृद्ध्यध्यवसिति-सिध्यद्-धृतिधर-
ऋध्यद्-धुतमुत्र-पुष्यदमरणि मदान्घोद्घृत-कर ॥’

७ भगण और २ गुरु से युक्त एक सबैया उद्घृत किया जाता है—

‘दक्षिणपार्श्व-कृपाणधरं कविका-गुणमन्यकरेणदधानम्,
गोल-कपोल-विलोल-लसन्मणि-कुण्डल-कुन्तल-कान्ति-निधानम् ।
चञ्चल-मौक्तिक-मञ्जरिकायुत-मञ्जु-किरीट-मयूख-वितानम्,
राजकुमारमभुं मुखसारमवेक्ष्य न को रहयेत्तनु-भानम् ॥’

हिन्दी शैली के अन्य छन्दों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :-

बरवे—‘इयं कथा पितृ-गेह-स्मृति ददाति ।

कौशल्ये ! मम नयने जलमायाति ॥’

दोहा—‘विरह-दशामवलोचय मे सजले इमे सुकेचि ।

तव नयने विदितं मया नियतमसञ्जन-केचि ॥’

शोषार्ई—‘तदा चित्र-भवने वर-वेपा ।

मत्लोचनातिथिस्तनुरेपा ॥

सोऽशौ शेषं न हि सप्रेमा ।

गच्छ वद प्रियमहमश्रेमा ॥’

रामचन्द्राह्निक की टीका में गद्य-खण्डों की विवृति मात्र है किन्तु पद्यों की व्याख्याएँ अत्यन्त विरल हैं, मूल में श्लोक, उपजति, नाराच, टोटक, भुजङ्गत्रयात, चम्पकमाला, सङ्घारी, प्रियंवदा, स्रग्धरा, पुष्पो, साहूल-विक्रीडित, रघोदत्ता, प्रमितालारा, छप्पय, अमृतध्वनि आदि छन्द हैं । अल-द्वारों में उपमा, इलेध, रूपक, दिभावना, उत्प्रेक्षा, अर्थापत्ति, अत्युपक्ति,

१. वही, द्वितीय याम ।

२. वही, द्वितीय याम : पृ० १५ ।

३. रामवन की प्रति : तृतीय याम : पृ० २२-२३ ।

समाप्तोक्ति, अपहृति, विरोध, दोषक, स्वभावोक्ति, सहोक्ति, अनुपाठ आदि हैं। इन सबका प्रदर्शन टीका में संक्षिप्त लक्षणसहित किया गया है।

टीकाकार ने अन्य भक्त कवियों की भांति ही ७ गीण रस, अद्भुत, रौद्र, वीर, भयानक, हास्य, बीभत्स और करुण माने हैं तथा शृङ्गार और शान्त का भक्ति-रस में अन्तर्भाव कर भक्ति के ५ मुख्य रस बतलाए हैं— शान्त, हास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर। टीका में काव्य-शास्त्र के अनेक ग्रन्थों का आश्रय लिया गया है। जिनमें मम्मट का काव्यप्रकाश मुख्य है। वाणी-वन्दना करते हुए मम्मट की छाया में ही काव्य के प्रयोजनों का सङ्केत है—

‘प्रमदा-तुल्यतयोपदेशन-युजे वित्ताय सत्कीर्तये
शुभमिन्नस्य च विच्छिदे ध्यवहृति-ज्ञानस्य सम्पत्तये ।
भटिति द्योत्-सुखाय यद्भवति तत् काव्यं जडोऽपि प्रभू
रक्षितुं यत्कृपया सरोजवदनां वन्दे गिरं तामहम् ॥’^१

उदाहरणार्थ एक श्लोक की टीका प्रस्तुत की जाती है। इसमें शब्द-शक्ति का प्रदर्शन है—

मूल—‘अपीह तिष्ठन्नधुना भविष्यद-
वेत्य त्वामित्युषतवती पुनः सा ।
कस्मैचिदेया मुकुरं प्रदर्श्या-
वदच्च संयोजय भग्नमेनम् ॥’

टीका—‘शान्ताद्धमपि विरहमसहमानां जानकीं मन्यमाना सखी पुनराह, अपी-
हेति । अधुना वसन्त-समयेऽपि इह कुसुमित-वने तिष्ठन् भविष्यत् भावि जानकी-
दसमावस्थारूपं वेत्य जानासि । अत्र वसन्तकालस्य वैशिष्ट्यं व्यङ्ग्यम् ।
अत्राधुनापदेन वसन्तकालस्य अतिशय-कामोद्दीपक-कुसुम-सम्पत्तिमत्त्व-रूप-वैलक्ष-
ण्यात् कुसुम-सम्पत्तिमत्रलोचय मां विना जानकी न जीविष्यतीति विज्ञानतस्तवैतत्
कथनं नोचितमिति व्यङ्ग्यते । प्रकाशे यथा-गुरु० ।’^२

१. रामवन की प्रति : पृ० २० टीका-श्लोक ४ : तुलना के लिये देखिये,
काव्य प्रकाश : १।२ :

‘काव्यं यशसेऽर्पकृते व्यवहारविदे शिवेतरसतये ।

सद्यः परनिवृत्तये शान्तासम्मिमतयोपदेशयुजे ॥’

२. वही, तृतीय यामः पृ० २४ ।

३. काव्यप्रकाश (मम्मट-कृत) : ‘ज्ञानमण्डल वाराणसी : १९६० :
पृ० ८८ : उल्लास ३।२१ : काल के वैशिष्ट्य में व्यञ्जकता—

एषा दूती कस्मैचित् सख्ये भग्नं मुकुरं प्रदर्श्य एनं भग्नं संयोजयेत्यवदत् ।
एवं भवतः प्रीत्यां श्रुतितायां न कश्चित् सङ्घटयितुं शक्नोतीति तच्चेष्टया व्यज्यते ।
प्रकारो यथा—'द्वारोपान्त-निरन्तरे ।'^१

४. दोनों काव्यों में प्राप्त राम का स्वरूप :

सङ्गीत-रघुनन्दन और रामचन्द्राह्निक दोनों काव्यों में विश्वनाथसिंह ने राम का जो स्वरूप रखा है, उसे हम दो दृष्टियों से परख सकते हैं—(१) कलात्मक रूप और (२) उपास्य रूप ।

(क) कलात्मक रूप—कला की दृष्टि से, जैसा कहा जा चुका है, दोनों काव्यों में गीति की प्रधानता है, राम और सीता दोनों ही मुख्य पात्र हैं और दोनों में राम के वैयक्तिक पक्ष की साधना है । राम का शृङ्गारी मानव रूप ही दोनों में प्रधान है ।

राम एक धीरललित नायक हैं ।^२ सङ्गीत-रघुनन्दन में उनकी अभिपिक्त सम्राट् की अवस्था का चित्र है और रामचन्द्राह्निक में विवाहोत्तर राजकुमार-जीवन का । दोनों ही अवस्थाओं में वे उच्चतम वैभव के उपभोक्ता हैं । सर्वथा निश्चिन्त, कलाप्रिय और सुखी रूप में वे रह रहे हैं । उनका अनुपम सावण्य और मधुर रसमय व्यवहार अतिमात्र आकर्षक है । इस स्थिति में वे नित्य आनन्द, रास-सङ्गीत और विहार में मग्न हैं ।

इस पृष्ठभूमि के साथ दोनों काव्यों में शृङ्गार रस^३ की साधना की गई

'गुरुअणपरवस पिअ कि भणामि तुइ मंदभाइणी अहकम् ।

अज्ज पवासं वज्जसि वज्ज सअं जेव्व सुणसि करणिवज्जम् ॥'

संस्कृत—'गुरुजन-परवस प्रिय कि

भणामि तव मन्दभागिनी अहम् ।

अज्य प्रवासं वजसि व्रज

स्वयमेव धोष्यसि करणीयम् ॥'

अत्राय मधुसमये यदि व्रजसि तदाहं तावत् न भवामि तव तु न जानामि गतिमिति व्यज्यते ।'

१. काव्यप्रकाश (मम्मट कृत) : ज्ञानमण्डल वाराणसी : १९६० :
पृ० ८८ : उल्लास ३।२२ : 'द्वारोपान्त०' । तथा वृत्ति : चेष्टा के
वैशिष्ट्य में व्यञ्जकता ।

२. दशरूपकः २।४ : 'निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः ।'

३. वही, ४।४७-५८ :

'रम्य देश कला-काल-वैय-भोगादि-शुवनैः ।

है। इसके संयोग पदा के लिये सङ्गीत-रघुनन्दन में बनेकण्ठः रास-नृत्य और रामचन्द्राह्निक में होला-खेलन की व्यवस्था की गई है। दोनों ही काव्यों में मान^१ और प्रवास^२ से जनित विप्रयोग-शृङ्गार भी है, किन्तु त्वरित मिलन की व्यवस्था की जाती है, अतः संयोग-शृङ्गार को साधना ही कवि का मुख्य लक्ष्य है। अयोग या पूर्वानुराग को स्थिति पहले ही सम्पूर्ण हो चुकी है क्योंकि विशाहोत्तर जीवन का चित्रण है।

(ख) उपास्य रूप—उपर्युक्त दोनों काव्यों में विश्वनाथसिंह द्वारा स्वीकृत उपास्य रूप है और वही प्रमुख रूप है। वास्तव में कवि का मूल लक्ष्य काव्य-सर्जना नहीं, किन्तु काव्य के माध्यम से अपने उपास्य श्रीराम को प्रसन्न करना है। कवि मूलतः भक्त है और वह अपने समस्त शृङ्गार-रसात्मक युगल मूर्ति (सीता-राम) का ध्यान रखता है। यह दोनों काव्यों के आरम्भ में पहले भक्त पर कृपा करने वाली सीता की वन्दना करता है।

कीर्ति, भू और श्री सीता के ही अभ्य नाम हैं, ह्लादिनी आदि शक्तियाँ उनके चरणों की सेवा करती हैं, वे माया की स्वामिनी हैं, वे रासमण्डल की पासिका हैं—

‘कीर्त्याः कीर्तिरघो भुवोऽपि च तथा भूः श्रीः ध्रियश्चोत्तमा
ह्लादिन्यादि सुशक्ति-सेवित-पदा मायादिक-स्वामिनी ।
सर्वेषामपि कामदो रघुपतिस्तस्यापि या कामदा,
सा सीता नयता मदोय-भणिति रासेश्वरो चाह्वताम् ॥’^३

प्रमोदात्मा रतिः सैव मूनोरन्योन्य-रक्तयोः ॥

प्रहृष्यमाणः शृङ्गारी मधुराङ्ग-विचेष्टितः ॥’

१. वही, ४।५९ : ‘स्त्रीणामीर्ष्याहृतो मानः ।’ ईर्ष्यामान के प्रयोग ही अधिक हैं, कहीं कहीं प्रणयमान भी हैं।

२. वही, ४।६४ :

‘कार्यतः सम्भ्रमाच्छापात् प्रवासो भिन्न-देशता ।’

रामचन्द्राह्निक में मृगया के कारण तृतीय याम में, कार्यतः प्रवास होता है।

३. सङ्गीत-रघुनन्दन : सर्ग १।२ : मङ्गलाचरण। तुलना के लिये देसिपे-विश्वनाथसिंह का राधा-वल्लभोय-मत्-प्रकाशक ब्रह्मसूत्र-भाष्य (स० को० भा०) : मङ्गलाचरण का आरम्भ—

नित्यानुराग-सिन्धूत्य-रस-वद्-स्फुरत्प्रयाम् ।

श्रीमूर्त्तीलादिभिः स्तुत्यां स्तौमि श्रीराम-वल्लभाम् ॥’

गीतगोविन्द में जैसे श्रीकृष्ण को दश और चौबीस अवतार ग्रहण करते हुए बतलाया गया है और श्रीकृष्ण को ही पूर्ण-ब्रह्मत्व प्रदान कर उनके नित्य विहार का ध्यान किया गया है,^१ उसी प्रकार सङ्गीत-रघुनन्दन में सभी अवतार श्रीराम के बतलाए गए हैं और उन्हें नित्य विहारी, रसिक-शिरोमणि माना गया है।^२

युगल-उपासना की यह प्रवृत्ति कृष्ण-भक्ति के रूप में विकसित हुई। युगल-उपासना पर अष्टयाम और आह्निक नाम से अनेक ग्रन्थ लिखे गए। इनमें हिन्दो ब्रजभाषा में नाभादास का रामाष्टयाम अत्यन्त प्रभावो हुआ। इनके अनुसार अवध अखण्ड विहार-भूमि है, जहाँ नित्य युगल रूप श्रीराम समस्त अवतारों से सेवित होते हुए लीला-मग्न रहते हैं। वे समस्त गुणों के विभ्राम-स्थल, द्वादश रसों एवं अनेक प्रकार की लीलाओं से युक्त हैं। माधुर्य से पूर्ण उनके विहार में संयोग-वियोग, युगल-सन्धि, माधुर्य-रति तथा नित्य सुख-भोग हैं।^३

श्री राम की इस युगल-उपासना में सखी-भाव का भी सङ्गम हो गया। कुछ सखियाँ राम की और कुछ सीता की हैं। ये युगल-सन्धि में सहायक होती हैं। वास्तव में समस्त सखियाँ सीता की ही प्रतिकृतियाँ हैं। इस कल्पना में विश्वनाथसिंह ने राधावल्लभ-मत का समावेश करते हुए यह माना है कि भक्त की अन्तिम भक्ति है पृष्ठ शरीर—सखीरूप की प्राप्ति। तदनन्तर वह रासमण्डल में प्रविष्ट हो जाता है। इस प्रकार भक्त ही सखीरूप में परिकल्पित है।^४

विश्वनाथसिंह शृङ्गारी रामभक्ति के प्रमुख स्तम्भ माने गए हैं। उन्होंने रसिकभाव की साधना प्रियादास से सीखी थी, इन पर अयोध्या के महात्मा रामचरणदास का अधिक प्रभाव था।^५

यह मानना अनुपयुक्त होगा कि श्रीराम-ज्ञानकी के युगल रूप की उपासना अथवा श्रीराम के पूर्ण ब्रह्मत्व की कल्पना नितान्त परवर्ती रूप है। वास्तव में यह परम्परात्मक और क्रमिक विकास है। विश्वनाथसिंह ने अपने दर्शन-ग्रन्थों में संकड़ों ग्रन्थों के उद्धरण प्रस्तुत कर श्रीराम का परत्व प्रतिपादित किया है।^६

१. सर्ग १। २. सर्ग १।

३. मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद : (डा० कपिलदेव पाण्डेय) चौखम्बा। वाराणसी : १९६९ : पृ० ५१३।

४. हिन्दो साहित्य-कोश : (भाग १) : सं० २०१५ : पृ० ६४०-४१।

५. वही भाग २ : सं० २०२० : पृ० ५४५।

६. देखिये सर्वसिद्धान्त तथा राधावल्लभीय भाष्य में उद्धृत अगस्त्य-संहिता, रामतापनीयोपनिषद्, आदि—

‘अन्ये चांश-कलाः पुंसः रामस्तु भगवान् स्वयम्।’

नाटक

आनन्द-रघुनन्दन-नाटकम्

(क) परिचयात्मक विवरण :

१. पाण्डुलिपियाँ

बघेलखण्ड के संस्कृत-काव्यों में केवल एक ही नाटक उपलब्ध है, जो उन्नीसवीं शती के मध्य में विश्वनाथसिंह द्वारा लिखा गया। इसका नाम आनन्द-रघुनन्दन है। संस्कृत-साहित्य के इतिहासों में तथा विद्वानों के निबन्धों में कहीं भी इसको चर्चा नहीं मिलती। खोज-विवरणों में भी इस ग्रन्थ के उल्लेख प्राप्त नहीं हैं। अभी तक की जानकारी के आधार पर इस-ग्रन्थ की उपलब्धि केवल सरस्वती-कोप-भाण्डार रीवा में है। यहाँ प्राप्त तीन प्रतियों का विवरण इस प्रकार है—

(१) प्रथम-प्रति—वस्ता ३९।८ : सम्पूर्ण, कुल पत्रा १२६।

प्रथम अङ्क में ३४ पत्रा हैं। प्रतीत होता है कि प्रारम्भ के १९ पत्रा लुप्त हो गए थे। पीछे कभी लिख कर जोड़े गये हैं। इनकी लिपि आधुनिक है। खेद इस बात का है कि इस लिपि में और भी अधिक अशुद्धियाँ हैं। २० वें पत्रा से अन्त तक प्राचीन लिपि है। प्रथम अङ्क के अन्त में पुष्पिका इस प्रकार है—

‘इति श्रीमदानन्द-रघुनन्दन-नाम्नि’ नाटके प्रथमोङ्कः ।’

पाँचवें अङ्क तक इसी प्रकार की पुष्पिकाएँ हैं। छठे अङ्क में निम्नलिखित रूप है—

‘इति श्रीमन्निखिल-रामायण-नाटक-प्रधाने श्रीमदानन्द-रघुनन्दनाभिधाने दशवदन-निषर्न नाम षष्ठोऽङ्कः।’ अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है—

‘सम्पूर्णः समाप्तः (सप्तमः) काण्डः ॥’

सिद्धि श्रीमहाराजाविराज श्रीमहाराजा-श्रीराजाबहादुर-श्रीसीतारामचन्द्र-कृतापात्राधिकारि-विश्वनाथसिंह-जुरेव-कृतमानन्द-रघुनन्दननाम-नाटकं सम्पूर्णम् । शुभं भूयात् ॥’

१. देखिये परिशिष्ट २ : तृतीय प्रति में—‘नाम’ ।

२. तृतीय प्रति में—‘निमित्त’ ।

द्वितीय-तृतीय और चतुर्थ अङ्क के पत्रा सम्मिलित है। यहाँ से पृष्ठ-गणना पुनः १ से प्रारम्भ हो गई है और अन्त (पत्रा ९२) तक चलती है। इस खण्ड में ३६ पत्रा है। पञ्चम अङ्क में १०, षष्ठ में ३३ और सप्तम में १३ पत्रा है। कूल १२६ पत्रा है।

(२) द्वितीय प्रति : बस्ता ३९।८।१, खण्डित इसमें केवल युद्धकाण्ड के १७ पत्रा है, वह भी अपूर्ण है।

(३) तृतीय प्रति: बस्ता ३९।८।२: सम्पूर्ण इसमें प्रथम अङ्क में २५ और पूरे ग्रन्थ में १०४ पत्रा है। सम्पूर्ण पुष्पिकाएँ और सामग्री प्रथम प्रति से लग-भग सर्वथा मेल खाती है। ग्रन्थ अप्रकाशित है।

२. रचनाकाल —

उपर्युक्त प्रतियों में से किसी में भी लिपिकाल और रचनाकाल का निर्देश नहीं है। अतः ग्रन्थ के अन्त में प्राप्त पुष्पिका के आधार पर, जिसमें विश्वनाथ सिंह के साथ महाराज शब्द है, इतना ही कहा जा सकता है कि संवत् १८९१ से १९११ वि० (१७३५-५४ ई०) के बीच कभी इस ग्रन्थ का निर्माण हुआ।

हिन्दी ब्रजभाषा में भी आनन्द रघुनन्दन नाम से विश्वनाथसिंह का एक नाटक प्राप्त है^१। विन्ध्यप्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन रोवा ने इसे १९६० ई० में प्रकाशित कर दिया है। हिन्दी साहित्य के इतिहासों और हिन्दी रूपकों के समीक्षा-ग्रन्थों में प्रायः सर्वत्र इसका उल्लेख प्रथम हिन्दी नाटक के रूप में हुआ है। श्री गोडे के अनुसार श्यामसुन्दर दास ने सन् १९०७ ई० में प्रयाग में हिन्दी पाण्डुलिपियों का विवरण प्रस्तुत करते हुए हिन्दी नाटक, आनन्द-रघुनन्दन की २ प्रतियाँ बतलाई थी, जिनमें से एक १८३५ और दूसरी (क्र० २८) १८३० ई० की थी। यह दूसरी प्रति दिलराज लाला द्वारा सं० १८८७ (१८३० ई०) में लिखी गई थी। अर्थात् रचना इससे भी पूर्व की होगी। दोनों ही पाण्डुलिपियों में 'श्रीमहाराजकुमार बाबूसाहेब' शब्द है।^२

१. दे० अध्याय २ (ग)।

२. 'संस्कृत ऐंड हिन्दी वासं'।

यहाँ हिन्दी के आनन्द-रघुनन्दन की निम्नलिखित प्रतियों के उल्लेख हैं :—

(१) एच० ई० पोलमैन्स : सेन्सस आफ इंडिक मैन्सुक्रिप्ट्स इन यू० एस० ए० ऐंड कैनाडा : १९३८ : हिन्दी : पृ० ३०२ : क्र० ५८२०।

अतः हिन्दी का नाटक राजकुमार की अवस्था में लिखा जाने से निश्चित रूप से उसी नाम के संस्कृत नाटक से पहले लिखा गया, क्योंकि संस्कृत नाटक उपर्युक्त पुष्पिका के आधार पर 'महाराज विश्वनाथसिंह' (राज्यारम्भ संबत् १८९१-१९३४ ई०) द्वारा लिखा गया।

यह पूर्वापरता निश्चित होने पर भी प्रस्तावना में प्राप्त अतःसाध्य विचारणीय है। हिन्दी नाटक की प्रस्तावना में निम्नलिखित शब्द है—

'सूत्रधार—(नान्यन्ते) अरे मारिय।

मोकोँ राजकुंवर की नाटय करिबे की आज्ञा भई।'

इसी के समकक्ष संस्कृत की प्रस्तावना में भी निम्नलिखित समानार्थक शब्द है—

'(नान्यन्ते) सूत्रधार :—अलमति विस्तरेण। मारिय। महाराजकुमारस्य नाटयकरणाज्ञा ममामीत्...।'

यहाँ 'महाराजकुमार' उल्लेख का एक ही अभिप्राय हो सकता है कि 'महाराजकुमार विश्वनाथसिंह' स्वयं स्वरचित नाटक के अपने समक्ष प्रदर्शन की कल्पना प्रस्तुत कर रहे हैं। हिन्दी नाटक के लिये तो यह कल्पना ठीक ही है किन्तु संस्कृत नाटक की अन्तिम पुष्पिका में 'महाराज' शब्द होने से संस्कृत का 'महाराजकुमारस्य' उल्लेख कठिनाई उत्पन्न करता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि १८३० ई० से पूर्व ही हिन्दी नाटक पूरा होने पर विश्वनाथसिंह ने उसी की संस्कृत रूप देने का विचार किया और उसमें हिन्दी के समानार्थक शब्द रखे। अतः राजकुमार अवस्था में ही (१९३४ ई० से पूर्व) संस्कृत नाटक लिखना भी आरम्भ हो गया, किन्तु सम्पूति होते होते विश्वनाथसिंह महाराज हो चुके थे, अतः पुष्पिका में महाराज शब्द

(२) कंठे० उदयपुर : क्र० ११३।

(३) कंठे० बीकानेर : १८९१ वि० का छेसा।

(४) क्यामसुन्दरदास : हिन्दी पाण्डु० का वार्षिक विवरण :
प्रयाग : १९०७ : क्र० ३८ : ८५ × २२२५ दलोक तथा
त्रैवार्षिक विवरण : १९१२ पृ० ९२-९३।

१. देखिये-सं० बा० दे० पृ०-१४ : यह सम्पूर्ण प्रस्तावना साध में प्रकाशित है।

२. हिन्दी नाटक के समान अर्थ की शब्दावली संस्कृत के सम्पूर्ण नाटक में है, जैसा कि आगे विचार किया जायगा।

रखा गया। यदि यह तर्क ठीक है, तो संस्कृत के आनन्द-रघुनन्दन नाटक की सम्पत्ति १८३५-३६ ई० के आसपास मानी जा सकती है।

३. वस्तु-तत्त्व

आनन्द-रघुनन्दन नाटक में रामकथा वर्णित है। इसमें ७ अङ्क हैं।

नाटक का आरम्भ नान्दी के ४ श्लोकों के साथ होता है। नान्दी में राम के ब्रह्मरूप का स्मरण और प्रथम अङ्क (बालकाण्ड) की कथा की ओर सञ्ज्ञित भी है।^१

नान्दी के पश्चात् परम्परानुसार प्रस्तावना में सूत्रधार और पारिपाश्वर्क राजकुमार की आज्ञानुसार नाटक की अभिनीत करने के सम्बन्ध में परस्पर विचार-विमर्श करते हैं। सूत्रधार कहता है कि उसे आकाशवाणी सुनाई पड़ रही है, अनुपम नाटक प्राप्त होगा। इस प्रस्तावना की समाप्ति पर भाव प्रवेश कर सूत्रधार को त्रिकालज्ञ आदिकवि की पत्रिका देता है। पत्रिका में आदिकवि वात्मीकि सूत्रधार को शिष्य कहते हैं और बतलाते हैं कि 'रावण के उत्पातों से आक्रान्त पृथ्वी ने ब्रह्मा की आज्ञा से जगत् के स्वामी से निवेदन किया है, अतः प्रभु पृथ्वी पर अवतीर्ण होने वाले हैं। उनके चरित को पहले मैंने (वात्मीकि ने) काव्य बद्ध किया था। विन्ध्य (बान्धव-प्रदेश) के राजा जयसिंह के पुत्र विश्वनाथ (सिंह) आनन्द-रघुनन्दन नाटक रचने वाले हैं, जो ब्रह्मा के वरदान से मुझे स्फुरित हो रहा है।^२ तुम मेरे पास आकर उसे समझ लो। उसे नाट्यरूप में प्रस्तुत कर तुम प्रभु को प्रसन्न करना। वह पत्रिका सूत्रधार की समस्या को सुलझा देती है।

दृश्य बदलता है। गुरु (वात्मीकि) के शिष्य सूत्रधार (श्रुतधर) आनन्द रघुनन्दन नाटक पढ़ाने के लिये निवेदन करता है, जिसे उसी दिन

१. प्रथम अङ्क : श्लोक २ :

कल्याणं कलयन्तु शङ्कर-धनुर्मौर्वी-समाकर्षणात्
काठिन्य-प्रतिभासि-पाणि-लसिताः इमाजाङ्गुलि-धेनयः ।
शोणाम्भोरुह-मध्य-सम्पुट-मिलत्संभक्तिका-सम्भ्रमाः
यासूदमुङ्ग-विभा विमान्ति महिजा-जानेः कटाक्ष-च्छटाः ॥^१

२. वही, श्लोक १२-१४ :

'विन्ध्येन्द्र-जयसिंहस्य राजसिंहस्य यः सुतः ॥
विश्वनाथाश्रुती नाम्ना नाटकं स करिष्यति ।
स्वच्छन्दानन्द-सन्दोहमानन्द-रघुनन्दनम् ॥
ममेदानीं चक्रास्तीदं स्फुरितं ब्रह्मणो वरात् ।'

अभिनीत करना है। गुरु पढ़ाना स्वीकार करते हैं। शिष्य को तत्क्षण नाटक प्राप्त हो जाता है।

नेपथ्य से मञ्जुल और कोलाहल सुनाई पड़ता है। राजा दिग्यान (दशरथ) ने भगवान् को पुनरुप में पाया है। उल्लासमग्न जन होला-खेल आदि आनन्दों में निमग्न है। आदि कवि यह सुन कर कहते हैं कि परावरेन्द्वर के ईश्वर का अमृतपूर्व अवतार हुआ है। मुनि-मण्डली अपराजिता (अयोध्या) को जा रही है, हम भी चलें।

विष्कम्भक के नाम से प्राप्त उपर्युक्त दो दृश्यों को भी वास्तव में प्रस्तावना के अंश ही कहना चाहिये, क्योंकि सूत्रधार यहाँ तक उपस्थित है। इसके पश्चात् अङ्कारम्भ होता है।

प्रथम अङ्क

सचिव मञ्च पर आकर राजा दिग्यान (दशरथ) के स्वागत की तैयारी करता है। राजा पुत्रों का जन्म-संस्कार और नामकरण सम्पन्न कर सभा में आ रहे हैं। राजा आते हैं और सचिव के पूछने पर पुत्रों के नाम लिखकर बतलाते हैं, वे हितकारी (राम) जगद्गुरु (भरत), घराघर (लक्ष्मण) और अरिहर (धनुष्मन्) हैं।

बन्दीजन यशोगान करते हैं। विदूषक, नटी और नर्तक प्रवेश करते हैं। नर्तक इन्द्रजाल करता है। नटी नृत्य करती है। विदूषक हास्य का वातावरण रखता है।

दूसरे दृश्य में राजा अन्तःपुर में जाकर कुशला (कौशल्या), काशमीरी, (कैकयी) और सुहिता (सुमित्रा) तीनों रानियों के पुत्रों के कल्याणार्थ वंशधरों और ब्राह्मणों के पूजन करने का आदेश देते हैं। रानियाँ पुत्रवधुओं के मुख देखने की लालसा राजा से प्रकट करती हैं।

तीसरे दृश्य में राजा के द्वारा सभी राजकुमार सभा में बुलाए जाते हैं, जिन्हें वर्षघर लाता है। पुत्रों को देखकर राजा कहते हैं कि पुत्र विवाह के योग्य हुए। इस प्रकार बाल्यकाल की समाप्ति की घोषणा हो जाती है। गुरु जगद्योनिज (वशिष्ठ) का सभा में सम्मान होता है। इसके पश्चात् सामान्य कथा के अनुसार मुनि भुवनहित (विश्वामित्र) आकर दशरथ से मिलते हैं और यज्ञ-रक्षार्थ राम-लक्ष्मण को ले जाते हैं।

चौथे दृश्य में पथिक प्राकृत भाषा में राम-लक्ष्मण के आगमन की खर्षा करते हैं। विश्वामित्र राम की बला और अतिबला विद्या प्रदान करते हैं। घातिनी (ताडका) राजसी का वध होता है। उसका पुत्र घातिनेय (मारीच) अपने भाई चारुभुज (सुबाहु) के साथ काशमीर से आकर यज्ञ नष्ट करता है।

मारौच उड़ जाता है और सुबाहु मारा जाता है। सिद्धाश्रम में रक्षणात् होता है। मूर्च्छित विश्वामित्र को जगाकर विजय की सूचना दी जाती है।

पाँचवें दृश्य में पुत्रों का समाचार न मिलने से चिन्तित दशरथ को विश्वामित्र का शिष्य उपर्युक्त समाचार देता है।

छठे दृश्य में विश्वामित्र राम-लक्ष्मण से सीता-स्वयंवर की चर्चा करते हैं और मिथिला के लिये प्रस्थान करते हैं।

सातवें दृश्य में जनक को विश्वामित्र के आने का समाचार मिलता है जिसमें अहल्योद्धार का भी उल्लेख है। जनक विश्वामित्र का सम्मान कर राम-लक्ष्मण का परिषय प्राप्त करते हैं। इसी समय दिक्षिरा (रावण) और धरामुर (वाणामुर) आते हैं। वे लंबा संवाद कर चले जाते हैं। राम पिनाक तोड़ते हैं। सीता जयमाला पहनाती है। जनक दशरथ को पत्रिका भेजते हैं।

आठवें दृश्य में दशरथ पत्रिका पाते हैं और जगद्योनिज (वशिष्ठ) की स्वीकृति लेकर बारात लेकर मिथिला को प्रस्थान करते हैं।

नौवें दृश्य में दशरथ का पत्रोत्तर जनक को मिलता है। बारात आती है। विवाह होता है। वशिष्ठ शास्त्रोच्चार कर दक्षिण में सोरकेतु (जनक) की कन्या ज्मिला को धराधर (लक्ष्मण) के लिये माँग छेते हैं। विश्वामित्र जनक के अनुज दर्भकेतु (कुशव्रज) की दो कन्याएँ जगद्मर (भरत) और अरिदर (शत्रुघ्न) के लिये माँगते हैं। कुछ दिन बीतने पर मन्त्री जनक को बतलाता है कि रैणुकेय (परशुराम) आने वाले हैं, अतः बारात विदा कर दी जाय। विदा हो जाती है।

दसवें दृश्य में दशरथ को अयोध्या पहुँचने से पूर्व गौतम का वङ्गदेशीय छात्र रैणुकेय के आगमन की सूचना देता है। उत्पात होते हैं और रैणुकेय आ जाते हैं। यहाँ चारों राजकुमार, वशिष्ठ और विश्वामित्र संवाद में भाग छेते हैं। अन्त में रैणुकेय राम को परम-गुरु का अवतार मान कर स्तुति कर चले जाते हैं। मूर्च्छित दशरथ को जगाया जाता है।

ग्यारहवें दृश्य में बारात अयोध्या पहुँचती है। माताएँ परछन कर पुत्र-वधुओं का मुखदर्शन करती हैं।

द्वितीय अङ्क

इस अङ्कमें राम के निर्वासन की कथा का नवीन आधार प्रदर्शित है। प्रथम दृश्य में गुरु (वशिष्ठ) से ब्रह्मकुण्डजा (सरयू) बतलाती है कि वह पिता-मह (ब्रह्मा) का दर्शन करने गई थी। वहाँ इन्द्र आदि ने बतलाया है कि

रावण का वध करने के लिये राम पत्नी के साथ वन-विहार करना चाहते हैं। ब्रह्मा ने व्यवस्था करने की स्वीकृति दी है।

वशिष्ठ सरयू को समझाते हैं कि राम की शक्ति अचिन्त्य है। अचरितज्ञता में उनका विहार निरय है। वे दोनों कार्य (वन यात्रा भी) कर सकते हैं। वशिष्ठ को देववाणी से आदेश मिलता है कि वे जगद्भर और अरिदर को काश्मीर भिजवा दें और वाणी स्वयं कुटिला (मन्थरा) के कण्ठ में प्रवेश कर राम की वनयात्रा की व्यवस्था करेगी। वशिष्ठ आज्ञा मान कर योजना में सम्मिलित होते हैं।

दूसरे दृश्य में आदि कवि (वाल्मीकि) का शिष्य क्षीरवती (पयस्विनी) और कालिन्दी (यमुना) का वार्तालाप गुह से बतलाता है। इस सूचना के अनुसार काश्मीरी ने उदार दशरथ से दो वर पाए हैं; एक से अपने पुत्र के लिये राज्य लिया और दूसरे से वन्द्युवधू-सहित हितकारी (राम) को वन दिया। मन्त्री गङ्गातट तक राम को रथ द्वारा पहुँचा कर लौट गया और राजा ने प्राण त्याग दिये। वाल्मीकि दशरथ के शोक में डूब जाते हैं। शिष्य पुनः बतलाता है कि राम भास्कर क्षेत्र में याज्ञवल्क्य का दर्शन कर यमुना-पार आ गए हैं।

नेपथ्य के गीत से राम के आने की सूचना मिलती है। राम अचरितज्ञता का समाचार पृष्ठते हैं। वाल्मीकि ध्यान से जानकर बतलाते हैं कि जगद्भर (भरत) माई (शत्रुघ्न) के साथ नगर में आ गए हैं। शीघ्र समाचार वे ही आकर बतलाएंगे। वाल्मीकि राम को चित्रकूट तक पहुँचाने जाते हैं।

तीसरे दृश्य में चिन्तित काश्मीरी (कैकेयी) कुटिला (मन्थरा) से बतलाती है कि जगद्भर (भरत) आने वाले हैं। भरत प्रवेश करते हैं और कैकेयी से पूरा मृत्तान्त सुनकर मूर्च्छित हो जाते हैं तथा चेतना आने पर उसे कोसते हैं। अरिदर (शत्रुघ्न) मन्थरा को पीटते हैं। कैकेयी के रोकने पर उसे भी शिशा देने की बात कहते हैं। भरत कौशल्या को समझाते हैं कि यह सब उनकी सहमति से नहीं हुआ। सुमित्रा भरत को पिता को पारलौकिक क्रिया करने के लिए कहती है।

चौथे दृश्य में गुह भरत को राज्य संभालने के लिये कहते हैं किन्तु उनका परिताप देख कर राम को लौटाने के लिये वन चलने की स्वीकृति दे देते हैं।

पाँचवें दृश्य में जयन्त काक के वेप में आकर सीता को चोंच मारने का दण्ड पाता है।

इसो दृश्य में भरत को ससैन्य आते देखकर लक्ष्मण क्रोध प्रकट करते हैं। राम उन्हें शांत करते हैं। भरत आते हैं। शोक का वातावरण छा जाता है। भरत राम को लौटाने के अपग्रह में अवशम भो करते हैं। राम उन्हें समझा

कर पादुका देकर लौटाते हैं। राम भी वह स्थान छोड़कर बनीर्ष्या (बन-सूमा) और सीमजनक (अत्रि) के आश्रम को जाते हैं।

छठे दृश्य में अतसूमा सीता को वस्त्रामुषण देती है। अत्रि राम को दण्ड-कारण्य का मार्ग बतलाते हुए कहते हैं कि विशिखमङ्ग (शरमङ्ग) मुनि के आश्रम होते हुए जाना।

तृतीय अङ्क

इस अङ्क के प्रथम दृश्य में मैत्रावरुणि (अगस्त्य) का शिष्य उन्हें बतलाता है कि वह दश वर्षों तक राम के साथ अनेक मुनियों के आश्रमों में भ्रमण करता रहा। मार्ग में राम ने जवासुर के पुत्र (विराघ) का वध किया और शरमङ्ग मुनि ने उनके समस्त प्राणोत्सर्ग किया। तत्पश्चात् राम आते हैं। अगस्त्य उनके निवासार्थ गोदावरी के तट पर पञ्चवटी का स्थान उपयुक्त बतलाते हैं और इन्द्र द्वारा प्रदत्त धनुष, कवच और दो अक्षय तूपोर देते हैं, साथ ही अरुण के पुत्र (जटायु) को दर्शन देने को कहते हैं।

दूसरे दृश्य में आरुणि (जटायु) राम को सीता की रक्षा करने का वचन देता है। पञ्चवटी में रमणीय कुटी निर्मित होती है। अयोध्या से हीरमणि शुक आकर राम को कुशलता का समाचार देता है और कहता है कि भरत मंदीप्राम में जटाजूट धारण कर रहते हैं तथा वहीं से मूष की आज्ञानुसार राज्यकार्य करते हैं। इसी दृश्य में लक्ष्मण द्वारा दीर्घमखी (शूर्पणखा) के नाक-कान काटे जाते हैं।

तीसरे दृश्य में शूर्पणखा-वृत्तान्त से क्रुद्ध होकर रासभ (सर राक्षस) सेना लेकर राम पर चढ़ाई कर देता है।

चौथे दृश्य में रासभ के साथ राम के युद्ध का सविस्तर वर्णन है। इस युद्ध को लक्ष्मण और सीता एक कन्दरा से देख रहे हैं। चौदह सहस्र चौदह राक्षस मारे जाते हैं। अन्त में अगस्त्य राम की स्तुति करते हैं।

पाँचवें दृश्य में शूर्पणखा रावण की सभा में रासभ-वध का समाचार और अरुणा अपनान बतलाती है। रावण मन में विचार करता है कि परम पुरुष का अवतार हुआ, मैं विरोध-मार्ग से मुक्ति लूँगा। दीर्घजठर (महोदर) के कथनानुसार सीता-हरण का निश्चय होता है।

छठे दृश्य में रावण मारीच को रत्नमय विचित्र मृग का रूप धारण करने के लिये तैयार कर देता है।

सातवें दृश्य में लक्ष्मण की अनुपस्थिति में राम सीता को अग्नि की सौंप देते हैं। छाया रूप में सीता उनके साथ पर्णशाला में रहती हैं। सीता मृग

साने का आपह करती है, लक्ष्मण लोट आते हैं। राम मृग के पीछे चले जाते हैं। नेपथ्य से 'हा घरस घराघर' शब्द सुनकर सीता लक्ष्मण को राम की सहायता करने के लिये जाने को कहती हैं। लक्ष्मण कहते हैं कि यह छल है, राम के शब्द नहीं। सीता लक्ष्मण को कुल-कलश और राम की मृत्यु का अमिलायी कहती हैं। लक्ष्मण असह्य वचन सुनकर रेखा खींच कर चले जाते हैं। रावण मुनि-वेदा में आकर रेखा से बाहर भिदा देने आई हुई सीता का अपहरण करता है। रेखा के प्रयत्न में जटायु आहत होता है।

आठवें दृश्य में सीता को बूढ़ते हुए राम और लक्ष्मण जटायु के समीप आते हैं। जटायु बतलाता है कि विद मूर्खों में रावण ने चोरी की है, अपने प्राणों के साथ-साथ उसे सीता को लौटाना होगा।^१ जटायु की मृत्यु होती है, राम विलाप करते हुए आगे बढ़ते हैं।

नौवें दृश्य में तपस्विनी किराती (दाबरी) राम का आतिथ्य कर उन्हें सुग्रीव का पता बतलाती है और राम के समक्ष प्राणोत्सर्ग करती है। राम आगे बढ़ते हैं।

चतुर्थं थङ्क

इस अंक के प्रथम दृश्य में त्रेतामल्ल (हनुमान्) राम और सुकण्ठ (सुग्रीव) की मित्रता कराते हैं। सीता के द्वाग आकाश से गिराये हुये आभूषण सुग्रीव द्वारा राम को दिये जाते हैं। परस्पर वार्ता होती है और बालि (बालि) को मारने के लिए राम सुग्रीव के साथ प्रस्थान करते हैं।

दूसरे दृश्य में बालि के पास रावण का पत्र आता है जिसमें निर्देश है कि राम-लक्ष्मण को पकड़ कर मेरे समीप भेज दो।^२ तार नामक मंत्री से चर्चा करता हुआ बालि सुग्रीव के साथ राम-लक्ष्मण को आते हुए देखता है। लक्ष्मण उसके और समीप आते हैं। परस्पर संवाद और परिचय होता है। बालि राम से युद्ध चाहता है। उनके ऊपर पर्वत का प्रहार करता है और एक ही वाण से मारा जाता है।

लक्ष्मण सुग्रीव को राज्य देकर भुजभूषण (अङ्गद) को पुत्रराज बनाते हैं। राम ऋष्यमूक पर वर्षाकाल बिठाते हैं। पारद प्रकट होने पर लक्ष्मण सुग्रीव को समझाने जाते हैं।

१. पृ. ४६: '...विन्दमूर्खे महिजामहार्पात् ।

यस्तत्र मुष्णाति स खलु प्राणसहितं वस्तु ददाति ।'

२. पृ. ५३: 'तो विधुरय समुद्गुण्डो दोर्दण्डोदत्य-मण्डितो ।

कुमारो सुकुमाराङ्गो प्रेषणीयो ममान्तिकम् ॥'

तीसरे दृश्य में उन्मत्त सुग्रीव को हनुमान् समझाते हैं और सैन्य बुलाते हैं । लक्ष्मण क्रोध प्रकट करते हैं । डरता हुआ सुग्रीव राम के समीप आता है ।

चौथे दृश्य में बानरों को खोज के लिये भेजा जाता है । राम हनुमान् को अभिज्ञान-रूप अंगूठी देते हैं । बानर लौट आते हैं, केवल अङ्गद आदि नहीं आते । द्रविड देश की स्व-प्रकाशिनी (स्वयंप्रभा) तपस्विनी राम को प्रणाम कर चली जाती है । सुग्रीव कहते हैं कि उसे अङ्गद आदि बानर मिले होंगे, तभी आई है । गृध्र (सम्पाती) आकर राम से कहता है कि बानर मिले थे, मैंने उन्हें बतलाया है कि सीता लङ्का में है । हनुमान् समुद्र पार गये हैं ।

पञ्चम अङ्क

इस अङ्क के प्रथम दृश्य में रावण मन्त्री से कहता है कि उसने स्वप्न देखा है कि सीता का समाचार लेने आया हुआ एक बानर सीता के समीप शिशिपा वृक्ष में छिपा है । फिर मैं सीता को भय देकर आया हूँ । राक्षसी (लङ्का) आकर बतलाती है कि राम का दूत बानर पुरी में प्रविष्ट हुआ है । वाटिकापाल आकर कहता है कि एक बानर वाटिका उजाड़ कर रक्षकों को मार रहा है । रावण मन्त्री को आदेश देता है कि बानर पकड़ा जाय ।

दूसरे दृश्य में धीरे युद्ध होता है । हनुमान् इन्द्रियकुमार (अक्षकुमार) को मार डालते हैं; वाटिका और सेना को विध्वस्त करते हैं; घनध्वनि (मेघनाद) उन्हें ब्रह्मास्त्र से बाँध डालता है ।

तीसरे दृश्य में हनुमान् रावण के समक्ष लाये जाते हैं । भयानक (विभीषण) की सम्मति से उनकी पूँछ में आग लगाई जाती है । लङ्का जलती है ।

चौथे दृश्य में हनुमान् सीता को अंगूठी देते हैं और सीता राम के लिए अभिज्ञानार्थ चूडामणि देती है । हनुमान् चले जाते हैं ।

पाँचवें दृश्य में अङ्गद आदि से मिलकर हनुमान् लङ्का का समाचार बतलाते हैं । अङ्गद कहते हैं कि हम सीता को साप से चले । ऋक्षराज (जाम्बवान्) के समझाने से सब लोग किष्किन्धा को प्रस्थान करते हैं ।

छठे दृश्य में हनुमान् आदि राम के समीप पहुँच कर सीता का वृत्तान्त बतलाते हैं और चूडामणि देते हैं । उसी समय राम बानर सेना के साथ प्रयाण करते हैं । समुद्र तट पर पहुँच कर राम शरण में धाये हुए विभीषण का अभिप्रेक कर देते हैं । सागर पर सेतु बँधता है । राम सेना को सागर पार करने का आदेश देते हैं ।

पष्ठ षट्

इस दीर्घाकार शब्द के प्रथम दृश्य में रावण कीर (शुक) राजस को भेज-कर वानर-सेना का समाचार प्राप्त करता है। वह स्वयं चन्द्रशाला से सेना को देखता है, फिर नृत्य देखने लगता है।

दूसरे दृश्य में राम सुबेल पर्वत पर स्कन्धावार स्थापित कराते हैं। चन्द्रमा के कलंक पर विविध कल्पनायें होती हैं। रावण की नृत्यशाला को लक्षित कर राम बाण छोड़ते हैं। प्रमात होता है और राम सेना को व्यूहबद्ध चलने का आदेश देते हैं।

तीसरे दृश्य में रावण चिन्तित है कि रात्रि में नृत्यशाला में छत्र, चामर और आभूषण अकस्मात् कैसे गिर गये। सुप्रीव रावण के समीप जाकर उससे मल्लयुद्ध करते हैं। विभीषण के परामर्श से अङ्गद रावण के समीप दूत के रूप में भेजे जाते हैं।

चौथे दृश्य में अङ्गद और रावण का संवाद होता है। अङ्गद के धरण रोपने का प्रसङ्ग भी वर्णित है। रावण वानरों को मारने का आदेश देता है।

पाँचवें दृश्य में राम और रावण के पक्षों से लड़ने वाले थोढ़ाओं का समर विस्तारपूर्वक वर्णित है। रावण के शक्ति-प्रहार से लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर हनुमान् सञ्जीवनी लेने जाते हैं, तब राम के आदेश से वे लौटते समय अयोध्या भी जाते हैं। भरत उन्हें राजस समस्त कर बाण मार देते हैं, तब हनुमान् द्वारा साय साई हुई सञ्जीवनी से ही वशिष्ठ हनुमान को सचेत करते हैं और उन्हें उस औषधि की पहचान करा देते हैं।

कुम्भकर्ण का कटा हुआ सिर हिमालय पर गिर कर उसे तोड़ डालता है। कवन्धपतन से भरतखण्ड के प्राणियों का सम्भावित नाश बचाने के लिए हनुमान् उसे पवन-प्रवाह में फेंक देते हैं।^१

सञ्जीवनी का प्रयोग अनेक बार किया जाता है। रावण मृत राजसों के शरीर समुद्र में डाल देता है।^२ अतः वे पुनः सजीव नहीं होते। मेघनाद को लक्ष्मण मारते हैं। इन्द्र के रथ पर चढ़ कर राम रावण से युद्ध करते हैं।

१. अंक ६ दृश्य ५ : 'स्वामीच्छामवगम्य भास्वसुतः चित्रं चकारोच्चकं-
रेतादुक्षतं श्वाहृषवने प्रोच्छाल्य तां प्राक्षिपत् ।
एते भारतखण्डजा ननु यथा जीवा न नाशं गता
विश्वस्मिन् बलमीदृशं श्वचिदहो मादशि नाकर्ष्यन्ति ॥'

२. 'मृतानां यातुषानानां शरीराणि सरित्पती ।

निक्षेपयति बलदयाद् बगशीर्षः क्षणे क्षणे ॥'

युद्ध का वर्णन प्रायः नेपथ्य से किया जाता है। सूत राम को बतलाता है कि रावण के हृदय में अमृतकुण्ड है। रावण का बध होने पर पुष्पवृष्टि होती है। मन्दोदरी आकर विलाप करती है।

लक्ष्मण विभीषण का तिलक करते हैं। विभीषण से आज्ञा लेकर हनुमान् सीता को लाते हैं। सीता की अग्नि-परीक्षा होती है, छाया समाप्त होकर वास्तविक सीता प्रकट होती है। सम्पूर्ण सेना पुष्पक विमान पर राम के साथ अयोध्या को प्रस्थान करती है। राम भरद्वाज के यहाँ ठहर जाते हैं। हनुमान् भरत को समाचार देने जाते हैं।

सप्तम अङ्क

इस अङ्क के प्रथम दृश्य में भरत गुरु वशिष्ठ को बुलाकर कहते हैं कि कल अवधि बीत जायगी। राम का कोई समाचार नहीं मिला। अवधि बीतने पर मैं जोवित नहीं रह सकूँगा। अतः आपको राज्य सौंपता हूँ। गुरु कहते हैं कि शुभ घट्टन हो रहे हैं। हनुमान् आकर भरत को राम के आगमन का समाचार देते हैं और कहते हैं कि कल सूर्योदय वेला में राम आएँगे। भरत स्वागत की तैयारी का आदेश देते हैं। हनुमान् से बात करते करते प्रभात हो जाता है। पुष्पक विमान दिखलाई पड़ जाता है। राम का स्वागत होता है। आकाश से मिलन का वर्णन है। गुरु मन्त्री को कहते हैं कि आज ही अभियेक का शुभ मुहूर्त है। राजतिलक की तैयारी और मङ्गल-गीत होते हैं।

दूसरे दृश्य में महाराज धीराम को शोभामाया का सङ्केत है। राम सिंहासन पर बँठते हैं। देवगण भेंट देकर स्तुति करते हैं। वानरों और राक्षसों को उपहार मिलते हैं। हनुमान् को सीता अपना मुक्ताहार देती है। हनुमान् दातों से दबा कर मोतियों को फाड़ कर फेंक देते हैं। सुग्रीव के प्रश्न पर वे कहते हैं कि इनमें राम नाम अद्विष्ट नहीं है। सुग्रीव पूछते हैं कि तुम्हारा शरीर कहाँ नामाङ्कित है। हनुमान् छाती फाड़ कर दिखाते हैं।

राजसभा में अगस्त्य प्रवेश करते हैं। वे रावण-पक्ष के मेघनाद और राम-पक्ष के हनुमान् को बोरता की विशेष प्रशंसा करते हैं। वे हनुमान् के पौधव की भी चर्चा करते हैं। सुग्रीव आदि अतिथि विदा किये जाते हैं। अप्सराओं के नृत्य और गन्धर्वों के गीत प्रारम्भ होते हैं। हनुमान् लौट आते हैं और बतलाते हैं कि उन्हें राम के समीप रहने की आज्ञा सुग्रीव ने दे दी है। राम उन्हें भी नृत्य देखने के लिए कहते हैं। नृत्य करने वाली पूषक् पूषक् अप्सराएँ नायिका-नेद के अनुकूल मुद्रा-प्रदर्शन करती हैं, जिसका गन्धर्व अपने

गोतों में वर्णन करते जाते हैं। अन्त में गोरगढ (गोरे), अर्बदेशीय (अरब) और तुर्कदेशीय (तुर्क) नर्तक आते हैं और मरुदेशीया (मारवाड़ की) बेश्या आती है। इन सबको पुरस्कृत किया जाता है। राम भरत को राज्य-व्यवस्था, लक्ष्मण को कोश और दशरथको सेना सौंपते हैं।^१

दूसरे दृश्य में स्वधुनी (गङ्गा) प्रह्लादकुण्डला (सरयू) से प्रश्न करती है कि वह उदास क्यों है। सरयू कहती है कि ११ सठस्र वर्ष राज्य कर राम अयोध्या के कीट-पतङ्गों सहित अन्तर्हित हो गए हैं। गङ्गा कहती है कि क्यों छिपाती है, राम तेरे निकट अपराजिता में नित्य रहते हैं।

इसके पश्चात् सूत्रधार राम (रघुनन्दन) की स्तुति करता है और उनसे भक्ति के अतिरिक्त आनन्द-रघुनन्दन नाटक की कीर्ति और स्थायित्व की याचना करता है।^२ राम 'तयास्तु' कह कर महलों में चले जाते हैं। केवल इसी अन्तिम भाग में राम का नाम रघुनन्दन है, अन्यथा सर्वत्र हितकारो है।

४. वाल्मीकि-रामायण का प्रभाव :—

आनन्द-रघुनन्दन का प्रणेता वाल्मीकि का सर्वथा लक्षणी है। यह कहा जा सकता है कि जैसे उत्तररामचरित, अभिषेक, प्रतिमा, प्रसन्न-राघव, महावीर-चरित आदि नाटकों के लिये वाल्मीकि रामायण उपजीव्य ग्रन्थ रहा है, वैसे ही यह आनन्द-रघुनन्दन का भी आधार बना है। इसी प्रकार उपर्युक्त नाटकों के प्रणेताओं ने जिस प्रकार कहीं कहीं स्वतन्त्रता ग्रहण की है, वैसे ही विश्वनाथसिंह ने भी अनेक स्थलों पर मौलिकता प्रकट की है। सबसे अधिक महत्त्व की बात यह है कि विश्वनाथसिंह के समक्ष हिन्दी का महान् लोकप्रिय ग्रन्थ रामचरितमानस विद्यमान था, जिसके प्रभाव से वे दूर नहीं रह सके। विश्वनाथसिंह रामभक्त थे और वे रामभक्त तुलसीदास की कथा-योजना से अधिक पृथक् नहीं हो सके। फिर भी ऐसे स्थल अनेक हैं जहाँ वाल्मीकि और तुलसी के कान्यों में कथात्मक भेद होने पर विश्वनाथसिंह ने वाल्मीकि का अनुसरण किया है।

१. अङ्क ७।८९ : 'राज्यं रक्ष जगद्भर त्वममयो राजन्वती भूरियं येनोच्चैत धराधर त्वमचलान् कोशांश्च मच्छासनात् । सेनां सङ्गम सादरामरिदर स्वास्यां त्वमन्वययन् स्वच्छाराम-विहारमारचयितुं गच्छामि कक्षान्तरम् ॥'

२. 'प्रेमाप्नोतु तवोत्तमं नरपतिः श्रीविश्वनाथः कृती ।'

उपरोक्त-यावत् कीर्तिस्त्वदीयां चरति कुबलयै तावदास्तां रसस्य प्राकट्यं नाटकं श्रीधर तव चरितं नन्ददानन्दभूमनः ।'

। यह उल्लेख भरतवाङ्मय के स्थान में माना जा सकता है।

रामचरितमानस में परशुराम धनुर्भङ्ग के पश्चात् तुरन्त विधिला में ही पहुँच जाते हैं किन्तु रामायण में वे दशरथ के अयोध्या जाते समय मार्ग में मिलते हैं ।^१ आनन्दरघुनन्दन में भी मार्ग में मिलते हैं । रामचरितमानस में मारीच का स्वर सुनने पर सीता और लक्ष्मण के बीच कटूवक्तियों का प्रयोग नहीं है, किन्तु रामायण में है^२ तथा आनन्दरघुनन्दन में भी है ।^३ सीता-हरण के समय जटायु द्वारा बतलाया हुआ विन्दमूर्हत भी रामायण में ही है ।^४ सुबेल पर्वत पर चढ़ने पर सुग्रीव के उछल कर गोपुर शृङ्ग पहुँचने और रावण के साथ मल्लयुद्ध करने का प्रसङ्ग रामचरितमानस में नहीं है । यह प्रस्तुत नाटक में^५ रामायण से लिया गया है ।^६ अभियेक के पश्चात् रामायण की कथा के अनुसार राम लक्ष्मण को यौवराज्य देना चाहते हैं और उनके अस्वीकार करने पर भरत को देते हैं ।^७ रामचरितमानस में यह प्रसङ्ग नहीं है किन्तु आनन्दरघुनन्दन में राम भरत को राज्यव्यवस्था सौंपते हैं । इसी प्रकार रामायण

१. बालकाण्ड : सर्ग ७४-७६ ।

२. आरण्यकाण्ड : स० ४५।६-७, २४, ३२, :

‘इच्छसि त्वं विनश्यन्तं रामं लक्ष्मण मत्कृते ।
लोमात्तु मत्कृते नूनं नानुगच्छसि राघवम् ॥
सुदुष्टस्त्वं दने नित्यं राममेकोनुगच्छसि ।
मम हेतोः प्रतिच्छन्नः प्रयुक्तो भरतेन वा ॥’

तथा—‘यिक् त्वामद्य विनश्यन्तीं यन्मामेवं विशङ्कसे ।’

३. अङ्क ३ श्लोक ७७-७८ ‘न प्रयास्युत्तरं दत्ते श्रुत्वार्पाह्वानमञ्जसा ।
इममेवाभिलाषं किमकार्षीः कुलपांसन ॥’

तथा—‘हा हन्त हन्त हत एव किलास्मि चण्डि

वज्जीपमा श्रवणमोरतिघोर-नाथो ॥’

४. आरण्यकाण्ड : स० ६७।१२-१३ :

‘येन याति मूर्हत्तेन सीतामादाय रावणः ।
विप्रणष्टं धनं शिप्रं तत्स्वामी प्रतिपद्यते ॥
विन्दो नाम मूर्हत्तोऽसी.... ।’

५. अङ्क ६ दृश्य ३ ।

६. युद्धकाण्ड : सर्ग ४०-४१ ।

७. वही : सर्ग १३०।९३ :

‘सर्वात्मना पर्यनुनीयमानो यदा न सीमित्रिहपति योगम् ।
नियुज्यमानो भुवि यौवराज्ये ततोऽप्यपिच्छद् भरतं महात्मा ॥’

और आनन्द-रघुनान्दन में जयन्त का प्रसङ्ग चित्रकूट में भरतागमन से पूर्व है ।^१ रामचरितमानस में पीछे है ।

रामायण की कथा से हटकर प्रस्तुत नाटककार ने कई स्थलों में राम-चरितमानस का अनुसरण किया है, जैसे शम्भुन द्वारा मन्धरा (और कंकैयी को भी) दण्ड देना, रावण और बाणामुर, राम और परशुराम, अङ्गद और रावण के संवाद प्रस्तुत करना, पञ्चवटी में वास्तविक सीता का अग्नि में अन्तर्हित होना और छाया-सीता का प्रकट होना तथा रावण-वध के अनन्तर पुनः छाया का अग्नि में लीप होना और मूल सीता का प्रकट होना तथा राम का अमिषेक उत्तरकाण्ड (सप्तम अङ्क) में रहना, जो रामायण में युद्धकाण्ड में ही होजाता है ।^२ सञ्जीवनी छाते समय हनुमान् का अयोध्या जाना भी इसी कड़ी में गिना जा सकता है ।

प्रस्तुत नाटककार ने कुछ प्रसङ्ग मौलिक रूप में उपस्थित किये हैं । धातिनेय (मारीच) काश्मीर से आकर विश्वामित्र के आश्रम पर आक्रमण करता है और उसके साथी पारसीक भाषा में बातलाप करते हैं ।^३ दशरथ को परशुराम के आगमन की सूचना गौतम मुनि का बङ्गीय छात्र देता है ।^४ पञ्चवटी में राम के समीप हीरमणि चुक आता है और अयोध्या का समाचार देकर भरत का विरक्त जीवन बतलाता है ।^५ विश्वनाथसिंह ने अनेक परवर्ती नाटककारों की भाँति यह आरोप समाप्त कर दिया है कि राम ने छिप कर बालि को धाग मारा । इस नाटक में सुधीव और बालि का युद्ध होता ही नहीं । इसके स्थान पर राम-लक्ष्मण स्वयं बालि के समीप पहुँचते हैं । बालि राम को जीतकर कीर्तिलाभ लेना चाहता है, अतः स्वयं युद्ध का आमन्त्रण देता है^६ और मारा जाता है । बालि के समीप रावण का पत्र आता

१. अयोध्याकाण्ड : सर्ग ९५ के पश्चात्—प्रक्षिप्त ।

२. युद्धकाण्ड : सर्ग १२९-१३० ।

३. अङ्क १ : 'धातिनेयः काश्मीरादतिवीरं चारुभुजं सहायमानया-मास ।
(आकाशे पारसीक—भाषया कोलाहलः ।), साथ ही देखिये—
हिन्दी आ० रघु० : पृ० १६ : फारसी में घोषणा ।

४. हिन्दी आ० रघु० पृ० ३० : बंगला भाषा में सन्देश ।

५. अङ्क ३ : पृ० ३७ ।

६. अङ्क ४ : पृ० ४३ : श्लोक ७-१७ :

'वासवि :—जगज्जयित्कलामं त्वां जयेयं स्फूर्जदोजसम् ।

... यदा तदा त्रिजगति स्थामहं बलिनां बली ॥ १६ ॥

भी नयी बात है। हनुमान् द्वारा कुम्भकर्ण के कवच का पवन-प्रवाह में फेंका जाना भी विश्वनाथसिंह की अपनी सूझ है।^१ उपर्युक्त परिवर्तन कवि ने अभिनेयता आदि कई दृष्टियों से किये होंगे तथापि यह काव्य मूलतः वाल्मीकि-रामायण पर ही आधारित है।

(ख) काव्यात्मक विरलेपण

१— नाट्य-शास्त्र की दृष्टि से ग्रन्थ का परीक्षण :

आनन्द-रघुनन्दन के प्रणेता ने इस ग्रन्थ को नाटक कहा है। हमें यहाँ इस बात का परीक्षण करना होगा कि शास्त्रीय दृष्टि से यह ग्रन्थ नाटक के रूप में कहीं तक खरा उतरता है।

दण्डो ने काव्य के पद्य, गद्य और मिश्र भेद बतला कर मिश्र के अन्तर्गत नाटक बतलाया है। यहाँ मिश्र का अर्थ गद्य और पद्य से मिश्रित तथा प्राकृत आदि अनेक भाषाओं से मिश्रित भी है।^२ मामह ने नाटकादि काव्यों को अभिनेयार्थ प्रबन्ध कहा है।^३ हेमचन्द्र ने काव्य का विभाजन प्रेक्ष्य (अभिनेय) और श्रव्य दो रूपों में किया है तथा प्रेक्ष्य के भी पाठ्य (नाटकादि) और गेय (रासकादि) भेद किये हैं।^४ विश्वनाथ ने प्रेक्ष्य शब्द के स्थान पर दृश्य शब्द का प्रयोग किया है।^५ यही दृश्य शब्द पीछे प्रचलित हो गया।

इसी दृश्यकाव्य को भरत मुनि ने नाट्य कहा है। मनुष्य के सुखदुःख से समन्वित स्वभाव का अभिनय ही नाट्य है। देवताओं, राजाओं अथवा महा-पुरुषों के पूर्वकाल में किये हुए चरित्र का अनुकरण ही नाटक है।^६ धनञ्जय

हितकारी—सायुधः स्याः स्थितोऽहं ते षतुःशरधरः पुरः ।

वासविः—कपीनामायुधं दन्ता नखाः द्रुमशिलादयः ॥ १७ ॥

(इति लोलेन लाङ्गूलेन शैलमुत्पाद्य प्रहर्तुमिच्छति ।)

१. अङ्क ६ : घटकर्ण का युद्ध ।

२. काव्यादर्शः १।११, ३१. ३७ ।

३. काव्यालङ्कारः १।१८ ।

४. काव्यानुशासनः अ०८ ।

५. साहित्य-दर्पणः ६।१ ।

६. नाट्यशास्त्र : अध्याय १।१२१, १२५

'योऽयं स्वभावो लोकस्य सुख-दुःख-समन्वितः ।

सोऽङ्गाद्यभिनयोपेतो नाट्यमित्यभिधीयते ॥

देवतानां मनुष्याणां राज्ञां लोकमहात्मनाम् ।

पूर्ववृत्तानुचरितं नाटकं नाम तद्भवत् ॥'

ने लिखा है कि अवस्था का अनुकरण ही नाट्य है, अर्थात् धीरोदात्त आदि गुणां से युक्त प्रख्यात नायकों के जीवन की अवस्थाओं का जब कोई नट रङ्गमञ्च पर अनुकरण करता है, तब उसकी इस अभिनय-क्रिया को नाट्य कहा जाता है। यह दृश्य होता है, अतः रूप कहा जाता है। राम आदि नायकों का नट पर सर्वथा आरोप हो जाने से नाट्य को रूपक कहते हैं। यह रसाश्रित होता है। इसके दस भेद हैं, जिनमें प्रथम नाटक है।^१

आचार्यों का मत है कि नाटक की आधिकारिक कथावस्तु प्रख्यात (इति-हास-प्रसिद्ध) ही होनी चाहिए। कल्पित वस्तु को नाटक का आधार नहीं बनाया जा सकता। प्रख्यात वंश का राजपि या दिव्य अथवा दिव्यादिव्य कोटि का धीरोदात्त व्यक्ति नायक रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए। दिव्य होते हुए भी नरामिमानो पुरुष दिव्यादिव्य कहा जायगा, जैसे उत्तर-राम-चरित में श्रीराम। शृङ्गार या वीर में से कोई एक अङ्गीरस होगा, किन्तु अन्य रसों का भी अङ्गरूप में समावेश होगा। निर्वहण सन्धि में अद्भुत रस की भी सृष्टि होगी। कम से कम पाँच और अधिक से अधिक दस अङ्क होने चाहिए।^२ आनन्द-रघुनन्दन की मूल (आधिकारिक) कथा रामायण की प्रख्यात कथा है। धीरोदात्त एवं दिव्यादिव्य कोटि के श्रीराम उसके नायक है। इसमें वीर अङ्गीरस है तथा अन्य रसों के प्रयोग भी हुए हैं। इसमें सात अङ्क हैं। अतः यह नाटक कोटि का रूपक है। यह प्रकरण नहीं है, क्योंकि प्रकरण की कथावस्तु उत्पाद्य (कवि-कल्पित) और लौकिक होती है तथा नायक धीर-प्रधान्त कोटि का व्यक्ति-मन्त्री, ब्राह्मण या वणिक् होता है।^३ नाटक में प्रत्येक अङ्क में विदूषक रहता है, शृङ्गाररस अङ्गी होता है और दिव्य और मनुष्यपात्रों का समागम होता है^४। आनन्द-रघुनन्दन

१. दशरूपक १।७-८ : 'अवस्थानुकृतिर्नाट्यं रूपं दृश्यतयोच्यते ।
रूपकं तस्ममारोपात् दशधैव रसाश्रयम् ॥
नाटकं ।'

२. दशरूपक ३।२३-२४ तथा साहित्यदर्पण ६।७-१० एवं वृत्ति ।

३. दशरूपक ३।३९-४० :

'अथ प्रकरणे वृत्तमुत्पाद्यं लोकसंश्रयम् ।
अमात्य-विप्र-वणिजामेकं कुर्याच्च नायकम् ॥
धीरप्रधान्तं..... ।'

४. साहित्यदर्पण : ६।२७३ : 'सप्ताष्ट-नव-पञ्चाङ्कदिव्य-मानुष-संश्रयम्
नाटकं नाम तत्राहुः प्रत्यङ्कं सविदूषकम् ॥'

वृत्ति—'प्रत्यङ्कं सविदूषकत्वादन शृङ्गारोऽङ्गी ।'

के प्रमुख पात्र राम और सीता दिव्यादिव्य कीटि के हैं, वीर अङ्गी रस है और विदूषक का व्यापार सीमित है, अतः मह त्रोटक भी नहीं है। शेष रूपकों में से भाग, प्रहसन, व्यायोग, बीषी और अङ्क एकाङ्की होते हैं, समवकार ३ अङ्कों का और डिम एवं ईहामृग ४-४ अङ्कों के होते हैं।^१ सात अङ्कों के आनन्द-रघुनन्दन को इनमें भी नहीं गिना जा सकता।

मरतमुनि तथा अन्य सभी आचार्यों ने नाटककार से महती अपेक्षाएँ की हैं। नाटक में पाँचों सन्धियों का सुश्लिष्ट प्रयोग होना चाहिये। उसमें चारों वृत्तियाँ, चौंसठ अङ्ग, छत्तीस लक्षण एवं अलंकार होने चाहिये। इनके साथ सूक्ष्म तत्त्व यह है कि नाटक एक अत्यन्त रसमयी रचना होनी चाहिये तथा उसमें महान् चरित्र का उत्थान होना चाहिये।^२

इस प्रकार हम देखते हैं कि नाटक की रचना करना सामान्य क्षमता की वस्तु नहीं है। इसमें बुद्धि-तत्त्व और हृत्तत्त्व दोनों की महती आवश्यकता है। एक ओर कवि को कथा के विकास-क्रम का रूप सुयोजित रखना पड़ता है, जैसे पाँचों सन्धियों एवं सन्ध्यङ्गों को सुश्लिष्ट करना पड़ता है; दूसरी ओर उसे भावामिव्यक्ति के माध्यम से संवादों को प्रभावोत्पन्न बना कर वातावरण के सहारे रसोन्मेष करना होता है। कथा के प्रमुख तत्त्वों को नाटककार श्रव्य काव्यों के क्रम से कथाकाव्यों या महाकाव्यों की भाँति नहीं प्रस्तुत कर सकता। उसे अपनी सीमाएँ और रङ्गमञ्च की सुविधाएँ देखते हुए केवल वही घटनाएँ सामने लानी होती हैं, जो सरस और प्रभावी बन सकें, शेष कथा की वह विशिष्टतम आदि के द्वारा सूचना-मात्र दे देता है। आङ्गिक, वाचिक, आहार्य और सार्विक अभिनय के द्वारा नट उचित संवादों के बल पर मञ्च और परदों की पृष्ठभूमि में वह वस्तु प्रस्तुत करता है जो सामाजिक (दर्शक) के अन्तःकरण में स्वरित रसावर्जन कर सके। इन सब तत्त्वों का निर्देश नाटककार के हाथ में रहता है। मिन्य रुचियों के व्यक्तियों की भी तृप्ति नाटक में हो जाती है, अतः नाटक को काव्यों के मध्य सर्वाधिक रमणीय माना गया है। आचार्यों ने काव्य के इस भेद की ओर इसीलिये सबसे अधिक ध्यान देकर सूक्ष्म विवेचन किये हैं।

यही यह ध्यान रखना होगा कि नाटक की सफलता नट और नाटककार

१. वही : ६।२२७-२६८।

२. नाट्यशास्त्र :

‘पञ्चसन्धि-वतुर्वृत्ति-वतुःषष्ट्यङ्ग-संयुतम् ।

षट्-त्रिंशत्संज्ञणैरितमलङ्कारोपशोभितम् ॥’

दोनों पर निर्भर है। यदि नट कुशल अभिनेता नहीं है तो वह अभिज्ञान-शाकुन्तल जैसे नाटक के प्रति भी सामाजिक के मन में अच्छे भाव उत्पन्न नहीं कर सकता। अतः नाटककार केवल पाठ्य काव्य की निमित्त कर सकता है, अभिनय के निर्देश प्रस्तुत कर सकता है, रसोत्पादक संवाद और फलप्राप्ति की ओर अप्रसर होने वाली घटनाओं के दृश्य लिख सकता है; ओर यहाँ उसके कर्तव्य की इतिथी हो जाती है। नाटककार नाटक के काव्य रूप को सर्जना कर उसकी दृश्यता को नटों के अधीनस्थ कर देता है।

आनन्द-रघुनन्दन की कथावस्तु धार्मिक-रामायण पर आधारित होने से उसमें सन्धिया अपने आप सुलिलष्ट रूप में विद्यमान है। प्रस्तुत नाटक के आरंभ में विष्कम्भ के प्रथम दृश्य में सूत्रधार को भेजी हुई पत्रिका में आदि कवि ने सूचित किया है कि दिङ्मूर्धा (रावण) से त्रस्त पृथ्वी की प्रार्थना से परम प्रभु अवतार लेंगे।^१ दूसरे दृश्य में आदि कवि मङ्गल कोलाहल मुनिकर कहते हैं कि अयोध्या में प्रभु का अवतार हो गया।^२ ये सूचनाएँ ही सम्पूर्ण नाटक का आधार हैं। यही स्वल्प, अदृष्ट हेतु के रूप में बीज की उत्पत्ति है। मुनि-जन उत्सुक होकर अयोध्या जाते हैं,^३ अतः यह आरम्भावस्था है। नाटककार प्रथम अङ्क में सीमा ही कुमारों को तरुण रूप में उपस्थित कर देता है।^४ घातिनी (ताडका) और उसके पुत्र आदि राक्षसों से यज्ञ की रक्षा के लिये

महारतं महाभोगमुदात्त-रचनान्वितम् ।

महापुरुष-वत्कारं साधवाचारं जनप्रियम् ॥

सुलिलष्ट-सन्धियोगं च सुदशोगं सुसाधयम् ।

मुद्गु-शब्दाभिधानं च कविः कुर्यात्तु नाटकम् ॥^१

साय ही देखिये दशरूपक : १-७ : 'दशर्षेव रसाधयम् ॥'

तथा ध्वन्यालोक : ३।७—वृत्ति : 'अभिनेयार्थं तु सर्वथा रसवन्धे-
मिनिवेशः कार्यः ।'

साय ही देखिये हिन्दी साहित्य कोश : भाग १ पृ. ३७१-७२ ।

१. विष्कम्भ : श्लोक ९.१० :

'दिङ्मूर्धोपद्रवाकान्ता ।

ततोऽवतारं परमः प्रभुर्भूम्यां प्रहोष्यति ॥'

२. वही, '...परावरेश्वरेश्वरावतारः समुदारः समभूदभूतपूर्वः ।'

३. वही, '.....मुनिमण्डली.....अपराजितां.....समिष्यतीति वयमपि
गच्छामः ।'

४. अङ्क १ : '...पुत्राः परिणय-योग्याः सञ्जाताः ।'

विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को माँग ले जाते हैं।^१ यज्ञ के समय कुमार अपने को राक्षस कुलान्तक घोषित करते हैं।^२ रावण धनुष को नहीं उठा पाता, जबकि राम उसे तोड़ देते हैं। परशुराम राम को ईश्वरावतार कह कर स्तुति करते हैं।^३ ये घटनाएँ बीज को स्पष्ट करती हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण प्रथम अङ्क में मुखसन्धि का स्पष्टीकरण और विकास होता है।

द्वितीय अङ्क में ब्रह्मकुण्डजा (सरयू) वशिष्ठ को देवताओं की वार्ता सूचित करती है जिसके अनुसार राम रावण के वधार्थ सीता-सहित बन जाना चाहते हैं।^४ इससे कथा का विच्छिन्न सूत्र पुनः जुड़ता है। यह बिन्दु प्रकृति है। तृतीय अङ्क में शूर्पणखा के नाक-कान कटने, खरादि राक्षसों के संहार और सीताहरण से सत्वर-व्यापार-रूप यत्नावस्था सूचित होती है। यह प्रतिमुख सन्धि है, जिसमें बीज का उद्भेद लक्षित भी है और अलक्षित भी। रावण-वध की भूमिका तो पूर्णतः बन चुकी है किन्तु उसका व्यावहारिक रूप अनिश्चित है।

चतुर्थ अङ्क में राम-सुग्रीव की मैत्री होती है।^५ यहाँ से सानुबन्ध पताका धर्मप्रकृति मूल कथा के साथ अन्त तक चलती है। रावण-वध की सम्पत्ति के लिये सुग्रीव और उनके साथी वानरों का रहना अनिश्चय हो जाता है। सीता के आभूषण मिल जाने से रावण का दक्षिण दिशा में जाना स्पष्ट हो जाता है।^६ यह प्राप्याशा अवस्था है क्योंकि सुग्रीव की सहायता मिलना निश्चित है। सुग्रीव का प्रमाद और आगे का कठिन कार्य अनिश्चितता भी उत्पन्न करते हैं। यहीं गर्भ-सन्धि चलती है, जिसमें दृष्ट-नष्ट बीज का अन्वेषण होता है, इसका विस्तार हनुमान् के यात्रारम्भ तक मानना चाहिए।

इसके आगे स्वयंप्रभा और सम्पाती का राम से मिलकर हनुमान् की लड्डा-

१. वही, श्लोक ५५-५६ :

‘धातिका राक्षसो बाधां संसृता कुर्वते क्रतो ।

धीरो कुमारो दीयेतां हितकारि-धराधरो ॥’

२. वही, ‘रे रे क्षुद्राः इत आमच्छत तावदावां राक्षस-कुलान्तको धनुष्म-न्तावागतौ भवावः ।’

३. वही, श्लोक—९७ : ‘जय पुरुष परेश ... ।’

४. अङ्क २ दृश्य १ : ‘दिक्शिरोदरणाय विधि-विहित-हितकारी नाम परमपुमानवतीर्णः पुनरिदानीमङ्गनासङ्ग... ।’

५. दृश्य १ ।

६. वही : ‘रजनोचरो बलादपहरतीति पुनरेकस्मिन्नंशुकाञ्चले बभ्राग्या-मरणानि पातितानि ।’

मात्रा सूचित करना प्रकरो प्रकृतियाँ हैं, क्योंकि कथासूत्र की आगे बढ़ाकर उनका लक्ष्य समाप्त हो जाता है। इसी कड़ी में हनुमान् द्वारा सीता की खोज कर लङ्कादहन द्वारा राक्षस-बल की चाह लेना और रावण को चिन्तित करना जोड़ा जा सकता है। पञ्चम अङ्क में ही सेना सागर पर सेतु बाँध कर उसे पार करती है तथा विभीषण जैसा सहायक मिल जाता है। यह नियतापि अवस्था एवं अवसर सन्धि है।

षष्ठ अङ्क में उपसंहृति या निर्वहण सन्धि है। रावण-वध का कार्य, प्रकृति और फलावस्था कहा जा सकता है। उपस्वियों और देवताओं का प्रास मिट गया है।^२ पृथ्वी रावण के अत्याचार से मुक्त हो गई है। यह राम की धर्मसिद्धि है। सीता की प्राप्ति को कामपूति मान सकते हैं। आगे चलकर अयोध्या में राम का राज्याभिषेक अर्ध-सम्पूति है। इस प्रकार त्रिवर्ग-सिद्धि होने से सम्पूर्ण फलसम्पत्ति की उपलब्धि हो जाती है। अवतार धारण करने का प्रयोजन सम्पूर्ण हो जाता है। शास्त्र के मतानुसार इस निर्वहण सन्धि में अद्भुत रस का भी प्रयोग हुआ है।^३

प्रस्तुत नाटक में विष्कम्भक का एक ही प्रयोग किया गया है, जैसे कि कथावस्तु के आरम्भ में लिखा जा चुका है। यह प्रथम अङ्क के भी पूर्व है और वस्तुतः प्रस्तावना का ही अंश है। यदि इसे विष्कम्भक ही मानें तो वह भी शास्त्र के अनुकूल है, क्योंकि उसका लक्ष्य नीरस वस्तु-विस्तार का परित्याग करना है।^४

विदूषक की उपस्थिति केवल नाटकारम्भ में दशरथ की राजसभा में है।

१. वही : दृश्य ४ : 'गृध्रः—महाराज ! युष्मत् कृपापात्राणि वानरा मिलिताः ...श्रेतामल्लः' पारं प्रागाद् गहत्मानिव... ॥ ६३ ॥'

२. अङ्क ६ पृ० ७७ : सुकण्ठ : 'दिङ्मूर्ध-भरण-स्वामिन्निभूत्सर्वाऽभयङ्करम् । हन्तुं स्वयैव योग्योऽयं चराचट-विजित्वरः ॥'

३. पृ० ७२ : 'द्वयोरपि तूष्णीरादीदृशानां बाणानामुपादानं मञ्जुसिञ्जिनी-संयोजनमाकर्षण-प्रहरणे अपि न कोपि निरीक्षितुं शक्नोति ।

कीदण्ड-निःसरदक्षिणित-काण्ड-माला-शल्याग्र-गूह्य बलिता नितरां विशाला । लम्ना द्वयोरपि धनुर्धरयोः शरीरेप्रोहण्ड-दण्ड पटलोव विभाति भूरि ॥'

४. दशरूपक : १।२८-२९ :

'आदौ विष्कम्भकं कुर्यादङ्गं वा कार्ययुचिततः ।
अपेक्षितं परित्यज्य नीरसं वस्तुविस्तरम् ॥
यदा समदर्शयेच्छेषं कुर्याद् विष्कम्भकं तदा ।'

यह विदूषक रामलीला के भाँड़ों की भाँति अश्लोल शब्दों के प्रयोग कर कुत्सित हास्य उत्पन्न करता है। वह संस्कृत में वार्तालाप करता है।^१ वह अन्य नाटकों के विदूषकों की भाँति नायक का सखा नहीं है।

नाटककार ने अन्त में एक ओर सरयू के मुख से राम का महाप्रयाण सूचित कराया है दूसरी ओर गङ्गा के मुख से दार्शनिक मत प्रकट कराया है कि राम अयोध्या में नित्य वास करते हैं। यह गुप्त प्रसङ्ग सरयू छिपाए हुए थो और गङ्गा से सुनकर मुस्करा देती है। यही नाटक समाप्त होता है। इस प्रकार दर्शन के प्रभाव से दुःखान्त वस्तु को सुखान्त करने की चेष्टा की गई है। कवि चाहता तो वह राम के राज्याभिषेक के समय नृत्यवर्णन के अन्त में नाटक की समाप्ति कर भरतवाक्य प्रस्तुत कर सकता था, किन्तु उसने ऐसा नहीं किया। सूत्रधार अन्त में प्रकट होकर चरदान माँगता है जो भरतवाक्य की अपेक्षा फलस्तुति अधिक प्रतीत होती है।

युद्ध और वध के प्रसङ्ग रङ्गमञ्च पर नहीं आने चाहिए,^२ किन्तु इस नाटक में युद्ध का अत्यधिक विस्तार होने से ये दोष सम्भवतः अपरिहार्य होकर प्रस्तुत हो गए हैं।^३

इस नाटक में अनेक स्थलों पर नारी-पात्र एवं दास-वर्ग भी संस्कृत का प्रयोग करते हैं।^४ इन व्यतिक्रमों के पश्चात् भी यह काव्य नाटक के न्यूनतम मूल्यों से होन नहीं है।

२. संवादों की प्रमाणात्मकता और अभिनेयता—

नाटककार ने आनन्द-रघुनन्दन में निम्नलिखित पात्रों की योजना की है—
पुरुष पात्र—१. दिग्मानराज (राजा दशरथ), २. हितकारी (राम),

१. दृश्य १ : 'नारी गङ्गा भवतीति ।...अहमपि गङ्गास्नानं करोमि ।'
२. दशरूपक : ३।३४-३५.
'दूराध्वानं वधं युद्धं...प्रत्यक्षाणि न निर्दिशेत् ।'
३. अङ्क ४ दृश्य २ : 'हितकारी चरं निस्सारयति । वासविः प्राण-
प्रयाणं नाटयति ।'
४. अङ्क १ दृश्य २ : 'देव्यः—

राजेन्द्र लालसास्माकं कदामोपां वधूजनान् ।

निर्निरीक्ष्यामहे सान्द्रानन्दैर्नयन-नीरजैः ॥'

तथा अङ्क १ दृश्य १ : 'नटी--हे नाथ ! हे नाथ ! प्राप्तास्मि ।'

और अङ्क १ दृश्य ३ : 'वर्षवरः—'महाराजि ! चतुरः कुमारान्

रत्नालङ्कार-वधनादिभिरलङ्कृतानाकारयति महाराजः ।'

३. जगद्मर (भरत), ४. धराधर (लक्ष्मण), ५. अग्निदर (दशरथ),
 ६. जगन्मोक्ष (ब्रह्मिष्ठ), ७. मुनिहित (विद्वामित्र), ८. पातिनेय (मारीच),
 ९. घनमोद (घनानन्द), १०. सीरकेतु (जनक), ११. धरामुर (बाणा-
 मुर), १२. दिक्किराः (रात्रण), १३. रैगुकेय (परशुराम), १४. आदि-
 कवि (बान्मोकि), १५. वायम (वाक-जयन्त), १६. सोमजनक (धृति),
 १७. मैत्रावरुणि (अगस्त्य) १८. आरणि (जटायु), १९. रामम (खर
 राजम), २०. त्रिमुण्ड (त्रिगिराः), २१. दीर्घजठर (महोदर), २२.
 मुकुण्ड (सुधोव), २३. ऋक्षराज (जाम्बवान्), २४. प्रेतमल्ल (हनुमान्),
 २५. वाग्वि (बाली), २६. मूत्रनृपग (अद्भुत), २७. सूत्र (मग्गानी),
 २८. इन्द्रियकुमार (अक्षकुमार), २९. घनवृद्धि (मेघनाद), ३०. नयानक
 (विभोषण), ३१. दधिपदन (दधिमुख), ३२. श्याम (नील) ३३. वैद्यकवि
 (सुपेय), ३४. घटकर्ण (कुम्भकर्ण), ३५. मानवान्तक (मरान्तक), ३६.
 सुरान्तक, ३७. अत्युदर, ३८. अतिपार्व, ३९. दीर्घदेह (अतिशय), ४०.
 वृषभ, ४१. घट, ४२. घातनयन (मकराज) ।

इनके अतिरिक्त सूत्रधार, पारिषाद्वक, सचिव, सभासद, बन्दीजन, नट,
 विद्वेषक, वर्षवर, द्वारपाल, पणिक, अमात्य, चार, प्रतीहार, सिध्य (अनेक),
 छात्र, शुक, गोन, तार मन्त्री, रावण का मन्त्री, कीर, वृक्षवाटिकापाल, सूत,
 गोरण्ड, अर्धदेशीय और सुदृक्देशीय नर्तक, गन्धर्व भी हैं ।

स्त्री पात्र—१. कुसला (कौशल्या), २. वासुदेवी (वैश्या), ३. सुहिता
 (सुमित्रा), ४. पातिनी (ताड़का), ५. देवी (जनक-पत्नी सुनयना), ६. ब्रह्म-
 कुण्डला (सरयू), ७. महिजा (सीता), ८. कुटिला (मन्परा), ९. अनीर्धरा
 (अनमूया), १०. दीर्घतन्त्री (सूर्पणखा), ११. किराती (शबरी), १२. सुपेय-
 तमया (तारा), १३. स्व-प्रकाशिनी (स्वर्णप्रभा), १४. राक्षसी (लङ्का), १५.
 स्वर्णुनी (गङ्गा) ।

इनके अतिरिक्त नदी (दो), मत्तों (अनेक), राक्षसी, महदेशीय बारबधूती
 तथा उर्वशी आदि ३५ अधरारण हैं ।

पात्रों को इस भौड़ को देखने हुए स्पष्ट है कि नाटककार ने अभिनेयता
 और रङ्गमञ्च को सुविधा की दृष्टि से पात्र-योजना नहीं की । वह रामायण
 की राम-कथा से इतना अधिक प्रभावित है कि वह कथा के महत्त्वहीन अंशों
 को भी रङ्गमञ्च पर प्रस्तुत करने का लोभ संवरण नहीं कर सका । नाटक के
 आरम्भ में पूर्व केवल एक बार विष्कम्भक का प्रयोग किया गया है । चूलिका
 (नेपथ्य) का प्रयोग प्रचुर मात्रा में है । युद्धों का विवरण प्रायः सर्वत्र नेपथ्य

से दिया गया है किन्तु उसका बहुत सा अंश संवादों के रूप में भी है। उदाहरण के लिये निर्बंधन सन्धि में अद्भुत रस का इतना अधिक प्रयोग है कि रङ्गमञ्च पर लहका के दिस्मयकारी युद्ध का संवादों के माध्यम से विस्तृत विवरण दिया गया है। रसात्मकता पीछे रह जाती है और कथात्मकता सामने आ जाती है। युद्ध करने वाले कितने ही राजस रङ्गमञ्च पर प्रवेश करते हैं।

नाटककार दृश्यों के विभाजन में भी सफलता से दूर रह गया है। उसका लक्ष्य दृश्य उपस्थित कर रस-सृष्टि करना नहीं, अपितु राम-कथा की कड़ियों को जोड़ना है। इस उद्देश्य से अनेक छोटे-छोटे दृश्य उपस्थित किये गए हैं, जो विष्कम्भक आदि की भाँति नीरस-रस्तु-विस्तर को सूचित कर तुरन्त समाप्त हो जाते हैं। कितने ही दृश्य ८-१० पंक्तियों में ही समाप्त हो जाते हैं।^१ दूसरी ओर कुछ दृश्य इतने लम्बे हैं कि वे सामाजिक को थका कर उसकी शक्ति समाप्त कर सकते हैं।^२

इस नाटक में रङ्गमञ्च से सम्बद्ध निर्देश केवल पात्रों के बाह्य अभिनय और संवादों से सम्बन्ध रखते हैं। उनमें मञ्च की सज्जा में आवश्यक परिवर्तनों के सङ्केत नहीं हैं। जिस स्थान में कौन-सी घटना हो रही है और उसके अनुसार मञ्च पर कैसे परिवर्तन अपेक्षित हैं, यह बात पूर्णतः सामाजिक की बोधगम्यता पर अथवा अभिनय के भावों दिग्दर्शकों पर छोड़ दी गई है।

इसी प्रकार कुछ स्थानों पर काल-मर्यादा का सम्पूर्णतः अतिक्रमण हुआ है। लक्ष्मण-की मूर्च्छा पर राम विलाप कर रहे हैं। दैव के सुभाने पर हनुमान् दूर से औषधि लाने के लिये राम से आज्ञा माँगते हैं। राम आज्ञा देकर उन्हें अधोध्या का समाचार लाने के लिये भी कहते हैं। हनुमान् उधर निकलते हैं और इधर राम कहते हैं कि बहुत दिलम्ब हुआ। उनके इतना कहते ही औषधि लिये हुए हनुमान् पुनः प्रवेश करते हैं^३ (जैसे वे दरवाजे से ही लौट आए हों)। इस कथित विलम्ब की अभूति सामाजिक के लिए अवश्य है, जब कि आगे चल कर राम विलम्ब का कारण माँ पूछते हैं और हनुमान् बतलाते हैं कि वे अधोध्या

१. अङ्क १ दृश्य २५, ६ तथा अन्यत्र।

२. अङ्क ६ दृश्य ५।

३. अङ्क ६ : 'हितकारी-माहि, वृत्तान्तमप्यपराजिताया गृहीत्वेहायाहि ।
नेतामल्लः-तथा (इति निष्क्रान्तः) ।

हितकारी-महान् विलम्बो बभूव । नापातस्नेतामल्लः ।

किन्तु कारणं स्यात् । (सतः प्रविशति नेतामल्लः ।)'

में भरत के पाणों से आहत होकर मूर्छित हो गए थे और विशिष्ट के उपचार करने से स्वस्थ होकर आए ।

संवादों में पद्यों का अतिमात्र प्रयोग है । उन संक्षिप्त गद्यात्मक वाक्यों का अभाव है जो मर्म का स्पर्श करे । यही नहीं भावोद्देक के समय पद्यों का प्रयोग अस्वाभाविक भी है । इन नृटियों को देखते हुए एक ही कारण समझ में आता है कि नाटककार का प्रमुख लक्ष्य है, ईश्वर के अवतार राम की कथा प्रस्तुत करना । उसने नाटक को मूलतः पाठ्य का रूप दिया है, प्रेक्षक का नहीं ।

उपर्युक्त नृटियों के होते हुए भी अभिनेयता को दृष्टि से इस कृति को नितान्त असफल मानना उचित न होगा । नाटककार ने कथा को संक्षिप्त करने का प्रबल प्रयत्न किया है । प्रारम्भ का विषय हमें सूचित करता है कि पृथ्वी की प्रार्थना पर रावणादि राक्षसों के विनाशार्थ अयोध्या में परेश का जन्म हुआ है । इस प्रकार राम-जन्म की विस्तृत भूमिका विषय में सिमट जाती है । राम के वनगमन का सम्पूर्ण प्रसङ्ग आदिशिव की शिष्य के साथ हुई कुछ ही वाक्यों की चर्चा में सीमित कर दिया गया है । बोर और रौद्र रस की उद्भावना को लिये कवि जहाँ चित्रकूट में भरत के प्रवेश पर लक्ष्मण के ओजस्वी उद्गारों का विस्तार देता है, वहाँ वह राम और भरत के इस मिलन से उत्पन्न प्रश्नों को संक्षिप्त संवादों में ही निबंटा देता है । इसी प्रकार सीता को खोज को भी संक्षिप्त किया गया है ।

नाटक को जनरुचि के अनुकूल बनाने के लिये नाटककार ने रामलीला की शैली को अपनाते हुए कुछ विशिष्ट संवाद प्रस्तुत किये हैं । इनमें प्रमुखतः पद्यों को अंश रूप में भी पात्र बोलते हैं ।

प्रथम संवाद रावण-बाणामुर की वार्ता के रूप में है, जिसका कुछ अंश इस प्रकार है—

‘दिकृशिराः—भुजावरं बहन्नहो नु विस्मृतः परावरान् ।

शरामुरः—सहस्रबाहु-विक्रमं स्वमेव वेत्ति विष्टे ॥

दिकृ०—घनुस्तुलायां सन्तोष्य लक्षयं त्वं निजं बलम् ।

श्रोतयिष्येहमेवेदं परावृत्य यदैष्यसि ॥

शंरा०—इदं घनुर्गुरोरास्ते धत्ते यद्गन-योग्यतान् ।

श्रोतयिष्यसि चेन्वापि करिष्ये कृत्यमस्ति यत् ॥

दिकृ०—घनुर्भद्रत्वा तवापि मदमङ्गं करोमि ।

(इति परिकरं दध्वा धावति) ।

इस संवाद में सम्पूर्ण कथा के प्रतिनायक एवं सत्कार को अग्रायपूर्वक

कम्पित करने वाले रावण को बाणासुर के मुख से फटकार मिलना और घनुष तोड़ने में रावण का असफल होकर हास्यास्पद दनना लोकशक्ति के अनुकूल है और अभिनेयता की दृष्टि से उसका महत्त्व है ।

दूसरा संवाद परशुराम और राम का है, जिसमें लोकदृष्टि में कमशः पूज्यत्व प्राप्त करने वाले नायक राम को कट्ट वचन कहने वाले परशुराम का अन्त में मानभङ्ग होता है । उदाहरण के लिये एक अंश देखिये—

‘रंणुकेयः—जानासि किं न मां त्वम् ।

हितकारी—भार्गव भगवन्तवैपि किन्नेदम् ॥

रंणु०—वेत्ति हृदन्धो न हि माम् ।

हित०—प्रभवन्तं को न जानाति ॥ १६० ॥

रंणु०—मङ्गत्वा पिनाकममयो बहु मापमाणः

सिप्रं दिवं जिगमिपुः खलु दृश्यसे त्वम् ।

हित०—बालेन खेलन्वता कलितं विमग्नं

तद्योजनाहमिदमत्र भवेत् कथं नु ॥ १६१ ॥

... ..

सान्त्वयन्तं मुनिरिति पुनरपि गुरुनिन्दनं रटयति ।

अरिदर देहि घट्टं पश्यामि करोति किं मुनिः कुपितः ॥ १९० ॥’

तीसरा महत्त्वपूर्ण संवाद है राम और बाली का । यदि बाली ने स्वयं राम से कहा हो कि तुम्हारे जैसे जगद्विजयो को जीत कर मैं बलवानों में बलवान् होना चाहता हूँ, साथ ही बाली ने स्वयं पहले प्रहार किया हो तो राम के शौर्य-प्रदर्शन का मूल्य निश्चित ह्रा से बढ़ जाता है और नाटकीय तत्त्व में वृद्धि होती है । बालि-वध के प्रसङ्ग में यह वस्तु मौलिक तथा अनेक नाटकों से समन्वित है ।

‘वासविः— को युवां भ्रातरो भव्यो ।

घराघरः— आवां सत्रिय-नन्दो ॥

वा० —ज्ञायते दर्शनेनेतत् सविरोपमुदाहर ॥ १३ ॥

घरा० --दिग्मानराजमूनुहितकारी जगति गीत-सत्कोतिः ।

वा० --(हितकारिणं निरीक्ष्य)

अतिमुन्दर-मृदुलाङ्गो

रासम-संहार-लक्ष्म-विजयोऽसि ॥ १४ ॥

हितकारो—कस्त्वाद्गोऽस्ति बलवान्
येन गृहीतं परं त्रिगुर्वरम् ।

वा० —प्रबलस्त्वमेव एह-

स्त्रिजगति जितवान् सहस्रभुज-जयिन्म् ॥ १५ ॥

जगज्जदित्तल्लामं त्वा जयेयं स्त्रुजंदाजसम् ।

यदा तदा त्रिजगति स्यामहं बलिनां बली ॥ १६ ॥

हिउ०— सामुषः स्याः सिपतोऽह ते धनु-शरधरः पुरः ।

वा० —करोनामानुषं दन्ता नखा द्रुमशिलादयः ॥ १७ ॥

(इति सोल-लाङ्गूलेन शैलमुत्पाद्य भिषिपति) ।

चौथा विचित्र संवाद अङ्गद-रावण के बीच है। सोडाहरण का कलङ्क अजित करने वाले शक्तिशाली रावण को निर्भयतापूर्वक कठोरतम अरुणन्द कहनेवाला अङ्गद अवश्य ही लोकराशि के अनुकूल पात्र होगा—

‘भुजभूषणः—स्त्री-चोरः किल कुशास्ते ?

दिक्शिराः—नास्ति नेत्रद्वयं किमु ?

भुजभूषणः—विलम्ब कि त्वमेवास ?

दिक्शिराः—कटु वक्तुं किमागतः ?

उपरोक्त कोटि के संवाद अनिनेरता की दृष्टि से अवश्य ही प्रभावो एवं आह्लादजनक माने जायेंगे।

नाटककार ने ध्यानन्द-रघुनन्दन में कुछ रोचक पत्र-व्यवहार प्रस्तुत किये हैं। पहली पत्रिका आदिकवि की है, जो सिष्य श्रुतधर (सूत्रधार) के समीप जाती है। यह नाटक की भूमिका है और पद्यात्मक है। दूसरा पत्र जनक द्वारा दशरथ के नाम है, जिसमें वाराह की आमन्त्रण है, तीसरा दशरथ द्वारा जनक के आमन्त्रण की स्वीकृति के रूप में है। पिछली शताब्दियों में महाराजाओं के मध्य चलने वाले पत्र-व्यवहार की गद्यात्मक शैली की छाया इन पत्रों में प्राप्त होने से ये जन-रसि के अनुकूल हैं। इसी कड़ी में अधिक नाटकीय तत्व प्रकट करने वाला पत्र रावण का है, जो बाली की समा में शार नामक मंत्री द्वारा पदा जाता है। यह सर्वाधिक रोचक है—

‘स्वस्ति श्री महाराजाधिराज-श्री कनिराज-श्रीमान्-मिश्रवर्च-श्रीवात्सवि-
महावीर-रणधीर-महासयेषु लङ्कातः श्री राससेन्द्र-महीमहेन्द्र-श्रीविराजमान-
मानोपस-दिश्वदिकवि-श्री-श्री-दिविशरतः समाशिषः समुत्तन्तु । आवसोर-
कुशलमिह जगति नालीकजम्पा नालीलिखदेव । विशेषस्तावदिदानीम् । कावनि
रानकुमारो...’

तो विघृत्य समुद्दण्डो दोर्दण्डोद्धृत्य-मण्डितौ ।

कुमारो सुकुमाराङ्गो प्रेपणोयौ ममान्तिकम् ॥ ७ ॥

इति सं स्तात् ।'

इस पत्र में रावण द्वारा वाली को आशिष लिखना और यह कहना कि 'हम दोनों का अकुशल ब्रह्मा ने लिखा ही नहीं' (अतः कुशल-प्रश्न की आवश्यकता ही नहीं) एवं राम और लक्ष्मण को पकड़ कर लङ्का को भेज देने का निर्देश देना—ये उक्तिर्षा एक ओर रावण के अभिमानी स्वरूप का अङ्कन करती है, दूसरी ओर उन्नोसवी शती के सामाजिक के लिये आकर्षक और अनुरञ्जक है। इस प्रकार हम देखते हैं कि नाटककार ने प्राचीन परम्परा के साथ नवीन परम्पराओं का योग किया है और बहुजन-समाज को रक्षियों का समावेश कर नाटक को एक नयी दिशा दी है। नाटककार पाश्चात्य रङ्गमञ्च और नाट्यकला से परिचित या प्रभावित नहीं है। अतः आधुनिक दृष्टिकोण से इस नाटक का परीक्षण करना अन्याय होगा। पौराणिक नाट्यकला के सभी अङ्गों से अवश्य ही नाटककार परिचित है, साथ ही वह उसमें नवीनता का समावेश करता है, जिसमें राजपूत-संस्कृति की झलक है।

३. शैली—

आनन्द-रघुनन्दन नाटक में प्रदुबत रचना-शैली मध्यम श्रेणी की कही जा सकती है। उसमें प्राप्त भाषा और पदावली अवश्य ही अनेक स्थलों पर विवरणात्मक, नीरस और शिथिल है। कयात्मकता का आश्रय लेने से नाटककार ने बहुत सी सूक्ष्म वस्तु को दृश्यों के रूप में ग्रहण किया है, अतः घटनाओं के विवरण रस-हीन है। यह होने पर भी नाटक का आघे से अधिक भाग काव्यात्मक है। इस अंश में सरसता, सालङ्कारता एवं भावप्रवणता के दर्शन होते हैं। ऐसे स्थलों पर भाषा सशक्त, प्राञ्जल एवं प्रौढ़ है। रसों और भावों के अनुरूप दीर्घ-समास-युक्त, अल्प-समास-युक्त एवं समास-हीन पदावली के यथास्थान प्रयोग हुए हैं।

नाटक में वीर रस प्रधान रूप में लिया गया है। इसके अनुकूल अोज गुण, आरभटो वृत्ति और गौड़ी रीति के प्रदर्शन में कवि सफल हुआ है। अोज का परिपोष करने के लिये नाटककार ने रौद्र रस को अत्यन्त सफलता के साथ प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार अद्भुत और भयानक रस की अभिव्यक्ति भी पूर्ण सफलता के साथ हुई है। शृङ्गार रस की विशेष निष्पत्ति के लिये कवि ने राम की राजसभा में अप्सराओं के नृत्य और गन्धर्वगोष्ठ प्रस्तुत किये हैं। हास्य, बीभत्स और करुण का स्पर्श-भात्र हुआ है। शान्त रस नाटक में निषिद्ध

होने से नहीं लाया गया । भक्ति और वात्सल्य का भी स्पर्श किया गया है । आवश्यकतानुसार सभी गुणों, वृत्तियों और रीतियों के प्रयोग किये गए हैं । पत्रिकाओं और प्रवृत्ति-दर्पणों में समासाद्य उत्कलिकाप्राय शैली के गद्य प्रयुक्त हुए हैं । संवादों में छोटे-छोटे मर्मसंघर्षों गद्यवाक्य भी सुलभ हैं ।

लक्ष्मण देखते हैं कि कुम्भकर्ण वानरों का संहार कर रहा है । उनके हृदय में वीर रस का सञ्चार होता है और वे निम्नलिखित उद्गार के रूप में अपना उत्साह प्रकट करते हैं—

‘सुद-सुदान् कपीन् हंसि किमर्थं युद्ध-दुर्मदः ।

मम सम्मुखमागच्छ रण-रङ्ग-रथं विव ॥’^१

परशुराम के आ जाने से बारात के व्योम्बा की ओर बढ़ने में गतिरोध हो गया है; दशरथ मूच्छित पड़े हैं; राम के विनम्र वचन भी परशुराम पर कोई प्रभाव नहीं डालते; परशुराम कटु वचन कहते-कहते बहिष्ण और विस्वामित्र की भी निन्दा करते हैं; तब राम के हृदय में वीर रस जागृत हो जाता और वे शत्रुघ्न से धनुष माँगते हैं—

‘सान्तममन्दं मुनिरिति

पुनरपि गुरुनिन्दनं शटयति ।

अरिदर देहि धनुर्मे

पश्यामि करोति किं मुनिः कुपितः ॥’^२

बाली ने जगद्विजयी राम को धनुष धारण किये हुए सामने पाया और उसके मन में राम को पराजित करने की इच्छा से उत्साह प्रकट हो गया—

‘जगज्जयित्विललासं त्वां जयेयं स्फूर्जदोजसम् ।

यदा तदा त्रिजगति स्यामहं बलिनां बली ॥’^३

उपर्युक्त उदाहरण युद्धवीर के प्रदर्शित किये गए हैं । अनेक आचार्यों ने दानवीर, धर्मवीर और दयावीर को भी गिता है ।^४ नाँचे इनके भी उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं ।

विभीषण राम की शरण में आया हुआ है । वहीं यह राक्षसी की कपट

१. अङ्क ६, पृ० ७४ ।

२. अङ्क १।१९० ।

३. अङ्क ४।१६ ।

४. साहित्यदर्पण : रामचरण तर्कवागीश टीका : निर्णयसागर : शम्भूई : १९३९ : परि० ३।२३४ : ‘स च दान-धर्म-मुद्देर्दयया च समन्वित-श्चतुर्धा स्यात् ।’

नौति हो, इस आशंका से सुग्रीव आदि विभीषण को दण्डित करना चाहते हैं । शरणागत की रक्षा को धर्म मानने वाले राम का धर्मवीर और युद्धवीर का रूप इस अवसर पर एक माय उदित होता है और वे कहते हैं—

‘भो भोः मुकृष्ण शरणागत-पालकोहं
नैव स्वज्येयमिह मित्रतया प्रपन्नम् ।
कुन्ताम्यहं खलु कुल नखरस्य कोट्या,
किं कर्तुमोशत इमे मम कौगपीथाः ॥’^१

चित्रकूट में वशिष्ठ राम से कहते हैं कि भरत को इच्छा पूरी करो (अयोध्या को छोड़ चलो) । तब राम अपनी धर्मवीरता से, पिता की आज्ञा को अन्तिम बात कह कर विनम्र दृढ़ता द्वारा उन्हें विवश कर देते हैं—

‘माता-पित्रोरनुज्ञादावेवामुद् वन-सेषणे ।
यद्विचार्यं भवान् द्रूयात्तत्कुर्यां भगवन्नहम् ॥’^२

समुद्र पार करने से पूर्व ही विभीषण को लज्जा का राज्य देने का सङ्कल्प राम की दानवीरता का परिचय देता है—

‘मुकृष्णानय पायोधेः पायः प्लवग-पायिव ।
रक्षःपुरो-महाराज्य-महाराजं करोम्यमुम् ॥’^३

सीता के प्रति अरराध करने वाले काक (जयन्त) ने राम के बाण के मय से जब उन्हीं को रक्षा के लिये आर्तभाव से पुकारा, तब राम को उस पर दया आ गई और उन्होंने उसे क्षमा कर दिया । यह राम की दयावीरता का उदाहरण है—

‘ममामोघः शरः काक नमोवाकेन किमवेत् ।
दत्त्वा दुर्म पाप-पाकं याहिं नाकं यथासुखम् ॥’^४

रावण को युद्ध के लिए आते हुए देख कर सुर्याव की निम्नलिखित उक्ति में रावण का स्वरूपवर्णन रौद्र रम का सुन्दर उदाहरण है—

‘घ्नन् कुण्ड-भौर्वी करकमलगतं घामदन् वाणमेकं,
कर्पाण्डागोण-नेत्रः स्फुरद्विगुञ्चियुगः शक्रनीलाद्रिशोभः ।
अक्षयं वर्न-भ्रमे समर-भर-महावीरतोत्कूल वध्मि,
नः पर्याप्नोति पश्यन् रजनचर-मनिर्नन्द मन्त्रं हसंश्च ॥’^५

परशुराम की निम्नलिखित उक्ति में भी रौद्र रम है । साथ ही इसमें ओज गुण, आरमटी वृत्ति, गौड़ो गीति एवं रूपक अलङ्कार द्रष्टव्य हैं—

१. अङ्क ५।५० । २. अङ्क २।५३ । ३. अङ्क ५।५२ ।
४. अङ्क २ दृश्य ५ । ५. अङ्क ६ पृ० ६९ ।

'कोदण्ड-भ्रमिषु निमज्जये शितोन्द्रं

परसूर्मीं सुभटतरुन् प्रवाहयामि ।

प्रस्फूर्जत्सुमर-कोप-बाह्वग्नि-

ज्वालासु क्षितिप-मुतान् जुहोमि युष्मान् ॥'^१

राम और रावण का विस्मयकारी द्वन्द्व-युद्ध अद्भुत रस की सृष्टि कर रहा है—

'नालदप्यते धनुर्भोग्यां' मार्गणारोपणं द्वयो,

शरासारा उभयतो नारुं नोरुघ्नयन्त्यहो ॥'^२

कुम्भकर्ण को देखकर आश्चर्य में पड़े हुए बानरो में उसके अद्भुत रूप की चर्चा होती है—

'शास्त्रामुगंगनगैः परिवीत-मूर्ति-

रभङ्गपीचलाशरा विकराल-वक्त्रः ।

स्रष्ट्वाण्ड-खण्ड-पारमण्डित-रोमकूपः

स्तूना महानव घन समरे विभाति ॥'^३

टाटका के निम्नलिखित स्वरूप-वर्णन में आरभटी वृत्ति के साथ भयानक रस की निष्पत्ति हुई है—

'एषा दोर्घ-शिरोरहैर्षनजटामुद्घाटयन्ती स्फुटं

नेत्राङ्गार-शस्त्रा-लता-समुदयेराच्छादयन्ता दिशम् ।

दण्ड-प्रान्तर-सन्धि-सङ्गत-नृणा रक्त वहन्ता गजो-

न्मीलकृत्तिपटा गलान्न-विकटा दृष्टा ध्रुवं षड्विणो ॥'^४

लङ्का के युद्ध के निम्नलिखित वर्णन में अनुप्रासों के योग के साथ बीभत्स का निदर्शन है—

'उन्नादानां कदम्बैर्भुवन-भय कृता भूरि मज्जोदकान्तं

निर्मज्जत्पुन्मदानां तरलगतिजुषां मण्डलं योगिनीनाम् ।

नाभूत् कशापीदमामोधनमिति क्रूरुते कालिकाट्टाट्टहासं

क्रन्दं क्रन्दं शृगाली क्वलयति पलं प्रागशालीन-भावा ॥'^५

विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को दतलाते है कि जनक अपनी अयोनिजा (पृथ्वी-कर्पण से उत्पन्न) कन्या सीता का स्वयंवर रच रहे है। इस पर लक्ष्मण का निम्नलिखित प्रश्न शिष्ट हास्य उत्पन्न करता है—

१. अङ्क १।१८४ ।

२. अङ्क ६ पृ० ७६ ।

३. अङ्क ६ पृ० ७२ ।

४. अङ्क १।६७ ।

५. अङ्क ६ पृ० ७२ ।

‘भो गुरो ! सा सावदयोनिजा राजकन्या पायाणी किवा दाहजा कि पुनः प्राचीन-धातुजा वा ।’^१

माधुर्य गुण का प्रयोग कर्ण और शृङ्गार रस के दोनों पक्ष (सम्भोग और विप्रलम्भ) के साथ किया जाता है । नाटक में इसके उदाहरण सुलभ हैं ।

रावण की वृत्ति के प्रहार में मूर्च्छित लक्ष्मण के जीवन की अवस्था सन्दिग्ध हो जाने से राम के निम्नलिखित उद्गारों में कर्ण रस के साथ भारती वृत्ति, वैदर्भी रीति एवं माधुर्य गुण द्रष्टव्य हैं—

‘प्राणस्य ते मेऽत्र मूर्त्तं दशान्तरे
जोवाम्यहं चित्रमिदं धनुर्वर ।
दृष्ट्वा यदा प्रक्षयति मां तव प्रसूः
कुनास्ति पुत्रस्तव सङ्ग-सङ्गतः ॥
किमुत्तरं देवमयो मया तदा
विधे विधानं किमिदं तवाद्मुहम् ॥’^२

वैदर्भी वृत्ति, पाञ्चाली रीति और माधुर्य गुण के साथ समासोक्ति और उत्प्रेक्षा अलङ्कारों से युक्त निम्नलिखित श्लोकों में प्राप्त निशादवर्णन में शृङ्गार के सम्भोग पक्ष का पूर्ण परिपोष है—

‘रक्षतां विलोक्य दिशं रुचिरां प्रतीचीं
मित्रागमां नु पृत-कुड्कुम-पद्म-रागाम् ।
श्यामं जगद् विदधनी च निशागतेय-
मुरकण्डिता किमु निज प्रिय-सङ्गमाय ॥
शृङ्गार-कान्ति-अलिनामरण-प्रमूढ-
शय्या-सितांसु-किरणाहित-पद्धति-श्रीः ।
कान्तः सुधाकर उपेत्य मुरंस्मतेऽत्र
वीमूषवर्षमृदमन् स करिष्यतीति ॥
अमुना बिहस्य विधुना
सैवा निर्माति विदग्धनाथेन ।
तारावति हास-परा
मुदिता मधुरं द्विजाः स्वनन्तोमे ॥’^३

अप्सरा-नृत्य के वर्णन में कवि ने नायिका भेद प्रस्तुत किया है । इनमें से अमिसारिका का उदाहरण यही दिया जाता है । इसमें अनुप्रासों के प्रयोग के साथ शृङ्गार रस प्रदर्शित है—

‘गङ्गा-तुङ्ग-सरङ्ग-गौर-वसना हारावली-शोभना
दृष्ट्वा दर्पण-विम्बमिन्दु-वदना सर्वाङ्ग-शृङ्गारिणी ।
मन्दीकृत्य मुखेन्दुना हिमकरोद्योतं प्रयान्ती प्रियं
स्वीयां निन्दति गन्ध-सिन्धुर-गति प्राणेश-सङ्गातुरा ॥’^१

इसी प्रकार गुप्ता नायिका के निम्नलिखित उदाहरण में परिपूर्ण भाव-
व्यञ्जना है—

‘वर्षत्युन्नत-शरिदे जलमुपादातुं प्रसू-प्रेषितां
स्निग्धाध्व-स्खलितामयं तु सुजनः प्रोत्थापयामास माम् ।
भद्रं जातमिहागता स्वमपि यन्नोचेदिहृद्यो जनः
किं किं नो कथयेदभूः प्रियसखि त्वं मे सहायापना ॥’^२

ऋष्यमूक पर्वत पर वास करते समय राम के इस कथन में विरहावस्था
सुन्दर रूप में व्यञ्जित हुई है; इसमें सात्वती वृत्ति और बँदनों की रीति है—

‘महिजाङ्गानि स्पृष्ट्वा,
स्फुरा प्रकृतं स्वं सहायुताङ्गारति ।
विरहेण दह्यमानां
तनुमेतां सिशिर्य त्वरया ॥’^३

विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण को तपोवन की ओर जाते देख माता का
वात्सल्य पश्चात्ताप के रूप में फूट पड़ता है—

‘व्रजति मम कुमारवेप आदाय योगी
कथमहह वितोर्षो प्राणसारो नृपेण ।
मुहुनि कुसुम-तल्पे सिद्यतो यो व्रजन्ती
वनभुवि नु भवेतां तौ कथं सौख्यवन्ती ॥’^४

उपस्विनी किराती के निम्नलिखित उदाहरणों में भक्ति-रस के अन्तर्गत
दास्य भाव प्रस्फुटित है—

१. अङ्क ७।७९ : देखिये दशरूपक २।२८ :

‘कामार्त्तामित्ररेत्काग्तं सारयेद् वाभिसारिका ।’
भानुदत्त के अनुसार यह ब्योस्ताभिसारिका है ।

(देखिये रसमञ्जरी : चौखम्बा : बनारस : १९०४ : पृ० १७७) ।

२. अङ्क ७।५७ : परोड़ा नायिका के ६ भेदों में से प्रथम गुप्ता है । यह
उदाहरण गुप्ता के प्रथम प्रभेद वृत्तमुरतगोपना का है—

रसमञ्जरी : पृ० ६९ : ‘गुप्ता त्रिधा । वृत्तमुरतगोपना-’

३. अङ्क ४।४३ ।

४. अङ्क १।५८ ।

‘यं वीडय राक्षसा अपि
 मुह्यन्त्यद्वाधिसङ्गरं स्विरम् ।
 यं संस्मरतः स्फुरति
 ध्यायन-सन्ध्येव मानसं शम्भोः ॥
 विचरन् कदम्पतीह
 त्रिभुवन-भर्ता धराधरेण समम् ।
 मम शिरसि विश्वनाथः
 शिशिरं च करं करिष्यति कृपालुः ॥’^१

ऊपर कुछ अलङ्कारों का निर्देश किया जा चुका है । यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं । कवि ने शब्दालंकारों के रमणिक प्रयोग किये हैं । अनु-प्रास की छटा निम्नलिखित श्लोक में दर्शनीय है—

‘वञ्चवत्पञ्चवटो सरिद्-वरतटी-निष्ठा विभार्युदमटी
 भूता राग-रजः करो स्रग्दृशां दृश्या सुसाम्भोधरी ।
 सन्तापारभटी भटी सुमलताबेगी सुपर्णोत्पटी
 कत्यो याति घटोव यत्र रचिता कान्ता कुटी स्वनटी ॥’^२

रावण-वध के पश्चात् राम के दर्शनार्थ उत्कण्ठिता सीता के वर्णन में उपमालङ्कार देखिये—

‘चातकोव तृपिताम्बुद-पथं
 पूर्णचन्द्रमिव चारु चकोरो ।
 द्रष्टुमुत्सहत उत्कलिकार्ता
 स्वामिनं स्वमथ राजकुमारी ॥’^३

परशुराम की इस उक्ति में अनुप्रास के साथ रूपक की संसृष्टि द्रष्टव्य है—

‘कारयसि कि ददामिद-
 मवनिप-गर्वाटिवो-दव-ज्वाला ।
 चित्रा कुठार-धारा
 हित-रिपु-दाराभि-नोर-विस्तारा ॥’^४

राम के द्वारा ऋष्यमूक पर्वत के वर्णन में अपह्लाति का प्रयोग किया गया है—

१. अङ्क ३।१०१-१०२ ।

२. अङ्क ३।२ ।

३. अङ्क ६ पृष्ठ ८५ ।

४. अङ्क १।६३ ।

'ननु कलयति घण्टा-किङ्किणीनां निनादं
स्वगत-विरथ-पंक्तिदन्तजानिम्बकानाम् ।

सिरसि लसित-घानु-श्रेणि-शृङ्गारशाली
न हि गिरिरयमास्ते किन्तु मत्त-द्विपेद्रः ॥'^१

राम के हो मुख में गुबेल पर्वत पर चन्द्र-बन्धु-वर्णन के रूप में विरह की
ध्वनि से पूर्ण अस्तुति का एक और उदाहरण प्रस्तुत है—

'न स्यामता शशिनि सुभ्रतरेभिराम-
स्यामा-वियोग-जनित-स्फुर-वाण-वर्षे ।

रन्प्रोक्तं हृदयमस्य तदन्तरिक्षं
सलक्ष्यते सजल-नीरद-नील-वान्ति ॥'^२

राम को देखकर परशुराम का कपन अनुप्राण एवं गन्धेह का उदाहरण है—

'अहो कामः स्याच्चेत् स्मरहरघनुनाम कपनात्
त्रिदूरं यातः स्यात्कर-कमल-वट्टाञ्जलि-गूढः ।

रसस्त्वास्वादात्मा प्रभवति न कर्तुं करबलाद्-
गुनाकृष्टि कष्टादपि जगति शृङ्गार-चणितिः ॥

हरिः स्याच्चेच्चक्र प्रभृति-रमणोपायुष-धरः
चतुर्बाहुस्त्वोद्दुर्नुरतिषु च राजेत् क इतरः ।

ननोहारो हारो रुचिर-रश्मि-धारी प्रति-सनु-
रुहं कोपं भाति प्रकट-दितकारि-व्यतिकरात् ॥'^३

रावण द्वारा अपनी शक्ति की प्रशंसा में प्रकट किये हुए उद्गार में अनुरास
के साथ अस्तुति अलङ्कार देखिये—

'मद् दोर्दण्ड-प्रचण्ड प्रहृति परिदलत्कालदण्डः सदण्डोऽ-
गाद्-ब्रह्माण्डादसण्डाद्-भुवन-भय-विवातापि चण्डासु-दिम्भः ।
ब्रह्माण्डासण्ड-भाण्डे प्रसूतमतितरा प्रेक्ष्य चण्ड-प्रतापं
मातंण्डः कादिशीकः सरति दशदिशो मौनमात्थाय मन्दम् ॥'^४

कोमल-कान्त पदावली में श्लेषमूक के वर्णन के रूप में कवि का वर्पाकालीन
प्रकृति-चित्रण द्रष्टव्य है—

'प्रसुभर-मद-धारी निर्वरैर्निर्भरदिम्-
नन्द-किसलय लोलद्राजि-राजकुष-श्रीः ।

१. अङ्क ४।२८ । २. अङ्क ६।७ । ३. अङ्क १।१५८-५९ ।

४. अङ्क १।१०२ ।

अनुवहति सतानां चामर-श्रेणि-शोभां

स्तवक-भर-नतानां चक्रबालैर्लतानाम् ॥^१

गद्यों के क्षेत्र में चूर्णक शैली के प्रभावकारी लघु वाक्य भी मिलते हैं—

‘मर्यादायामतीतायां न स्थास्यन्ति मन्त्राणाः ।’^२

‘इदानीं वनितानां विश्वासमिह जयति किमिति कोपि करिष्यतीति ।’^३

‘अस्मै फलं दत्त्वा त्वामपि प्रबोधयितामि ।’^४

जैसा पहले लिखा जा चुका है, कवि ने दीर्घ-समास-दुबुद्ध चमत्कारपूर्ण गद्यों के भी प्रयोग किये हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

‘पुच्छूत-हरितिर्भगवान् हरिदरवः प्रकाशमासादपःत्रय दक्षिणस्यां दिशि कृपणीकृताति-विशारदानन्द-शारदानारद-शारदारविन्द-कुन्द-कान्ति-सन्ताननपरि-माण-दोषिति-प्रतान-वितान-वितापमान-दिगन्तरालमकाल-कुबलपिनी-दल्लभा-सण्डनहामण्डलमिदमुद्गम-मार्तण्ड-नण्डलोद्योत-मण्डली-कुण्डलीकृष्णिमण्डू लोचन-गोचरी भवति । (पुनर्नेत्र्ये) जगन्नाथ ! पुष्पकं नाम विमानमिदम् ।’^५

प्राकृत भाषा में भी गद्यों के प्रयोग प्राप्त हैं। एक अन्य पद्यिक स्त्री की माया (मायधी) देखिये—

‘अइ सहि अइ भइनि अइ माए एकौ पहिओ समाआओ तन्मूहादामुणिदं
जारिसा वम्हांड-भण्डोअरे प कुणिदा तारिसा जुडल कुनार आगम्मन्ति ।’^६

४. प्रमुख चरित्र—

वाल्मीकि ने रामायण में राम का जो उदार एवं महान् चरित्र स्थापित किया है, उससे प्रभावित हो कर भारत के सहस्रों कवियों ने विभिन्न भाषाओं में एवं संस्कृत में रामकथा को काव्य-बद्ध किया है। उन्हीं काव्यों में से एक विश्वनाथसिंह का आनन्द-रघुनन्दन नाटक है। अपनी सीमाओं में बंध कर नाटककार ने राम का विशाङ्कन किया है, साय ही उसने अन्य चरित्रों का चित्रण किया है।

(१) हितकारी

इस नाटक में राम को हितकारी नाम दिया गया है। हितकारी धीरोदात्त

१. अङ्क १२६ । - २. अङ्क ७ पृ० १ । ३. अङ्क २ पृ० २७ ।

४. अङ्क २ पृष्ठ २९ । ५. अङ्क ७ दृश्य १ ।

६. अङ्क १ पृ० ९ : संस्कृत रूप—

‘अयि सति ! अयि भगिनि ! अयि मातः ! एकः पथिकः समायातः ।
तन्नुसारद्भुतम् । यादृशो ब्रह्माण्ड-भाण्डोअरे न श्रुती तादृशी दुगल-
कुमारी आगच्छतः ।’

नायक के समस्त गुणों से पूर्ण है। वे दिव्य परेश ब्रह्म के अवतार हो कर भी अद्विग्य मनुष्य प्रकृति का अनुसरण करते हैं और लोकदर्शि के अनुकूल बन जाते हैं। उनके जन्म लेते ही एक ओर देवताओं और दूसरी ओर मुनि-मण्डलों को हर्ष होता है।

विश्वामित्र राक्षसों से यज्ञ की रक्षा के लिए राम और उनके साथ लक्ष्मण को ले जाते हैं।^१ राम घातिनी तथा उसके पुत्रों घातिनेय और चारुमुज को परास्त कर एक सुरक्षा का वातावरण निर्मित करते हैं। राम का दिव्य स्वरूप भी साथ ही साथ प्रकट होता है। उनके स्पर्श से शिलामयी अहल्या पुनः नारी-रूप प्राप्त करती है।^२ उनका रूप देखकर जनक प्रसन्न हो जाते हैं^३ और जन-समाज राम को सीता के योग्य घोषित कर देता है।^४ जिस धनुष को रावण भी नहीं हिला सका था, उसे राम ने क्षण भर में तोड़ कर असौम शक्ति का परिचय दिया।^५ धनुर्भङ्ग को सुन कर परशुराम प्रचण्ड वेग से आते हैं। वे राम को देख कर चकित रह आते हैं।^६ उनके साथ राम अत्यन्त विनम्रता का व्यवहार करते हैं और उनके काटने के लिए हाथ आगे कर देते हैं।^७ परशुराम वशिष्ठ और विश्वामित्र का अपमान करते हैं, तब राम की कोषाग्नि घषक उठती है और वे धनुष मारते हैं।^८ अन्त में परशुराम उन्हें ईश्वर मान कर प्रणाम करते हैं।

१. अङ्क १।५६ : 'ऋतु संरक्षणार्थाय त्रिलोकी-वीर-शेखरी ।
धीरो कुमारी दीपेतां हितकारि-धराधरो ॥'
२. वही, १।८६ : 'शतमोदः—
पाथाणो पुत्तलीं चक्रे पिता शप्तवा स मत्प्रसूम् ।
शापोद्धारोऽपि तेनोक्तौवतोर्णः पुरुषः परः ॥'
३. १।९१ : 'धनुर्वाणधरो धीरो कोटि-कन्दर्प-मुन्दरो ।'
४. १।९३ : 'महिजा-हितकारिणोर्द्धयोयं
विधिना काम-रति-द्वयायुतानि ।
५. अङ्क १।१२१ : 'आश्चर्यमाश्चर्यमिदं निरीक्ष्यतां
गृहीतमुत्पापितमप्यर्दाशि नो । धनुः ... ॥'
६. वही, १।१६० :
'मनोहारी हारी रुचिर-रुचि-धारी प्रतितनू-रुहं कोऽयम् ?'
७. वही, १।१६२ : 'हस्तां गृहाण भृगुनन्दन विश्ववन्द्य
किं स्वामिना परिजनस्य भवेद् विवादः ।'
८. वही, १।१९० ।

हितकारी (राम) वन में जाते हैं तब मुनिजन उन्हें देख कर अपना अहोभाग्य मानते हैं और उनका आतिथ्य करते हैं ।^१ राम का सात्त्विक क्रोध शत्रु के शरण आते ही दूर हो जाता है । जयन्त (वायस) ने सीता को चोंच मार कर राम को चुनौती दी, बाण छूटा, किन्तु विकल वायस ने जैसे ही शरण माँगी, उसे क्षमा मिल गई ।^२

भरत को सैन्य-सहित आते देखकर जब लक्ष्मण क्रोध करते हैं, तब शान्त, निःस्पृह एवं दूरदर्शी हितकारी (राम) उन्हें बतलाते हैं कि 'भरत का मेरे प्रति तुम्हारे समान ही प्रेम है, मुझे राजधानी ले जाने के लिए भ्रा रहे होंगे ।'^३ भरत के निवेदन और वशिष्ठ के सङ्केत पर भी राम वन से लौटना नहीं चाहते, अपितु माता-पिता की आज्ञा पर दृढ़ रहते हैं^४ और पादुका देकर भरत को लौटा देते हैं ।

शूर्पणखा की सूचना पर जब रासम सेना-सहित राम पर चढ़ दौड़ता है तब वे अत्यन्त शूरता का परिचय देते हैं । वे अकेले चौदह सहस्र राक्षसों को मार गिराते हैं । ऐसी महासत्त्वता उनमें अनेक बार प्रकट हुई है ।

राम का दिव्य रूप यहाँ भी प्रकट होता है । वे सीता को अग्नि-प्रवेश करा कर छाया सीता को साय रख लेते हैं । यहीं मानुषामिमानो रूप पुनः प्रत्यक्ष होता है और छाया सीता का हरण होने पर राम अत्यन्त विकल हो कर उन्माद-ग्रस्त हो जाते हैं ।^५

राम मित्रता की सच्चाई पर विश्वास करते हैं; वे सुग्रीव को विपत्ति से

१. अङ्क २ दृश्य २ :

'गुरुः (वाल्मीकिः)—अहोभाग्यमहोभाग्यं पाद्यार्थादिकमानय..... ।'

२. वही, दृश्य ५ ।

३. अङ्क २।४८ :

'धर्मं' किमर्थमतिरोपमरं करोषि

यत्त्वादर्शो मयि रति तु दधाति सोऽपि ।

मत्सङ्गमाय नगरों प्रति मां च नेतुं

स्यादागतः स्वजन-सैन्द-व्रतैः समेतः ॥'

४. अंक २।५३ : 'माता-पितोरनुज्ञादावेवाभूद् वनसेवने ।'

५. उदाहरणार्थ अङ्क ३ दृश्य ८ : '(अशोकमवलोक्य)—

मन्मथ-सायक-नायक-मुसदायकमस्ति' क्षवाद्भुतं नाम ।

कथयाशोक कृशाङ्गो तस्वर मह्यं सखे नरवराय ॥ ९३ ॥'

मुषत करने का आश्वासन देते हैं^१ और स्वयं बालि से युद्ध कर उसे मारते हैं । (इस नाटक के अनुसार सुग्रीव की बालि से नहीं लड़ना पड़ता ।) हनुमान लड्डा से लौटकर जब सीता का समाचार देते हैं, तब उसी क्षण राम सेना को चलने की आज्ञा देते हैं ।^२ इससे उनकी वार्य-स्वरता सूचित होती है ।

विभीषण आकाश से 'घरण' बोलेता है, तब राम उस समय अपने सबसे समर्थ सहायक मित्र सुग्रीव की बात न मान कर विभीषण को घरण में ले लेते हैं^३ और उसे लड्डा का राज्य देकर अद्भुत धर्मवीरता का परिचय देते हैं ।

सुब्रह्मण्य पर पड़ने पर राम को पता चलता है कि रावण निदिवन्त भाव से नृत्य देख रहा है । राम बाण मार कर उसके चामर, छत्र और आभूषण गिरा देते हैं^४ और रस-मग्न हो जाता है ।

अपने अनुजों के प्रति राम का प्रेम अत्यन्त गम्भीर है । रावण लक्ष्मण पर ब्रह्मशक्ति का प्रहार कर देता है । लक्ष्मण के प्राण संकट में हैं । राम लक्ष्मण को गले लगाकर विकल हो जाते हैं । वे कहते हैं कि 'तुम्हारी माँ को क्या उत्तर दूँगा । इस कठिन समय में भरत ही सहायता कर सकेंगे ।'^५ इसी प्रकार युद्ध समाप्त होने पर राम विभीषण से कहते हैं कि 'वनवास की अवधि

१. अङ्क ४ दृश्य १ : 'हितकारी...मा कृयाः लोकम् । स्वन्तारी-हारिण-मेकेनैव शरेण हनिष्यामि ।'

२. अङ्क ५ दृश्य ६ : 'हित०—(विचार्य) विजयमूर्तमिदानीमेवास्तीति ।'

३. अङ्क ५ श्लोक ५० : 'नैव त्यजेयमिह मित्रतया प्रपन्नम् ।'

४. अङ्क ६ (पृष्ठ ६४) : 'नाट्यशालायामभि-भङ्गि-सिंहासनं त्रिपण्यस्य मे चामर-चतुष्टयमनर्घ-रत्नप्रचुरमातपत्रं सर्वाङ्गीगान्वाभरणानि चाकस्मा-देव निकृत्तान्मपठन् ।'

५. अङ्क ६ : (पृष्ठ ७१) :

'हितकारी—(धराधरमुत्थाप्यालिङ्ग्यवाष्पावहृद्ध-कण्ठ)

प्राणस्य ते मेऽत्र भृशं दशान्तरे जीवाम्पहं विप्रमिद घनुधरं ।
दृष्ट्वा यदा प्रक्षयति मां तव प्रभूः कुत्रास्ति पुत्रस्तव सङ्ग-सङ्गतः ॥
किमुत्तरं देयमयो मया तथा, विधे विधानं किमिदं तथादमुतम् ।
हा भातरं धीर जगद्मरं विना कः स्यात्सहायः समयेऽत्र दारुणे ॥'

वीरने में दो ही दिन शेष हैं । मैं वयोध्या न पहुँचूँगा तो भरत प्राण त्याग देंगे ।'^१

राम वयोध्यावासियों को तो प्राण-प्रिय है ही, सुग्रीव आदि साथियों को भी इतने प्रिय है कि राम अपने अभिप्रेक-समारोह के पश्चात् जब उनको बिदा करते हैं तब वे रो पड़ते हैं ।^२

इस प्रकार राम का विश्रण शील, शक्ति, सौन्दर्य के प्रतीक रूप में ती हुआ ही है, साय हो करुणा, मैत्री, परोपकार, उत्सर्ग, धीरता, नीतिमत्ता, प्रेम आदि सभी मानवीचित्र गुणों से उन्हें परिपूर्ण बतलाया गया है । प्रस्तुत नाटक में बोर बङ्गो रस होने से राम की धीरता को अनेकशः विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया गया है ।

२. घराघर—

लक्ष्मण को कवि ने घराघर नाम दिया है, क्योंकि वे शीघ्र के अवतार हैं । काव्य के आरम्भ से अन्त तक लक्ष्मण की उपस्थिति नायक राम के साथ निरन्तर रही आती है ।

विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा में लक्ष्मण भी राजसों को मारते हैं । जनक की औरस कन्या जर्मला लक्ष्मण की ब्याही जाती है ।^३ परशुराम के प्रसङ्ग में लक्ष्मण पृथक् रूप से एक ही बार परशुराम को उत्तर देते हैं कि 'आपने जब पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रियों से हीन किया था, तब हितकारी जैसा कोई क्षत्रिय नहीं था । आज आपको उतका पीछा ज्ञात हो जायगा ।'^४

इस कथन से राम के पराक्रम के प्रति लक्ष्मण के मन में प्रारम्भ से ही दृढ़ आस्था सूचित होती है ।

चित्रकूट में भरत के सेना-सहित पहुँचते ही लक्ष्मण को सन्देह होता है

१. अङ्क ६ (पृ० ९१) : 'प्राप्या न तां, यदि तदा स जगद्मरः स्रक् ।
प्राणास्त्यजेद् व्यथनमेतदुदति घोरम् ॥'

२. अङ्क ७ दृश्य २ :

'(सुकृण्डो वाग्वावरुद्धकण्डो भ्रातृन् चतुरः प्रणम्य ससंग्यो निष्क्रान्तः ।)'

३. अङ्क १ दृश्य ९ : 'जगद्योनिजः रात्रन् सीरकेतो ! ...
आरमीयां दुहितरमूर्मितां त्रितर घराघराय ।'

४. अङ्क १।१७० :

निः सप्तवारं पृथिवीं चकार निःक्षत्रियां हन्त यदा भवान् सः ।
न सत्प्रियोऽभूद्धितकारि-तुल्यस्त्वमद्य विज्ञास्यसि पीरुयं तत् ॥'

कि भारत राम को मारने आए हैं। उन्हें यह विचार इतना उत्तेजित कर देता है कि वे शीघ्र ही भारत का वध करने के लिए उद्यत हो जाते हैं। उनकी समझ में राम के साथ पहले ही अग्याय हुआ है, जिसे समाप्त कर राम को राजा बनाने का अब समय आ गया है।^१

लक्ष्मण राम के साथ हुए युद्ध में अपने रहते राम को नहीं लड़ने देना चाहते। वे अपने उज्ज्वल चरित्र पर उँगली उठाने पर सीता को भी 'बण्डो' कहते हैं^२। राम के मुख से सुग्रीव के प्रमाद का सञ्छेद पाते ही लक्ष्मण उसी क्षण सुग्रीव की मार डालने के लिए उद्यत हो जाते हैं।^३

लड्डा में लक्ष्मण मेघनाद तथा अनेक राजसों का संहार करते हैं और रावण-कुरमङ्गल के साथ युद्ध में अप्रतिम दूरता का परिचय देते हैं। अन्त में अयोध्या में कोश के अधिकारी बनाए जाते हैं।^४ वास्तव में सम्पूर्ण कथा में लक्ष्मण के बिना राम की कल्पना ही नहीं हो सकती।

३. जगद्भर—

दशरथ के द्वितीय पुत्र भरत, जिनका नाम नाटक में जगद्भर रखा गया है, निरदल, निःस्पृह, त्यागशील एवं राम के प्रति निष्ठावान् पात्र के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। सरस्वती के आदेश से वशिष्ठ राम को धनवास दिलाने की योजना में सम्मिलित होकर भरत को काश्मीर (केकय देस) भिजवाते हैं।^५ दशरथ की मृत्यु के पश्चात् लौटने पर भरत को कैकेयी के राम-विरोधी कृत्य का ज्ञान होता है। वे माता को हीन दृष्टि से देखते हुए उसे कटु वचन

१. अङ्क २ : श्लोक ३४-४७ :

'स्वामिन्नाज्ञां प्रदेहि द्रुतमुदितमनास्तौ तु घृत्वा कशामिः

सन्ध्याम्यंतत्करेण प्रविष्ट-कुटिला-जिह्विकां कर्त्तव्यम् ।

स्व-क्रोधार्नि ज्वलन्तं कृशतर-कुशला-धोकर्वाह्वि च निर्यंत-

काश्मीरो-बाध्य-पूर-प्रसुमर-सरितामंक्षु निर्वापयेयम् ॥ ४७ ॥'

२. अङ्क ३ दृश्य ७ : '(सखेदं कर्णों पिधाय)—

हा हन्त हन्त हत एव किलास्मि चण्डि... ॥ ७८ ॥'

३. अङ्क ४।४१ : 'विरमृत्य तं शरं पीत्वा मंरेयमनिशं भूयम् ।

सुन्दरीभिविहरसे रहसीत्वमहो कपम् ॥'

४. अङ्क ७।८९ ।

५. अङ्क २ दृश्य १ : 'यत्वमिदानीमवतोद्गरय दिग्मानस्य गत्वान्तिकं जगद्वीरं जगद्भरं अरिहरं च राजकुमारं प्रेषय काश्मीरम् ।'

कहते हैं ।^१ वाल्मीकि और तुलसी के समान ही विद्वनायसिंह ने भी भरत का चरित्राङ्कन किया है । आनन्द-रघुनन्दन में यह विशेषता है कि वनवास की अवधि के अन्तिम दिन भरत राम के वियोग में इतने विकल हो उठते हैं कि वे गुरु को बुलाकर कहते हैं कि अवधि बीतने पर मेरे प्राण नहीं रहेंगे इसलिए राज्य आपको सौंपता हूँ ।^२ राम के प्रति भरत के मन में इतना उच्च भाव है कि जब शत्रुघ्न मन्थरा को पोटते हैं, तब भरत कहते हैं कि नारी का बध होने पर मुझे राम से भय लगता है ।^३ राम भरत की योग्यता मानते हैं । अन्त में राज्य का सम्बालन भरत को ही सौंपते हैं, जिससे भूमि राजन्वती कहलाए ।^४

५. अरिदर—

शत्रुघ्न को नाटक में अरिदर नाम दिया गया है । अन्य रामकथाओं को अपेक्षा इस नाटक में शत्रुघ्न के चरित्राङ्कन को अधिक चिन्ता की गई है । परशुराम के कटु बचन सुन कर शत्रुघ्न स्वयं उनका मान-मर्दन करने के लिए तैयार हो जाते हैं ।^५ वे मन्थरा को अनर्थों की जड़ मान कर उसके केश खींचते हैं और कैकेयी को भी मारने को उद्यत हो जाते हैं ।^६ चित्रकूट में जब

१. अङ्क २।११ : 'हितकार्यपकारिण्यादिच्छन्ता स्याद्रसना तव ।
माता ममासि काश्मोरि कुर्यां किं पतिघातिनि ॥'

२. अङ्क ७ दृश्य १ : '...मर्षाशायामतीतायां न स्थास्यन्ति मत्प्राणाः ।...
इतीदं प्राज्यं राज्यमाचार्याय...अत्रभवते प्रतिपादयामि ।'

३. अङ्क २।१२ : 'नारीवधे कृते वत्स भयं मे हितकारिणः ।'

४. अङ्क ७।८९ :

'राज्यं रक्ष जगद्भर त्वमभयो राजन्वती भूरियं, येनोच्येत...।'

५. अङ्क १।१७४ : 'हन्त प्रयातु सगुहर्नगरीं नरेन्द्रः

सार्यधपः स्वजन-सैन्यजनैः समेतः ।

आयामि तावदहमप्यघ्नेनैव मङ्क्त्वा

दिम्नो यथा मणिकमुप्रमुनेर्मदं द्राक् ॥'

६. अङ्क २ (पृ० २९) :

'आः प.पे ! त्वमेव सर्वनिर्घस्य कारणमसि ।

(इति केशान् गृह्णाति) ...।

अस्यै फलं दत्त्वा त्वापनि प्रबोधयितास्मि

(इति श्रुत्वा काश्मोरी सभयं निष्क्रान्ता)

राम अयोध्या को लौटने के लिए स्वीकृति नहीं देते, तब दानुष्ज स्वयं राम से निवेदन करते हैं कि उन्हें भी राम अपने साथ रखें और उनसे सेवा लें। वे कहते हैं कि 'हे आर्य ! हम आपके वध्वे हैं।' अन्त में दानुष्ज जैसे वीर को अयोध्या का सेनापतित्व दिया जाता है।^२

५. त्रेतामल्ल—

राम और लक्ष्मण के पश्चात् सम्भवतः नायक पक्ष के सबसे महत्वपूर्ण पात्र हनुमान हैं, जिन्हें इस नाटक में त्रेतामल्ल कहा गया है। पताका के रूप में चलने वाली कथा में वे अवश्य ही सर्वातिशायी हैं। हनुमान सुग्रीव के मंत्री हैं और जब सुग्रीव राम के कार्य को भूल कर विलास-मग्न हो जाते हैं, तब हनुमान ही उन्हें प्रबोधन देते हैं।^३ राम और सुग्रीव की मंत्री कराकर दोनों के कार्य सिद्ध कराने का ध्येय हनुमान को ही है।^४ सुग्रीव भी उन्हें 'प्रवीणतम' मानते हैं।^५ हनुमान ने सागर पार करते समय दुर्दम्य रीद्र रूप धारण किया, जिसे राम से श्रेष्ठ्यभूक पर सम्पाती बतलाता है।^६ सीता की खोज का दुष्कर कार्य उन्होंने अरपन्त सफलता के साथ सम्पन्न कर सर्वप्रियता अर्जित की और राम उनके श्रेणी हो गये।^७ लङ्का के युद्ध में हनुमान का शौर्य-प्रदर्शन अद्भुत था। कुम्भकर्ण के जिस शरीर (कवच) के भूमि पर गिरने से भरतखण्ड के

१. अङ्क २ (पृ० ४३) :

'मां तु सहैव गृहीत्वा प्रविशतु गहनं वनं भवानधुना ।
आवां त्वार्यं धरतो सम्भयारण्य-सेवनं कुर्वः ॥'

२. अङ्क ७।८९ : 'सेनां सञ्जय सादरामरिदर स्वात्स्यां त्वमन्वयंयन् ।'

३. अङ्क ४।३५।३६ :

'सपदि सकल-कार्यं येन सम्पादितं ते
प्रबलमिह कथं तं हन्त विस्मृत्य मत्तः ।

भनसि तव विनाशं कीशनाथात्र बुद्ध्वा
वयमिह सविवास्ते शोचयामः सदैव ॥'

४. अङ्क ४।२ : 'हे विश्वनाथ ! तव सोस्ति सखित्व-योग्यः ।'

५. अङ्क ४ : दृश्य १ :

'त्रेतामल्ल ! त्वं प्रवीणतमोसि, गत्वा परीक्ष्य प्रत्यागच्छ ।'

६. अङ्क ४।६१ :

—'रेणुकृत्य त्रिकूटं धियति विततयन् दर्शये चित्रमत्र
श्रीष-भ्राष्ट्रे विमङ्ग्योद्धत-रजनिचरान् भस्मभावं नयामि ।'

७. अङ्क ५।३४ : त्वद्दानोचितमत्र वस्तु विधिना नाकारि लोकत्रये ।'

प्राणियों का नाश हो जाना था, उसे हनुमान ने आकाश के पवन-प्रवाह में फेंक दिया; ऐसा अद्भुत उनका बल था ।^१ उन्होंने सञ्जीवनी लेकर लक्ष्मण की प्राण-रक्षा की ।^२ राम अयोध्या पहुँचने से पूर्व हनुमान को भेज कर भरत की मनोवृत्ति का पता लगाते हैं । हनुमान नीतिज्ञ हैं और वे भरत को राम के समान मान कर ही उनका सम्मान करते हैं ।^३ वानरों और राक्षसों की अयोध्या से विदाई हो जाने पर वे सुग्रीव के दूत के रूप में अयोध्या में ही रहे आते हैं ।^४ नाटक में हनुमान राम की दास्य-भक्ति के प्रतीक हैं,^५ जैसे रामचरितमानस में है ।

६. वासवि—

इन्द्र का पुत्र, त्रिभिन्व्या का शासक बाली, जिसे यहाँ वासवि नाम दिया गया है, इस नाटक में पूर्णतः प्रतिनायक रावण के पक्ष का पात्र प्रतीत होता है । बाली के निकट रावण पत्र भेज कर अपेक्षा करता है कि वह राम-लक्ष्मण को पकड़ कर लड्डू भेज देगा ।^६ तार मन्त्री के इस प्रश्न पर कि अब आपकी रावण के साथ मैत्री क्यों है, बाली कहता है कि रावण को अस्त्र-शस्त्र में जोतने वाला व्यक्ति शैलोवप में नहीं है ।^७ इसी समय राम-लक्ष्मण बाली के समीप आते हैं, तब बाली स्वयं राम से युद्ध कर उन्हें जीत लेने की इच्छा करता है ।^८ ऐसा प्रतीत होता है कि रावण के उपयुक्त निर्देश की पूर्ति के लिए ही बाली राम के साथ युद्ध करता है, यद्यपि स्वयं मारा जाता है । कथा के अंग को इन प्रकार मोड़ देकर बाली यध को जग-शिव के अधिक अनुकूल बना दिया गया है ।

१. अङ्क ६ : 'विश्वस्मिन् बलमोक्षं वचिदहो नार्दश नाकृष्यंवि ॥'

२. अङ्क ६ : युद्ध-प्रकरण, दृश्य ३ ।

३. अङ्क ७।११ : 'एवं त्रिभुवनाथ हितकारि-समो ममासि
दासस्त्रवास्मि जगतीजन-गीत-कीर्त्तः ॥'

४. अङ्क ७।४५ : 'उपकृष्टं महाराज सुकृणुस्तव मां सखा ।
दीत्येन वस्तुमुत्कृष्टा-कृष्टितः प्राहिणोत् सदा ॥'

५. अङ्क ४।२ : 'ज्ञातोऽसि नाथ हितकारि-पदाभिधेय-
स्त्वं व्यस्मरः किमिति दासमिहान्तिक्त्वस्यम् ॥'

६. देखिये पीछे अध्याय ६ (स-२) ।

७. अङ्क ४।९ : 'त्रिलोक्यामस्त्र-शस्त्रेषु विजेता तस्य नेदपते ।'

८. अङ्क ४।१६-१७ : देखिये पीछे अध्याय ६ (क) ।

७. दिक्शिरस्—

रावण को नाटक में दिक्शिरस् नाम दिया गया है। यह प्रतिनायक है। काशमीर (केकय) देश से आकर तिरहुत में विश्वामित्र के आश्रम पर आक्रमण करनेवाला और पीछे पञ्चशती में मृग-रूप से राम को कपट जाल में उलझा कर सीता-हरण का कारण बननेवाला घातिनेय (ताटका-पुत्र मारीच) रावण का पशवर्ती है। उसी प्रकार चौदह सहस्र राक्षसों की सेना का प्रमुख और जनस्थान को आतङ्कित रखने वाला रासभ (सर) भी रावण का आज्ञाकारी है। रावण दैत्येन्द्र धाणासुर के रोकने पर उसकी उपेक्षा करते हुए शङ्कर का धनुष तोड़ने के लिए उद्यत हो जाता है।^१ उसके अनाचारों से कम्पित पृथ्वी की प्रार्थना पर उसका वध करने के लिए परमेश्वर ने राम-रूप में अवतार लिया है।^२ वह अपने मन्त्री से, जो नदी योजनाएँ बतलाता है, से उसके प्रबल अहङ्कार और अद्भुत पराक्रम की सूचनाएँ देती हैं। वह समुद्र का खारा पानी निकालवा कर उसमें मन्दाकिनो का मधुर जल भरना चाहता है; कंलास को लड्डू में ला कर इष्टदेव शङ्कर के प्रीत्यर्थ उन्हें शेषनाग को आभूषण-रूप में अर्पित कर देना चाहता है। वह कहता है कि कुम्भकर्ण समुद्र को चादर की तरह ओढ़ कर लो जाय।^३ हनुमान जब भेषनाद द्वारा बाँध कर रावण को समा में पहुँचाए जाते हैं, तब वे रावण के द्वारपाल को आज्ञाएँ प्रसारित करते हुए सुनते हैं—'अग्नि ! तुम शीघ्र रसोई बनाओ, पवन ! तुम सुगन्धियुक्त बहते हुए मार्ग स्वच्छ करो, वरुण ! स्नान के लिए गङ्गा का जल लाओ, कुबेर ! तुम दौड़ कर निधि लाओ, जो दान के काम आवे।' हनुमान मन में कहते हैं कि ऐसी आज्ञा तो जगदीश्वर की भी नहीं सुनी।^४

जब सीता की खोज कर हनुमान किङ्किन्घा लौटते हैं, तब वे राम के पूछने पर रावण का संक्षेप में उपयुक्त चित्रण करते हैं—'पर्वत के शृङ्गों के सदृश रावण

१. अङ्क १ पृ० १५ तथा अङ्क १।१०२।

२. अङ्क १।९-१०, देखिये नाटक का वस्तु-सत्त्व।

३. अङ्क ३, पृष्ठ ४२।

४. अङ्क ५।१० :

'पाकागारं कृशानो यत्र कलय परा-पाक-निष्पत्तिमारा-

दद्यानं शोषयित्वा परिवह पवन त्वं बहन्मुग्ध-गन्धम्।

गङ्गा-पापः पवित्रं त्वरितमुपहर स्नाग-सिद्ध्यै जलेश

त्वं धावं धावमद्वाऽऽनय धनद निधिं नित्य दान-प्रवृत्तै ॥

...ईदृशी तावदाज्ञा जगदीश्वरस्यापि न श्रुता।'

के ऊँचे मस्तक आकाश को छूते हैं, उसके बाहुदण्ड सर्प के शरीर के समान सुदृढ़ हैं, उसकी छाती पर स्वर्ग के हाथी ऐरावत के दाँतों और इन्द्र के वज्र के प्रहारों के चिह्न सुसोमित हैं, उसके जैसे कुशल शिष्य को स्वयं देवगुरु शङ्कर ने सारे शास्त्रों और अस्त्रों की शिक्षा दी है ।^१

बाली जैसा पराक्रमी भी रावण के साथ मैत्री बनाए रखना चाहता है ।^२ जब रावण के साथ युद्ध करने के लिए लक्ष्मण प्रस्थित होते हैं, तब स्वयं राम उन्हें सावधान करते हुए रावण को त्रैलोक्य-विजयी कहते हैं ।^३ सेनाओं का कोलाहल रावण के लिए नूपुर-ध्वनि की भाँति मनोरञ्जक है ।^४ रावण को युद्ध-शैली और शक्ति की अनेकशः प्रशंसा होती है । अन्त में उसकी मृत्यु पर सुग्रीव राम से कहते हैं कि इसे आप ही मार सकते थे ।^५

रावण का एक अन्तर्निहित रूप है, जिसमें वह मोक्ष-प्राप्ति के लिए राम से विरोध करता है । वह सीता को लक्ष्मी मानते हुए भी इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए लड़का ले आता है ।^६ वह युद्ध में मरे हुए राक्षसों को समुद्र में फिक्काता जाता है, जिससे वे मोक्ष के अधिकारी हो जायें और सञ्जीवनी की सुगन्धि से पुनर्जीवित न हों ।^७

उपर्युक्त पुरुष पाशों के अतिरिक्त सुकण्ठ (सुग्रीव), भयानक (विमोचन),

१. अङ्क ५।४२ :

'द्यौर्षण्यभ्रङ्कपाणि क्षितिचर-सिंहर-श्रेणि-शोभाघराणि
भ्राजन्ते दाहृदण्डा भुजग-परिवृडादध्र-भोगायमानाः ।
वक्र-स्वर्दन्ति-दन्ताशनि-निहित-किण-ग्रन्थि-नेपथ्य-वक्षा
यं दशं शास्त्रमस्त्रं सकलसुरगुरुः पाठयामास शम्भुः ॥'

२. अङ्क ४:७,६ ।

३. अङ्क ६ (पृष्ठ ६९) : 'त्रैलोक्य-विजयी घोरः कृतशत्रुः परस्तपः ।
सावधानतया युद्धं धर युद्ध-धुरन्धर ॥'

४. अङ्क ६ (पृष्ठ ६९) : 'सेना-ध्वनिमुपाकर्णामन्दं नन्दति मग्मतः ।
यथा नदीन-नारीणां रती नूपुर-निःस्वमम् ॥'

५. अङ्क ६ (पृष्ठ ७६) : 'हन्तुं त्वयैव योग्योऽयम् ।'

६. अङ्क ३।६६ : 'श्रियां पतितपावन्यामागतायां पुरे भृशम् ।
भवेत् सपरिवारस्य मम मोक्षाधिकारिता ॥'

७. अङ्क ६ (पृ० ७६) : 'मृतानां यातृधानानां शरीराणि सरित्पती ।
निक्षेपयति बेलक्ष्याद् दशशौर्यः क्षणे क्षणे ॥'

भुजभूषण (अङ्गद), घनध्वनि (मेघनाद), घटकर्ण (कुम्भकर्ण) आदि भी महत्त्वपूर्ण पात्र हैं, किन्तु उनके चित्रण परम्परात्मक है ।

स्त्री पात्र—(१) महिजा

नाटककार ने स्त्री पात्रों के चरित्राङ्कन को बहुत कम चिन्ता की है, तथापि कथा की नायिका सीता, जिसे नाटक में महिजा कहा गया है, उदात्त रीति से चित्रित हुई है । इस चित्रण में परम्परा के साध-साध कवि की अपनी प्रतिभा का भी योग हुआ है ।

विश्वामित्र के शब्दों में सीता लक्ष्मी के समान है ।^१ वह एक अयोनिजा राजकन्या है । उसकी असामान्यता इसी से स्पष्ट है कि शङ्कर का धनुष तोड़नेवाला ही उसके साथ दिवाह कर सकता है । धनुर्भङ्ग के अवसर पर सीता को देख कर लक्ष्मण कहते हैं कि भगवान् विष्णु ने समुद्र का मन्थन कर लक्ष्मी को प्राप्त करने में व्यर्थ परिश्रम किया, वास्तव में उन्हें पृथ्वी का मन्थन करना था (जिसे वे पृथ्वी की कन्या सीता को पा सकते) ।^२ राम के शब्दों में सीता कृशाङ्गी है, उसकी आभा स्वर्ण की आभा के समान है,^३ उसका रूप नेत्रों को शीतल करने वाला है ।^४

भक्त कवियों को सीता का अपहरण सह्य नहीं है । उनके अनुसार पञ्चवटों में मूल सीता अग्नि-प्रवेश कर जाती है, जिन्हें रावण-वध के पश्चात् अग्निदेव भ्यास की भक्ति राम को लौटाते हैं । सीता को छाया का ही अपहरण होता है ।^५ यही बात आनन्द-रघुनन्दन में है । राम के कण्ठस्वर में मारोच का 'हा घराघर !' शब्द सुन कर छाया सीता विकल होकर लक्ष्मण को कटु-वचन कहती है ।^६ वाल्मीकि-रामायण में सीता का यहाँ भी एक ही स्वरूप है और वह विकल होकर लक्ष्मण को 'भरत से मिल कर राम के विरुद्ध गुप्त

१. अङ्क १ (पृ० १२) : 'पादुशी सिन्धुमुता तादृशी साऽस्ति राजदुहिता ।'

२. अङ्क १ (पृ० १८) : 'आलोषयेमामहं शङ्के निर्मथ्य सीरधि हरिः ।
धियं निष्कासयामास न ममन्थ मही कथम् ॥'

३. अङ्क ३।९० : 'तरङ्गिणि कृशाङ्गी एवं कृशाङ्गी महिजाऽपि मे ।
दृष्टा चेत्कथय स्वं तामष्टापद-समद्युतिम् ॥'

४. अङ्क ६ (पृ० ८९) : 'महिजां मामिहानीहि हिमानीमिव नेत्रयोः ।'

५. रामचरितमानस : अरण्यकाण्ड :

'तौ लगि करहु अगिनि महँ बासा । जो लगि करउँ निघाचर-नासा ॥'

६. अङ्क ३ : 'न प्रयास्युत्तरं दशे..... ।'

पड़दम्ब करने वाला' कहती है।^१ वाल्मीकि की सीता का कथन अधिक मनोवैज्ञानिक, स्वामाविक एवं स्त्री-जनोचित है, किन्तु भवत कवि सीता की दिव्यता की रसा करना चाहते हैं।

प्रस्तुत नाटक में अपहृत सीता को वेदना का भी प्रभावी चित्रण है। रावण-वध का समाचार सुन कर सीता को उत्कण्ठा और भी तीव्र हो जाती है।^२ इसी प्रकार राम भी सीता को खो कर उन्मत्त हो जाते हैं।^३

काश्मीरी—

प्रस्तुत नाटक में कैकयी को काश्मीरी कहा गया है। आदि कवि (वाल्मीकि) का शिष्य उनसे क्षीरवती (पयस्विनी) और कलिन्दजा (यमुना) की परस्पर वार्ता बतलाता है। कलिन्दजा के मत के अनुसार कैकयी ने राम को निर्वासित कर ऐसा दृष्ट्य क्रिया है कि अब ससार में स्त्रियों पर कोई विश्वास नहीं करेगा।^४ आगे चल कर नाटक में कैकयी कुटिला (मन्थरा) से चर्चा कर रही है कि सब कार्य ठीक रहा। इसी समय भरत आते हैं और पूरा समाचार सुन कर वे भी कैकयी को अपशब्द कहते हैं।^५ शत्रुघ्न तो कैकयी को भी मारने को उद्यत हो जाते हैं और कैकयी को भाग जाना पड़ता है।^६ इस प्रकार कैकयी को नाटक में विशुद्ध पङ्क्यन्त्रकारिणी ही रहने दिया गया है।

अन्य स्त्री पात्रों में कुशला (कोशल्या) और शीर्षनखी (शूर्पणखा) महत्त्वपूर्ण हैं, किन्तु इनके कार्य परम्परात्मक है।

१. आरण्यकाण्ड : सर्ग ४५।६, २४।

२. अङ्क ६ (पृ० ८९) :

'धातकीव तृपिताम्बुद-पर्व' पूर्णचन्द्रमिव चारुचक्रोरे।

द्रष्टुमुत्सह्यत उत्कलिकार्त्ता स्वामिनं स्वमथ राजकुमारी ॥'

३. अङ्क ४।४३ : महिजाङ्गानि स्पृष्ट्वा स्पृश पवन त्वं ममाङ्गानि ।'

४. अङ्क २ (पृ० २७) : 'इदानीं वनितानां विश्वासमिह जगति किमिति कोऽपि करिष्यतीति ।'

५. अङ्क २।११ : 'हितकार्यपकारिण्यारिछन्ता स्याद्रसना तव।

माता ममाति काश्मीरि कुर्यां कि पतिघातिनि ॥'

६. अङ्क २ पृ० २९ : '...त्वामपि प्रबोधयिताऽस्मि ।

(इति श्रुत्वेव काश्मीरो सममं निष्क्रान्ता ।)'

(ग) तुलनात्मक रूप

१. हिन्दी के आनन्द-रघुनन्दन की प्रस्तुत संस्कृत नाटक पर छाया

जैसा पीछे लिखा जा चुका है, विश्वनाथसिंह ने पहले हिन्दी में आनन्द-रघुनन्दन नाटक लिखा और पीछे इसी नाम से संस्कृत नाटक लिखा। दोनों नाटकों की कथावस्तु में कहीं अन्तर नहीं है। अङ्कों और दृश्यों में सम्पूर्ण समानता है। संवाद भी वही के वही है। इस प्रकार संस्कृत नाटक को एक प्रकार से हिन्दी नाटक का अनुवाद कहा जा सकता है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

(हिन्दी)—नुर—ये कुचला ! तुम जघार्थनामा ही-। सीतल को बुलाइ सत्कारो, जाते सब सुतन से वे सम सनेह करे ।^१

(संस्कृत)—दिग्यानराजः—अये कुचले ! त्वं यथार्थमिषान्नासि । उपरती-
राह्य सत्कारमाचर, येन निखिलेषु विश्रुतनयेषु सदिनयेषु तनयेषु
ताः समस्ताः समानं प्रमाणमाचरेयुः ।

(हिन्दी)—भूप—(सप्तभ्रमं) अरे भुनि तौ आय ही गए । अर्ध-अर्धं !
पाच-पाच !^२

(सं०)—राजा—(सप्तभ्रमं) अहो ! मुनिस्त्वामगत् एव । पाचमर्ध्वं-
मधुपर्कादि त्वरितमानीयताम् ।

कहीं यह अनुवाद पद्य से पद्य में परिणत कर दिया गया है—

(हि०)—मुनि...जज्ञ रश्मि के हितकारी, डीलधराधर दोऊ कुमार दीजे ।^३

(सं०)—मुनि :—वस्तु-संरक्षणार्थाय त्रिलोकी-वीर-शेखरी ।

धीरो कुमारी दीयेतां हितकारि-धराधरो ॥

पद्यों के अनुवाद सर्वत्र पद्यों के रूप में ही प्राप्त हैं, किन्तु संस्कृत में अधिक सामग्री है—

(हि०)—रैणुकेय—(सक्रोधं)

कोदण्ड-मौर मांह वोरि देहूं मुमि-इन्द्र की ।

कुठार-वीचि मो बहाय सैन-वृक्ष-वृन्द की ॥

कुमार चारि आरि देहूं क्रोध वाडवाग्नि के ।

जो लेहूं संभु वैर यों तो सांच जामदग्नि मैं ॥

१. आ० रघु० : अङ्क १ पृ० ९ । २. वही, पृ० ११ ।

३. वही, पृ० १२ ।

४. वही अङ्क १ पृ० ३६ ।

(सं०)—रैणुकेयः—(सक्रोधं)

कोदण्ड-भ्रमिषु निमज्जये जितोन्द्रं
 परशूर्पों सुमट-उरुन् प्रवाहयामि ।
 प्रस्फूर्जत्-प्रसुमर-चाप-बाहवाग्नि-
 ज्जालामु क्षितिप-सुतान् जुहोमि युष्मान् ॥
 बाणोर्ध्वस्तिमिभिरुदारमाददामि
 स्वच्छन्दान् रघु-नमि-वंश-मेप सङ्घान् ।
 गृह्णोयां प्रसममिदं पुरारि-वैरं
 तहि स्यां भुवि विदितः स जामदग्न्यः ॥

(हि०)—माके शील चुवउ सी नैनन ।

सकुचत चलति, मंजु मुस्र मोरति,
 उर अति प्रेम, सुलति वछु बैनन ॥
 कोन्हेउ पति अपकार गनत नहि,
 एग परि परि जापुहि समुझावे ।
 विश्वनाथ प्रभु समुक्तन लायक,
 यह सुकिया की अनुयम भावे ॥^१

(सं०)—शीलं श्चोतदिवान्माति नयनात् सङ्कोच साचोभवद्-
 वस्त्रं याति वचोभिराहत-गुणैः प्रेम स्फुटत्यान्तरम् ।
 नो मन्तुं गणपत्यथ प्रणमति स्वोयं प्रियं प्रेयसी
 सादात्म्येन तदेक-तान-हृदया सातोदरी शोभते ॥

यत्र तत्र गद्यात्मक संवादों में भी संस्कृत में विशेष प्रकार से शब्द-
 प्रयोग है—

(हि०)—शिष्य—पूजन की तैयारी करो । देपो नहीं ती गुह चले
 आवै है ।^२

(सं०)—शिष्यः—पूजन-सामग्री क्रियताम् । किन्निहि दृश्यते सद्यः समुद-
 यन्ननवद्य-हृद्य-गद्य पद्य-प्रभृत्यखिल-विद्या-तपोभारैर्गुंहरसावस्मद्-
 गुहनिज-निक्केतनमागच्छतीति । म एषः.... ।

हिन्दी के संवादों में यत्र तत्र फारसी, मराठी, अरबी, बंगला, भोजपुरी,
 मारवाड़ी, अंगरेजी भाषाओं के भी प्रयोग हैं, किन्तु संस्कृत में इन सबके स्थान

१. आ० रघु० अङ्क ७ : पृ० १४१ : सर्वशी के स्वकीया-नृत्य पर
 गन्धर्व-गीत ।

२. वही, : अङ्क १ : विष्कम्भक : पृष्ठ ३ ।

पर संस्कृत भाषा ही है। प्राकृत भाषा के संवाद, गीतों के ताल-धुन आदि तथा 'प्रविशति', 'निष्क्रान्तः' आदि रङ्गमञ्च के निर्देश दोनों नाटकों में समान हैं। सङ्गीत की धुनों में अंतर गमान है, मात्रा-लेखन में कुछ अन्तर है—

(हि०)—ताल त्रिपुटा—ति-ऐ-ऐ-आ ति ऐ-ऐ-आ ध-ध-पा

ध-ध-पा प-ग-ग-रे ग-ग-प-प ।^१

(सं०)—तालस्त्रिपुटः.....ध-ध-पः प-ग-ग-रि....।

२. राम पर लिखे गये अन्य संस्कृत नाटकों के साथ सामान्य तुलना—

रामकथा को आधार बनाकर लिखे गए संस्कृत नाटकों में सम्बन्ध में कामिल बृत्के ने पर्याप्त प्रकाश डाला है।^१ इन नाटकों में कथानक की दृष्टि से कितने ही परिवर्तन हुए हैं और नये पात्रों की सृष्टि हुई है। उत्तर-राम-चरित और कुन्दमाला में रावण-वध और राज्याभिषेक के पीछे का राम का जीवन चित्रित है, जिसका प्रमुख अङ्ग है सीता के निर्वासन पर आधारित कथा। अन्य अनेक नाटकों में राम के राज्याभिषेक तक की कथा आधार बनी है।

कुछ नाटकों में शृङ्गार रस को अधिक महत्त्व देने के लिए मूल कथा में परिवर्तन किये गये हैं, जैसे बाल-रामायण में रावण का विरह-वर्णन,^२ मंथिली-कल्याण में राम-सीता का पूर्वानुराग,^३ महानाटक में राम-सीता के सम्मोग शृङ्गार का अश्लील वर्णन^४ तथा महावीर चरित में विद्वामित्र के आश्रम में राम-लक्ष्मण की सीता, उमिला से भेंट।^५

अनेक नाटकों में पात्रों द्वारा अन्य पात्रों के रूप धारण करने के प्रसङ्ग प्रस्तुत किये गये हैं, जैसे महावीर-चरित में शूर्पणखा मन्थरा बन कर मिथिला पहुँच जाती है। उसके पास कैकेयी का जाली पत्र रहता है, जिसमें कैकेयी ने वर के बल पर राम का वनवास माँगा है। अतः राम वहीं भरत को पादुका देकर सीता-लक्ष्मण के साथ वन को प्रस्थान करते हैं।^६ यही बात अनर्धरापव में है। बालरामायण में मायामय राक्षस, शूर्पणखा और परिचारिका क्रमशः दशरथ, कैकेयी और मन्थरा का रूप धारण कर राम-वनवास का कारण बनते हैं। महानाटक में रावण अपने हाथों में दसों सिर लिये हुए राम के रूप में सीता के निकट अपहरण के लिए जाता है। इसी प्रकार मादचर्य-चूडामणि में

१. आ० रघु० : पृष्ठ ८।

२. रामकथा—उत्पत्ति और विकास : हिन्दी परिपद : विश्वविद्यालय प्रकाश : १९५० : पृष्ठ १८७-१९२।

३. अङ्क १। ४. अङ्क १।४। ५. अङ्क २। ६. अङ्क १।

७. अङ्क ४।

रावण और उसका सारथी राम और लक्ष्मण का रूप धारण कर सीताहरण करते हैं। इसी नाटक में शूर्पणखा सीता के रूप में राम के समीप आती है।

प्रतिभा नाटक में भरत लक्ष्मण के अनुज हैं। राम-वनवास के समय शत्रुघ्न अयोध्या में रहते हैं। किकेयी ने महर्षि-शाप की रक्षा करने के लिए वशिष्ठ और वामदेव से परामर्श लेकर राम को वनवास दिलाया है। भरत ने लक्ष्मण के युद्ध का समाचार पाकर रावण के विरुद्ध सेना सञ्चालित की; जनस्थान में रावण-वध के पश्चात् लौटते हुए राम से उनकी भेंट होती है। वही राम का अभिषेक कर सभी पुण्यक विमान से लौटते हैं। अभिषेक नाटक में सेतु नहीं बाँधा जाता, किन्तु समुद्र ही विभवत हो जाता है। अनर्घराषव और बालरामायण में भी किकेयी का दोष-निवारण होता है।

ऊपर निर्दिष्ट शृङ्गारात्मक प्रसङ्ग या पात्रों के रूप-परिवर्तन अथवा कथा-परिवर्तन आनन्द-रघुनन्दन में समाविष्ट नहीं किये गए हैं।

महावीरचरित में विवाह के पश्चात् मिथिला में ही परशुराम का आगमन होता है।^१ आनन्द-रघुनन्दन में परशुराम के चल देने की सूचना अवश्य ही मिथिला में मिलती है; जिसे पाकर जनक शीघ्र ही दशरथ को विदा कर देते हैं, जिससे परशुराम के आगमन के पहिले ही वे अयोध्या पहुँच जायें। दशरथ चारात-सहित मार्ग में रहते हैं, तभी परशुराम आ जाते हैं।^२

महावीर-चरित में मात्स्यवान की प्रेरणा से बाली राम को मारने चलता है। उसे इस बात का पश्चात्ताप भी है तथापि वह राम से द्वन्द्व-युद्ध करता है, परिणाम-स्वरूप बाह्य होता है। मरते समय वह सुग्रीव को राम के हार्षी सौभता है।^३ महानाटक में सप्त तालों का राम के द्वारा वेष किये जाने पर क्रोध-पूर्वक बाली राम के समीप आता है^४ और मारा जाता है। अनर्घराषव के अनुसार वदन्ध को लक्ष्मण ने मारा और उसी समय धनुष की कोटि से

१. अङ्क २।

२. अङ्क १ पृष्ठ : १६-२५।

३. जीवानन्द-व्याख्या : कलकत्ता : १८९० : अङ्क ५ : पृष्ठ १८४ :

‘बाली—यदनेन मात्स्यवता पौलस्त्य-भैत्री-दिवसमनुस्मार्य तत्रभवतो रघुध्वजस्य निघने निदुवशोऽस्मि । अहो, ग्रहः ।’

४. जीवानन्द-व्याख्या : कलकत्ता : १८९० : अङ्क ४। ६७ :

‘श्रुत्वा हतान् समर-भूर्जिं स सप्त तालान्

रामेण दीनहृदयेन विनापराधम् ।

कोपानल-ञ्जलित हृत्कमलोऽप्य बालो

रङ्गावतारमगमद् गिरि-गङ्गारात् सः ॥’

दुन्दुभि का कङ्काल विखेर दिया। इसी निमित्त क्रुपित बाली राम-लक्ष्मण के समीप पहुँचा और द्रुमु-युद्ध में राम द्वारा मारा गया।^१ इन्हीं नाटकों की परम्परा को स्वीकार कर विश्वनाथसिंह ने आनन्द-रघुनन्दन में बालि-वध का प्रसङ्ग नये रूप में लिखा है। इस नाटक में रावण बाली को पत्र भेज कर निर्देश देता है कि बाली राम-लक्ष्मण को पकड़ कर लड्डू भेज दे। उसी समय सुग्रीव की मित्रता निभाने हुए राम-लक्ष्मण स्वयं बाली के समीप आते हैं। बाली स्वयं युद्ध का प्रस्ताव कर द्रुमु में राम के द्वारा मारा जाता है।^२ इस प्रसङ्ग में उपर्युक्त तीनों नाटकों की अपेक्षा आनन्द-रघुनन्दन रामायण के अधिक निकट है।

राम पर लिखित अनेक नाटकों में, विशेषतः महानाटक में विस्तृत वर्णन और संवाद हैं। इनके अनेक स्थलों पर कथा-प्रवाह में गति-रोध उत्पन्न हुआ है। आनन्द-रघुनन्दन में भी यह रीति प्राप्त होती है।

उपर्युक्त तीनों नाटकों में से किसी में सीता के छाया-रूप की चर्चा नहीं है किन्तु आनन्द-रघुनन्दन में है।

अभिषेक नाटक में राम-लक्ष्मण के मायामय कटे सोता सीता को दिखाये जाते हैं। आनन्द-रघुनन्दन में रावण सीता को राम की मृत्यु सूचित करता है। सीता दुःखी होती है, उसी समय द्रुत रावण को वानरों के नये आक्रमण की सूचना देता है। रावण वहाँ से हट कर युद्ध की योजना बनाता है। सरमा राक्षसी यह सुन-समझ कर सीता से बतला देती है और उन्हें आश्वस्त करती है।^३ अभिषेक नाटक में अग्नि-परीक्षा के समय अग्निदेव प्रकट होकर सीता के लक्ष्मी होने की बात कहते हैं। आनन्द-रघुनन्दन में छाया-सीता अग्नि-प्रवेश कर जाती है और अग्निदेव न्यासरूप में पञ्चवटी में प्रविष्ट-मूल सीता को प्रकट कर राम को सौंप देते हैं।^४

प्रसन्न-राघव, आरचर्य-चूडामणि और अद्भुत-दर्पण नाटकों में अद्भुत रस को विशेष स्थान मिला है। यही बात आनन्द-रघुनन्दन में भी है।

१. काव्यमाला ४ : निर्णयसागर : बम्बई। १९०८ : अङ्क ५। २५ : पृष्ठ २०१ :

'दुन्दुभि नाम दैत्येन्द्रं निष्प्रेष्य कपोश्वरः।

तस्य कङ्काल-कूटोऽयं कुमारेण विलोडितः॥

तन्निर्दिष्टजन्मा सम्प्रति बालिनो महानभियोगः सम्भाव्यते।'

२. अङ्क ४ : पृष्ठ ५३-५६।

३. अङ्क ६ : पृष्ठ ८१। ४. वही, पृष्ठ ८६।

उपर्युक्त बातों को दृष्टि में रखते हुए भी यह कहा जा सकता है कि आनन्द-रघुनन्दन नाटक में मूलतः कथात्मक आधार वाल्मीकि-रामायण से ही ग्रहण किया गया है और अंशतः रामचरित-मानस से। भक्ति और अवतारवाद रामचरित-मानस से ग्रहण किये गये हैं। केवल बालिवध में आदर्शवादी प्रभाव और अद्भुत रस की विशेषता के लिए उपर्युक्त सम्बद्ध नाटक उत्तरदायी हैं। रामचरित-मानस का एक प्रमुख आधार अम्ब्यात्म-रामायण है, जिसे इस नाटक का भी उसी अंश में आधार माना जा सकता है।

३. रामकथात्मक संस्कृत रूपक

आनन्द-रघुनन्दन नाटक का समग्र भाव से मूल्याङ्कन करने के लिए हमें यहाँ दो पक्षों पर विचार करना होगा। पहला है, भारतीय काव्य-सृष्टि पर राम-कथा का प्रभाव और दूसरा, नाटकीय दृष्टि से आनन्द-रघुनन्दन की सफलता।

वृहद्घर्म-पुराण में रामायण को समस्त काव्यों का मूल कहा गया है—

‘रामायणं महाकाव्यमादौ वाल्मीकिना कृतम्।

तन्मूलं सर्वकाव्यानामितिहास-पुराणयोः ॥’^१

मोज ने लिखा है कि वे रामायण को उपस्थिति में भी रामकथा को अपनी दृष्टि से प्रस्तुत करने का लोभ संवरण नहीं कर सकते।^२ हिन्दी के प्रतिष्ठित कवि मैथिलीशरण गुप्त ‘साकेत’ ग्रन्थ के मङ्गलाचरण में लिखते हैं—

‘राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है।

कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है ॥’

कामिल बुत्के ने ठीक ही लिखा है कि ‘मानव-हृदय को द्रवीभूत करने की जो शक्ति रामकथा में है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। भारत की समस्त आदर्श भावनाएँ रामकथा में, विशेषतः मर्यादा-पुरुषोत्तम राम तथा पतिव्रता सीता के चरित्र-चित्रण में केन्द्रीभूत हो गई हैं।’^३

प्राचीन काल में भी रामायण पाठ्य की अपेक्षा गेय एवं प्रयोज्य काव्य था। उत्तररामचरित नाटक में भवभूति ने लिखा है कि आदि कवि ने उत्तर-कथा को भरत मुनि के समीप भेजा था; उद्देश्य यह था कि अप्सरायें उसका प्रयोग (अभिनय) करें।^४ यह उल्लेख रामायण की कथा को अभिनेय बनाने की रीति की प्राचीनता प्रदर्शित करता है।

पौष्टे रामकथा पर आधारित कुछ नाटकों की चर्चा हुई है। रामायण की यह उपजीव्यता पिछली शतियों में कभी समाप्त नहीं हुई। इस अवधि में रचित अनेक नाटकों के मध्य १७ वीं शती में लिखित यज्ञनारायण के

१. अध्याय २५।२८।

२. धम्पुरामायण : बालकाण्ड : श्लोक २ : ‘वाल्मीकि-गीत-रघु...’।

३. रामकथा : उत्पत्ति और विकास : प्रयाग : १९५०।

४. अङ्क ७।

रघुनाथ-विलास, राजबुहामणि के आनन्दराघव और अतिरात्रयज्वन् के कुसु-कुमुदतीय की विशेष धर्मा की जा सकती है। इसके पदवान् १८ वीं और १९ वीं शतियों में वेङ्कट-वृष्ण का कुमालत्र-विजय तथा राम कवि के ललित राघवीय और पादुका-पट्टामिपेक नाटक विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। प्रधानी वेङ्कट-मूपति का बोर-राघव-विजय व्यायोग एवं सीता-कल्याण बीघो तथा रामचन्द्र का जामदग्न्य-विजय व्यायोग इन्हीं शतियों की देन है।^१ १९ वीं शती के पूर्वार्द्ध में रचित विश्वनाथसिंह के आनन्द-रघुनन्दन नाटक को इसी परम्परा को बढ़ाने वाला माना जा सकता है।

राम के मर्यादा-पुरपोत्तम रूप में क्रमशः अवतारी रूप का योग हुआ। इसकी सम्पूर्ण रामचरितमानस में हुई। विश्वनाथसिंह ने इसी परम्परा को माना; अयोध्या में राम के नित्य विहार को स्वीकार किया; सीता के छाया-रूप और राघव की विरोध-भक्ति को मान्यता दी। इसी विशिष्ट सिद्धान्त को उन्होंने नाटक का कलेवर प्रदान किया। रामायण में प्राप्त कथा में यह महत्वपूर्ण मोड़ इस नाटक में प्रस्तुत किया गया है। साथ में माधुर्यभाव को भी झलक है।

संस्कृत नाटकों की परम्परा में आनन्द-रघुनन्दन निम्न कोटि का नाटक नहीं है। यह ठीक है कि इस नाटक में अभिज्ञान-शाकुन्तल की रसवत्ता, उत्तर रामचरित की हृदय-द्रावकता, बेणोसंहार का ओज और महानाटक की प्राञ्जल-पदयोजना नहीं हैं; किन्तु इनके अतिरिक्त संस्कृत के संकटों लक्षक उपलब्ध है, जिनके साथ आनन्दरघुनन्दन को गिना जा सकता है। इनके समान रसात्मकता, हृदय-द्रावकता, ओज एवं प्रौढ़-पदावली सब कुछ आनन्दरघुनन्दन में प्राप्त है। अन्य अनेक नाटकों की भाँति ही यह नाटक भी भारती की धो-वृद्धि करता है। इस नाटक को समग्र रूप में देखने से विदित होता है कि नाटककार मध्यम श्रेणी के कवियों में स्थान पा सकता है; क्योंकि नाटक की रचना में प्राप्त कथावस्तु सुमोजित है; उसमें अध्ययनशीलता की झलक है; रचयिता की लक्ष्यनिष्ठता एवं एकतामता आदि से अन्त तक व्याप्त है और लोकशक्ति का पर्याप्त समावेश है। इस नाटक का मुख्य इसलिए और भी बढ़ जाता है कि यह संस्कृत के ह्रासोन्मुख काल की, १९ वीं शती की रचना है। इस नाटक की रचना करने के कारण आधुनिक युग के संस्कृत कवियों के मध्य अवश्य ही विश्वनाथ सिंह को ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त हुआ है।

१. हि० कला० सं० लिट्० : दृश्यकाव्य ।

२. आनन्दरघुनन्दनम् : अङ्क २ दृश्य १ : पृष्ठ २६ : सरयू के प्रति वशिष्ठ का वचन-‘सकल-दिग्भ-सामग्री-राजि-राजितायामपराजितायां हितकारिणः चकास्ति विहारः सनातन-प्रकारः । स त्वचिन्त्य-शक्तिः ।’

उपसंहार

बघेलखण्ड की संस्कृत काव्यधारा ने पिछली अन्तिम शताब्दियों में संस्कृत साहित्य के भाण्डार की श्रीवृद्धि की है। इस कृतिरत्न को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि शासकीय परिवर्तनों ने संस्कृत के प्रति भारतीय रुचि को समाप्त नहीं किया। १६ वीं शती में वीरभानूदय जैसे महाकाव्य और १९ वीं शती में आनन्द-रघुनन्दन जैसे नाटक की रचना मध्यप्रदेश के उत्तरी भाग में अवस्थित बघेलखण्ड अञ्चल को अविस्मरणीय एवं अनुपेक्षणीय गौरव प्रदान करती है; साथ ही वह संस्कृत के प्रति निष्ठा और आत्मीयता रखने वाले विद्वत्समाज के स्वाभिमान का पोषण करती है। पाश्चात्य आलोचकों के स्वर में स्वर मिला कर भोज के पश्चात् संस्कृत को मृत बतलाने वाले भ्रमभित्त लेखकों और बचताओं को मत-परिवर्तन के लिए विवश करने वाले ऐसे सैकड़ों काव्यों की सृष्टि भारत में होती आई है, होती रहेगी।

प्रस्तुत काव्यधारा को वेग प्रदान करने वाले अन्य ग्रन्थ वीरभद्रचम्पू, सङ्गीत-रघुनन्दन, रामचन्द्राह्निक और जगदीशशतक हैं। ये सभी कृतियाँ रसमयी एवं हृद्य हैं।

वीरभानूदय, वीरभद्रचम्पू, बघेलवंशवर्णनम् तथा रामचन्द्र-यशः-प्रबन्ध, ये चार काव्य इतिहास पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं। रीवा के बघेल राजवंश तथा छोलहवी-सत्रहवीं शती के आञ्चलिक इतिहास के विषय में, जिसका सम्बन्ध तत्कालीन भारतीय शासन से भी है, ये ग्रन्थ प्रामाणिक एवं मूल्यवान् सूचनाएँ देने हैं। अनेक सूचनाएँ ऐसी हैं, जो अभी तक अज्ञात थीं। विशयता यह है कि इन ग्रन्थों का मूल्य साहित्यिक भी है।

लघु-काव्यों के क्षेत्र में हमें प्रशस्तियाँ और स्तुतियाँ मिलती हैं और वे गीतिकाव्य मिलते हैं, जो संस्कृत-गीतिकाव्य को अभिनव रूप में तरङ्गित कर देते हैं। इस भावधारा के प्रमुख पोषक हैं विश्वनाथसिंह और उनके साथ उनके पुत्र रघुराजसिंह। बघेलखण्ड की काव्यधारा को समग्र रूप में देखने पर विश्वनाथसिंह ऐसे कवि के रूप में प्राप्त होते हैं, जिन्होंने अकेले इस क्षेत्र में नाटक, चम्पू और गीतिकाव्य को सर्जना की। अतः विविधता को दृष्टि से उन्हें प्रथम माना जा सकता है। काव्य सौन्दर्य को देखने पर सर्वप्रथम पद्मनाभ मिश्र, द्वितीय वीरभानूदय का कर्ता माधव, तृतीय-विश्वनाथसिंह

और चतुर्थ रघुराजसिंह को गिनना होगा : इसके पोछे भानुहर^१, वीरभद्रदेव और रूपणि आते हैं ।

पञ्च महाकाव्यों के साथ अश्वघोष, भास, भवभूति, विशालदत्त, शूद्रक और भट्ट नारायण के नाटक आदि काव्यों में अब तक हमारी दृष्टि प्रायः सीमित रही है । अब हमें अपना कार्य-क्षेत्र व्यापक करना होगा । आज यह जानना पहले से नहीं आवश्यक है कि विख्यात कवियों के अतिरिक्त छोटे-छोटे मठों, वेदों एवं नासकीय या जनपदीय अञ्चलों में संस्कृत के कव कैसे रचनाकार हुए । प्रकाशित ग्रन्थों को छोड़कर हमें वेदों में बँधी हुई, दीमकों द्वारा समाप्त की जाती हुई, आज उपलब्ध, किन्तु बख्त न मिल सकने वाली अपेक्षित पाण्डुलिपियों के बस्ते खोलने होंगे । पिछली अनेक शताब्दियों की संस्कृत-सर्जना की प्रवृत्ति का यथार्थ परिचय हमें तभी मिलेगा । इस खोज के बिना हमारा संस्कृत-साहित्य का इतिहास अधूरा है । इसी लक्ष्य की पूर्ति की ओर हमारा यह अल्प प्रयास कर्मठ चिन्तकों के समर्पण को अपेक्षा रखता है ।
इति शम् ।

१. यह निष्कर्ष भानुहर की केवल सम्बद्ध रचनाओं पर आधारित है, अन्यथा राममञ्जरी आदि ग्रन्थों में इसकी काव्यकला उत्कृष्ट है ।

परिशिष्ट—१

(क) एकत्रा बान्धोगढ़ (जनावन्दो १)

[यह बघेलों भाषा में लिखा हुआ बघेल शासन का लेखा-पत्र (हिमाव) है, जिसे जनावन्दो कहा जाता है। एकत्रा शब्द जनावन्दो का सूचक है। यह कामत्र बान्धवगढ़ (जिहा शहडोल) के किले में स्थित कार्यालयों में था। अतः इसे 'एकत्रा बान्धोगढ़' नाम से स्थानीय इतिहासकारों ने उल्लिखित किया है। लेखा-पत्र के बीच में कुछ ऐतिहासिक उल्लेख हैं और बघेलों को बंगालियों से। अन्तिम उल्लिखित तिथि मात्र मुदि० संवत् १७८२ है। अतः १७३२ ई० के निकट कुछ ही पौछे यह लेखा-पत्र लिखा गया होगा। बान्धव-गढ़ के कार्यालय से यह कामत्र महाराजा के निजी कार्यालय (खासगी) में रोवा लाया गया। २० जुलाई, सन् १८९५ ई० को इस कामत्र को महाराजा ने दोशान के कार्यालय में भिजवाया। १४ नवम्बर, १८९६ ई० को यह दोशान के कार्यालय से लेखा-विभाग (एकाउण्ट आफिस) में आया। यह सूचना निम्नलिखित उल्लेख के अन्त में है। रोवा-नरेश महाराजा गुलाबसिंह (१९१८-१९५० ई०) के आदेश से यह कामत्र टाइप कराया गया। इसकी १०० पृष्ठों की एक टाइप प्रति रोवा-सचिवालय के पुस्तकालय में मुझे सन् १९५५ ई० में देखने को मिली। निम्नलिखित अंश इसी टाइप प्रति से उद्धृत किये गये हैं। प्राप्त जनावन्दियों में यह प्राचीनतम है।]

+ + + +

छत्रपाठ देव के राज किया अमल सिर है।

रोमा का किला मलेनमाह पातपाह बनवावा संवत् ७७६ (?) के साल।
बैनाब वदि ५ बुने कहे किले में नेइ नै। विररमावीठ ते किले आए।

+ + + +

तरुमोम परिगने माद्रिक फरमान जहाँगीरसाह का राजा विक्रमावीठ
को जागोर का तबक सं० १६६१ के साल—कुछ परगने १६८१ सं० के। मुडे
के परिगने के तरुमोम लिखा सावन वदि ८ सं० १७७० के मुकाम रोवा।

+ + + +

घंशावली—

बघेलन के श्रीलादि लिखा जबते गुजरात ते आयें ।

पुरखा ठाकुर कहामें लागि । पुरखा ३, जैसिहूदेव १, वीरध्वजदेव २, व्याघ्रदेव ३ ।

गुजरात ते आए पुरिखा तीनि भे है, वणदेव ४ सोहागुदेव ५ सारंगदेव ६ ।

कालिजरहिं आइ दुइ माई भर राजा के चाकर भें, वीसलदेव ७ जेठे, भीममल लहुरे गहोरहिं आए । पुरिखा सात भरि गहोरा रहे । ठाकुर कहावै लागि । भीमलदेव गहोरा के लोधिनि कहं मारि के गहोरा छंड़ाइ लीन्हेंनि, पुनि गहोरा केरि राज कालिजर के भीमलदेव का दीन्हेंनि ।

भीमलदेव । रानिकदेव भीमलदेव के । बलनदेव रानिकदेव के । दलनेश्वर देव बलनदेव के । मलनेश्वर देव दलनेश्वर देव के । रासिंह तथा बरियारसिंह देव मलनेश्वरदेव के । बोल्लारदेव राजा भें बरियारदेव के ।

बोल्लारदेव ते राजा भें । पठान पात्साह राजा कीन्ह । तरहारि सब लीन्हेंनि गहरवारन का देस सुद्धावडेरा । राजा भें गहोरा में ।

राजा सिहदेव... । राजा सिहदेव (त्रि) बेनी मह गरसारा पापर के कोरहू मह पैठि के बीज देइ के बेनीमह बहराइ दीन्हेंनि । इह इशा कै के की हमारि सन्तानि अछैं राख्य करे, सं० १३६५ माघ वदी ३० सोमे कहें (?) ।

वीरमदेव १ संग्रामदेव २ । राजा वीरमदेव के बेटा अठारहिं । जेठे राजा नरहरि देव भें । १३ रानी बहुरिया । १७ और बेटा कुंअर ।

राजा नरहरिदेव के बेटा २, नेददेव जेठे, फूदीकुंअर लहुरे । राजा नेददेव यानहिं आए । यान छंड़ाइ लीन्हेंनि । यान बँटाइन संवत् १४०२ के साल मह ।

सारिवाहनदेव जेठे । अमयचंद, लखिमोचंद, बाहरराइ, मारथीचंद, त्रसेनि । राजा सारिवाहनदेव के जन्म सं० १४९२ । जेठे राजा विरसिहदेव । बाबू नागमल केवटी के । बाबू भीलमदेव लूक-भरका के ।...जेठसिंह उदेंचर्न ते । परतापसिंह ते ४ बेटा...हराइ (बाहरराइ) ते दुरजनसिंह...सूरतसिंह ।

राजा विरसिहदेव का जन्म सं० १५२४ के साल में । देवता राजा भें की रानी चारि भुजा देखा । देखि कै आनि सामू सों कहिनि । जो देखें दोऊ जनी तौ चतुर्भुजी मूर्ति देखि कै गई । जेठे राजा वीरमानदेव, लहुरे जमुनो-मान देव मंहर के । तेके सूर्जमान, सुजानसिंह, कीरतिसिंह ।

राजा वीरमानदेव का जन्म संवत् १५४३ के साल ।

राजा रामचन्द्र देव का जन्म सं० १५९२ के साल । सं० १६०८ के साल राज्याभिषेक । बेटा २, जेठे राजा वीरमद, भोपतिराय खवासिन के ।

राजा वीरभद्र का जन्म १६१० के साल का । संवत् " —के साल राज्याभियेक । जेठे राजा विक्रमादित्य, जिर्जोघन लहुरे गेहवा और परदवा के ।

राजा विक्रमादित्य का जन्म संवत् १६३० के साल । संवत् १६४६ के साल राज्याभियेक । बेटा ३, अमरसिंहदेव जेठे; इन्द्रदेवसिंह पपरहट के, सरूपसिंहदेव चौहडा के ।

राजा अमरसिंह देव का जन्म सं० १६६० के चैत्र सुदि सोमे मह । सं० १६७३ के साल राज्याभियेक । जेठे समरसिंह का जन्म सं० १६७८ भाद्र वदि ८ ।

राजा अनूपसिंह का जन्म सं० १६८२ के साल । राज्याभियेक —। मानसिंह, भावसिंह, जसवंतसिंह (गुड), रघुनाथसिंह (गिरवा) — संप्रामसिंह, राजसिंह, जुझारसिंह (रामनगर) — ।

राजा भावसिंहदेव का जन्म सं० १७०७ के सावन वदि १४ महं । संवत् १७३२ के राज्याभियेक । सं० १७५१ के चैत्र सुदि ११ देवलोक । १६ रातो— गजसिंह, मुकुन्दसिंह, अनिरुद्ध सिंह ।

राजा अनिरुद्धसिंह देव का जन्म भा सं० १७३३ के साल । सं० १७४९ के साल राज्याभियेक । श्री महाराजा भावसिंह अपने जाने राज्य बैठाइन, राज्याभियेक कीन । पुनः सं० १७५१ के चैत्र सुदि ११ कहं राजा भावसिंह देव कुरसी प्राप्त भें और राजा अनिरुद्धसिंह सं० १७५१ के पीप सुदि १२ कहं जूअें ।

महाराजा अवधूतसिंह देव का जन्म सं० १७५१ के भाद्र सुदि १२ कहं । सं० १७५२ के कार्तिक महं राज्याभियेक । अजीतसिंहदेव का जन्म भाद्र सुदि ८, १७८८ के साल । मानसिंह भाद्र सुदि ८, १७८९ ।

+ + + +

एकत्रा के बन्द कटे रहे हैं सब, तेहें से बेवरा सब नहीं लिखा । जौन समुजि परा है सो लिखा है ।

यह कागज दफ्तर बान्धोगढ़ में रहा है । सो जब कागज दफ्तर कोठी में आया तब मिला । सो दफ्तर सासगो हजूर से जनाब दीवान साहब बहादुर के इजलास में आया ता० २० जुलाई सन् ९५ ई० को । ओ इजलास दीवान साहब बहादुर मे सरिगता अकोन्टगटी में आया ता० १४ नवम्बर सन् ९६ ई० ।

(ख) वंशावली बांधीपति (जमाबन्दी २ ।

(यह भी एकत्रा बान्धोगढ़ की भाँति लेखापत्र है । यह रीवा सचिवालय के मुहाफिज खाने में था । इसका लेखन-काल संदिग्ध है । इसकी प्रतिलिपि श्री रामभद्र गौड़ मानपुर, जिला राहडोल के पास है । इसका प्रारंभिक अंश, जो श्री गौड़ के द्वारा पत्र के रूप में दिनांक ८-११-५९ को मेरे पास भेजा गया था, निम्नलिखित रूप में है—)

वंशावली बांधीप (ति) ।

गुजराति मा भे पुरिया तीनि, १ जँसिहदेव, १ कीरमदेव १ व्याघ्रदेव भाई करनदेव ।

करनदेव के वंशावली गुजराति मा तीनि, करनदेव १ सोहागदेव १ सारंगदेव १ ।

कालिजर आइ दुइ भाई मर राजा बीसलदेव के चाकर भे । गहोरा जागोरि पाइनि । ठाकुर के खिताब पाइनि । लोधिन का मारिनि । गहोरा अमल भा । बीसलदेव जेठ, भोउमल लहुर ।

गहोरा रहे पुरिया ७, भोउमलदेव १ रनिहदेव १...।

(जमाबन्दी खास जमुना ते नरबदा भरि करिया आम ते टेड़ा आम भरि जब कालिजर छँका रहा सेरसाह ते सं० १६०५ ।)

. + + + +

(ग) वंशावली (जमाबन्दी ३)

(इस जमाबन्दी में प्राप्त वंशावली भी उपर्युक्त श्री रामभद्र गौड़ के पास सुरक्षित है । इसकी प्रतिलिपि भरतपुर, जिला सीधी (म० प्र०) के श्री मानुसिंह बाघेल ने मेरे पास ३०-३-६३ को भेजी थी । श्री बाघेल ने लिखा था कि गौड़ जो इसे १७५१ वि० की लिखी मानते हैं ; साथ ही, आपने लिखा था कि यह वंशावली जयसिंह देव (राज्य० १८०९-३४ ई०) पर्यन्त है । अतः वास्तव में यह १६ वीं शती के पूर्वार्द्ध में विश्वनाथसिंह के कार्यालय में लिखाई गई होगी, जो एकत्रा के अतिरिक्त किसी पूर्वलिख की प्रतिलिपि होगी । इसके कुछ अंश, जो एकत्रा बान्धोगढ़ से भिन्नता लाते हैं, नीचे दिये जाते हैं ।

वंशावली बांधीपती के ।

गुजराति मा पुरिया तीनि । १ जँसिहदेव २ कीरमदेव ३ व्याघ्रदेव भाई करनदेव के बांधी ।

व्याघ्रदेव के वंशावली । ४ पुत्र करनदेव ५ सोहागदेव ६ सारंगदेव ।

कालिजर भाइ भर राजा बीसलदेव के चाकर में । गहोरा जागोर पाइन ।
तिवारी मिलाइ कै आधा राज देइ काहीं हींसा । लोचिन का मारिनि । गहोरा
अमल भा । गहोरा रहे पुरिया ७, विसालदेव, भोममलदेव, रनिकदेव, बलनदेव,
दलकेश्वरदेव, मलकेश्वरदेव, बरियारदेव ।

बोलारदेव पठानन भारा । अंत्रवेद अमल भा । पातसाह का कोनी
लगाइ तरिहार सहिबना ते रानो मड़ई भरि सब लीन्हेंनि । गहरवारन का
देस सुद्धाबठेरा पातसाह दीन राजा में गहोरा में । बोलारदेव ते राजा में ।
पठान पातसाह राजा कोन्ह ।

राजा बीरमदेव—पाठे पर अमल भा ।

राजा भैरदेव भाई फूँदीदेव । जिन विजंगिरि का हायो दैजै लीन्ह ।
राजा याने काएँ चौहानहि मारि कै यान छंडाय लीन आपन यान बैठाइ
दिहिनि । बांघोपति शक सं० १६३४ के साल । पुत्र...सारिवाहनदेव जेठ,
लखमोचन्द, चन्देसनि हींसा पाइनि कसोटा, लहुरे भाई अमयचंद, विरयोवट,
बाहेर ओर बाहरराइ, भारतीचंद । पात्साहि चड़ि आवा ।

राजा सारिवाहनदेव पुत्र में चारि, जेठे बिरसिहदेव, बाबूमीमलदेव, बाबू
नागनन्ददेव, बाबू उदकनंददेव । चार बेटा भितरहाई ते, जंतसिह, परतारसिह,
दुर्जनसिह, मूरतसिह ।

राजा बीरसिहदेव ... ।

राजा बीरमानदेव... । भाई बाबू अमुनीमान, मैहर दीन । राजा राम-
देव ते अमल । अमुनीमान कै वंसाउली ७ पुरिखा । बाबू अमुनीमान १,
केन्द्र २, ... ३, ... सिह ४, मुजानसिह ५, कोरतिसिह ६, समरसिह ७ ते
जाया छूटि । सूर्यभान मेदिनोराय का सोहागपुर बक्खीस गांठ ८४ । प्राग मा
पुरिखा ११ रहें । सं० १८६१ मा गोपालसिह ते जाया छूटि । पात्साह नागि
आवा । पठानन ते रार में ।

राजा रामचन्द्रदेव... । सेमौतहन का अपमान भा, पात्साह के इहां मे ।
प्राग के किला कै घुनि में, तब कालिजर छेकि गा । पात्साह चड़ि आवा ।
अमुना पार डेरा में । राजि का काळं मा । अमुना ते नरमदा भरि करिया
आम ते टेड़ा आम भरि । औ अमल छूटिगा, नानकार पावा परिहारी
२८,००,००० बरमें का बदला परदमा (१२,००;०००) । राज अबलेखा भा
सं० १६०८ मा । पुत्र में दुइ, राजा बीरभद्र औ भोपतराय खवासिन के पाइन
बोड़ा ८ गांठ ।

परिशिष्ट—२

तारीखी मुहम्मदी का एक उल्लेख

[रोवा के मौलवी ऐयाज अली खाँ ने दिनांक २८-३-६० को अपनी यादरी से निम्नलिखित उल्लेख लिखाया था। यह मोहम्मद विहामिद खानी द्वारा ८४२ हिजरी (१४३८ ई०) में लिखित 'तारीखी-मुहम्मदी' नामक इतिहास ग्रन्थ के पृष्ठ ४७२ में प्राप्त ७९८ हिजरी (१३९५ ई०) का विवरण है।]

कालपी के सुलतान नासिरुद्दीन महमूदशाह ने ७९८ हिजरी में हमीरपुर को लूटा। तामराज से मुलह हुई। उसके बाद वह बहादुर बघेलों के गहोरा पर चढ़ा। रास्ते में सेमीनी और मथुरा का लूटा। गहोरा के मुकद्दम वीरम (वीरम) ने सामना किया। उसके पास काफी फौज थी और वह बड़ा ताकतवर था। लेकिन वह पहले ही हमले में हार गया। बहुत से लोग गिरफ्तार किये गये। इस लड़ाई में महमूदशाह का बेटा तातार खाँ भी था। वीरम को पकड़ कर मोहम्मदाबाद (कालपी) में पश्चिमी दरवाजे पर दरिया के किनारे खड़ा कर दिया। वीरम ग्वालियर की तरफ भाग गया। उसकी सिन्घा के बोलम से दोस्ती थी। बोलम ने महमूद से मुलह कर ली। थोड़े बरसे के बाद वीरम ने फिर तैयारी की और कड़ा में फौज जमाई। महमूद ने दूसरी बार गहोरा पर चढ़ाई की और उसे नेस्तनाबूद कर दिया। बहुत सी लूट मिली। बाद में मुलह हो गई।

परिशिष्ट—३

शिलालेख

[बोरभानूदयकाव्य के साथ प्रारम्भ में प्रकाशित अपने समीक्षात्मक विश्लेषण (क्रिटिकल एनलिमिस पृ. १७) में डा० हीरानन्द शास्त्री ने करवी में पड़े हुए एक महोरा-शिलालेख का उल्लेख किया है। यह १३६० ई. का सतीलेख इस समय प्रयाग सङ्ग्रहालय में है। १९-२-३६ को उतारे हुए इसके बंकरन (रिट) की प्रतिलिपि भूतपूर्व प्राचार्य अक्षतर हुसेन निजामी, रीवा ने मेरे समीप १४-७-६४ को भेजी थी। इसके कुछ पठनीय अंश निम्नलिखित रूप में सामान्य प्रस्तुत किये जाते हैं।]

- (१) संवत् (त्) १४१७ समये । जेष्ठा (ज्येष्ठ) वदी १३ बुद्धे (घे) महा ।
- (२) राजाविराज श्री बल्लालदेवराज्ये । - अती (नी)
- (३) नायक...तस्य वैसे (शे) सुनुत्र महाराजनामा
- (४) दमाग्दात्परमेश्वर-वैकूल्यात् स
- (५) ती... सत्परलोक...तः तदर्थं दा (?) व
- (६) पकात्...अरीन्द्रजान् यावत्तावग्निज (?)
- (७) मणेररी मकव (?)... वो ले सिहदेव हगा । स्ता) व (त्) ।

परिशिष्ट—४

आनन्द-रघुनन्दन-नाटकम् (छाया-चित्र के दो पृष्ठ)

प्रथम प्रति (वस्ता ३९।८ : सं० की० भा०) का प्रथम पृष्ठ

श्रीगणेशायनमः ॥ विश्वेशानामधीशश्चिदचिदुदितया स्वीय-कृत्याखिलान्त-
र्यामी स्वामी जनानी सुरचित्त-मकलः सर्वकर्ताप्यकर्ता । उद्वर्ता भृत्यमृत्योः
करयुग-विलसद्बाण-बाणासनश्राद्ध-स्वापस्तद्वित्वानिव स धरणिजा-जानिरव्याद-
भ्रम्यात् ॥ १ ॥ अपि च । कल्याणं कलयन्तु शंकरधनुर्मावी-समाकर्षणात् काठिन्य-
प्रतिभासि-पालि-लसिताः समाजांगुलि-श्रेणयः । शोणांभोरुह-मध्य-संपुट-मिलत्सं-
वत्तिवा-संभ्रमा यानूद्भृगुविभा विमान्ति महिजा-जानेः कटाक्षच्छटाः ॥ २ ॥
देवेन्द्रवन्द्य-विलसच्चरणारविन्दमानन्द-सान्द्रमुदितेन्द्रिन्दरमानमामः । यस्य प्रसाद-
रजसा सहसा शिलापि बाला बभूव विमला कमलायताशी ॥ ३ ॥ ध्यायन्ती
ध्येयरूपं हृदय-सरसिजे ध्येयनामोद्गुणन्ती वाचा वाचामधोना तदमलचरितं
कीणया वादयन्ती । शुभा शुभाशु-शुभाशुक-कुसुम-लसन्मौखिकाभूषितांगी
संस्क्रुयाद् वाच्यमंगी मम वदन-सरोजात संगोज-भृंगोम् ॥ ४ ॥ (नान्यन्ते)
सूत्रधारः—बलमतिविस्तरेण । मारिच ! महाराजकुमारस्य नाट्यकरणाज्ञा
ममासौदेतादृशि समये यत् सहायकस्त्वं मिलितः तन्महत्कार्यमासीत् । मारिचः—
भोः—सूत्रधार ताव (दन).... ..

+ + + +

तृतीय प्रति (वस्ता ३९।८।२ : सं० की० भा०) का अन्तिम पृष्ठ

सूत्रधारः—(चूटाचुबदंजलिपंकजं प्रणम्य) चित्तं निर्मलतां प्रयातु
निखिला नश्यन्तु कामाध्यः पुष्यं पागितलावलवमिह नः कुर्याः विवेक-प्रदम् ।
त्वत्पादाब्ज- (मिलन्)-मिलिन्द-पदवो स्याद्देवदेव प्रभो । प्रेमान्नोतु तमो (वी)
सत्तमं नरपतिः श्रीविश्वनाथः कृतो ॥ यावत्कीर्तिस्त्वदीया चलति कुबलये ताव-
दास्ता रसोच-प्राकट्यं नाटकं श्रीधर एव चरितं नन्ददानन्द-भूम्ने (मनः) । या (सः)
स्यात् सीमाशाला (लो) विरति-वर-गतिर्यः पठेत् पाठयेद्वा त्वद्रूपं विश्वनाथः
कलयतु हृदये दीयतां सद्गरोऽयम् ॥ श्रीरघुनन्दनः—तथास्तु । सूत्रधारः (प्रणम्य
सहस्रं निष्क्रान्तः ।) श्रीरघुनन्दनः—आगच्छत । गृहान् गच्छामः । (इति
निष्क्रान्ताः सर्वे) ॥ सम्पूर्णः समाप्तः (सप्तमः) काण्डः (अंकः) ॥ सिद्धि-
महाराजाधिराज-श्रीमहाराजा-श्रीराजावहादुर-श्रीसीतारामचन्द्र-कृपापात्राधि-
कारि-श्रीविश्वनारायणसहजुदेव-कृतमानन्द-रघुनन्दन-नाम-नाटकं सम्पूर्णम् ॥
शुभं भूयात् ॥

सन्दर्भ-ग्रंथ

(क) संस्कृत (प्रकाशित)

१. अग्निपुराणम् ।
२. अप्पयदीक्षित : कुवलयानन्दम् ।
३. आनन्दवर्धन : ध्वन्यालोक : अभिनवगुप्त-कृत लोचन-व्याख्या सहित ।
४. उदयन : किरणावली : विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी ।
५. उदयप्रभ सूरि : सुकृत-कीर्ति-कल्लोलिनी ।
६. ऋग्वेद : दशम-१० : पुष्प-सूक्त ।
७. कल्याणवर्मा : सारादनी ।
८. केशव मिश्र : तर्कभाषा : आचार्य विश्वेश्वर : चौखम्बा ।
९. केशव मिश्र : तर्कभाषा : सुरेन्द्रलाल गोस्वामिन् ।
१०. गदाचर मट्ट : रसिकजीवनम् ।
११. गोविन्दचित्तु : सम्पालङ्करणम् ।
१२. गोविन्दमट्ट (अक्षरवरी कालिदास) : रामचन्द्र-महाभद्रम् ।
१३. जगन्नाथ शास्त्री पदे : सम्मानाङ्क : बड़ौदा ।
१४. जयदेव : गीतगोविन्दम् ।
१५. जयदेव : चन्द्रालोक : पौर्णमासी टीका : चौखम्बा, वाराणसी ।
१६. जयदेव : चन्द्रालोक : राकागन टीका : चौखम्बा : वाराणसी ।
१७. जयदेव : चन्द्रालोक : शरदागन टीका : पद्मनाभ मिश्र ।
१८. जयदेव : प्रमन्नराधन-नाटकम् ।
१९. त्रिनाद् विभूति—महानारायणोपनिषद् ।
२०. दण्डिन् : काव्यादर्शः ।
२१. दण्डिन् : दशकुमारचरितम् : (पूर्वपीठिका) : चौखम्बा : वाराणसी ।
२२. धनञ्जय : दशरूपकम् (हिन्दो व्याख्या) ।
२३. निरसाङ्क शाङ्गदेव : सङ्गीत-रत्नाकर : हरिनारायण ढाण्टे ।
२४. नीलकण्ठ : अद्भुतदर्शन नाटक ।
२५. पद्मनाभ मिश्र : किरणावली-भास्कर : गोपीनाथ कविराज ।
२६. पद्मनाभ मिश्र : प्रशस्तपाद भाष्य श्री सेतु व्याख्या : चौखम्बा : वाराणसी ।

२७. पद्यनाम मिथः : वीरभद्रवम् ।
 २८. परब—काशीनाथ पाण्डुरङ्ग : सुभाषित-रत्न-भाण्डागारम् ।
 २९. पाञ्चरात्र-परम-संहिता : गायकवाह ओरिएण्टल विरोज ।
 ३०. प्रगल्भ मिथः : खण्डन-खण्ड-खाद्य की खण्डन-दर्पण टीका ।
 ३१. प्रियादास : सुसिद्धान्तोत्तमम् : काशी ।
 ३२. बाणभट्ट : कादम्बरी (पूर्वभाग) ।
 ३३. बालचन्द्र सूरि : यसन्तत्रिजाल महाकाव्यम् : बड़ोदा ।
 ३४. बृहद्घर्मपुराणम् ।
 ३५. ब्रह्मगुप्त : ब्राह्मस्फुटसिद्धान्तः : काशी ।
 ३६. भरत : नाट्यशास्त्रम् ।
 ३७. भवभूति : उत्तर-रामचरित-नाटकम् ।
 ३८. भवभूति : महावीरचरितम् ।
 ३९. भास : अभिषेकनाटकम् ।
 ४०. भास : प्रतिमा-नाटकम् ।
 ४१. भानुजिदोहित : अमरकोष की व्याख्यासुधा टीका ।
 ४२. भानुदत्त : रस-तरङ्गिणी ।
 ४३. भानुदत्त : रस-मञ्जरी : खोलम्बा ।
 ४४. भामह : काव्यालङ्कार : काशी संस्कृत सिरीज ।
 ४५. भोजराज : षम्पूरामायणम् : खोलम्बा ।
 ४६. मम्मट : काव्यप्रकाश ।
 ४७. माधव ऊरुव्य : वीरभानुदयकाव्यम् : होरानन्द शास्त्री ।
 ४८. मुरारि : अनर्घराज्यम् ।
 ४९. मेरुतुङ्गाचार्य : प्रबन्ध-चिन्तामणि ।
 ५०. रघुराजसिंह : जगदीशशतकम् : मूलमात्रम् ।
 ५१. रघुराजसिंह : जगदीशशतकम् : रङ्गाचार्य-टीका ।
 ५२. रघुराजसिंह : नर्मदाष्टकम् ।
 ५३. रघुराजसिंह : शम्भुशतकम् ।
 ५४. रघुराजसिंह : सुधर्माविलास ।
 ५५. राजशेखर : काव्यमीमांसा ।
 ५६. राजशेखर : बालरामायणम् ।
 ५७. राजशेखर सूरि : प्रबन्धकोश : जिनविजयमुनि ।
 ५८. रामचन्द्र भट्ट : रसिकरञ्जनम् ।

५३. रामाश्रम : सिद्धान्तचन्द्रिका : चौखम्बा ।
 ५४. हट्ट : काव्यालङ्कार : ननिसायु की व्याख्या ।
 ५५. रूपाणि शर्मा : बघेलवंशवर्णनम् : सम्पादक-राजीवलोचन अग्निहोत्री ।
 ५६. लक्ष्मणमठ्टु : पद्यरचना ।
 ५७. वामन : काव्यालङ्कार-सूचम् ।
 ५८. वाल्मीकि-रामायणम् ।
 ५९. विश्वनाथ : साहित्यदर्पणम् : जोवानन्द विश्वासागर ।
 ६०. विश्वनाथ : साहित्यदर्पणम् : दुर्गाप्रसाद द्विवेदी ।
 ६१. विश्वनाथ : साहित्यदर्पणम् : पी. बी. काणे ।
 ६२. विश्वनाथ : साहित्यदर्पणम् : रामचरण ठक्कवागीस ।
 ६३. विश्वनाथ : साहित्यदर्पणम् : शालग्राम शास्त्री ।
 ७०. विश्वनाथ : साहित्यदर्पणम् : शिवदत्त कदिरत्न ।
 ७१. विश्वनाथ : साहित्यदर्पणम् : हरिदत्त सिद्धान्तवागीस :
 ७२. वीरभद्रदेव : कन्दर्पचूडामणि : जातनसिंह : सतना : १६०८
 ७३. वीरभद्रदेव : कन्दर्पचूडामणि : रामचन्द्र शास्त्री ।
 ७४. वेणोदत्त : पद्यवेणी : प्राच्यवाणा कलकत्ता ।
 ७५. वैशेषिकदर्शनम् : चौखम्बा ।
 ७६. शक्तिभद्र : आश्चर्यचूडामणिनाटकम् : कुम्भुस्वामी ।
 ७७. शिवताण्डवस्तोत्रम् ।
 ७८. शील-हनुमन् : महानाटकम् : कलकत्ता ।
 ७९. घोमङ्गावतम् : पोरखपुर ।
 ८०. मुधाकर द्विवेदी : गगक-तरङ्गिणी ।
 ८१. मुन्दरदेव : सूक्तिमुन्दर ।
 ८२. सुभाषित-शार-समुच्चय ।
 ८३. सुभाषित-हारावली ।
 ८४. सोमेश्वर : कीर्तिकौमुदी ।
 ८५. हरिभास्कर : पद्मानुव-तरङ्गिणी ।
 ८६. हेमचन्द्र : काव्यानुशासनम् ।

(ख) संस्कृत (अप्रकाशित)

(अ) कलकत्ता : रायल एशियाटिक सोसायटी आफ् बंगाल

१. वीरभद्रदेव : दशकुमार-पूर्व-कथासार : (१५८० ई० के निकट)
क्र० जो० १९३६८ : प्रतिलिपि ।
२. शम्भूदास पण्डित : सार-सङ्ग्रह : क्र० ३१।ए ।

(आ) रामवन सतना :- तुलसी सङ्ग्रहालय :

३. रघुराज सिंह : यादवेन्द्राष्टकम् ।
४. रघुराज सिंह : लोकनायाष्टकम् ।
५. विश्वनाथ सिंह : अध्यात्म-रामायण : ध्वनि-प्रकाशिका टोका
(१८३४-५४) ।
६. " रामगीता की प्रबोधिका टोका (१८२०-३४) ।
७. " रामचन्द्राह्निकम् (१८३४-५४) ।

(इ) रीवा : सरस्वती-कोप-भाण्डार : किला :

८. पद्मनाभ मिश्र : वीरभद्रदेव-चम्पू (१५७७ ई०) : उदयपुर की प्रतिलिपि ।
९. प्रियादास : चतुःश्लोकी मागवत (१८००-१८१८) ।
१०. " दोहासार-निर्णय " ।
११. " भक्तिप्रभा (१८०७) ।
१२. " वैष्णवसिद्धान्त (१८००-१८१८) ।
१३. " धृति-सूत्र-तात्पर्यामृत (१८१३) ।
१४. " सुमत-निर्णय (१८१५) ।
१५. " सुसिद्धान्तोत्तम (१८००-१८१८) ।
१६. बलभद्र सिंह : कृष्ण विवरण (१६ वीं शती-पूर्वार्द्ध)
१७. " ब्रह्मसूत्र-भाष्य (१८१८) ।
१८. " लोचन-ग्रन्थ (१९ वीं शती-पूर्वार्द्ध) ।
१९. " वृत्तिबोध " ।
२०. रघुराज सिंह : रघुराज-मञ्जल-चन्द्रावली (१८५०-८०) ।
२१. विश्वनाथ सिंह : आनन्द-रघुनन्दन-नाटकम् (१८३५ ई० के निकट) :
३ प्रति—क्र० ३६।८ : ३६।८।१ : ३६।८।२ ।
२२. " ज्योत्स्ना—सुमार्ग की टीका (१८२७) ।
२३. " तत्त्वमस्यर्ष-सिद्धान्त-भाष्य (१८३४-५०) ।

२४. विश्वनाथ सिंह : धनुविद्या (१८४०) ।
 २५. " धर्मशास्त्र (विंशत्युल्लोकी) (१८३४-५४) ।
 २६. " निकुञ्जश्री-वेदमनुनि-टीका (१८२०-५४) ।
 २७. " राधावल्लभोप मठ-प्रकाशक-ब्रह्मसूत्र-भाष्य :
 (१८४०-४१) ।
 २८. " रामचन्द्राह्निकम् (१८३४-५४) ।
 २९. " राम-मन्त्रार्थ-निर्णय (१८३४-५०) ।
 ३०. " वासुदेव-सहस्रनाम (१८३४-४२) ।
 ३१. " सर्वसिद्धान्तम् (१८०९-३४) ।
 ३२. " सङ्गीत-रघुनन्दनम् (१८२०-३४) : ६ प्रति : क्र०
 १५४।१३।१-२-३.८ तथा १५४।१४ और ६।७३ ।

(ई) रीवा-शिक्षासागर पुस्तकालय :

३३. विश्वनाथ सिंह : राधावल्लभोप-मठ-प्रकाशक-ब्रह्मसूत्र-भाष्यम् ।
 ३४. " रामपरत्वम् (१८४०) ।
 ३५. " रामरहस्य-त्रयार्थ (१८३४-३७) ।
 ३६. " सर्वसिद्धान्तम् (अपूर्ण) ।

(उ) अन्यत्र :

३७. अग्निहोत्रो-रंचुकराम : अग्निहोत्रि : कुल-वंशावली (१८२८ ई०) ।
 ३८. विश्वनाथ सिंह : वाल्मीकीय रामायण की सारसर्व-तरणि टीका :
 (१८३४-४५) : नन्दकिशोर पोष्टाचार्य : रीवा ।

(ग) हिन्दी (प्रकाशित)

१. अजबेश कवि : वंशावली : नागरो प्रचारिणी पत्रिका, काशी, १८३६ ई० ।
 २. आशीर्वादीलाल श्रोवास्तव (डा०) : मुगलकालीन भारत ।
 ३. कविलदेव पाण्डे (डा०) : मध्यकालीन साहित्य में अथारवाद, चौखम्बा ।
 ४. कामिन्द्र धुक्के (फादर) : रामकथा-उत्पत्ति और विश्वास ।
 ५. कृष्णाराम गणेशराम भट्ट : बाघेना-वृत्तान्त ।
 ६. मोरेलाल तिवारी : बुन्देलखण्ड का इतिहास ।
 ७. गोस्वामी तुलसीदास : रामचरितमानस ।
 ८. जयसिंह देव : हरिचरित चम्पिका (पूर्वाह्न) ।
 ९. दुर्गादास कवि : अज्ञातफनेह या नायक-रामसा ।
 १०. भागेन्द्रनाथ बसु : हिन्दी विश्वकोष भाग १५ ।

११. बलदेव उपाध्याय (डा०) : संस्कृत बालीचना ।
 १२. बजरत्नदास : भास्तिर-वल-उमरा, हिन्दी अनुवाद ।
 १३. भगवानदास गुप्त (डा०) : महाराजा छत्रसाहब बुन्देला ।
 १४. मैथिलीदारण गुप्त : साकेत ।
 १५. यादवेन्द्रसिंह : रोवा राज्य का इतिहास ।
 १६. मुगलदास (कवि) : विश्वनाथसिंह-चरित्र ।
 १७. रघुराजसिंह : आनन्दाम्बुनिधि (भाषा-भागवत) ।
 १८. रघुराजसिंह : जगन्नाथ शतक ।
 १९. „ मक्तिविलास ।
 २०. „ मृगयाशतक (चिकारशतक) ।
 २१. „ रघुराजविलास (पदावली) ।
 २२. „ रामरसिकावली (भूषणमाला) ।
 २३. „ रामस्वयंवर ।
 २४. „ हविमणी-परिणय ।
 २५. „ विश्वामहलनाम (पद्य) ।
 २६. राजीवलोचन अग्निहोत्री : संस्कृत साहित्य की बाल्यव नरेशों की देन ।
 २७. रामचन्द्र शुक्ल (आचार्य) : हिन्दी साहित्य का इतिहास ।
 २८. रामप्यारि अग्निहोत्री : कसौटा के बाघेलों का इतिहास ।
 २९. „ विन्ध्यप्रदेश का इतिहास ।
 ३०. विजयेन्द्र स्नातक (डा०) : राधावल्लभ सम्प्रदाय-सिद्धान्त और साहित्य ।
 ३१. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : वाङ्मय-विमर्श ।
 ३२. विश्वनाथ सिंह : आनन्द-रघुनन्दन नाटक (हिन्दी) ।
 ३३. शकुन्तला दूबे (डा०) : काव्यरूपों के मूलस्रोत और उनका विकास ।
 ३४. श्यामसुन्दरदास (आचार्य) : प्राचीन लेख-मणिमाला ।
 ३५. सिलारपुरिया : दक्षिणा पुस्तकालय ।
 ३६. हिन्दी साहित्य-कोश : भाग १-१ ।

(घ) हिन्दी (अप्रकाशित)

(अ) सरस्वती कोष-भाण्डार, रोवा में उपलब्ध :—

१. गंगाराम तुलाराम चौबे : संगीत-रत्नाकर की सेतु (व्रजभाषा)
 टीका (१८२०-५०) ।
 २. रघुराजसिंह : परम-प्रबोध-नाटक (छण्डित), ५१६८ ।
 ३. „ : विनय-पत्रिका (१८५०) : दो प्रति ५-६७-१ : ८५/६१६ ।

४. रघुराजसिंह : विनय-प्रकाश (छण्डित) ।

५. ,, ध्यङ्ग्यार्थ-चन्द्रिका (भागवत की टीका) :

एकादश-द्वादश स्कन्ध (१८५० ई०) ।

६. लक्ष्मणसिंह (रविन्द्र) : कृष्णायन : षोडश खण्ड :

(१९ वीं शती-पूर्वार्द्ध) ।

(आ) अन्यत्र :

७. रघुराजसिंह : मुन्दरसूत्रक (हनुमत्शतक) : १८४७ ई० : तुलसी-

सङ्ग्रहालय : रामवन ।

८. ,, ताल्मर्दोनिक्का (वाल्मीकि-रामायण की हिन्दी टीका) ।

९. विहामिद खानी : तारीखी मुहम्मदी (हिन्दी अनुवाद) : मौलाना ऐयाज

खली : घोघर : रोवा ।

१०. बंशावली १. एकत्रा बांघोगड़ : (जमाबन्दी) : परि० १ (फ)

११. बंशावली २. जमाबन्दी : परि० १ (ख)

१२. बंशावली ३. जमाबन्दी : परि० १ (ग)

१३. बंशावली ४. शिवदीन कवि : १९१४ वि० (१८५७ ई०) : स्व० अम्बिकेश

मट्ट : रोवा ।

(छ) हिन्दी-निबन्ध

राजीवलोचन अग्निहोत्री ।

१. जयसिंहदेव की रचनाएँ : विन्ध्यमूमि ।

२. रघुराजसिंह की संस्कृत रचनाएँ : विन्ध्यगिज्ञा ।

३. विश्वनाथसिंह के हिन्दी ग्रन्थ : मध्यप्रदेश-सन्देश ।

(च) अंग्रेजी (प्रकाशित)

1. A Collection of Prakrit and Sanskrit Inscriptions in the Bhavanagar Archaeological Department.

2. Aitchison—C. U. : Rewa Under the Crown—Treaties and Sanads with British Government (1800—1930) Delhi : 1933.

3. Aufrecht : Catalogus Catalogorum : Leipzig.

4. Beveridge—H : Akbarnamah of Abul Fazl : 1907.

5. Beveridge—H : Humayun-namah of Gulbadan Begam.

6. Beveridge—H : Jahangir-namah : 1909.

7. Bhandarkar—R. G. : Report of the Second Tour : 1904—6 Bombay.

8. Blochmann : Ain-i-Akbari of Abul-Fazl. Calcutta : 1873..
9. Bombay Gazetteer.
10. Briggs : Tarikhe-Ferishta.
11. Buhlar : Epigraphica-Indica : Vol. XXVI.
12. Catalogue of Manuscripts existing in Oudh.
13. Catalogue of Manuscripts in Kashmir.
14. Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the Oriental Library
Mysore & Supplement.
15. Catalogue of Sanskrit manuscripts in the Ulwar State.
16. Chaudhuri-J. B. Muslim Patronage to Sanskrit Learning :
Vol. I : Second Edition : Pracyavani. Calcutta : 1954.
17. Cunningham—A. Archaeological Survey Reports of India :
Vol. XXI.
18. Egging : Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the India
Office, London : Vol. VII.
19. Elliot & Dowson : History of India : Vols. I-VI.
20. Erskin : Babar & Humayun : Part II.
21. Faizi-Sirhindi : Akbarnamah.
22. Gladwin : Ain-e-Akbari of Abul-Fazl.
23. Glory of Bandho : Rewa : 1948.
24. Habibullah : The Foundation of Muslim Rule in India
(1200-1290) : 1945.
25. Hunter : Imperial Gazetteer of India.
26. Johar : Humayun-namah (Memoirs of Humayun).
27. Kane—P. B. : History of Dharmasastra : Vol. I : Poo...
1930.
28. Keith—A. B. (Dr.) : A History of Sanskrit Literature :
Oxford : 1928.
29. Krishnamachariar-M. : History of Classical Sanskrit Lite-
rature : Madras : 1937.
30. Lowe-W. H. : Al-Badaoni : Vols. I & II : 1884.
31. Luward-Captain : Rewa State Gazetteer : 1910.
32. Majumdar-A. K. : Chaulukyās of Gujrat : Bharatiya
Vidya Studies IV-Bombay : 1956.
33. Majumdar-B. C. : Orissa in the Making.
34. Menaria-M. L. : Catalogue of Manuscripts in the Library
of H. H. the Maharana of Udaipur.

35. Mitra-R. L. : A Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the (Anup Sanskrit) Library of the Maharaja of Bikaner.
36. Mitra-R. L. : Notices of Sanskrit Manuscripts : Calcutta : 1871.
37. Munshi-K. M. : Glory that was Gurjar Desa : Bharatiya Vidya Bhavan : Bombay : 1954.
38. Nambier-Raghavan : An Alphabetical List of Manuscripts in the Oriental Institute of Baroda : Part II-1950.
39. Parekh-Bhai Manilal C. : Sri Vallabhacharya : Rajkot : 1943.
40. Peterson : Reports of the Operations in Search of Sanskrit Manuscripts in the Bombay Circle.
41. Polemann-H. E. : Census of Indic Manuscripts in U.S.A. and Canada, 1938.
42. Rai : Successors of Shershah : 1934.
43. Raverty : Tabkat-Nasiri of Minhaz-Uddin of 1260 A. D.
44. Ray-H. C. : Dynastic History of Northern India Vol. II. Calcutta : 1936.
45. Satyasray-Ranjit Sing : Origin of the Chalukyas : Calcutta : 1938.
46. Shastri-H. P. (M. M.) : Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the Asiatic Society of Bengal Calcutta : Vol. IV-1923.
47. Shastri-H. P. (M. M.) : A Descriptive Catalogue of Sanskrit Manuscripts in the Royal Asiatic Society of Bengal : Calcutta : Vol. VII : 1934.
48. Shastri-P. P. S. : Catalogue of Manuscripts in the Palace Library of Tanjore.
49. Shelat-J. M. : Akbar : Parts I & II : Bharatiya Vidya Bhavan Bombay.
50. The Struggle for Empire : Bharatiya Vidya Bhavan Bombay : 1957.
51. Utgikar : Collected Works by R. G. Bhandarkar.

(छ) अंग्रेजी-निबन्ध

1. Barua-B. K. : 'Purusottam Gajapati of Orissa in Early Assamese Literature' : All India Oriental Confe-

rence : B. H. U. XII-Session : 1943-44 : Ed. A. S. Altekar.

2. Chakravarti C : 'Sanskrit Works of Maharaja Viśvanātha Simha' : Journal of the Royal Asiatic Society of Bengal-Calcutta : Vol. V : 29th Oct. 1939.
3. Chaturvedi-G. D. : 'Note on Gaṅgāśrama son of Tulārāma : Annals : Poona : Vol. XXXIV.
4. Gode-P. K. : 'A Contemporary Manuscript of Bhānujī Dīkṣitas Vyākhyāsudhā' : Journal of the University of Bombay : Vol. XI Part II : Sept. 1942.
5. Gode-P. K. : 'Bhānudatta—Author of the Pārijāta and Bhānudatta—Author of the Rasa-Maṅjarī' : Indian Culture : Vol. III : 1937 : pp. 151-56.
6. Gode-P. K. 'Date of Sāhitya-Sudhā, a commentary on the Rasa-Taraṅginī of Bhānudatta' : Calcutta Oriental Journal : Vol. I : 1934 : pp. 217-220.
7. Gode-P. K. : 'Identification of Virabhānu, The Patron of Poet Bhānukara' : Calcutta Oriental Journal : Vol. II : 1935 : pp. 254-258.
8. Gode-P. K. : 'Rāmchandra Bhatta, a Protege of King Pahārasimhadeva son of King Virasimhadeva of Bundelkhand' : Adyar Library Bulletin Vol. XVIII-Part I & II : p. 2.
9. Gode-P. K. : 'Sābājī Pratāparāja.....' : Annals of the B. O. R. I. Poona : Vol. XXIV-Part III-IV : 1944 : pp. 156-164.
10. Gode-P. K. : 'Sanskrit and Hindi works of Mahārāja Viśvanātha Simha of Rewa-Between 1813 and 1853' : New Indian Antiquary : B. O. R. I. Poona Vol. IX-Nos. 4-6 : April-June : 1947.
11. Gode-P. K. : 'Some Data for the Identification of Virabhānu, the Patron of Poet Bhānukara' : Calcutta Oriental Journal : Vol. II : 1935 : pp. 197-199.
12. Gode-P. K. : 'Terminus ad quem for the date of Bhānudatta, the Author of the Rasa-Maṅjarī' : Annals : Poona : Vol. XVI-1935-pp. 147-148.
13. Gode-P. K. : 'Virabhānūdaya-Kāvyaṃ' Annals : Poona : Vol. XXVII-Part 182 : 1947 : pp. 163-165.

14. Katre-S. : 'Kalyāṇa Varman's Sārāvāli—Fresh Light on Its Date' : All India Oriental Conference : B. H. U. XII-Session : 1943-44 : Ed. A. S. Altekar.
15. Nizami-A. H. : 'Baghelas in Gujarat' : The Rewa Information : Vol. I-Part 3 : July, 1947.
16. Nizami-A. H. : 'Genealogical Sources of the Baghela Dynasty of Rewa' : Ninth History Congress : Annamalainagar : Dec. 1945 : pp. 150-153.
17. Nizami-A. H. : 'Nine Gems of the Court of Mahārāja Bhāvasimha of Rewa' : Journal of the Gangānātha Jhā Research Institute, Allahabad, Vol. VIII-Part IV : Aug. 1951.
18. Nizami-A. H. : 'Note on Maihar' : Bharatiya Vidya, Bombay : Vol. VI-No. 2 : Feb. 1945.
19. Nizami-A. H. : 'The Baghela Dynasty of Rewa' : Journal of the Vikram University : Part II-May, 1958.
20. Nizami-A. H. : 'The Malikzada Dynasty of Kalpi' M. P. History Congress : Bhopal : April 11, 1957.
21. Sharma-Har Dutt (Dr.) : 'Some Baghela Rulers and the Sanskrit Poets Patronised by them' : Krishnaswamy Aiyangar Commemoration Volume : Ahmedabad : pp. 48-54.
22. Sharma-Har Dutt (Dr.) : 'The Poet Bhānukara', Annals Poona : Vol. XXVII-1936.
23. Sharma-Har Dutt (Dr.) : 'The Sūkti-Sundara of Sundaradeva' : Calcutta Oriental Journal : Feb. 1936 : pp. 133-144.
24. Sharma-Har Dutt (Dr.) : 'The Vaiṣṇava Philosopher Priyādāsa and His Works' : Indian Historical Quarterly; Calcutta : Volume XVI : 1940.
25. Shastri-Hiranand (Dr.) : 'Critical Analysis of the Vira-bhānūdaya Kādyam' : Published with the Kāvya : Baroda : 1938.
26. Shastri-Hiranand (Dr.) : 'Further Notes on the Baghela Dynasty of Rewa' : Journal of the Bihar and Orissa Research Society : 1930.
27. Shastri-Hiranand (Dr.) : 'The Baghela Dynasty of Rewa—A Memoir' : Baroda; 1925.

अवशिष्ट

१ से ७ अध्यायों में वर्णित ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ और पाण्डुलिपियों की सूचना प्राप्त है, जिनका सम्बन्ध बघेलखण्ड की संस्कृत-वाग्धारा के साथ होना अनुमित है। इनकी स्थिति सन्देहास्पद है और जानकारी विलम्ब से मिली, अतः यहाँ पृषक् रूप से इनका नामोल्लेख-मात्र किया जा रहा है।

निम्नलिखित चार पाण्डुलिपियाँ रीवा से १९५५-५६ ई० में नागरी-प्रचारिणी-सभा काशी को भेजी गई—

१. शुद्धिभास्कर (खण्डित)—कर्मकाण्ड का यह ग्रन्थ पद्मनाभ मिश्र द्वारा रचित बतलाया जाता है। इसका लिपिकाल १७०६ वि० (१६५० ई०) है।

२. वीरसिंहावलोक—यह ज्योतिष-ग्रन्थ बघेल-नरेश वीरसिंहदेव की कृति कही जाती है।

३. सिद्धान्तचन्द्रिका (पूर्वाह्न)—रामाश्रमाचार्य की इस कृति का लिपिकाल १९२६ वि० है।

४. सन्देन्दुशेखर—कहा जाता है कि यह ग्रन्थ १८४२ वि० में नागोजी भट्ट द्वारा चंदिवा (जिला शहडोल) में लिखा गया।

कुछ अन्य संबद्ध पाण्डुलिपियाँ निम्नलिखित हैं—

१. राधाविनोद-काव्यम्—सरस्वती-कोपभाण्डार रीवा में प्राप्त यह १९ श्लोकों का लघु कृष्णकाव्य है। पुरुयोत्तम ब्राह्मण के पुत्र जनार्दन का ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्र इसका रचयिता है।

२. सभ्याभरण—यह नीतिपरक कृति ९ उल्लासों में भाण्डार में सुरक्षित है। इसमें व्याकरण-सूत्रों पर विद्वत्ता प्रदर्शित की गई है। विश्वनाथ का पुत्र एवं शिष्य इसका प्रणेता है। पाण्डुलिपि पर 'महाराज-भावसिंहस्येदं' लिखा है।

३. अवधूतग्रन्थ—भाण्डार में ६ पत्रा में लिखित ७९ श्लोकों का यह वेदान्त-ग्रन्थ प्राप्त है। एक पुष्पिका इस प्रकार है—

'दत्तात्रय-भोरक्षसंवादे स्वात्मसंबृत्त्युपदेशे अवधूतग्रन्थे प्रथमे प्रकरणम्।'

भ्रम से इसे महाराज अवधूतसिंह की रचना लिखा गया है।

४. पञ्चकोश-विवेक (व्याख्या-सहित)—विद्यारण्य मुनि की यह कृति रामकृष्ण की व्याख्या के साथ भाण्डार में रखी हुई है।

५. अमरकण्ठक-माहात्म्य—आफ़े की सूची के प्रथम भाग में पृ० २६ पर शूमपुराण के अंश के रूप में अमरकण्ठक-माहात्म्य का उल्लेख है।

६. रामचन्द्रोदय—उक्त सूची में पृ० ४०५ पर पुण्योत्तम मिश्र की कृति रामचन्द्रोदय का नाम है। परिचय में लिखा है कि यह कवि राधाचरित के कवि का पितामह हो सकता है। हरप्रसाद वास्ती के अनुसार बीरसिंहदेव धधेल के सभासद रामचन्द्र भट्ट ने राधाचरित लिखा।

रामवन, जिला सतना (म० प्र०) के तुलसी-संग्रहालय में संरक्षित पाण्डु-लिपियाँ अनुसन्धेय हैं। इनमें से दो ग्रन्थ यहाँ उल्लेखनीय हैं—

१. काव्य-कल्पद्रुम (अपूर्ण)—यह सन्त कवि के पुत्र दिनेश द्वारा रीवा में चौसठवीं शती के पूर्वार्द्ध में लिखा गया। इसमें सन्त द्वारा रचित साहित्य-रत्नाकर का उल्लेख है। ग्रन्थ में ६६ पृष्ठ हैं; एक पुष्पिका इस प्रकार है—

‘इति श्री कविराज-राजि-मुकुटालङ्कार-शौर-श्रीसन्त-कबीश्वरारमज-रीवा-निवासी-वन्दीजन-दिनेश-कविराजकृत-काव्यकल्पद्रुम-नाम-ग्रन्थे काव्यकारणकार्य-वर्णनं नाम प्रथमं प्रकरणम् ।’

२ मधुर-रामायण—यह हिन्दी काव्यग्रन्थ दोहे चौपाइयों में ४ काण्डों में २१५ पृष्ठों में है। काण्डों के नाम पूर्व खण्ड, दक्षिण खण्ड, पश्चिम खण्ड, और उत्तर खण्ड हैं। प्रथम द्वितीय खण्ड में प्रारम्भ में संस्कृत ग्रन्थ आदि-रामायण का मूल लेकर एक अध्याय का अर्थ ब्रजभाषा पद्य में है, फिर दोहे चौपाइयों में रामकथा है।

ग्रन्थ का लिपिकाल कातिक शुक्ल ९ संवत् १९०३ है। लिपिकार रीवा निवासी चम्पूनाथ प्रधान है। ग्रन्थकार माधवदास प्रसाद महाराज विश्वनाथ सिंह का शिष्य था—

गंगा प्ररसाद जू को नामो कासीराम पुत्र
माधो मेरो नाम रीवाँ नगर नेवास है ।
महाराज विश्वनाथसिंह को सिपायो पाल्यो
मधुररामायन सो रच्यो सहलास है ॥
आदि रामायन को अर्थ चारो खंडन में
पंचरात्र पदुम पुराण मत खास है ।
मानो कै विस्वास अंत नासै भवत्रास
भयो रास कै विलास सीताराम जू को वास है ॥

पुष्पाञ्जलिः

पवित्रे सारवावारे मिश्रग्रामे द्विजातयः ।
 न्यवसन् मिश्रजातीया यज्वानो शास्त्रसेविनः ॥ १ ॥
 तद्वंश्यो वैनदासस्तु विश्वनाथं समाश्रितः ।
 अर्चितः कांशराजेन वेदीली-ग्राममावसत् ॥ २ ॥
 तदन्वये समुद्भूतो बलमद्र उपागविः ।
 काश्याः प्रस्थाय विप्रोऽसौ रेवा-नगरमाश्रितः ॥ ३ ॥
 रम्ये देशे बघेलानां प्रजास्तस्य महात्मनः ।
 प्रतिष्ठां प्रापिता धीरा निवसन्त्यग्निहोत्रिणः ॥ ४ ॥
 तस्मिन् कुले समुत्पन्नो रामनारायणः सुधीः ।
 ग्रामे रजरवारे च गुरुत्वं येन प्रार्जितम् ॥ ५ ॥
 पुण्यात्तदङ्गजन्माऽहं नान्ना राजीवलोचनः ।
 जातः काव्यानुसन्धित्सुर्हेतुस्तत्र परम्परा ॥ ६ ॥
 बान्धवाश्चै गह्वोरायां रेवापुर्यां प्रशासताम् ।
 बघेलखण्ड-भूपानामपि तेषां सभासदाम् ॥ ७ ॥
 प्रास्फुरन् संस्कृता वाचो विदुषां शरदः शतम् ।
 सन्ति तन्निर्मिता ग्रन्था ग्रन्थागारेषु सञ्चिताः ॥ ८ ॥
 हस्तलेख-स्वरूपेण निबद्धा वेष्टनेषु ते ।
 कालक्रमेण तेषाञ्च शङ्क्यते कीटभक्षणम् ॥ ९ ॥
 एषु लभ्येत भारत्या यात्रावृत्तं यथाक्रमम् ।
 अङ्किताः पूर्वजातानानिह प्रज्ञाश्च भावनाः ॥ १० ॥
 सम्प्रधार्य मनस्येवं कार्यमद्यैव सुस्थितैः ।
 ग्रन्थानां सारपूर्णानां प्रकाशन-समीक्षणम् ॥ ११ ॥
 तस्मान्महाप्रचन्थानां विहाय परिशोधनम् ।
 बघेलखण्ड-काव्यानां मया सारोऽनुसंहितः ॥ १२ ॥
 विशुद्धिरत्र लक्ष्येद गुरुणां सुहृदाञ्च सा ।
 श्यामिका या प्रतीयेत सा मेऽल्पज्ञस्य सर्वथा ॥ १३ ॥
 अथ पुष्पाञ्जलिर्न्यस्तश्चरणेषु मनीषिणाम् ।
 भूयान् प्रीत्यै चिरं तेषां रसज्ञानां शिवात्मनाम् ॥ १४ ॥